नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला-९९

कवि पुहकर कृत

रसरतन

[अद्यावधि अविज्ञात 'रसबेलि' के अंशों के साथ]

संपादक

डॉ० शिवप्रसाद सिंह

हिंदीविभाग

काशी हिंदू विश्वविद्यालय



नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, राष्ट्रभाषा मुद्रण, काशी

प्रथम संस्करण : ११०० प्रतियाँ

संवत् २०२० वि० : मूल्य १०.००

स्वर्गीय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को

उनकी २२वीं पुण्यतिथि पर

श्रद्धांजलि के रूप में

प्रकाशकीय

नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी की जिन ग्रंथमालाओं के द्वारा हिंदी को श्रीसंपन्न बनाने का प्रयत्न किया है उनमें नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला का विशिष्ट योगदान है। प्राचीन ग्रंथों के खोज का कार्य आरंभ होने पर खोजविवरण के प्रकाशन के साथ ही हिंदी के विशेष लाभ की दृष्टि से सभा ने यह भी अनुभव किया कि खोज में प्राप्त चुने हुए ग्रंथों का प्रकाशन भी हो। उसने संवत् १९५७ वि० (सन् १९०० ई०) से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला' का आयोजन किया। उस समय इसकी पृष्ठसंख्या ६४ और मूल्य आठ आने स्थिर किए गए। वर्ष में इसके चार अंकों के प्रकाशन का भी निश्चय किया गया था। इस ग्रंथमाला के संवत् १९७६ तक चौंसठ अंक प्रकाशित हुए। इस समय तक इस ग्रंथमाला के संपादक क्रमशः श्री राधाकृष्णदास (संवत् १९६१ तक), महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी (संवत् १९६५ तक), श्री माधवप्रसाद पाठक (संवत् १९६७ तक) और श्री श्यामसुंदर दास (संवत् १९७६ तक) थे। प्रांतीय सरकार ने इस ग्रंथमाला की उपयोगिता के कारण ३०० रु० वार्षिक की सहायता पाँच वर्षों के लिये संवत् १९६१ में देना स्वीकार किया। फलस्वरूप इसकी पृष्ठसंख्या ८० कर दी गई पर उसका मूल्य आठ आने ही रहने दिया गया। इस ग्रंथमाला में तबतक ग्रंथ खंडशः प्रकाशित होते थे। संवत् १९७७ से इस ग्रंथमाला में पूरे ग्रंथों का प्रकाशन आरंभ हुआ। अलवर नरेश महाराज सवाई जयसिंह ने इस ग्रंथमाला के लिये ६००० रु० सभा को दिया तबसे यह ग्रंथमाला निरंतर प्रकाशित हो रही है और हिंदी के भांडार को सुसंपन्न कर रही है।

इस ग्रंथमाला में अबतक ५४ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। पृथ्वीराज रासो जैसा बृहद् ग्रंथ सभा ने इसी माला में प्रकाशित किया। इस माला में अब निम्नांकित ग्रंथ प्राप्य हैं :

१–भक्तनामावली, २–हम्मीररासो, ३–भूषण ग्रंथावली, ४–जायसी ग्रंथावली, ५–तुलसी ग्रंथावली, ६–कबीर ग्रंथावली, ७–सूरसागर, ७–खुसरो

की हिंदी कविता, ९–प्रेमसागर, १०–रानी केतकी की कहानी, ११–नासिकेतोपाख्यान, १२–कीर्तिलता, १३–हमीर हठ, १४–नंददास ग्रंथावली, १५–रत्नाकर, १६–रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, १७–हिंदी टाइपराइटिंग, १८–हिंदी साहित्य का इतिहास, १९–घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा, २०–प्रतापनारायण ग्रंथावली, २१–तुलसीदास, २२–हिंदी में मुक्तक काव्य का विकास।

'रसरतन' इस ग्रंथमाला का ५५ वाँ पुष्प है। हिंदी काव्य परंपरा की एक विलुप्त कड़ी को प्रकाशित करने में यह शोधपूर्ण ग्रंथ अपना मौलिक महत्व रखता है। आशा है हिंदी जगत् में इसका संमान होगा।

सुधाकर पांडेय
प्रकाशन मंत्री

आभार

चार वर्ष पूर्व जब 'रसरतन' की पोथी संपादन के लिये मेरे हाथों लगी, तब मुझे यह विश्वास न था कि यह अप्रकाशित रचना एक प्रथम श्रेणी की कृति है और इसका संपादन, प्रकाशन हमारे साहित्य के लिये एक महत्वपूर्ण घटना हो सकता है। प्राप्त हस्तलेखों का निरीक्षण-परीक्षण ज्यों ज्यों बढ़ता गया और जैसे जैसे इस महत्वपूर्ण कृति का कलेवर फटेफटाये, टूटे-अधूरे और वर्षों से उपेक्षित हस्तलेखों के चंगुल से मुक्त होने लगा; वैसे वैसे रसरतन के काव्यगत महत्व और सौष्ठव का चंद्रमा भी ग्रहण से उबरकर स्पष्ट होता गया। अबतक जिन लोगों ने भी इसके इस संपादित मूलपाठ को देखा है, वे एक हर्षमिश्रित आश्चर्य से भर उठे हैं। मध्यकालीन हिंदी साहित्य की इस अनमोल विस्मृत कड़ी को पुनः उसकी गौरवपूर्ण परंपरा से श्रृंखलित करने के इस कार्य में मेरी सफलता इसके सांगोपांग विवेचन की पूर्णता में नहीं है, और न तो मेरा यह दावा ही है, यह सफलता केवल इस महत्वपूर्ण साहित्यसंपदा को यथासंभव साफसुथरी बनाकर पारखी सहृदयों के सामने रख देने भर में है और मैं अपने कार्य के इस पक्ष से पूर्ण संतुष्ट हूँ। मुझे इस ग्रंथ के संपादन के दिनों में, साहित्य और भाषा के दोनों ही आयामों के अंतर्गत कार्य करते समय जो सारस्वत सुख और परितोष मिला है, वही इस श्रम की सर्वोत्तम उपलब्धि है। रसरतन अगले कुछ वर्षों में ही हिंदीप्रेमाख्यानककाव्यों, चारणशैली के श्रृंगारिक रासोकाव्यों और रीति-काव्यों के बीच के सर्वनिष्ठ सेतु के रूप में स्वीकृत-समादृत होगा। अनेक शोधकर्ता, समीक्षक और साहित्यरसिक इसकी ओर आकृष्ट होंगे। अनेक संस्करणों, संक्षिप्त, लघु और सटीक के नए शस्य से यह भूमि भी 'हरित' और 'तृणसंकुलित' होकर रहेगी—यह उचित ही नहीं, आवश्यक भी है। क्योंकि रसरतन में रस भी है, 'रतन' भी, इसलिये अधिक से अधिक श्रेष्ठ

प्रतिभा और शक्ति के लोग इस उर्वर भूमि की परीक्षा-प्रशंसा करें तो अच्छा ही है। उनका पथ सुखमय और सुविधाजनक हो सके, इसीलिये झाड़झंखाड़ को काटकर यह दागवेल डाल दी गई है, राजमार्ग तो अब आनेवालों को ही बनाना होगा।

यहाँ पुहकर कवि के प्रेमाख्यानककाव्य 'रसरतन' का पूर्ण, और रस-निरूपण तथा नायिकाभेद विषयक ग्रंथ रसवेलि के कुछ अंशों का संपादित मूलपाठ और समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आशा है कि यह अध्ययन कवि की अन्य कृतियों के संधान की प्रेरणा भी जगाएगा। रसरतन और रसवेलि के अतिरिक्त भी कवि का कुछ कृतित्व अवश्य रहा होगा। शिवसिंहसरोज (लखनऊ, नवंबर १८८३ ई० के संस्करण) में कवि का परिचय देते हुए लिखा गया है कि इन्होंने रसरत्न नामक ग्रंथ साहित्य में बनाया है और पृष्ठ १६४ पर निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया गया है—

जल जोर महाघन घोर घटा व्रज ऊपर कोप पुरंदर को।
कवि पुष्कर गोकुल गोप सबै निरखैं मुख श्री मुरलीधर को॥
धर तैं धरिबो धरणी धर को धरक्यो न हियो धरणीधर को।
कर लै जनु काँकर को कर को करुणाकर को करुणा कर को॥

यह सवैया 'रसरतन' का नहीं है। रसवेलि का है या नहीं, इसके निर्णय का भी कोई आधार नहीं। अद्भुतरस के उदाहरण के रूप में शायद 'रसवेलि' में आया हो। जो भी हो, इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि पुहकर कवि के कुछ स्फुट छंद अभी भी मिल सकते हैं। रसवेलि के अन्य अंशों को प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिए।

रसवेलि का एक और छंद जो चित्रसंख्या २० के नीचे मिला है उद्धृत किया जा रहा है। इस पद को रसवेलि के अन्य अंशों के साथ परिशिष्ट में संमिलित नहीं किया जा सका क्योंकि इसकी प्रतिलिपि बाद में मिली। डा० परमेश्वरीलाल जी गुप्त ने अपने २६-१२-६२ के पत्र में लिखा है कि उस समय चित्र नं० २० किसी विदेशी प्रदर्शनी में गया था, इसलिये उसमें संलग्न छंद की फोटो कापी तैयार न हो सकी। कवित्त इस प्रकार है—

धीरा

वारिज बदन पर सोहे ओस कन जैसे
अमल उमै लसी क स्मित सुहाये हौ।
कैधों कहूँ ससिनि के तेज मात्र गाढ़े भये
कैधों कहूँ पद्मिनी के पीछे उठि धाये हौ।
पुहकर कर गहै बिजन डुलावै बाल
कैसो प्रिय प्रान नाथ मेरे मन भाये हो।
अंग अंग छवि पर वारी हौं बिहारी लाल
आँनद मगन मनौ काम जीति आये हौ॥

श्रद्धेय डा० माताप्रसाद गुप्त ने रसरतन की टीका के हस्तलेख की सूचना दी और उसके कुछ अंश की प्रतिलिपि मेरे मित्र जगदीश जी ने तैयार कराके मेरे पास भेजी, इसके लिये मैं इन दोनों का कृतज्ञ हूँ। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के अधिकारियों, विशेषकर लाइब्रेरियन श्री एस० चौधुरी का भी आभारी हूँ जिन्होंने संस्था के हस्तलेख संग्रहालय में मेरे लिये उक्त टीका को देखने की सभी सुविधाएँ प्रदान कीं।

इस ग्रंथ के परिशिष्ट में पुहकर कवि की नायिकाभेदविषयक कृति 'रसवेलि' के कुछ अंश भी प्रकाशित किए गए हैं। यह हिंदी के लिये अश्रुत-पूर्व सूचना और सामग्री है। इसको उपलब्ध कराने में शोधार्थियों के अहेतुक बंधु डॉ० परमेश्वरीलाल जी गुप्त के सहयोग के लिये मात्र धन्यवाद कह देना उचित न होगा। उन्होंने जहाँगीरकालीन अनेक चित्रों के साथ संलग्न इस सामग्री की फोटो कापी भेजकर इस ग्रंथ को और भी अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली के, अधिकारियों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने उक्त सामग्री की फोटो कापी तैयार करने की अनुमति दी।

इस ग्रंथ की भाषा पर एक संक्षिप्त सा अध्ययन ही दिया जा सका है। बृहत् भाषावैज्ञानिक अध्ययन बाद में प्रस्तुत करने का विचार है। इसके अध्ययन के लिये व्याकरणिक रूपों की अनुक्रमणी हिंदीविभाग के एम० ए० के छात्र श्री प्रेमचंद जैन और श्री रामाशीष पांडेय ने तैयार की है। इन्हें धन्यवाद उसके भाषाशास्त्रीय अध्ययन के प्रकाशन पर ही देना ठीक रहेगा।

अंत में रसरतन के पाठकों के लिये एक संक्षिप्त शब्दार्थसूची दे दी गई है, जिसे प्रस्तुत करने में मेरे मित्र श्री पद्मधर त्रिपाठी का भी सहयोग रहा।

एक शब्द रसरतन के पाठकों के प्रति। बहुत सावधानी बरतने के बावजूद प्रूफ़ संबंधी कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं, आदिखंड छंद १ की प्रथम पंक्ति में 'अगुन' का 'अगुन' छप गया है। कृपया सुधार लें। यदि ध्यान से भूमिका और परिशिष्ट में दी हुई शब्दार्थसूची का अवलोकन किया जायगा, तो प्रूफ की अशुद्धियों में से कई का मार्जन हो जायगा। कवि के शब्दों में यह रसरतन आपके हृदय में स्थान पा सके। बस

कथा प्रसंग कीन गुन डोरा।
नव रस रतन हार हिय जोरा॥

काशी
१०. ५. ६३

शिवप्रसाद सिंह

विभागीय प्राक्कथन

रसरतन

'पुहकर' कवि का 'रसरतन' प्रकाशित रूप में पहली बार हिंदीसेवियों के संमुख उपस्थित हो रहा है। इसे हम शुद्ध रूप से और पूर्णतः भारतीय प्रेमाख्यानक (प्रबंध महाकाव्य या) काव्य कह सकते हैं। भारतीय परंपरा के अनेक प्रेमाख्यानकों पर निश्चय ही प्रेममार्गी सूफी कवियों की काव्यधारा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। ग्रंथ की भूमिका और 'रसरतन' को पढ़कर स्वतः पाठक देख सकेंगे कि किस सीमा तक सूफी प्रेमाख्यानकों ने वर्तमान प्रस्तावित कृति को प्रभावित किया है।

पर हम यहाँ दूसरी बात की ओर पाठकों की अनुशीलनदृष्टि को ले जाना चाहते हैं। सूफियों का कितना प्रभाव पड़ा है और कितना नहीं— इसकी विवेचना तो तुलनात्मक अध्ययन की रुचिवाले पंडित भविष्यत् में करेंगे ही। हिंदी के शोधकर्ताओं और समालोचकों का ध्यान उस तथ्य की ओर ले जाना अभीष्ट है जिसकी चर्चा अपने इतिहास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कदाचित् 'रसरतन' के प्रसंग पर सर्वप्रथम की है। इस ग्रंथ के विचित्र महत्व की ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा था कि हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यों में इसका विशिष्ट स्थान होना चाहिए।

हिंदी साहित्य के इतिहास में काव्यक्षेत्रीय साहित्यिक और कलात्मक महत्ता की दृष्टि से सूफियों के प्रेमाख्यानकों की विशिष्ट प्रमुखता है। फिर भी विशुद्ध भारतीय परंपरा की प्रेमगाथा के विचार से उनके (सूफी प्रेमाख्यानकों के) स्वरूपनिर्माण में भारतीयेतर तत्व भी कम नहीं हैं। भारतीय संस्कृति और समाजचेतना का पर्याप्त प्रभाव पड़ने पर भी उनकी मूलात्मा और दार्शनिक पीठिका में अभारतीय प्रेरणा का योग भी कम नहीं है। सूफियों के प्रेमपरक काव्यों में गूँजनेवाले स्वरों में भारतीय संस्कृतिराग की मिठास मुखरित नहीं सुनाई देती है। इसी दृष्टि से महाकवि 'पुहकर' का 'रसरतन'—जैसा कि पाठक और समीक्षक स्वयं देखेंगे—एक विशिष्ट कृति है।

इसी कारण शुक्ल जी ने इसके महत्व का संकेत करते हुए लिखा है—'कल्पित कथा को लेकर प्रबंधकाव्य रचने की प्रथा पुराने हिंदीकवियों में बहुत कम पाई जाती है। (यहाँ कल्पित से तात्पर्य प्रस्तुत संदर्भ में प्रेमाख्यानक प्रबंधकाव्यों से है, जिनमें ऐतिहासिक व्यक्तियों या कथांशों का समावेश कभी कभी होने पर—प्रेमाख्यानकीय कथारूढ़ियों में प्रचलित कल्पना के व्यापार से—कथामूर्ति और भावप्रतिमा का अधिकांश और मुख्यांश निर्मित होता है। कभी कभी वे कथाएँ पूर्णतः कल्पित और कभी कभी प्रचलित लोककथाओं का थोड़ा बहुत आधार और अधिकांश कल्पितांश लेकर निर्मित हो सकती हैं।) जायसी आदि सूफीशाखा के कवियों ने ही इस प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं। पर उनकी परिपाटी बिलकुल भारतीय नहीं है। इस दृष्टि से 'रसरतन' को एक विशेष स्थान देना चाहिए'। इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए यदि हम भारतीय प्रेमगाथाओं की ऐतिहासिक धारा की ओर दृष्टिपात करें तो आचार्य शुक्ल के कथन का भाष्यार्थ समझ में आ जायगा।

भारतीय प्रेमाख्यानक की मूलधारा

भारतीय प्रेमाख्यानकों का जो रूप आज तक उपलब्ध हो सका है उसमें ऋग्वेद का वह संवादसूक्त प्राचीनतम कहा जा सकता है जिसमें पुरूरवा और उर्वशी का कथनोपकथन वर्णित है। पुरूरवा मर्त्य है, मानवलोक का मरणशील मनुष्य है और उर्वशी अप्सरा है—देवलोक की दिव्य नारी है। चार वर्षों तक वह दिव्य अप्सरा पुरूरवा के साथ पत्नी के रूप में धरती पर रही। इसके बाद वह आपन्नसत्वा होने पर एक घटना के कारण प्रथम उषा के समान एकाएक धरती से तिरोहित हो गई। उसे ढूँढ़ते हुए पुरूरवा ने अन्य सखी अप्सराओं के साथ एक सरसी में उसे जलक्रीड़ा करते पाया। ऋग्वेद के उक्त सूक्त में यही संवाद आबद्ध है। इसकी उक्तियों का तात्पर्य कहीं कहीं अस्पष्ट और अबोध्य है।

उक्त संवादसूक्त से—जिसकी प्रेयसी दिव्या अप्सरा और नायक मानव है—इतनी ही प्रेमकथा का संदर्भसंकेत मिलता है। परंतु शतपथ ब्राह्मण में भारत की इस अतिप्रत्न प्रेमगाथा का वर्णन पुनः मिल जाता है। ऋग्वेदोत्तर साहित्य में यह कथा बारंबार पुनः वर्णित और विस्तृत होती गई। शतपथ ब्राह्मण में यह आख्यानक कुछ विस्तार के साथ मिलता है। उसके आधार पर उपर्युक्त ऋग्वेद से संकेतित अपूर्ण और खंडकथा का कुछ अधिक स्पष्ट रूप

सामने आता है। शतपथ ब्राह्मण के इस वर्णन में तत्कालीन 'लोकाख्यानक शैली' के अनेक पूर्वसंकेत मिलते हैं। वर्णनक्रम में ऋग्वेद के उक्त सूक्त की अठारह ऋचाओं में से पंद्रह की वहाँ चर्चा की गई है। ये ऋचाएँ 'शतपथ' की शैली के रूप में आख्यान के संदर्भ में यथास्थान बीच बीच गुंफित हैं। प्रेमाख्यानक गाथाओं या लोकगाथाओं के विकास की दृष्टि से शतपथ ब्राह्मण के प्रस्तुत उपाख्यान का महत्व तो है ही—पर इसके साथ वर्णनपद्धति के विचार से भी उसका महत्व कम नहीं है। अतः शतपथ ब्राह्मण (११।५।१) से थोड़ा सा आरंभिक ब्राह्मणांश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

उर्व्वशी हाप्सराः। पुरूरवसमैडं चकमे त ᳪ ह विन्दमानोवाच त्रिः स्म माऽह्नो वैतसेन दण्डेन हतादकामा ᳪ स्म मा निपद्यासै मो स्म त्वा नग्नं दर्शमेष न वै स्त्रीणामुपचारऽइति ॥ १ ॥

सा हास्मिञ्ज्योगुवास। (सा) अपि हास्माद्गर्भिण्यास तावज्ज्योग्घास्मिन्नुवास ततो ह गन्धर्व्वाः समूदिरे ज्योग्वाऽइयमुर्वशी मनुष्येष्ववात्सीदुपजानीत यथेयं पुनरागच्छेदिति तस्यै हाविद्ध्युरणा शयनऽ उपबद्धाऽऽस ततो ह गन्धर्व्वाऽन्यतरमुरणं प्रमेथुः ॥ २ ॥

सा होवाच। (चा) अवीरऽ इव बत मे ऽजनऽ इव पुत्र ᳪ हरन्तीति द्वितीयं प्रमेथुः। सा तथैवोवाच ॥ ३ ॥

(चा) अथ हायमीक्षाञ्चक्रे। कथन्नु तदवीरङ्कथमजन ᳪ स्याद्यत्राह ᳪ स्यामिति स नग्न एवानूत्पपात चिरन्तन्मेने यद्वासः पर्यधास्यत ततो ह गन्धर्व्वा विद्युतञ्जनयाञ्चक्रुस्तं यथा दिवैवं नग्नं ददर्श ततो हैवेयं तिरोबभूव पुनरैमीत्येत्तिरोभूता ᳪ सऽआध्या जल्पन् कुरुक्षेत्र ᳪ समया चचारान्यतःप्लक्षेति बिसवती तस्यै हाध्यन्तेन वव्राज तद्ध ताऽअप्सरसऽ आतयो भूत्वा परिपुप्लुविरे ॥ ४ ॥

त ᳪ हेयं ज्ञात्वोवाच। (चा) अयं वै स मनुष्यो यस्मिन्नहमवात्समिति ता होचुस्तस्मै वाऽआविरसामेति तथेति तस्मै हाविरासुः ॥ ५ ॥

(स्ता ᳪ) ता ᳪ हायं ज्ञात्वाऽभिपरोवाद।

'हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचाᳩसि मिश्रा कृणवावहै नु ॥ न नौ मन्त्राऽअनुदितासऽ एते मयस्करन्परतरे च नाहन्नि' त्युप नु रम सं नु वदावहाऽइति हैवैनां तदुवाच ॥ ६ ॥

तᳩ हेतरा प्रत्युवाच ।

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।

पुरूरवः पुनरस्तम्परेहि दुरापना वातऽइवाहमस्मीति' न वै त्वं तदकरोर्य्यदहमब्रवं दुरापा वा अहं त्वयैतर्ह्यस्मि पुनर्गृहानिहीति हैवैनं तदुवाच ॥ ७ ॥

इन पंक्तियों में ॥५॥ तक के भाग में उक्त ऋग्वेदीय संवादसूक्त के पूर्व की उपक्रमणिका है। उसमें उर्वशी के तीन 'समय' (पण = शर्त) बताए गए हैं जिनमें एक था (जैसा मूल में कहा गया है) कि 'मैं तुम्हें नग्न न देखूँ'। अर्थात् यदि नग्न देखा तो फिर 'मैं तुम्हारा साथ छोड़कर चली जाऊँगी'। गंधर्वों ने परस्पर बातचीत करते हुए कहा कि उर्वशी बहुत दिन मनुष्यों के बीच रह चुकी। अतः ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे वह पुनः वहाँ से लौट आए। विचार कर उन गंधर्वों ने अपना अभिसंधिपूर्ण कार्यक्रम बनाया। मेड़ के दो बच्चे थे जिन्हें उर्वशी अपने सुतनिर्विशेष वात्सल्य भाव से मानती थी। रात को सोते में भी अपनी खाट से उपबद्ध रखती थी। उन्हीं में से एक को पहले और दूसरे को बाद में गंधर्वों ने चुरा लिया। चुराकर बारी बारी गंधर्व दौड़ भागे। उन बच्चों के चोरी जाते समय दोनों बार उर्वशी कहने लगी (संभवतः हल्ला मचाने लगी)—'वीर-पुरुष-रहित स्थान से मानों मेरा पुत्रकल्प उरण (मेड़ का बच्चा) चुराया जा रहा है। वह ऐसे चुराया जा रहा है जैसे यहाँ कोई जन है ही नहीं (कोई भी मनुष्य नहीं है, मैं एकाकिनी हूँ, असहाय हूँ)।' पुरूरवा वहीं सोया था। हल्लागुल्ला और उर्वशी की असहाय वाणी सुनते ही उठकर जिस नग्न रूप में वह था वैसे ही उरणचोरों के पीछे चल पड़ा। वस्त्र पहनने में समय लग जायगा, देरी होगी—इस कारण पुरूरवा ने कपड़ा पहनने का इरादा छोड़ दिया और वैसे ही दौड़ पड़ा। ठीक इसी मौके पर गंधर्वों ने बिजली पैदा कर दी, ऐसी बिजली चमकाई कि रात के अंधेरे में दिन जैसा प्रकाश हो गया। उर्वशी की दृष्टि नंगे पुरूरवा पर पड़ गई। वह अंतर्हित हो गई। विरहजन्य मनोवेदना से विलाप करता हुआ पुरूरवा इधर-उधर चक्कर काटता और कुरुक्षेत्र के समीप अटन करता रहा। वहीं एक दिन कमलों

से भरी सरसी में आति (जलपत्नी—संभवतः हंस)-रूप से उर्वशी अपनी क्रीड़ासखियों के साथ जलकेलि कर रही थी। उसने चक्कर लगाते पुरूरवा को पहचान लिया और सखियों से बताया कि 'यही वह मनुष्य है जिसके यहाँ मैं वास कर चुकी हूँ।' तब उन सखियों ने पत्नी के बनावटी रूप को छोड़कर अप्सरारूप में प्रकट होने का विचार किया और वे प्रकट हुईं। उर्वशी भी उन्हीं के साथ अप्सरारूप में प्रकट हुई। उसे पहचान कर पुरूरवा अपनी व्यथा और अभिलाष कहने लगा तथा उर्वशी उत्तर देने और समझाने लगी।

यहीं से 'ऋग्वेद' का उक्त संवादसूक्त आरंभ होता है जो 'शतपथ ब्राह्मण' के इस उपाख्यान में वर्णित है। आगे चल उक्त 'ब्राह्मण' में कहा गया है— "तदेतदुक्तप्रत्युक्तं पञ्चदशर्च्चम्बह्वृचाः प्राहुः' अर्थात् पुरूरवा और उर्वशी का उक्त सरसीसमीपस्थ उक्तप्रत्युक्त (कथनोपकथन) ऋग्वेद के शाखाध्यायियों में पढ़े जाते हैं। [ऋग्वेद की आश्वलायनशाखा की संहिता में यह सूक्त १८ ऋचाओं का है। अतः कुछ विद्वानों का अनुमान है कि 'शतपथ ब्राह्मण' में निर्दिष्ट 'पञ्चदशर्च' सूक्त शांखायण शाखा में रहा होगा।] इसके पश्चात् विरहदुःख के सहन में असमर्थ पुरूरवा के समस्त तर्क, सब आग्रह व्यर्थ हो जाते हैं। समयभंग के बाद उर्वशी लौटकर पुरूरवा के साथ रहने के लिये किसी भी तरह तैयार नहीं होती। अंत में पुरूरवा कहता है कि यदि उर्वशी उसके साथ लौटकर नहीं चलेगी तो वह पर्वत की चट्टान से कूदकर, क्रूर भेड़िए का भक्ष्य बनकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर देगा। इसके उत्तर में समझाती हुई उर्वशी कहती है कि उसे (पुरूरवा को) पर्वत से कूदकर वृक का भक्ष्य बनकर, जीवन का अंत न करना चाहिए। वह यह भी कहती है कि नारी का हृदय वृकों (भेड़ियों) के ही समान क्रूर होता है। उनकी मित्रता, उनका सहचरण कभी स्थायी नहीं होता। और अंत में समझाती है कि पुरूरवा देवकृपा से मृत्युजेता होगा और आनंदपूर्वक स्वर्ग में सुखोपभोग करेगा। संवादसूक्त यद्यपि अचानक यहीं समाप्त हो जाता है तथापि 'ब्राह्मण' में उर्वशी पुरूरवा को वह उपाय बताती है जिसका अनुसरण करके मर्त्य पुरूरवा गंधर्वपद पाकर उर्वशी के साथ रहने का आनंद प्राप्त करे।

इस कथा में ऋक्संहिता से ज्ञात नहीं होता कि दोनों प्रेमियों का पुनः संगम हुआ या नहीं। 'शतपथ ब्राह्मण' से केवल इतना ही संकेत मिलता

है कि गंधर्व के रूप में अंतरित होकर कदाचित् पुरूरवा स्वर्ग पहुँचा **और** पुनर्मिलन का आनंद उसे मिला।

यह कथा कदाचित् अत्यंत प्रसिद्ध लोकाख्यानक होने से ही **ऋग्वेद** में और तदुत्तरवर्ती वाङ्मय में बारंबार गुंफित होती रही। कृष्ण यजुर्वेद की **कंठसंहिता** में इसका निर्देश मिलता है। इसी प्रकार **बौधायन श्रौतसूत्र** में भी यह आख्यानक वर्णित है। सबसे विशिष्ट और कलात्मक रूप इसका महाकवि **कालिदास** के विश्वविख्यात नाटक **विक्रमोर्वशीय** में मिलता है जहाँ यद्यपि मूल प्रेरणा **ऋग्वेद** और **शतपथ ब्राह्मण** से ही प्राप्त जान पड़ती है तथापि उसका मुख्य आधार महाभारत है। **हरिवंश पुराण महाभारत** का ही परिशिष्ट भाग है। वहाँ से कालिदास के नाटक में कथा ली गई है। **महाभारत** के अतिरिक्त **विष्णुपुराण** में भी यह कथा मिलती है और **कथासरित्सागर** में भी इसका वर्णन उपलब्ध है।

इतने विस्तार के साथ उक्त आख्यान का परिचय देने का—केवल इतना दिखाना ही—उद्देश्य है कि भारतीय वाङ्मय के आदिकाल से ही प्रेमाख्यानकों का प्रचलन होने लगा था। बहुत संभव है कि ये प्रेमाख्यानक लोककथाओं के मूल से संकलित किए गए हों। लोकप्रचलित प्रेमगाथाएँ ही इनके मूल प्रेरणा-स्रोत थे। इस अनुमेय कल्पना का आभास **शतपथ ब्राह्मण** के उक्त आख्यानक से स्पष्ट झलकता है। उससे यह जान पड़ता है कि संभवतः **ऋग्वेद** काल में और प्रधान रूप से **शतपथ ब्राह्मण** के युग में लोकगाथाओं के कथन की कुछ कुछ वह परंपरा थी जिसमें नायक और नायिकाओं के मुख्य वचन पद्यों में आबद्ध होते थे और मध्य का व्याख्यात्मक, योजक एवं कथापूरक वर्ण्य अंश गद्य में आबद्ध रहता था। यह गद्यांश थोड़ा बहुत कथा सुनानेवाले अथवा आज की नौटंकी जैसे नाट्यकथानक उपस्थित करनेवाले व्यक्तियों द्वारा भी कहे जाते थे। फलतः शब्दावली तथा उनके आकार प्रकार में परिवर्तन होते रहते थे। परंतु उनके संवादपरक पद्यांश अधिक स्थायी होते थे। 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' नामक ग्रंथ में लोकगाथाओं की चर्चा के प्रसंग में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोकप्रचलित विभिन्न प्रकार के लोकनाट्यों और श्रव्यलोककथाओं की पद्धतिरूढ़ियों का विस्तार के साथ निरूपण किया है, जिसे हम वहाँ देख सकते हैं। इसी प्रकार दिव्य और मर्त्य प्रेमीयुगल की प्रणयगाथा भी कदाचित् ऐसी ही एक कथानकरूढ़ि रही है जिसका उपयोग **ऋग्वेद** युग से लेकर **पुहकर** के **रसरतन** तक में मिलता है। 'रसरतन' का

नायक स्वप्नलब्ध अपनी प्रेयसी को ढूँढ़ता हुआ जब मानसरोवर के तट पर रात में विश्राम कर रहा था तब उर्वशी की सलाह से—क्रीड़ाकमलों के साथ खिलवाड़ करती हुई अप्सराएँ, ब्रह्मकुंड नामक स्थान पर वास करती हुई 'कल्पलता' के प्रति स्नेहार्द्र होकर—युवराज को उसके पास ले गईं। यह कल्पलता इंद्रकोप से शापग्रस्त होकर स्वर्गच्युत कर दी गई थी। उसे पृथ्वीवास का दंड मिला था। क्रीड़ा करती हुई अप्सराएँ आकाशमार्ग से, सोए शूरसेन को ब्रह्मकुंड, कल्पलता के पास, ले गईं। वहाँ कुमार का प्रथम विवाह कल्पलता के साथ अकस्मात् हो जाता है। नायिका भी देवयोनि की शापभ्रष्ट अप्सरा ही है। कदाचित् लोककथा की वह प्रतिध्वनि भी पुरातनयुग से ही भारत के प्रेमाख्यानकों में गृहीत हो चुकी थी जिसके अनुसार स्वर्गच्युत या पृथ्वी पर आगत अप्सराओं और गंधर्व आदि की पुत्रियों का विवाह, धरती के अति सुंदर मर्त्यों के साथ रचाया जाता था। कभी कभी मर्त्यअमर्त्य प्रेमीप्रेमिकाओं के मिलन में गंधर्व, विद्याधर आदि भी सहायक रूप से इन कथाओं में वर्णित होते रहे हैं। बहुधा ये अपदेवता हंस, शुक आदि का रूप भी धारणकर उपस्थित हुआ करते थे। संभवतः अपने वर्ग या समाज की कन्या के स्वर्गपतित होने से दुखित होकर वे सहानुभूतिवश, सुंदर नर से उनका मिलन कराते थे। कभी कभी मर्त्य युगलों की सुंदर और अनुपम जोड़ी को मिलाने में उन्हें परम आनंद प्राप्त हुआ करता था। गुणसौंदर्यशाली नरनारियों की युगल जोड़ी मिलाना, संभवतः, वे परम धर्म का काम मानते थे। इस प्रकार के मेलनपरक दूतकर्म करनेवालों के अनेक स्वरूप—विभिन्न लोकाश्रित भारतीय प्रेमाख्यानकों में आजतक भी मिलते चले आ रहे हैं। **रासो** में—विशेष रूप से पृथ्वीराज के विविध विवाहवर्णनों के अंतर्गत—ऐसे प्रणयसहायक और परिणयसंपादक पात्रों का वर्णन मिलता है।

उपर्युक्त **शतपथ ब्राह्मण** की कथा में भी सरोवरस्थ हंसरूपधारी गंधर्व-कन्याओं या अप्सरिकाओं के जलविहार का वर्णन है। इसमें उर्वशी की क्रीड़ासहचरी सखियाँ हंस के रूप में जलविहार करती वर्णित हुई हैं। इसमें आश्चर्य और असंभावना न देखनी चाहिए कि देवयोनि के गंधर्व, किन्नर, विद्याधर और अप्सराओं के सहाय से प्रणयगाथा के विकास और कार्य-संपादन में योग मिलता रहा है।

नैषधचरित में लोककथा के उपादान

संस्कृत महाकाव्यों में दंडी के प्रबंधमहाकाव्य की परिभाषा का अनुसरण करनेवाले महत्वशाली महाकाव्यों में नैषधचरित का स्थान अप्रतिम है।

शास्त्रीय वैदुष्य की प्रौढ़ अप्रस्तुत योजनाओं और कविप्रौढ़ोक्तिसिद्ध कल्पनाजन्य वर्णनाओं के कारण नैषधचरित बृहद्त्रयी का उत्कृष्ट महाकाव्य कहा जाता है। अलंकृत काव्यशैली और पांडित्यबल से निर्मित कल्पना के अल्पभावयुक्त चित्रों तथा अलंकारगुंफन के भार से बोझिल होने के कारण उक्त महाकाव्य में भावमयी सरस कल्पना की साधारणीकारक और तन्मयकारी वह सहज धारा नहीं मिलती जो कालिदास या वाल्मीकि में हम पाते हैं। परंतु शक्ति, निपुणता तथा काव्यशास्त्र की शिक्षा से प्रगल्भ, पंडितकवि की सायास रचना का नैषधचरित को उत्कृष्ट रूप मानने में कोई विवाद नहीं है। शास्त्रीय प्रबंधमहाकाव्य की पद्धति लेकर चलनेवाले इस महाकाव्य में ऐसी उक्तियाँ भी हैं जो लोककथाओं में मिलती हैं। कथाशिल्प के संघटनसहायक ऐसे तत्व भी हैं जो नैषधचरित में लोकाश्रित काव्यों की कथानकरूढ़ि का स्वीकरण प्रदर्शित करते हैं। नल और दमयंती के हृदय में गुणश्रवणजन्य प्रणयभाव को उद्दीप्त, तीव्र एवं विरह की गाढ़ दशा तक पहुँचानेवाला **हंस** लोककथा से ही संभवतः अवतरित हुआ है। उस हिरण्यमय हंस के द्वारा जो कार्य संपादित किया गया है उसे लोककथाओं की प्रणयगाथा का प्रतिध्वनन ही समझना चाहिए। यह भी जान पड़ता है कि महाभारत के नलोपाख्यान से गृहीत यह कथानक, संभवतः, उसी प्रकार ग्रामकथा या जनकथा हो गया था जिस प्रकार **उदयन** की ऐतिहासिक नायकाश्रित गाथा ग्रामकथा हो चुकी थी और जिसके लिये कालिदास को **उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धों** की चर्चा करनी पड़ी थी। नलदमयंती की पौराणिक कथा भी वैसी ही जनप्रिय लोककथा बन चुकी थी। महापंडित श्रीहर्ष ने उस लोककथा को शास्त्रीय परिभाषा से संस्कृत महाकाव्य के साँचे में साहस के साथ ढाल दिया। श्रीहर्ष के अतिरिक्त भी 'नलचंपू', 'नलोदय' आदि अनेक दृश्य-श्रव्य-काव्यों की विधाएँ इस नलकथा की लोकप्रियता और अतिशय प्रचार के कारण साहित्यिक निर्माणों का आधार बनती रहीं।

प्रणयगाथा में अपदेवता का विनियोग

परियों और अप्सराओं को भी लोककथाओं में अत्यधिक महत्व मिलता रहा। ये लोककथाएँ साहित्यिक, उत्कृष्ट विधाओं को प्रभावित करती हुई अपना योग देती रही हैं। भामह और दंडी की कथा-आख्यायिका-संबद्ध परिभाषा भी सातवीं आठवीं शताब्दी से ही अपनी रूढ़िमूलक कठोरता त्याग चुकी

थी और उनमें पारस्परिक भेद की दूरी भी बहुत दूर तक मिट चुकी थी। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी तक, बराबर कथाओं और आख्यायिकाओं—दोनों पर लोकगाथाओं की कथानकरूढ़ियों के प्रभाव की गहरी छाप, स्पष्टतः, दिखाई पड़ती है। बाणभट्ट की कादंबरी में अप्सराओं, विद्याधरों और किन्नरों आदि की अवतारणा संभवतः लोककथाओं के प्रचलित उपादानतत्व के प्रभाव से ही हुई है। इसी प्रकार जातिस्मरशुक भी बाणभट्ट के कथाशिल्प में लोकगाथा से अवतीर्ण रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। पैशाची प्राकृत में लिखित गुणाढ्य की 'बड्ढकहा' यद्यपि संप्रति अनुपलब्ध है तथापि **कथासरित्सागर** तथा **बृहत्कथामंजरी** आदि में उपनिबद्ध अंतःकथाओं और मुख्य कथा को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनमें लोकप्रचलित दंतकथाओं का आश्रयण निःसंकोच भाव से हुआ है। और उसी आधार पर यह अनुमान हो सकता है कि **बड्ढकहा** भी लौकिक उपाख्यानों और दंतकथाओं का उपयोग करनेवाला ग्रंथ रहा होगा। दंडी का 'दशकुमार चरित्र' भी वैसा ही था। विस्तार में न जाकर इतना ही सकेत यहाँ अपेक्षित है कि लोककथाओं के ये सभी तत्व **पृथ्वीराजरासो** की रचनाकाल तक जहाँ उपादानतत्व के रूप में सहायक होते रहे वहाँ दूसरी ओर सूफियों के प्रेमपरक गाथाकाव्यों में भी कथानकरूढ़ियों और कथासहायक उपकरणों के रूप में सहायता देते थे।

यह हो सकता है कि सामान्य प्रणयगाथाओं में उपलब्ध इस प्रकार के लोककाव्यों के उपादानतत्व किसी एक ही मूल स्रोत से भारतीय, लौकिक और शास्त्रीय—विभिन्न काव्यरूपों में आए हों और साथ ही साथ उसी स्रोत की प्रवाहपरंपरा से सूफी प्रेमाख्यानकों में भी प्रविष्ट हुए हों। इस संदर्भ में पुरानी मिथ (पुराणकथा) और पुरातन युगीन लोककथाओं का इतिहासमूलक अध्ययन करनेवाले पंडितों ने फारस ईरान की पुरानी प्रेमगाथाओं से इनका संबंधसूत्र और स्रोतशृंखला जोड़ने का प्रयास किया है। यह उपलब्धि असंभाव्य नहीं है। ईरानी प्रेमकथाओं और लोककहानियों का प्रभाव संस्कृतप्राकृत की उक्त विधा के कथानकाश्रित काव्यों पर और साथ ही कुछ विशेष रूप से अपभ्रंशकालीन तथा अपभ्रंशोत्तरयुगीन **रासो** जैसे हिंदी काव्यों पर, और 'बैतालपचीसी, सिंहासनबतीसी, शुकबहत्तरी जैसी कहानियों पर पड़ा हो तो इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए। भारतीय कथाओं की कुछ इसी शैली से मिलती जुलती परंपरा का भी आरंभ बहुत पुरातन है। 'शतपथ ब्राह्मण' के संकलनयुग से निःसंदिग्ध रूप में उसी से मिलती जुलती

कुछ कथारूढ़ियाँ प्रकाश में आ गई थीं। इनके लोककथाश्रित रूप 'महाभारत' आदि जैसे महापुराण महाकाव्यों में भी स्थल स्थल पर गुंफित होते रहे और उसकी अविच्छिन्न धारा भी हिंदी के मध्ययुग तक बहती रही। भारतीय प्रेमाख्यानकों में उन पुरातन रूढ़मान्यताओं की स्पष्ट छाप और गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। इतना ही नहीं प्रेमाख्यानकों की यह परंपरा बौद्धों के अवदान-कथानकों और जैनियों की धर्मकथाओं में भी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालती दिखाई देती है। ई० पू० द्वितीय शती के पातंजल महाभाष्य में 'भैमरथी', 'सुमनोत्तरा' और 'वासवदत्ता' के नाम मिलते हैं। उनमें 'वासवदत्ता' तो निश्चय ही 'प्रेमाख्यानक' रचना थी। हो सकता है अन्य दो आख्यायिकाएँ भी प्रणयकहानियाँ ही रही हों। जैनियों के धर्मप्रेरित चरितकाव्यों और पुराणनिभ ग्रंथों में उत्तरवैदिक और पौराणिक कथानक-रूढ़ियों और लौकिक प्रेमगाथाओं के उपकरणभूत, प्रेमकथाश्रित तत्वों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। **रसरतन** के स्वप्नखंड में भी 'रति' से तीन प्रकार के दर्शनों का उल्लेख करते हुए 'काम' ने कहा है—

काम कहै सुनु सुंदरी, दरसन तीन प्रकार।
स्वप्न चित्र परतिच्छ प्रिय, प्रगट प्रेम विस्तार॥

—रसरतन—पृ० ३०

इनमें से विभिन्न प्रकार के दर्शन का स्वरूप विभिन्न जैनकाव्यों में देखा जा सकता है। **करकंडुचरित** में चित्रदर्शन से प्रेम का स्वरूप अवतरित हुआ है। उनमें नायकों को सिंहल की यात्रा करनी पड़ती है। इसी प्रकार **सुदर्शनचरित** और **भवीसयत्तकहा** में परस्पर प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेम का जन्म होता है। मध्ययुग की अनेक कथाओं में इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं। इन कथाओं में भी यक्ष, गंधर्व आदि अलौकिक तत्वों का समावेश दिखाई देता है। इसी काल के आसपास की रचना 'नैषधचरित' भी है। दर्शन के अतिरिक्त लोककथाओं और काव्यों में प्रेम की पीर के उद्भव का एक और कारण दिखाई पड़ता है जिसे श्रवणानुराग कह सकते हैं। नायिका या नायक एक दूसरे के गुण, सौंदर्य, शौर्य आदि को सुनकर एक दूसरे पर अत्यंत अनुरक्त हो जाते हैं। उनमें अपने प्रेमी या प्रेमिका की प्राप्ति और मिलन की तीव्र लालसा जग जाती है। अतः वे विरहजन्य या पूर्वरागज प्रेमपीर से व्यथित हो जाते हैं। 'रासो' में अनेक स्थानों पर श्रोत्रानुराग का उल्लेख

मिलता है। श्रीहर्ष के 'नैषधचरित' में इस 'श्रोत्रानुराग' का प्रभाव, आरंभ से ही दृष्टिगोचर होने लगता है। श्रवणानुरागजन्य विरहपीड़ा से व्यथित नल के हृदय में अनुपम रूपसौंदर्यवती दमयंती का प्रेम इतनी गहराई तक पैठ चुका है कि उसे दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता। दूसरी ओर नल के गुणशौर्य-श्रवण से दमयंती के हृदय में भी प्रेम का बीज अंकुरित होता है और कमनीय कुमारी भी कामपीड़ा से व्याकुल हो जाती है। मन्मथशरविद्ध नल अंत में अपना राजकाज तक छोड़कर मन बहलाने उपवन में जा पहुँचते हैं। वहाँ प्रणय को तीव्र करनेवाला और मिलनपथ में सहायताघटक स्वर्णहंस आकर अपना दौत्य आरंभ कर देता है।

इन सब परंपराओं की प्रतिध्वनि तद्युगीन काव्यों में संभवतः लोककथाओं से ही आई रही होगी। **पुहकर** का **रसरतन** भी इस परंपरा से निश्चय ही दूर तक प्रभावित है। यहाँ कवि ने स्वप्नदर्शन को मायिक प्रत्यक्ष-दर्शन के कौशल से अधिक चमत्कारशाली और प्रभाववर्धक रूप दे दिया है। यहाँ एक ओर तो यह होता है कि पंचबाणों से संनद्ध काम स्वयं चंपावती जाकर विजयपाल की कन्या रंभा के अंतःपुर में पहुँचता है और सूरसेन के रूप में रंभा की सेज पर अपने दिव्य बल से जा बैठता है। राजकन्या की नींद टूट जाती है और सूरसेन के रूप में काम को देखकर सूरसेन के प्रति उसके मन में प्रेमपीड़ा भड़क उठती है। मन्मथ का मोहन नामक शर उस कार्य को तीव्रतर बनाकर चल देता है। दूसरी ओर, रति भी, काम के निर्देशानुसार रंभा के वेष में सूरसेन के पास जा पहुँचती है। सूरसेन के हृदय में रंभा के अमिट प्रेम की आग जलाकर वहाँ से लौट आती है। इस प्रकार **रसरतन** के कवि ने अपने कथाविधान के शिल्पनैपुण्य से स्वप्नदर्शन को प्रत्यक्षाभास और मायिक प्रत्यक्षदर्शन को स्वप्नकल्प बना दिया है। स्वप्नदर्शन का कौशल केवल स्वप्नदर्शन न रहकर प्रत्यक्ष से आलिंगित हो उठता है। आगे चलकर 'बुद्धिविचित्र' के प्रयास से रंभा और सूरसेन—दोनों को एक दूसरे के चित्र भी प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार हम कहना चाहें तो कह सकते हैं कि प्रेमकहानियों में पूर्वराग की प्रणयपीड़ा और मिलन की आकुलता को तीव्र और तीव्रतर बनाने के लिये 'दर्शन' के सभी कौशलों का कवि ने समावेश कर दिया है। साथ ही 'बुद्धिविचित्र' द्वारा उस प्रेम को तीव्रतम बनानेवाले दौत्यकर्म भी किया गया है। रंभा के प्रणय की गहराई और घनत्व की सूचना तथा सूरसेन की प्रवृद्ध प्रेमविकलता और प्रेमपाती द्वारा

अभिलाष की अभिव्यक्ति के हो जाने से दर्शनानुराग और श्रोत्रानुराग द्विगुणित रूप में बढ़ चुके हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया उसका सारांश यह है—(१) भारतीय साहित्य में प्रेमपरक आख्यानकाव्य की परंपरा बड़ी पुरातन है। (२) इन आख्यानों की (आधारभूत) उपकरण-सामग्री में कदाचित् सर्वाधिक योग, लोकप्रिय कथा-गाथाओं का रहा है। (३) शास्त्रीय, सांस्कृतिक और पौराणिक आख्यान भी बहुधा इन प्रेमकाव्यों में तभी गृहीत होते थे जब लोकप्रिय होकर लोकगाथा की भूमिका धारण करके साहित्यमंच पर प्रवेश करते थे और तभी साहित्य की विविध विधाओं के रूप में अभिनय भी करते थे। (४) इनमें अलौकिक और दैवी तत्वों की—अप्सरा, गंधर्व, विद्याधर आदि अपदेवों की सहायता भी अकसर ली जाती रही है। (५) विरह और मिलन की घटना के संपादन में नाना प्रकार की रूढ़ियों का उपयोग होता रहा है।

प्रस्तुत ग्रंथ और उसका संपादन

इस प्रकार यह **रसरतन** सहस्राब्दियों में क्रमशः विकासमान भारतीय प्रेमाख्यानक की परंपरा, लोककाव्य में प्रेमगाथा की रूढ़ियाँ और फारस ईरान के सूफी प्रेमाख्यानक का प्रभाव—इन सबको लेकर चला। इसी का संकेत आचार्य रामचंद्र शुक्ल के उस वक्तव्य में निहित है जिसकी चर्चा आरंभ में ही की गई है। इसके अलावा शुक्ल जी की तत्वदर्शी और सूक्ष्मालोचकदृष्टि ने 'रसरतन' के साहित्यिक पक्ष के महत्व की ओर साहित्यिकों का ध्यान आकृष्ट किया। पर संभवतः ग्रंथाभाव के कारण ही हिंदीसाहित्य के महारथियों तक ने इस ओर पर्याप्त ध्यान न दिया। 'पुहकर' कवि की समीक्षा में लिखित आचार्य शुक्ल के दो वाक्य नीचे उद्धृत हैं जो प्रस्तुत ग्रंथ के वैशिष्ट्य की सूचना के संदर्भ में पर्याप्त हैं—'कविता सरस और भाषा प्रौढ़ है···पर प्राप्त ग्रंथ को देखने से यह अच्छे कवि जान पड़ते हैं'। यद्यपि शुक्ल जी ने इस कृति की साहित्यिक आलोचना इतनी ही लिखी है तथापि इतने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि **पुहकर** कवि की पांडुलिपि को, कम से कम उलट पुलट कर, देखने के बाद ही, ये शब्द लिखे गए हैं। इतने पर भी शोधकर्ताओं की भीड़ में **रसरतन** की ओर ध्यान न जाना और अब तक इसका प्रकाशन न होना कुछ कम खटकनेवाली बात नहीं है। पर विलंब से ही सही यह ग्रंथ, जहाँ तक सामग्री उपलब्ध हो सकी वहाँ तक, वैज्ञानिक ढंग से संपादित होकर तथा समीक्षापूर्ण और

शोधात्मक विस्तृत भूमिका से समन्वित होकर डा० शिवप्रसाद सिंह के प्रयास से हमारे सामने आज उपस्थित है।

ग्रंथ जिस समय छप रहा था उस समय उसकी मुद्रित फाइल साहित्य विभागीय प्राक्कथन लिखने के लिये मेरे पास आती रही। उस समय मूलग्रंथ धीरे धीरे पढ़ते रहने पर मेरे ऊपर जो प्रतिक्रियाएँ हो रही थीं तथा ग्रंथ के वैशिष्ट्य और महत्व के संबंध में जो पर्यालोचनात्मक विचार उठ रहे थे उन्हें मैं नोट करता रहा और उन्हीं के आधार पर अपने कुछ विचार लिखने की बात भी मैं सोच रहा था। परंतु संपूर्ण ग्रंथ जब सामने आया और एक सौ तिरसठ-चौसठ पृष्ठों की शोधपूर्ण, समीक्षात्मक चिंतन से भरी हुई तथा सबल शब्दों में अभिव्यक्त भूमिका मेरे पास पहुँची तब मैं बड़े मनोयोग और रुचि के साथ उसे आद्यंत पढ़ गया। और तब मैंने देखा कि मैं जो कुछ कहना चाहता था उससे बहुत अधिक बातें बड़े व्यवस्थित और साधार साक्ष्यों के साथ संपादक ने उपस्थित की हैं। अतः ग्रंथ के विषय में विशेष कुछ कहना नहीं रह गया है। परिपाटीवश मूल काव्य और उसकी पर्यालोचित भूमिका के विषय में परिचयात्मक दो शब्द यहाँ कह देना है।

इस ग्रंथ के संबंध में कुछ कहने से पूर्व एक बात की चर्चा यहाँ अप्रासंगिक न होगी। साहित्यकृति के आरंभिक निर्माणकाल से ही उसमें अनुरागतत्व की व्यापकता सकारण है। मानवजीवन में प्रेमतत्व की महत्ता सर्वतोधिक है। पुरुषार्थचतुष्टय में **काम** का स्थान बड़े व्यापक रूप में गृहीत है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी **भक्तिसंप्रदाय** का अत्यंत विशाल वाङ्मय प्रेमतत्व के उन्नयन का मनोवैज्ञानिक आधार लेकर चला। कृष्णभक्ति की समस्त प्रेमोपासना—बालकृष्ण का माध्यम, कांताभाव या प्रेयोभाव की भक्ति, युगलसरकार की रागमयी उपासना, गोपीभाव, सहचरीभाव, सखीभाव, सख्यभाव और सेवकभाव की भक्तिदृष्टि भी—प्रेम के ही उदात्त, दिव्य और श्रद्धाजुष्ट रूप को लेकर ही चली। इस प्रकार रागसंवलित प्रेमाश्रित कृष्णभक्ति की समस्त ललित और मधुर उपासनाएँ—जिनमें लीला और केलिविलास का मधुमय प्रवाह बहता दिखाई देता है—सभी प्रेम के ही विवर्त हैं। रामभक्ति में भी रसिकसंप्रदाय या मधुरोपासना इसी प्रेमतत्व का ही श्रद्धासमन्वित और उदात्तीकृत विजृंभण है। संतों के विविध पंथ—निर्गुण और निराकार की उपासना लेकर चलते हुए भी सामान्यतः सर्वत्र प्रेम की अविचल आस्था और प्रेमतत्व का सर्वसंमत व्यापक प्रभाव—अपनी रचनाओं में गूँथते चलते हैं।

सूफियों की प्रेममार्गी शाखा में प्रेमतत्व को बड़े ही सरस और लोकस्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। संतों और निर्गुनियों ने भी प्रेम की अलौकिक महिमा का गान, कम नहीं किया है। मध्ययुगीन हिंदी के प्रचलित प्रेमाख्यानकों का—जिनका प्रेरकस्रोत सूफियों की भावधारा है—भारत में और विशेषतः हिंदीसाहित्य में बड़ा ही मनोरम और रुचिर काव्याभिव्यंजन हुआ है। इन सूफी कवियों ने लौकिक परिवेश के मध्य—सहजरूप और सहज-भाव के बीच—आख्यानप्रतीक के माध्यम से, प्रेमाख्यानक काव्यों का प्रणयन किया है उसका आकर्षण हिंदीसाहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यद्यपि उसकी आध्यात्मिक तथा साहित्यिक प्रेरणा पर स्पष्टतः इसलामी और फारसी दर्शन और काव्य का प्रभाव लक्षित होता है, तथापि भारत के सूफी कवियों ने जिस आख्यान को अन्यापदेश के रूप में प्रतीकात्मक आख्यान बनाकर कथा (प्रबंधकाव्य की कथावस्तु) का कलेवर निर्मित किया है उसका स्वरूप और लोकगाथापरक मूल ढाँचा भारतीय है। इन्हीं सब कारणों से प्रेमाख्यानक साहित्य का हिंदी के इतिहास में वैशिष्ट्य है। सूफियों ने भारतीय भाषा, लोकजीवन, जनानुभूति और लोकगाथा तथा उनकी अनुभूतियों, संवेदनाओं का आश्रय लेकर जिस वाङ्मय का निर्माण किया उससे उनका महत्व अक्षुण्ण बना रहेगा।

इन सूफी प्रेमाख्यानकों की काव्यधारा ने इसलाम और हिंदू—दोनों की दूरियों को मिटाने का प्रयत्न किया। भारतीय परिवेश में, भारतीय लोकानुभूति का आश्रय लेकर, भारत की लोककथाओं के प्रतीक और उपदेश के सहारे, सूफीभावना को ऐसा बनाया जिसमें भारतीय जीवन, उसकी अनुभूतियाँ एवं हर्ष और पीड़ाओं की ध्वनि मुखरित सुनाई देती है। यदि उसके आध्यात्मिक पक्ष की दार्शनिक पर्यालोचना को अलग रख दिया जाय तो उसका भीतर और बाहर, बहुत कुछ भारतीय ही आभासित हो। यद्यपि आध्यात्मिक पक्ष के संबंध में भी अनेक पंडित मानने लगे हैं कि सूफियों का प्रेममार्गी आध्यात्मिक सिद्धांत, साक्षात् या परंपरया भारतीय दर्शनदृष्टि की प्रेरणा से प्रभावित होने के कारण ही कट्टर पैगंबरवादी इसलामी मजहब में पनप सका। यहाँ केवल इतना संकेत करना आवश्यक है कि सूफियों के प्रेमाख्यानकों में साहित्यिक और दृष्टिगत विशेषता और आकर्षण से मोहित होकर हमें भारतीय प्रेमाख्यानकों की परंपरा और हिंदी में प्रणीत उनके वाङ्मय का विस्मरण न करना चाहिए। स्वयं कवि ने अनेक प्रेमकथाओं का उल्लेख किया है—जिनके विषय में

विस्तार के साथ (ग्रंथसंपादक द्वारा) चर्चा की गई है। उनमें मुख्य रूप से भारतीय प्रेमगाथाओं का ही निर्देश है। **नलदमयंती, उषाअनिरुद्ध, माधवानलकामकंदला, मधुमालती तथा पिंगला और भरथरी**—सभी भारतीय परंपरा के प्रेमाख्यानक हैं। **मधुमालती** के संबंध में डा० शिवप्रसाद सिंह का विचार है कि वह संकेत, मंझन की **मधुमालती** की ओर, असंदिग्ध रूप से, किया गया है। इसका कारण है **अप्सराओं द्वारा हरण-प्रसंग** में साम्य। पर वह **चर्चा मंझन** की कृति से संबद्ध है—इसमें मुझे पूरा संदेह है। ऐसा लगता है कि 'मंझन' तथा अन्य मधुमालतीसंबद्ध काव्यकारों ने जहाँ से लेकर उक्त कथा की संघटना की है वह स्रोत लोककथा है। **मंझन** ने भी और चतुर्भुजदास ने भी वहीं से कथानक लेकर उसे स्वानुकूल ढाला है। **पिंगलाभरथरी** की लोकगाथा के समान ही इसका उल्लेख **पुहकर** ने किया है। इस प्रसंग में सप्रमाण मतोल्लेख करने की अभी स्थिति नहीं है। संभव हुआ तो फिर कभी इसका विस्तृत विचार किया जायगा। कथ्यरूप में यहाँ इतना ही वक्तव्य है कि यद्यपि हिंदी में सूफियों की प्रेमाख्यानक काव्यकृतियों का स्थान और महत्व असामान्य है तथापि उसकी चमकदमक में पड़कर भारतीय परंपरा के प्रेमाख्यानकों को न तो भुलाना और न अवहेलनीय समझना चाहिए तथा न उनके सही मूल्यांकन में ही गलती करनी चाहिए। क्योंकि संस्कृत, पाली (बौद्ध) प्राकृत–अपभ्रंश (जैन-जैनेतर) वाङ्मय में उसकी अखंडधारा बहती रही है। देशी और विदेशी प्रेमकथाओं का आधार लेकर लोक में प्रेमकथा के साहित्य का व्यापक प्रचार और प्रसार था। इतना व्यापक था यह प्रसार कि **वैतालपञ्चविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका** के तुल्य कथाकृतियाँ उन्हीं लोककथाओं के आधार पर संस्कृत के माध्यम से रचित स्थायी वाङ्मय बन गईं। ऐसी परंपरा और प्रेमकथा की अविच्छिन्न धारा के रहने पर प्रेमाख्यानक की प्रस्तुत ग्रंथ-संबद्ध शाखा सर्वथा अनुपेक्षणीय है, अनुसंधेय है, अनुशीलनीय है। **अद्दहमान** का संदेशरासक भी उसी परंपरा की एक विशिष्ट रचना है। उसका प्रणेता चाहे मुसलमान हो या हिंदू, पर उसमें अनुबद्ध प्रेमाख्यान का रूप, सर्वथा भारतीय परंपरा का उन्मेष है। मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि हस्तलेख नष्ट होने से बचे होंगे तो अनेक भारतीय प्रेमाख्यानक सामने आएँगे। संभवतः राजस्थान और जैनग्रंथागारों में छिपी हस्तलेखसंपत्ति में अभी जाने कितनी अनर्घ्य संपत्ति दबी पड़ी हुई है, और उसमें संभवतः पड़े हैं अनेक भारतीय प्रेमाख्यानककाव्य। अन्यत्र भी वे मिल सकते हैं। इनमें बहुतों का आधार

स्वांचल की लोककथाएँ भी हों तो आश्चर्य नहीं। **रसरतन** का मूल ढाँचा भी **दंतकथा** से आदत्त है—यह बात स्वयं कवि पुहकर ने कही है।

मैं थोड़ी विस्तृत चर्चा यहाँ कर गया जिसे करना नहीं चाहता था। क्योंकि डा० सिंह ने भूमिका में प्रायः इन सबकी चर्चा अधिक विस्तार से की है। डा० हरिकांत श्रीवास्तव ने भी अपने शोधप्रबंध (भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य) के आरंभ में भारतीय प्रेमाख्यानकों की परंपरा का उल्लेख—कुछ विस्तार के साथ—किया है। उस प्रसंग में उन्होंने वर्गीकृत विभाजन करते हुए भारतीय प्रेमाख्यानों की कुछ शैलीरूढ़ियों का संकेत किया है—शुद्ध प्रेमाख्यानक, अन्यापदेशिक काव्य और नीतिप्रधान प्रेमकाव्य।

राजस्थानी **ढोला मारूरा दूहा** और **बेलि क्रिस्न रुकिमणी री** आदि के साथ **पुहकर** के **रसरतन** को उन्होंने शुद्ध प्रेमाख्यानक के अंतर्गत स्थान दिया है। **छिताई वार्ता** को भी इसके ही आक्रोड़ में लिया है। कृष्णरुक्मिणी, माधवानल कामकंदला, उषाअनिरुद्ध आदि प्रेमाख्यानक इसी प्रवाह के काव्य हैं। इन आख्यानकों पर जाने कितने लोककाव्य, साहित्यिक ग्रंथ रचे गए—कहा नहीं जा सकता। इनमें भी जाने कितने नष्ट हो चुके होंगे, कितने अबतक अज्ञात पड़े हैं और कुछ की, फिर भी बहुत से ग्रंथों की, सूचना खोज रिपोर्टों से अबतक मिल चुकी है।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है उसके अनुसार डा० हरिकांत प्रथम शोधप्रबंधकार हैं जिन्होंने पहली बार कुछ विस्तार के साथ **रसरतन** के विषय में चर्चा की है। भारतीय 'शुद्ध प्रेमाख्यानक' काव्यों के वर्ग में इसे रखा है—जो ठीक ही है। परंतु उनके वक्तव्यों से जान पड़ता है कि ग्रंथ के प्रकाशित न रहने के कारण अनुशीलनात्मक दृष्टि से काव्य के अध्ययन का अवसर लेखक को नहीं मिल पाया है। क्योंकि कुछ सामान्य निर्णय इतने हलके-फुलके ढंग से घोषित हैं—और जो सूचित करते हैं कि—उक्त ग्रंथ की पुरातन पांडुलिपि का संदर्भात्मक अध्ययन ही हो पाया था, जैसे—'यह मसनवी शैली में दोहा चौपाई की पद्धति में लिखा हुआ प्रबंधकाव्य है।' (पृ० ३६); या 'रसरतन की भाषा चलती हुई अच्छी है किंतु कहीं कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दों के पुट से बहुत परिमार्जित हो गई है।…सेना के संचालन एवं युद्ध के वर्णन में कवि ने भाषा में डिंगल का पुट देकर उसे ओजस्विनी बना दिया है।…।' **यहाँ कहने का तात्पर्य इतना ही है** कि ग्रंथ के प्रकाशित न होने से उसके गंभीर अध्ययन

की सुविधा, श्री हरिकांत को भी न मिल पाई थी। इसी कारण चलता परिचय देकर प्रबंधकार आगे बढ़ा। कदाचित् प्रबंध के अंतर्गत प्रसंगप्राप्त क्रम में शोधकर्ता इससे अधिक और कुछ लिख भी नहीं सका होगा। पर पाठक प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका में स्वयं देखेंगे कि **रसरतन** का कवि, भाषा का प्रयोग और छंदोयोजना में कितना कुशल शिल्पी है। उसकी भाषा में अन्य तत्वों का कैसा मिश्रण है, तद्भव शब्दों का सहज प्रयोग कितने निर्बंध भाव से किया गया है, छंदों का विनियोग कितनी सुरुचि और क्षमता का परिचय देता है—प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका से इन सबका परिचय पाठकों को मिल जायगा। फिर भी श्री हरिकांत के १६-१७ पृष्ठोंवाले 'रसरतन'–परिचय का (जिसमें लगभग ७ पृष्ठों में कथावस्तु का विवरण है) अपना महत्व है—प्रथम विस्तृत उल्लेख होने से।

अब यह ग्रंथ सुसंपादित रूप में प्रकाशित होकर विस्तृत भूमिका के साथ सामने आ रहा है और अब निश्चय ही इसके महत्व की ओर हिंदी के सुधीजनों का ध्यान जायगा। अब इस ग्रंथ के समुचित अनुशीलन, विवेचन, पर्यालोचन और मूल्यांकन का अवसर मिल सकेगा। अबतक अप्रकाशित इस कृति के संपादन के साथ साथ डा० शिवप्रसाद की भूमिका में भी अनुशीलन, शोध और समीक्षण की पर्याप्त सामग्री, पाठकों को मिल सकेगी।

भूमिका का परिचय

आरंभ के ८०-८१ पृष्ठों में संपादक ने कवि, उसका जीवनवृत्त, रचना-काल, रचनाएँ, वैदुष्य, आचार्यत्व, काव्यप्रतिभा के साथ ही आलोच्य कृति और उसके हस्तलेखों का सप्रमाण और परिचयात्मक विवरण उपस्थित किया है। इसी विवरण के अंतर्गत **रसरतन** की 'कथावस्तु' और हिंदी प्रेमाख्यानक-परंपरा में **रसरतन** के वैशिष्ट्य का अभिज्ञान कराते हुए महाकवि **पुहकर** की इस कृति में उपलब्ध—विनियुक्त और प्रयुक्त—कथानकरूढ़ियों और कथा के उद्देश्य अथच प्रतीकसंकेत का भी उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात् 'पुहकर' की भावसंपदा का विश्लेषणात्मक पर्यवेक्षण करते हुए उन्होंने कवि और तत्कृत कृति की भावाभिव्यक्ति और अनुभूतिप्रकाशन के शिल्पप्रकारों का सोदाहरण उपन्यास किया है। इस संदर्भ में हमें यह परिज्ञान होता है कि यद्यपि कवि प्रेमाख्यानकशृंखला का कालाकार होने के नाते शृंगारी परिवेशों के चित्रण में

अत्यंत कुशल, भावप्रवण एवं मर्मस्पर्शी है और श्रृंगारी भावना के परिकर की विभिन्न अवस्थाओं, संवेदनों और व्यवहारों के चित्रण में उच्चकोटि का सहृदय शिल्पी है तथापि श्रृंगार के शास्त्रीय और प्रचलित रीतिबंधनों के बीच से रास्ता बनाता हुआ भी वह जीवन की सहज और संस्कृति के मर्यादाप्रेरित भावों तथा वृत्तियों की भी रक्षा करने के प्रयत्न में उद्बुद्ध और सचेत कवि है। इस दिशा में वह सदा जागरूक रहता है। प्रेम, रति और श्रृंगार के अंगों उपांगों की भावव्यंजना के साथ साथ वह रसपरिधि और भावचक्र के अन्य क्षेत्रों की चित्रणकला में भी कुशल शिल्पी जान पड़ता है। श्रृंगार में रमकर भी वह शौर्य, हास्य, उत्साह आदि भावों के अंकन में सर्वथा सफल रहा है। पारिवारिक और सामाजिक मर्यादा के प्रति वह जागरूक और सशक्त कवि है तथा मानवजीवन की अनुभूतिओं की रूढ़िवद्ध अभिव्यंजना में पर्याप्त भावुकता सहृदयता का परिचय उसने अपने काव्य में दिया है।

रसरतन में श्रृंगार

इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं है कि **पुहकर** श्रृंगारी कवि हैं और उनके **रसरतन** में मुख्य प्रतिपाद्य है भारतीय जीवन में गृहस्थ के तृतीय पुरुषार्थ—काम—का रुचिर रूपचित्रण। इस तत्व का **रसरतन** में तभी आरंभ हो जाता है—

जब दसम बरष प्रवेस। तब अतन जतन प्रदेस ॥
पुतरनि जो षेलत बाल। अति चरन चंचल ष्याल ॥
तन बसन लागत धूरि। निरषंत नैननि पूरि ॥
बिगलत्त अंचल चीर। तिहि धरति नाहिन धीर ॥
सब प्रकृति उलटि अचान। फिर अंग मन मन आन ॥
यह बैस निरषत नैन। थकि मुषह पुहकर बैन ॥

अतन मन्मथ के आते ही अंतर और बहिः—सब अचानक बदल जाते हैं। बचपन की सारी दृष्टि, सारे क्रियाकलाप, समस्त आचरण, समस्त रुचि-अरुचि—सब कुछ, कुछ दूसरा ही हो उठता है। सारी प्रकृति अचानक पलट जाती है। वह मन्मथ नारी के अंगों में आकर बैठ जाता है और मन का मंथन करने लगता है—

निसि पुतरी सेज्या पौढ़ाई। देखि प्रात उठिं रही लजाई ॥
निरषि नैन पुन दृष्टि छिपावै। बार बार उठि अंचल लावै ॥

काम के प्रथम अवतरण से आविर्भूत वयःसंधि का चित्र बहुत ही रोचक और प्रभावशाली ढंग से—पर अत्यंत सहज शब्दों में—वर्णित करते हुए कवि ने कहा है—

लेषि न परति सिसुताई तरुनाई तन,
कौन घटि कौन बढ़ि कौन भाँति लेषिये।
सोभा घाम छाँह ज्यों, सुनैनी कैसे नैन ज्यों;
कुरंग कैसे नैन ज्यौं दुरंग वैसे देषिये॥

इस वयःसंधि के रूपांकन में यद्यपि युग की श्रृंगरी मान्यतायुक्त रूढ़ियों का प्रभाव अवश्य ही पड़ा है और पर्याप्त पड़ा है तथापि **पुहकर** के चित्र में नवकता की ताजगी भी झलकती दिखाई देती है। यहाँ कहा यह जा रहा था कि मन्मथ का जीवन के रंगमंच पर प्रवेश होते ही मानव और मानवी का नेपथ्य, उसकी साजसज्जा, वेषभूषा, भूमिका तथा समस्त—सात्विक, वाचिक एवं आहार्य—अभिनय ही परिवर्तित हो जाता है। नर और नारी के पारस्परिक सहज आकर्षण का पाश—मानवमन को बाँधकर कसने लगता है। मन, चित्त सदेह समर्पण के अभिलाष से अधीर हो उठता है। तब कभी कभी ऐसा हो जाता है—

नैन नैन ठग एक हैं, जबहिं जुरत इक साथ।
पुहकर बेचत चोर चित, प्रेम नृपति के हाथ॥

तब नारी और नर का सब कुछ प्रेमशासन के अधीन हो उठता है। इस प्रेम की शक्ति, व्याप्ति और प्रभाव अमेय है—

जिहिं तन प्रगट प्रेम तन कीनौ। सो तनु अजर अमर कर दीनौ॥
तिहिं तनु जोगु भोगु नहि भावै। तिहि तन सदन सुरति नहिं आवै॥
तिहिं तन सिरजनहार न जान्यौ। एक प्रान बल्लभ पहिचान्यौ॥
सो तनु और नीर नहि पीवै। सुधा स्वाति बिनु नैकु न जीवै॥
बिषै तत्तु सबु तिहि तनु त्याग्यौ। केवल प्रेम प्रीत रस पाग्यौ॥
कठिन पंथु जिहि अंतु न पायो। बहु बिधि बिबिध बहुत विधि गायौ॥

खडगु धार मारग जहाँ, गंग जमुन दुहुँ ओर।
प्रेमपंथ अति अगम है, निबहत हैं नर थोर॥

पुहुकर सागर प्रेम को, निपट गहिर गंभीर।
इहि समुद्र जो नर परै, बहुरि न लागहिं तीर॥

—रसरतन–३६

कहने का सारांश यह कि प्रेम के स्वरूप और शक्ति, व्याप्ति और प्रभाव, गहराई और सीमा के साथ साथ **पुहुकर** उसकी दोनों रूढ़ियों से—प्रेममार्गियों के आध्यात्मिक, रहस्यपूर्ण और अलौकिक रूप से—तथा आभिजात्यवर्गीय वैलासिकता से भीतर बाहर आर्द्रीकृत और भोगतृष्णाप्रधान, रीतिकालीन भौतिक स्थूल रूप से—पूर्णतः परिचित और प्रभावित थे। पर दोनों का संगमन भी करते चलते थे। इसके साथ साथ भावुकता और सहृदयता से संवलित उनकी उन्मेषमयी प्रतिभा, केवल रूढ़ियों की लीक पर ही न खिंचती चलकर अपने लिये स्वतंत्र और रुचिर मार्ग भी ढूँढ़ लेती थी—जिस मार्ग पर भारतीय आचारपरंपरा को साथ लेकर दांपत्य और गृहाश्रम की शीतल छाया छाई रहती है और जहाँ बाधाओं से क्लांत प्रेम, अपने लक्ष्य की सिद्धि में कृतकार्य होकर विश्राम का अनुभव करता दिखाई देता है। इसके अनेक कारणों में एक कारण यह भी है कि **पुहकर** पर भारतीय परंपरा के संस्कार की छाप इतनी गहरी थी कि कवि को युगरूढ़ि के प्रभाव से न तो विचलित होने देती थी और न इधर-उधर भटकने का अवकाश ही देती थी। अन्यथा उसकी कृति में रीतिप्रवृत्ति का प्रभाव आदि से अंत तक स्थान स्थान पर देखा जा सकता है और जिसकी चर्चा ग्रंथभूमिका में की गई है। 'सूरसेन' रूपधारी मदन के स्वप्नाभ प्रत्यक्षदर्शन के बाद पूर्वराग के विरह से व्यथित **रंभा** की दशाओं में से नौ दशाओं का क्रमिक और परिपाटीबद्ध वर्णन आदि ऐसे स्थल हैं जिन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है कि **रसरतन** का कवि रीतिरूढ़ियों की शृंखला से पूर्णतः जकड़ा होगा। परंतु प्रस्तुत काव्य के प्रबंधत्वसंघटन का मनोयोगपूर्वक अध्ययन और विश्लेषण स्पष्ट कर देता है कि रीतिमान्यता से परिवेष्टित रहकर भी **पुहकर** प्रतिभा के स्वच्छंद विलास को विशिष्ट और समादृत स्थान देते थे।

भावबोध

कवि के इस महत्व का परिचय, प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका के शीर्षकों—'भावसंपदा' और 'सौंदर्यवर्णन' के अंतर्गत पाठक पा सकते हैं। कामपीड़ा

से ग्रस्त अति दुःखी रंभा के विरह की नौ अवस्थाओं का लक्षणप्रमुख वर्णन यद्यपि अभिव्यक्ति में रीतिरूढ़ि की परंपराग्रस्तता सूचित करता है तथापि उसके बाद ही रानी 'पुहपावती' का मातृहृदय, कामव्याधि से रुग्णा पुत्री की स्वस्थ चिकित्सा के लिये जिस प्रकार आतुर और यत्नशील हो उठता है उसमें माँ के सहज वात्सल्य का मनोरम रूप देखा जा सकता है। निकट रहनेवाली जो सहचरियाँ माता के पास रंभा की विषम दशा का संदेशा लेकर जाती हैं, वे अपनी सखी के दुःख से अत्यंत आकुल होकर रंभा की अवस्था और अपना मंतव्य बताते हुए कहती हैं—

हम तुम सौं सब कहत सकाहीं। पै अब बनतु दुराये नाहीं।
वेदनि विरह विषम अति पीरा। पंचबान कर दहहिं सरीरा ॥२२३॥

... ...

चौदह भुवन जाहि गमु होई। जो(सो?)यह जतन करै कछु कोई ॥२२५॥
नव अवस्थ अंग अधिकानी। दसम अवस्थ आय नियरानी।
हम सब भरै कुँवर संग लागै। यहै प्रवाँनु करैं तुम आगै ॥२२६॥
यहि कहि सब सहचरी चलीं, बरषि नैन जलुधार।
संग लागि पहुँपावती, निपट बिकल बिकरार ॥२२७॥
देखि सुता बिहवल भई, धरनि परी मुरझाइ।
उदित बचन आवै नहीं, बिधि सौं कहाँ बसाइ ॥२२८॥
जे अर्थी द्विज द्रव्य कौ, तिनहिं दियौ बहु दान।
नैन सलिल सुर सर थपी, करवायौ असनान ॥२२९॥
नहि लज्जित वेदनि कहति, सूझतु नहीं उपाइ।
हृदै एक निस्चै करौ, औवर करैं सहाइ ॥२३०॥

—स्वप्नखंड

इन उक्तियों में कितने सहज ढंग से सखियों और माँ के मनोगत प्राकृतिक भावनाओं की सरल अभिव्यक्ति हुई है। इसमें अप्रस्तुत की योजना द्वारा आलंकारिक आरोप को महत्व न देकर कलाकार ने ऋजुगति से, पारिवारिक परिवेश में, भावों का स्वाभाविक चित्र अंकित किया है।

सभी सहेलियाँ चिंतित हैं। अनेक उपाय किए गए। पर काम न चला। समधिक लज्जावती कुमारी सपने में समीप बैठे हुए चितचोर की बात किसी से कैसे कहे ! सभी सखियों ने तरह-तरह से पूछा। पर उत्तर न मिला। अंत में

परमचतुरा और अनुभवशालिनी मनमुदिता कहती है—'सखी, तू मेरे रहते क्यों इतनी 'पीर' भोग रही है। तू मेरा विश्वास कर। लाज में जकड़ी अपने प्राणों को विरह की आग में मत जला। मुझसे अपना दुःख बता। मैं तेरे चितचोर, मनहर को मिला दूँगी—

हाइ हाइ हा हा री हठीली आली हेरि इति
तजति है प्रान बैन काननि करति है।
बाट परी बोलिहै कै लाज ही मैं जैहै गड़ि
बिरह की आगि जल निकट जरति है॥
आन कै मिलाऊँ तोहि मन को हरनहार
मोहन मधुप जाकी येती (जु) अरति है।
बाल कहि बीर तेरी पीर कौ जतनु करौं
मोही तू पाय प्यारी काहे कौ मरति है॥

—स्वप्नखंड—१३३

तू मुझे पाकर भी क्यों लाज में पड़ी है, अपना मुँह नहीं खोलती। दिल की बात क्यों नहीं बताती? क्यों जान दे रही है। कितना सहज और दुलार प्यार से भरा सयानी सखी का कथन है। इस उक्ति की स्नेहभरित ऋजुता में ही भाव का सौंदर्य प्रकट है। अलंकार आदि के प्रयोगकौशल से उक्ति में वक्रतागत चमत्कारसृष्टि न करके कवि ने भावसंश्रित मर्मस्पर्शिता द्वारा सहज लालित्य और रमणीयता का सर्जन किया है।

इसका अर्थ यह नहीं की मध्ययुगीन काव्य की संघटनारूढ़ियों के प्रति कवि का आग्रह और मोह कम है। ऊपर की पंक्तियों में यथास्थान इसका संकेत किया गया है और भूमिका में कुछ विस्तार के साथ युगप्रेरित काव्यरचना की रीतियों के व्यापक प्रभाव की बात सोदाहरण कही गई है। इसके साथ ही साथ कवि के पांडित्यसंस्कार से प्रतिध्वनित शास्त्रीय विषयगुंफन का उदाहरण भी भूमिका में पाठक देख सकते हैं। फलित और गणित ज्योतिष एवं सामुद्रिक शास्त्र की—आवश्यकता से अधिक चर्चा, संगीतविद्या (विशेषतः नृत्यकला) के शास्त्रीय पक्ष का प्रदर्शन, कामशास्त्र, साहित्यशास्त्र और उसके अंगभूत रसों (और रसनायक शृंगार) की विशिष्ट चर्चा, सात्विक भाव, दशदशा, नायिका के कामशास्त्रीय तथा साहित्यशास्त्रीय भेदविभेदों का उल्लेख, नखशिख, षोडश शृंगार, द्वादश आमंडन आदि का निर्देश करनेवाले ऐसे प्रसंग हैं

जिनमें स्थान स्थान पर युगधर्मी रूढ़ि-अनुसरण और शास्त्रज्ञान के अनुयोजन का व्यापक प्रभाव लक्षित होता है। पर इन सबके साथ साथ—प्रकृत्या और मुख्य रूप से सहृदय कवि होने के कारण—युग की काव्यरीति के बंधन से घिरे रहकर भी उसकी भावमयी प्रतिभा के नैसर्गिक विलास की अभिव्यक्ति भी आदि से अंत तक, बराबर स्थान स्थान पर उभरी दिखाई पड़ती रहती है। गहराई से भरी इस भावाभिव्यंजना की भंगिमा का प्रमुख विषय शृंगार और प्रेम की परिधि में ही अधिक निखरा है। इसका कारण यह है कि कवि मुख्यतः प्रेम और शृंगार का ही गायक है। वह रसिक और भावप्रवण होने के साथ साथ मर्मदर्शी भी है। इसी कारण भावुक सहृदयता का रमणीय चित्र अंकित करने में वह सफल होता है—

बिरहानल मैं जड़ ह्वै जुवती
निसि पौढ़ि पल्लंक पल्लक्क लगायौ।
प्रभु पेषत प्रेम प्रसन्नि भये
सपने प्रिय प्रानपती दिखरायौ॥
अति आनँद चाहि प्रमुक्कि प्रिया
अरु चाहति लाल हियै उर लायौ।
तेही समै द्दग नींद नटी
उघरी अँखिया अँसुआँ भरि लायौ॥

—स्वप्नखंड—२६६

विरहिणी के निरंतर चिंतन से अचेतन मन की अनुकूल सर्जना का कितना मनोवैज्ञानिक कल्पनाचित्र, कविवाणी ने अंकित किया है—इसे स्वयं सचेत पाठक समझ सकते हैं। ऐसे भावप्रेरित अभिव्यंजनों की संख्या **रसरतन** में कम नहीं है। शृंगारपरिधि के विविध पक्षों और आयामों के जाने कितने सरस और चटकीले, संश्लिष्ट और प्रभावशाली कल्पनाचित्रों का **पुहकर** ने सजीव अंकन किया है। पर इसके साथ साथ रूढ़िप्रभावित और अलंकारशवलित ऐसी उक्तियाँ भी **रसरतन** में कम नहीं है जिनकी धारा संस्कृत के बृहत्त्रयीनिर्माणकाल या उसके कुछ पूर्व से ही अलंकरणप्रधान काव्यों, नाटकों, कथाआख्यायिकाओं आदि में अविच्छिन्न रूप से बहने लगी थी और जिसके प्रभाव से सूर और तुलसी जैसे महाकवि भी अपने को पूर्ण मुक्त न कर

सके। **रसरतन** के एक सामान्य उदाहरण में उक्त प्रवृत्ति की मुखर अनुध्वनि सुनी जा सकती है—

जदिन रैनि मृगनैनि नारि सपनंतर दिष्षिय।
रूपरास मन पास मदनमुदिता मुष दिष्षिय॥
विरह वृच्छ उपज्यौ समूल अभिलाष नैन मन।
सुमति सषि वित्थरिय मोह संताप छाहगन॥
आलबाल आलंब बहु बनै न सलिल सीच्यौ अमल।
प्रति जाम जाम लाग्यौ बढ़न सुफल्यौ तरक वियोगफल॥

—चित्रखंड—२६

चमत्कार और अलंकरण की प्रवृत्ति से बद्ध छंद भी इस ग्रंथ में काफी मिलते हैं। फिर भी यथासंभव कवि चेष्टा करता है कि आख्यानकीय कथाप्रबंध की धारा और भावपक्ष की अभिव्यक्ति शिथिल और दुर्बल न होने पाए। कभी कभी वह प्रसंगारोपित शास्त्रीय और लौकिक वस्तुओं की फेहरिस्त पेश करनेवाली प्रवृत्ति के मोह में—रूढ़िप्रभाव और युगसंस्कार के कारण—पड़ जाता है। पर, साधारणतः कथाप्रबंध का प्रवाह अपेक्षित गति से आगे बहता चलता है। भावपक्ष की अभिव्यक्ति भी सामान्यतया निष्प्राण नहीं होने पाती है। उदाहरण के लिये एक प्रसंग नीचे उद्धृत किया जा रहा है जिसमें वियोगिनी की विरहपीर को उद्दीप्त और प्रदीप्त करनेवाली यामिनी का परंपरानुसारी वर्णनचित्र उपस्थित किया गया है—

रजनी भई अनंत। दुःखदायक निघटत नहीं।
नहि पावत निसि अंत। उदित विकल बचननि कहै॥

काल की काया कालरात की छाया मानो,
जम जू की जाया जोगमाया सो बषानी है।
पायौ नहीं ओर छोर भोर भय दाइ परी
जुग ही तै जाम बढ़ै येतौ अधिकानी है।
कीधौं रैनि रूप दिसि प्राचित पिसाची आई,
कीधौं कलियानी कलि क्रोध कै रिसानी है।
जागै जग जोगिनी वियोगिनी कै भोगिनी
वियोगिनी कै पुहुकर निसि उनमानि अति मानी है॥

पुहकर उदित मयंक। निसि पूरन षोडस कला॥
मो मन उपजी संक। मनौ मदन कर चक्र लिय॥

अतन जतन बहुबिध किये, रचे अनेक उपाइ।
बिरह बिथा बढ़ते बढ़ी, मिटै न मनमथ घाइ॥

—चित्रखंड—८९-९३

इस प्रकार आलंकारिक तथा परंपराभुक्त विरहवर्णन के प्रभाव में पड़कर भी कवि तुरत कथाधारा में आ जाता है और आख्यान प्रारंभ कर देता है—

इहि बिधि कुँवर बिकल बेहाला। प्रान प्रिया चाहै तिहि काला॥

इत्यादि।

कथाक्रम में वस्तुवर्णन या आलंकारिक उक्ति यदि भाव तरल हों तो उनसे न तो अवरोध ही होता है न कथा के प्रबंधप्रवाह में शिथिलता ही आ पाती है। **रसरतन** में ऐसे प्रसंग भी पर्याप्त हैं। कुँअर **सूरसेन** स्वयंवर के लिये प्रस्थान करते समय पहले अपनी माता के पास आता है। यहाँ वर्णन आलंकारिक और कुछ लंबा हो गया है। पर मातृहृदय के विगलित स्नेह-तारल्य की स्निग्धता के कारण, ऐसा लगता है मानों पाठक भावधारा में तैरने लगा है—

प्रथम कुँवर जननी पहँ आयौ। आवत सीस चरन लै लायौ॥
विधुरन ताप मात कुम्हिलानी। भीजे बसन नैन के पानी॥
कंठ लाय गहवर हिय रोवै। जनु सुत वदन अच्छ जल धोवै॥
बच्छ बिछोह धेनु जिमि रंभै। व्याकुल अस्रु पात नहिं थंभै॥
राम चलत कौसिल्या जैसे। घुमि घुमि धरनि परति पन ऐसे॥
अँखियाँ रहटकुंभ जिमि चाहीं। भरि भरि आवै ढरि ढरि जाहीं॥
सावन घटा नैन बरसावै। गद्‌गद् गिरा बचन नहि आवै॥

—विजयपालखंड—१८३-१८६

ऐसा जान पड़ता है जैसे पाठक भी माँ की ममता के आँसू से भींगकर स्वयं शिथिलगति हो गया है और जैसे माता की वाणी नहीं निकल पा रही है उसी प्रकार पाठक भी आगे नहीं बढ़ पा रहा है—वह भी भावमोह में पड़कर अपने आप रुककर आँसू पोंछने लगा है।

प्रेमश्रृंगार से संबद्ध भावों की रमणीय, ललित और चारुतर अभिव्यक्ति के **पुहकर** निपुण शिल्पी हैं। उसके विविध आयामों के आभोग में आने

वाले नाना भावचित्रों और अनुभूतिप्रतिमाओं के व्यापक परिवेश में उनकी कला पर्याप्त सफल है। भूमिका के 'भावसंपदा' शीर्षक के अंतर्गत तथा यथाप्रसंग अन्यत्र भी भूमिकालेखक ने कवि के प्रतिभाजुष्ट और कल्पनाप्रवण अनुभूतिबोध का संकेत किया है। वैसे इस पक्ष का विस्तृत अध्ययन ही प्रतिपाद्य कथ्य को सामने रख सकेगा। इसी प्रकार सौंदर्यवर्णन में भी रूढ़िसंस्कृत होने पर भी कवि की कल्पनादृष्टि, भावदीप्ति में सहायक होती है— इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। ग्रंथ में पुहकर के अनेक प्रसंगयोजित नखशिखवर्णन पर्याप्त रूप से भावजागरण में सफल हैं। यहाँ शरीरसौंदर्य का केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

साँचे सी ढारी भरि भाइ कै उतारी किधौं
चित्र में सँवारी विविधि विधि विचारि है।
जोवन की बारी कामचंदु की उज्यारी जोत
परी सुकुँवारी मनौ पान कैसी डार है॥
रूप रुचिकारी अरु तैलियौ गुनन भारी
लचकि लचकि चलै जोवन के भार है।
पुहकर कहै पूरे पुन्य परवीन प्यारी
प्रीतम प्यारे कौं बनाई करतार है॥

इस सौंदर्यवर्णन में रूढिअनुसरण के बावजूद कुछ ऐसी ताजगी और रुचिरता है कि 'प्यारी' का रूप रुचिकारी ही नहीं वरन् कविनिर्मित उसकी वर्णप्रतिमा भी अति रम्य हो उठी है।

शृंगार, प्रेम और सौंदर्यसंपृक्त भावचित्रांकन के अतिरिक्त भक्ति, उत्साह, भय, जुगुप्सा आदि भावों के भी अच्छे और सशक्त शब्दचित्रों को यथावसर गूँथकर कवि ने अपनी सर्वतोमुखी काव्यनिर्माण की क्षमता का आभास दे दिया है। अधिक विस्तार में जाना यहाँ अपेक्षित नहीं है। यहाँ इतना ही कहना है कि भूमिका के विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत अधिक व्यापक ढंग से इन बातों की क्रमबद्ध विवेचना की गई है। 'कवि का व्यक्तित्व', 'शृंगारिकता और कामशास्त्र' एवं 'सौंदर्यवर्णन' शीर्षकों के अंतर्गत भूमिका में **रसरतन** के अध्येता—इन प्रसंगों का सामान्य परिचय पा जायँगे। शृंगार के संयोगवियोग पक्षों में **पुहकर** की रुचि और क्षमता देखने के लिये **रसरतन** के 'अप्सराखंड' 'चंपावतीखंड', और 'स्वयंवरखंड' के वर्णन विशेष रूप से पठनीय हैं।

प्रकृतिसौंदर्य और वस्तुवर्णन

भारतीय साहित्य के मध्ययुग से ही अर्थात् गुप्तसाम्राज्य के समय से साहित्य में प्रकृति की सहज सुषमा के प्रति कलाकार में रागबोध धीरे-धीरे कम और उक्तिगत चमत्कारिक अलंकरण की सिसृक्षा अधिक होने लगी थी। यद्यपि बाणभट्ट और माघ कवि के समान अतिशय अलंकरणप्रिय कलाकार भी हमें मिलते हैं जिनकी सहज और प्रकृतिप्रेमी भावचेतना में प्रस्तुत और अप्रस्तुत—उभय माध्यम से प्रकृति के संश्लिष्ट, सूक्ष्मविवरणों से जुष्ट और चटकीले रूप-चित्रों में प्रकृति के प्रति गाढ़ रागबोध का तीव्र अभिनिवेश स्पष्टतः लक्षित होता है। फिर भी अलंकरण की युगप्रेरित आसक्ति का प्रभाव निरंतर बढ़ता गया और उसने काव्यविधान की रूढ़ मान्यता का रूप ले लिया। हिंदी का अधिकांश रीतिकालीन साहित्य इसी प्रवृत्ति की रागिनी से मुखरित है।

हम देखते हैं कि प्रकृतिवर्णन में **पुहकर** कवि भी उस युग का सामाजिक है जिस युग में—आचार्य शुक्ल के शब्दों में—प्रकृतिसौंदर्य के प्रति सामान्यतः समाज मात्र की, और विशेषतः कारक और भावक कवियों की—वृत्ति युग-रूढ़ि की संकोचनशीलता से वेष्टित हो गई थी। मानवहृदय की रति का आलंबन न रहकर वह शृंगाररति के संयोगवियोग पक्षों का उद्दीपन करने में अधिक सक्रिय हो पड़ी थी। ऐसे ही युग में उत्पन्न होने के कारण **रसरतन** का कवि इस मनोवृत्ति से पर्याप्त प्रभावित अवश्य रहा होगा। पर उसकी सहज सहृदयता, प्रकृति के मनोरम, ललित और अहैतुक-आह्लादकारी रूप में रमती अवश्य थी। इसकी प्रतिध्वनि भी उसके प्रकृतिवर्णन में स्थान स्थान पर सुनी जा सकती है। चाँदनी रात, वन, सरोवर, नदी, पहाड़ नवल वसंत आदि के वर्णन में उनकी रीतिरूढ़ि से मुक्त, स्वतंत्र रुचि का परिचय मिल जाता है। परंपराभुक्त ऋतुवर्णन और बारहमासा आदि के काव्यगत चित्रण में भी कवि में पारंपरिक परिपाटी से बाहर निकलकर स्वच्छंद विहार करने की प्रवृत्ति—कहीं कहीं झलक जाती है। पर सामान्यतः प्रकृति को उद्दीपन रूप में देखने की परंपरा का ही वह अनुकरण करता दिखाई देता है।

वस्तुवर्णन में भी रूढ़िप्रेरित प्रभाव के परिवेश में विचार करता हुआ कवि—कविसमय और काव्यरूढ़ियों का अनुसरण करता है। इन वर्णनों में चंदवरदाई, केशव और जायसी आदि के समान लंबी सूची देने की प्रवृत्ति भी उसमें दिखाई देती है। फिर भी प्रस्तुत और अप्रस्तुत के

माध्यम से **रसरतन** में ऐसे भाव भी वस्तुवर्णन के प्रसंग में अभिव्यक्त होने के लिये मचलते दिखाई देते हैं जो **पुहकर** को सहृदय और सतर्क कवि सूचित करते हैं। वे कविविधि की अपेक्षा 'साची बात' कहने के लिये अपेक्षाकृत अधिक उत्सुक जान पड़ते हैं।

रसरतन के छंद

श्री शिवप्रसाद सिंह की भूमिका में तीन शीर्षकों के अंतर्गत उपस्थापित विवरण अत्यंत शोधपूर्ण और अनुसंधनात्मक हैं। ये शीर्षक हैं—१–'रसरतन और अपभ्रंश छंदपरंपरा', २–'रसरतन की भाषा', ३–'रासो और रसरतन'। प्रथम के अंतर्गत **रसरतन** की ग्रंथलब्ध छंदयोजना और वृत्तप्रयोगों का बड़ी सूक्ष्म और पैनी दृष्टि से निरूपण करते हुए अद्यावधि उपलब्ध, अपभ्रंश ग्रंथों में मिलनेवाले छंदों के साथ तुलना की गई है। इसके आधार पर यह दिखाने का प्रयास किया है कि **रसरतन** में मध्यकालीन दोहा, चौपाई, सोरठा कुंडलिया, कवित्त, सवैया और छप्पय आदि छंदों के अतिरिक्त इस ग्रंथ में पचीसों ऐसे छंद मिलते हैं जो अपभ्रंश की परंपरा के अनुगमन का संकेत देते हैं। इस शीर्षक के अंतर्गत कुछ ऐसे छंदों के भी नाम हैं जो अन्यत्र अन्य नामों से मिलते हैं और कुछ छंद ऐसे भी हैं जो छंदों के शास्त्रीय ग्रंथों में ही प्रायः मिले हैं; लक्षणग्रंथों से अतिरिक्त लक्ष्यभूत कृतियों में वे अब तक उपलब्ध नहीं हैं। एकआध छंद ऐसे भी हैं जिनका अन्यत्र न तो नाम मिलता है न प्रयोग ही उपलब्ध है। कदाचित् वे लक्ष्यग्रंथों में प्रयुक्त या लक्षण-ग्रंथों में निर्दिष्ट छंदों के नवीन उपभेद हैं जिनका हमें शास्त्रीय परिचय नहीं है। इससे सूचित होता है कि **पुहकर** कवि छंद के शास्त्रीय पक्ष और उसके प्रयोग-शिल्प—दोनों का ही कलाकार था। इसके साथ ही साथ सूफी प्रेमाख्यानकों के छंदप्रयोग की दोहेचौपाई वाली रूढ़ मसनवीपरंपरा को छोड़कर अपभ्रंश जैनकाव्यों की पद्धति को कवि ने अधिक रुचिकर माना और देशी छंदों का भी पर्याप्त उपयोग किया। छंदों के इस प्रयोगप्रसंग में यह भी दिखाई देता है कि **रसरतन** का कवि अभिव्यंजनीय भावों का अनुसरण करनेवाले लय और गति से युक्त छंदों का प्रयोग करने में प्रयत्नशील रहता है। इसी कारण उसके द्वारा प्रयुक्त छंदों के वैविध्य से प्रबंधधारा में उस तरह की शिथिलता नहीं आती जैसी **केशव** की **रामचंद्रिका** के छंदों से बने अजायबघर में अनेक अवसरों पर स्पष्ट लक्षित होती है। **पुहकर** की छंदोयोजना प्रबंधगति में योग देती जान पड़ती है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से भी इस कलाकार ने एक विचित्र तथा संभवतः जीवंत परंपरा का परिचय दिया है। उस युग के प्रसिद्ध अधिकांश काव्यों में व्रजभाषा, अवधी, डिंगल आदि भाषाओं का व्यवहार सर्वाधिक है। पिंगल नाम से अभिहित ब्रज और अवधी के संयोग से गुंफित भाषा का प्रवाह भी कुछ काव्यों या कवियों में देखा जा सकता है। चंदवरदाई आदि की पिंगलशैली से मिश्रित और चारणों में प्रचलित, ओजोमयी व्रजभाषा या राजस्थानी से प्रभावित चारणीय व्रजभाषा का ओजस्वी रूप भी तद्‌युगीन या परवर्ती काव्यों में मिलता है। पर **रसरतन** के कवि ने व्रजी और अवधी के मधुर गुंफन के साथ साथ डिंगल, और चारणगृहीत व्रजभाषा एवं अनुस्वरांत संस्कृताभास भाषा की अनुकृति को भी अपनाया है और उसने लोकभाषा और अपभ्रंशावशेष पदावली का भी बड़ा ही समीचीन उपयोग किया है।

संपादक ने अपनी भूमिका में सूत्रात्मक शैली द्वारा ग्रंथकार की भाषा-शैलीगत और व्याकरणसंबद्ध—सभी प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। इसी के साथ साथ प्रयुक्त शब्दसमूह की विशेषता पर भी प्रकाश डाला है। इन सबका परिचय कराने के लिये केवल आदिखंड की भाषा का ही विश्लेषणात्मक विवेचन ही उपस्थित किया गया है। इस अध्ययनात्मक परिचय के आधार पर ऐसा लगता है कि **रसरतन** की भाषा—व्याकरण और शब्दसमूह—के प्रयोगों का ठीक ठीक निरूपण और मूल्यांकन करने के लिये स्वतंत्र ग्रंथ लिखने और शोध करने की काफी गुंजायश है। कवि **पुहकर** का शब्दकोश भी अत्यंत संपन्न है, वैविध्य और प्राचुर्य से पूर्ण है। तद्‌भव शब्दों का उसमें कदाचित् सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। वे तद्‌भव शब्द लोकप्रचलित और व्यवहारप्रयुक्त भाषा से ही संभवतः लिए गए जान पड़ते हैं। ऐसे तद्भव शब्दों की संख्या भी काफी है जो तत्कालीन काव्यों में प्रयुक्त तद्‌भववर्ग के शब्दों से कुछ पृथक् तो लगते हैं, पर व्युत्पत्तिक्रम से वे शब्द तत्समरूप का अनायास संकेत करते भी जान पड़ते हैं। भाषा में शब्दों की प्रभूति और तद्भव रूपों की वैविध्यविभूति होने पर भी न तो वह बोझिल हुई है, न उसमें अर्थबोध की प्रसादता ही शिथिल हुई है और न धाराप्रवाह में मंदता ही आई है। यद्यपि कहीं कहीं शब्दों में तोड़मड़ोर और चारणप्रभाव के कारण केवल छंदोनुरुद्ध रूपों में कभी कभी कुछ विकृति सी दिखाई दे जाती है

तथापि उसका कारण, संभवतः, अपभ्रंश और चारण कवियों की पद्धति का **पुहकर** पर प्रभाव था। अंशतः युगरुचि भी उसमें प्रेरक रही हो तो असंभव नहीं। इसके अतिरिक्त लोकाख्यान में लोकप्रचलित रूपों के प्रति मोह और प्रयोगाग्रह भी कारण हो सकते हैं। इन सब विषयों की सशक्त और सप्रमाण विवेचना भूमिका में की गई है।

रासो का प्रभाव

अबतक उपलब्ध और प्रसिद्ध ग्रंथों की तुलना में **रसरतन** पर **रासो** का प्रभाव कदाचित् सर्वाधिक पड़ा है। वंदनीय और स्मरणीय कवियों में चूँकि **रसरतनकार** ने **चंदवरदाई** का नाम लिया है, इसलिये पूर्वोक्त अनुमान का पुष्ट आधार भी उपलब्ध हो जाता है। यहाँ सर्वाधिक प्रभाव कहने का तात्पर्य यह है कि **रसरतन** का ध्यानपूर्वक अनुशीलन करने से स्पष्ट हो जाता है और जान पड़ता है कि **चंदवरदाइकृत पृथ्वीराजरासो** को कवि **पुहकर** अपनी काव्ययोजना के लिये आदर्श प्रबंध या महाकाव्य समझता था। भाषा, वर्ण्य, वस्तुयोजना, भावाभिव्यक्ति छंदप्रयोग, शब्दरूप-व्यवहार, विविधभाषामिश्रण, तद्भवपदावली की प्रचुरता, प्रसंगानुसार ओज से मिश्रित भाषाप्रयोग, प्रासंगिक आख्यानों-उपाख्यानों के ग्रथन का कौशल आदि—अनेक पक्षों की दृष्टि से विचार करने पर ऐसा लगता है कि **रसरतन** पर **रासो** का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। **रासो** का प्रेम, प्रेमाख्यानकता, प्रेमाख्यायिका की उठान, उसका विकास, उसके घातप्रतिघात और उपसंहार आदि पर यद्यपि सूफी प्रेमाख्यानकों की शैलीगत मूलयोजना इसमें सर्वाधिक स्वीकृत है तथापि **रासो** की प्रभावव्याप्ति भी अप्रत्याख्येय है।

इस प्रभावसाम्य से हिंदीसाहित्य के इतिहास में सबसे क्रांतिकारी और परिपुष्ट जो तथ्य अनुमिति के रूप में सामने आता है उसका बड़ा ही महत्व होगा। **रासो** की प्रामाणिकता और उसके विस्तृत रूप की असत्यता पर विवाद का क्रम अबतक चल रहा है। अधिकांश विद्वान् तो यह मानने लगे हैं कि **रासो** का मूलस्वरूप चंदवरदाईनिर्मित तो अवश्य था परंतु नागरीप्रचारिणी सभा, द्वारा प्रकाशित, उसके विशालतम संस्करण के अद्योपलब्ध रूप में इतने अधिक क्षेपकांश बाद में जोड़ दिए गए हैं कि उन्हें चुनकर अलग कर देना सामान्यतः संभव नहीं है, पर चंदकृत **रासो** के किसी न किसी मूल रूप का अस्तित्व असंदिग्ध है। दूसरी ओर कुछ विद्वान् पुरातनप्रबंधसंग्रह

आदि में उपलब्ध दृढ़ प्रमाण का आधार मिल जाने पर भी समस्त **रासो** को जाली **और** अप्रामाणिक कृति मानते हैं। अबतक **रासो** के बृहत्, लघु, लघुतर आदि चार संस्करणों में से कुछ लोग किसी एक स्वरूप को प्रामाणिक और अन्य को अप्रामाणिक और कुछ पंडित सभी को अप्रामाणिक घोषित कर देते हैं। 'पुरातनप्रबंधसंग्रह' में मुनि जिनविजय द्वारा उद्धृत अपभ्रंश प्रतिरूपक अंशों को देखकर ऐसा अनुमान करनेवालों का भी अभाव नहीं है कि मूल **रासो** अपभ्रंश की कृति थी।

रासो की प्रामाणिकता और **चंद** की रचनामान्यता आदि के विषय में जब इतने मतमतांतर अबतक भी वर्तमान हैं तब कवि **पुहकर** के **रसरतन** में **रासो** को अपना आदर्श काव्य और **चंद** को वंदनीय महाकवि स्वीकार करना और उस प्रभाव से **रसरतन का** उपबृंहण करना देखकर कुछ तथ्य स्पष्टतः अनुमेय हो जाते हैं। **रसरतन** के आधार पर यह कहना असंगत नहीं ठहरता कि **चंदवरदाई** महाकवि था, उसने **पृथ्वीराजरासो** नामक महा प्रबंध-काव्य का निर्माण किया था और भावयोजना, वस्तुग्रथन, कथा-आख्यान-उपाख्यानसंयोजन; भाषाप्रयोग, विषयोपन्यासपद्धति और छंदोयोजना आदि की दृष्टि से उक्त **रासो** का स्वरूप आधारतः बहुत कुछ वर्तमान बृहत् संस्करण के ही जैसा रहा होगा। चाहे उसका आकार वर्तमान महासंकरण से कितना भी छोटा क्यों न रहा हो परंतु उसके सभी प्रमुख वैशिष्ट्य उक्त संस्करण के ही समान अवश्य थे।

भूमिका में लेखक ने **रासो** और **रसरतन** शीर्षक के अंतर्गत तुलनात्मक दृष्टि से अनेक बातों की ओर संबद्ध संदर्भ के अनुशीलकों का ध्यान आकृष्ट किया है जिससे पूर्वोक्त अनुमान की पुष्टि होती है। इसके साथ ही साथ प्रस्तुत प्रबंधकाव्य का एक ओर **रासो** के साथ और दूसरी ओर प्रेमाख्यानक काव्यों के साथ अध्ययन अपेक्षित है—यह संकेत भी मिल जाता है। यदि इस दृष्टि से ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो बहुत सी शोधपूर्ण सामग्री जिज्ञासुओं के संमुख आएगी।

'रसबेलि' में उपलब्ध नायिकाभेदसंबंधी छंदों द्वारा भी रीतिकालीन आचार्यपरंपरा की लुप्त शृंखला का कुछ प्रकाशन **रसरतन** द्वारा अनुसंधेय लगता है जिसकी ओर शिवप्रसाद जी ने संकेत किया है। अनुसंदिधित्सु और शोधार्थी—इस ग्रंथ के प्रकाशन से उपन्यस्त पथ पर आगे बढ़ सकेंगे ऐसी

आशा है। हिंदीकाव्यशृंखला की भी तिरोभूत कड़ी को जोड़ने और नए निष्कर्षों की ओर बढ़ने में अवश्य ही **रसरतन** का प्रकाशन सहायक होगा—ऐसा प्रतीत होता है।

रासो जिस परंपरा का काव्य था—उस पद्धति के काव्य में लोकप्रचलित और गाथात्मक प्रबंधकाव्यों का जनता में प्रचार रहा हो तो यह असंभव नहीं है। 'पिंगला और भरथरी', 'आल्हा उदल' और उनसे संबद्ध अनेकानेक लोकाख्यानक काव्य—संभवतः अपभ्रंशयुग से या कालिदास के समय से ही—मुखपरंपरया जीवित और प्रचलनशील थे। कभी कभी सशक्त कवि, लोकरुचि और जनप्रेम के आग्रह को देखकर उन्हें साहित्यिक विधा में आबद्ध कर देते थे। ऐसे ही काव्यों में इतिहासाधारवाली रचना **रासो** है और कल्पनाधारवाली कृति **रसरतन** है। हो सकता है अन्य कृतियाँ भी कालांतर में सामने आएँ। माधवानलसंबद्ध अनेक रचनाएँ मिली भी हैं। अतः लुप्त परंपरा का संकेत—अवश्य ही **रसरतन** से मिलता है।

इतने दिनों तक अंधकार में पड़े हुए इस अत्यंत महत्वपूर्ण काव्य का विश्वविद्यालय की उच्चतम कक्षाओं में अध्ययन अध्यापन, अबसे ही सही, अवश्य होना चाहिए। इसके द्वारा विषय का गंभीर अध्ययनक्रम निरंतर चलता रहेगा और निश्चय ही अनेक साहित्यिक तथा ऐतिहासिक महत्व की उपलब्धि भी हिंदीसाहित्य को होगी—इसका हमें पूर्ण विश्वास है। सभा अपेक्षा करती है कि विद्वद्जन ग्रंथ की यथार्थ महत्ता का मूल्यांकन करने में प्रवृत्त होंगे।

रथयात्रा, २०२० वि०

करुणापति त्रिपाठी
साहित्य मंत्री,
ना० प्र० सभा, काशी।

विषयसूची

[अंक पृष्ठसंख्या के सूचक हैं]

———

भूमिका

दान्ते की भाँति चाहे अनेक कवियों ने यह कहा भले न हो कि मैं तभी लिखता हूँ जब प्रेम मुझे प्रेरित करता है और मैं वही कुछ बाहर व्यक्त करता हूँ जो प्रेम मुझे भीतर से कहने को मजबूर करता है; किंतु इतना सत्य है कि दान्ते की भाँति ही अनेक कवियों के जीवन में प्रेम सबसे बड़ी आस्था और वही सबसे बड़ी प्रेरणा रहा है। प्रेम सभवतः विश्व के अधिकांश काव्य का उपजीव्य और उत्पाद्य दोनों ही रहा है। भारतीय वाङ्मय में भी प्रेम का विस्तार और शासन अनिर्वचनीय है। मानव चित्त में मानवी के लिये उत्पन्न प्रथम आकर्षण से लेकर आज तक इसके विविध रूप, रंग और गंध का वर्णन काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष रहा। वैसे तो प्राचीन भारतीय वाङ्मय: वेद, पुराण तथा काव्यादिमें इसका विस्तार-प्रसार है ही किन्तु इसका व्यापक निदर्शन प्रेमाख्यानकों में ही दिखाई पड़ा।

मध्यकालीन प्रेमाख्यानकों में एक साथ ही प्रेम के विविध पक्ष और निरंतर परिवर्तनशील समाज के बीच उसके संघर्ष और सामंजस्य का अद्भुत चित्रण दिखाई पड़ता है। इन प्रेमाख्यानकों की आत्मा अवश्य ही भारतीय रही, जिसमें क्लासिक प्रणय तथा लौकिक अनुरक्ति के अनेक पहलू मिलजुल कर एक नई भाव-भूमि की सृष्टि करते दिखाई पड़ते हैं। किंतु मध्यकालीन भारतीय जीवन कई दृष्टियों से बड़ा उद्वेलित रहा। बाहरी संस्कृतियों के आघात-प्रतिघात के कारण इस जनजीवन में कई तरह के स्रोत आ आकर मिलते रहे। पौराणिक भावधारा का आधिपत्य तो रहा ही, जिसमें धर्मशास्त्र और निबंध-ग्रंथों का प्रभाव था, साथ ही इसमें कर्मकांड और पारलौकिक जीवन के तत्व भी घुले-मिले थे जो मनुष्य-मन को नैतिकता की एक खास संकोचनशील सीमा में बाँधते थे। उसी समय विदेशी आक्रमणों की एक अजस्र धारा सी आरंभ होती है। इनके प्रभाव से नैतिकता का दबाव ढीला होने लगा। हाल की गाथा सप्तशती में इसकी स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है। इसी को लक्ष्य करके आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—'प्रेम और करुणा के भाव, प्रेमिकों की रसमयी क्रीड़ाएँ, और उनका घात-प्रतिघात इस ग्रंथ में अतिशय जीवित रस में प्रस्फुटित हुआ है। अहीर और अहीरिनों की

प्रेम-गाथाएँ, ग्रामवधूटियों की शृंगार-चेष्टाएँ, चक्की पीसती या पौधों को सींचती हुई सुंदरियों के मर्मस्पर्शी चित्र. विभिन्न ऋतुओं का भावोत्तेजन आदि बातें, इतनी जीवित इतनी सरस और इतनी हृदयस्पर्शी हैं कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट होता है भारतीय काव्य का आलोचक इस नई भावधारा को भुला नहीं सकता। वहाँ वह एक अभिनय जगत् में प्रवेश करता है जहाँ आध्यात्मिकता का झमेला नहीं है, कुश और वेदिका का नाम नहीं है, स्वर्ग और अपवर्ग की परवा नहीं की जाती, इतिहास और पुराण की दुहाई नहीं दी जाती।[१]

हिंदी का प्रेमाख्यानक साहित्य समूचे काव्येतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस साहित्य में हमारे प्राचीन लोकजीवन के अनेक उपादान अपनी संपूर्ण भावभंगी और सहज रंगीनी के साथ सुरक्षित हैं। हिंदी प्रेमाख्यानक साहित्य मूलतः मुसलमान सूफी कवियों की देन है जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक मान्यताओं को भारतीय लोकजीवनोद्भूत कहानियों के कलेवर में बड़ी सफाई के साथ अनुस्यूत कर दिया। हिंदी साहित्य का प्रत्येक पाठक सूफी कवियों की कविता के अटूट रागात्मक बंधन में बँधा है। 'हिंदू हृदय' और 'मुसलमान हृदय' के अजनबीपन को मिटानेवाले इस काव्य के प्रति हमारे हृदय की अशेष श्रद्धा का निवेदन स्वाभाविक ही था। पर सूफी प्रेमाख्यानक के ऐंद्रजालिक संमोहन में फँसकर हमने हिंदू प्रेमाख्यानकों के प्रति प्रायः उदासीनता बरती है, यह मैं न चाहते हुए भी कह देना आवश्यक मानता हूँ, क्योंकि इस औदास्य के कारण भारतीय प्रेमाख्यानकों का अध्ययन पूर्णतया एकांगी रहा है अथच इसके पूरे भावपरिवेश और काव्यरूप आदि का विश्लेषण अद्यावधि अपूर्ण ही माना जायगा। कवि पुहकर कृत रसरतन सिर्फ इसीलिये महत्वपूर्ण नहीं है कि वह एक हिंदू प्रेमाख्यानक है बल्कि उसके वस्तुतत्व और काव्यरूप का अध्ययन मध्ययुगीन हिंदी काव्य की अनेक समस्याओं को सुलझाने में सहायक होगा। रसरतन वस्तुतः इस युग के काव्य की एक ऐसी प्रतिनिधि रचना है जिसकी काया में न केवल भक्ति और रीतिकाव्य के बीच के संक्रमणयुग के अनेक तत्व विद्यमान हैं बल्कि रचनाकार की अद्भुत ग्रहणशीलता और परिपाटी प्रियता के कारण इस ग्रंथ में काव्यरूढ़ियों का अद्भुत संचयन और परंपरा का यथेष्ट निर्वाह सर्वत्र दिखाई पड़ता है। यह

१. हिंदी साहित्य की भूमिका, तीसरा संस्करण, पृष्ठ ११३

ग्रंथ जहाँ एक ओर सूफी प्रेमाख्यानक के स्पष्ट प्रभाव की घोषणा करता है, वहीं भारतीय (हिंदू) प्रेमाख्यानकों के वस्तुगठन और रचनाकौशल पर नया प्रकाश भी डालता है। यदि वह मध्ययुग की शृंगारिक प्रेमसाधना के स्वच्छंद रूप का हिमायती है तो उसकी अभिव्यक्ति में कामशास्त्र और परवर्ती संस्कृत आलंकारिकों के निर्मित नियमों का पूर्णतः पालन भी किया गया है। मुसलमान कवियों की रचनाओं में अभिव्यक्ति की सहजता और आध्यात्मिक मतवाद का अभिनिवेश है तो रसरतन में बाणभट्ट की कादंबरी से लेकर चंदबरदाई के पृथ्वीराजरासो तक में परिगृहीत अलंकरण मणिकुट्टिमता और काव्यरूढ़ियों का पुरस्सर निर्वाह दिखाई पड़ता है। रसरतन एक ओर कथा के गठन में तथा छप्पय छंद की विशिष्ट पदावली के निर्वाचन में रासो का अनुयायी है तो दूसरी ओर वह चिंतामणि, भिखारीदास, मतिराम और पद्माकर जैसे रीति के आचार्यों की परंपरा का पुरस्कर्ता भी है। केशव किंचित् पूर्ववर्ती हैं और कृपाराम का रचनाकाल यदि असंदिग्ध रूप से संवत् १५९२ है तो उन्हें भी पूर्ववर्ती कह सकते हैं, अन्यथा शेष सभी रीति आचार्य रसरतन के परवर्ती ही ठहरते हैं। यह सच है कि उसमें जायसी की सहजता नहीं है, न तो उसके सवैये और कवित्तों में देव जैसी सूक्ष्मता है; किंतु कथा के निर्वाह और संयोजन की शक्ति न तो देव में आई और न तो प्रांजल भाषा में अलंकार की रमणीयता और भाव की लुनाई को मुक्तकों में समेट पाने की शक्ति जायसी को मिल पाई। इन दोनों शक्तियों को एक साथ पाकर रसरतन का कवि यदि अपने को इन दोनों की प्रतिद्वंद्विता में खड़ा करना चाहे तो किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

रसरतन कवि पुहुकर की गौरवास्पद कृति है। इस कवि की इस महत्वपूर्ण उपलब्ध कृति का उल्लेख हिंदीशोध की प्रस्थानत्रयी में यथाप्रकार किया गया है। मैं शिवसिंहसरोज, ग्रियर्सन के 'द मार्डर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान' और शुक्ल जी के इतिहास को हिंदीशोध की प्रस्थानत्रयी मानता हूँ। और जो स्थान प्रस्थानत्रयी में गीता का है, वही इसमें शुक्ल जी के इतिहास का है। अतः सरोज और वर्नाक्यूलर लिटरेचर में तो इस ग्रंथ और कवि का साधारण उल्लेख ही है[1]; पर शुक्ल जी ने थोड़े शब्दों में इसके तत्व

---

१. सरोज, संख्या ४८३ और ग्रियर्सन, संख्या ८५७।

और महत्व पर काफी सटीक टिप्पणी दे दी है। वे लिखते हैं—'कल्पित कथा लेकर प्रबंधकाव्य रचने की प्रथा पुराने हिंदी कवियों में बहुत कम पाई जाती है। जायसी आदि सूफी शाखा के कवियों ने ही इस प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं। पर उनकी परिपाटी बिलकुल भारतीय नहीं थी, इस दृष्टि से रसरतन को हिंदी साहित्य में एक विशेष स्थान देना चाहिए। इसमें संयोग और वियोग की विविध दशाओं का साहित्य की रीति पर वर्णन है। वर्णन उसी ढंग के हैं जिस ढंग के शृंगार के मुक्तक कवियों ने किए हैं। पूर्वराग, सखी, मंडन, नखशिख, ऋतुवर्णन आदि शृंगार की सब सामग्री एकत्र की गई है। कविता सरस और भाषा प्रौढ़ है।'[1] पता नहीं शुक्ल जी के इन उत्साहवर्धक शब्दों के बावजूद रसरतन के संपादन और अध्ययन का प्रयत्न अब तक क्यों नहीं हुआ। रसरतन के बारे में फुटकल ढंग से कुछ विचार तो हुए हैं[2] किंतु ठीक से संपादित और प्रकाशित ग्रंथ के अभाव में ये अध्ययन प्रकीर्णक बन कर ही रह गए।

कवि परिचय

पुहकर, पौहर, पौहकर, पुहुकर, पहुकर, पुष्कर आदि भिन्न भिन्न नामों से सूचित कवि पुहकर रसरतन के कृतिकार थे।

पुहकर के विषय में जो कुछ भी सूचना मिलती है, वह रसरतन में दिए हुए उनके वंश-वृत्त और आत्मपरिचय से ही। इसके आधार पर कवि के बारे में निम्नलिखित बातों का पता चलता है। कवि अपने वंश के बारे में कुछ बताने के पहले सोम तीर्थ की चर्चा करता है। यह सोम नामक तीर्थ पांचाल प्रदेश में था जो गंगा-यमुना के द्वाबे में बसा हुआ है।

गंग जमुन अन्तर उभै रम्य देश पंचाल।
सोम नाम तीरथ तहाँ ता मधि अमर-मराल॥

(आदि० ५६)

यह तीर्थ गुप्त था जिसका भेद कोई जानता न था। एक बार पश्चिम दिशा में राज करने वाले राजम भुवपाल कुष्ट से पीड़ित होकर वहाँ पहुँचे।

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, छठा संस्करण, पृ० २२८।

२. डा० हरिकांत श्रीवास्तव के हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, [काशी १९५५] में एक संक्षिप्त सा निबंध द्रष्टव्य है। कुछ और लोगों ने भी यत्र तत्र थोड़ा बहुत लिखा होगा; किंतु मेरे देखने में कोई महत्वपूर्ण कृति नहीं आई।

उन्होंने असाध्य रोग से घबड़ाकर मरने का निश्चय किया और पुत्र को राज्य सौंपकर काशी को चले। रास्ते में इसी सोमतीर्थ में आकर वे सरोवर के किनारे रुके। प्यास से व्याकुल होकर वे सरोवर के पास पहुँचे और जल का स्पर्श करते ही उनका रोग दूर हो गया। शरीर पूर्ववत् कंचन वर्ण का हो गया। राजा ने बड़ा आश्चर्य किया और प्रसन्नतापूर्वक स्नान किया। रात में राजाको सोमनाथ ने स्वप्न में दर्शन दिया। और कहा कि काम-मोक्ष प्रदान करने वाला यह तीर्थ काशी के समान है, इसलिए काशी जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। राजाने वहीं भूमिगाँव नामक नगर बसाया जिसमें चारों वर्णों के अनेक लोग बसते थे। कूप और बाग से नगर सुशोभित था। राजा ने सरोवर के घाटों को पक्का बनवाया और किनारे पर शिव मंदिर का निर्माण कराया। बाद में चहुँआण कुलोत्पन्न शाकंभरि नरेश प्रताप रुद्र ने यह प्रदेश जीत लिया और वहीं प्रतापपुर नामक एक नगर बसाया। सम्हरधनी (शाकंभरि नरेश) ने वहाँ अपने कर्मचारियों, नेगी, यजमानों के साथ राज्य किया। देशराज कायस्थ कुल में उत्पन्न श्री निवास ने इसी प्रतापपुर में अपना घर बनाया। उनके धर्मदास और निर्मल नामक दो पुत्र थे। खरे जाति खोटहीन है, इसमें किसी प्रकार का कलंक नहीं, स्वयं रघुनाथ ने इसकी स्थापना की है। धर्मदास के पुत्र हुए निर्भयचंद्र जिनके पुत्र वनसिंह थे। वनसिंह के चार पुत्र थे—देवीदास, दुर्गदास, नरिंद और केशवदास। दुर्गदास के पुत्र वेनीदास और हरिवंश थे जिनकी अकबर के दर्बार में बड़ी कीर्ति थी। वेनीदास के पुत्र प्रतापमल और मोहनदास हुए। हरिवंश के भी एक पुत्र था। मोहनदास के सात पुत्र हुए। पुहकर सब में ज्येष्ठ थे जिनके मुख में सरस्वती का निवास था। राघव रतन, मुरलीधर, शंकर, मकरंदराय और शक्ति सिंह दूसरे पुत्र थे।

कवि पुहकर जब नव वरष के हुए तो पिता ने यतिनाथ स्थापित करके पूजा कराई। वचपन अत्यंत लाड़-दुलार में बीता।

वाल केलि रस खेल माँझु, वसु॔ वरस वितीतो।
पितु प्रताप वहु लाड़ कोड़, आँनद महँ वीती॥

(आदि० ८२)

पिता ने एक आखून (मौलवी, उस्ताद) रखकर फारसी की शिक्षा दिलवाई। सरस्वती की कृपा प्राप्त हुई, वाणीमें वाग्विलास आया। भाषा-प्रबंध में उत्ताल गति मिली।

रसरतन में कवि के बारे में सिर्फ इतना ही जीवन प्राप्त होता है। उनके जन्म स्थान भुइगाँव का कोई निश्चित क्षेत्र-निर्धारण नहीं हो सका है। पं० रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य में लिखा है कि "ये परताप-पुर (जिला मैनपुरी के रहने वाले थे; पर गुजरात में सोमनाथ जी के पास भूमिगाँव में रहते थे।"[1] सर्च रिपोर्ट १९०६-८ में भी इनका निवासस्थान प्रतापपुर, जिला मैनपुरी बताया गया है। शुक्लजी ने इसी सूचना को आधार बनाया है। जब कि १९०९ की रिपोर्ट में सोमनाथ को गुजरात, पंजाब में बताया गया है। विनोद के पुराने संस्करण के पृष्ठ ४५५ पर और लखनऊ संस्करण के पृष्ठ ४०७ (द्वितीय भाग) पर भूमिगाँव को सोमनाथ गुजरात के पास कहा गया है।

१९०९ की रिपोर्ट से यह भी सूचना मिलती है कि इन्हें जहाँगीर ने किसी बात पर कैद कर लिया था, बन्दीगृह में इन्होंने यह ग्रंथ लिखा (सं० ४८)। इस सूचना को शुक्लजी ने इतिहास में भी स्थान दिया है। मगर इस सूचना की प्रामाणिकता संदिग्ध है। रसरतन में इस प्रकार की कोई बात नहीं दी हुई है। १९०९ की रिपोर्ट की सूचना का कोई आधार नहीं दिया हुआ है। १९०९ की रिपोर्ट से पता चलता है कि इनके पिता तीन भाई थे—प्रतापमल मोहनदास और हरिवंश। जब कि 'ब' प्रति से लगता है कि हरिवंश इनके पितामह वेनीदास के भाई थे—वेनीदास के प्रतापमल और मोहनदास नामक दो ही पुत्र थे। हरिवंश के पुत्र का नाम 'स्याम' हो सकता है।

दुर्गदास तन पुत्र विवि काइथ कुल अवतंस।
सुजस साहि दरबार में, वेनीदास हरिवंश॥
वैन तनै परतापमल, मोहन महिं जसि पूरि।
एक पुत्र हरिवंश के, स्याम सजीवन मूरि॥
(आदि० ७६, ७८)

उसी प्रकार सर्च रिपोर्ट १९०५ की यह सूचना कि इनके दूसरे छः भाइयों के नाम सुन्दर, राघव रतन, मुरलीधर, शंकर, मकरंद राय और

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, छठाँ संस्करण, पृष्ठ २२८

सकतसिंह था, पूर्ण ठीक नहीं मालूम होता। 'ब' प्रति में नाम इस प्रकार दिए गए हैं।

सुन्दर सुबुद्धि राघव रतन, मुरलीधर संकर सरस।
मकरंद राइ राजत सुभट, सकतसिंह पारस परस॥
(आदि० ८१)

यहाँ सुंदर और सुबुद्धि विशेषण है। पुत्र राघव, रतन, मुरलीधर, शंकर, मकरंदराय और शक्ति सिंह ही ठहरते हैं। कवि कह रहा है कि राघव, रतन मुरलीधर और शंकर सरीखे सुन्दर सुबुद्ध पुत्र थे। मकरंदराय प्रसिद्ध वीर थे और शक्तसिंह हाथ के पारस स्पर्श (दान) के लिए प्रसिद्ध थे। पंजाब रिपोर्ट १९२२-२४ में[1] इस क्रम से शंकर को हटा कर अन्त में 'पारसराय' नाम बढ़ा दिया गया है। सर्वेक्षण में डा० किशोरीलाल गुप्त ने १९०९ की रिपोर्ट की सूचनाएँ दी हैं, उनपर कुछ अलग से विचार नहीं किया है।[2]

सर्च रिपोर्ट १९१८–२० के प्रस्तुतकर्ता डा० हीरालाल ने भी इन्हें मैनपुरी जिले का निवासी बताया है। १९१७–१९ की रिपोर्ट भी इन्हें प्रतापपुर जिला मैनपुरी का ही बताती है। इस प्रकार इनके स्थान के विषय में तीन अनुमान मिलते हैं। सोमनाथ-गुजरात, सोमनाथ-गुजरात-पंजाब, तथा सोमनाथ-मैनपुरी। गुजरात प्रदेश में रहने की बात निश्चय ही 'सोम' शब्द की भ्रान्ति के कारण हुई, कवि जिस सोमतीर्थ का वर्णन कर रहा है वह गुजरात स्थित सोमनाथ के सुप्रसिद्ध तीर्थ से बिलकुल भिन्न है। कवि के मन में भी यह शंका रही होगी, कि शायद लोग इसे प्रसिद्ध गुर्जर देशीय सोमनाथ तीर्थ न समझने लगें इसीलिए इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने लिखा कि यह गुप्त तीर्थ है, उतना प्रसिद्ध नहीं है।

तीरथ गुप्त न जाने कोई। तिहि संजोग कथा कर होई॥
(आदिखंड ५७)

किंतु इस प्रकार के झगड़े प्रायः शीघ्रतापूर्वक ग्रंथ अवलोकन तथा सम्यक् ढंग से विचार न करने के कारण ही उठ खड़े हुए हैं। कवि ने स्वयं बताया है कि

१. पंजाब सर्च रिपोर्ट, १९२२–२४ ई० पृष्ठ १५
२. सरोज सर्वेक्षण ४८३।४०७

यह तीर्थ पंचाल में पड़ता है। जो गंगा यमुना के द्वाबे में बसा हुआ है। पंचाल काफी प्राचीन जन-पद है। पौराणिक वर्णनों से पता चलता है कि यहाँ के राजा पुरुरवा ऐल या चंद्रवंश की शाखा से संबद्ध थे। पांचाल के प्राचीन राजाओं में सृञ्जय, च्यवन, पिंजवन, सुदास, सहदेव तथा सोमक के उल्लेख विजयों तथा दान आदि के संबंध में वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। पंजाल जनपद बाद में दो भागों में विभक्त हो गया। गंगा के उत्तर का भाग उत्तर पांचाल कहलाता था और दक्षिण का दक्षिण पांचाल। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिचेत्र थी जो आजकल बरेली जिले में पड़ती है, दक्षिण की कंपिला थी जो फर्रुखाबाद जिले में पड़ती है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इसका पुराना नाम क्रिवि था।[1] यह पंचाल का प्रदेश कुरु जनपद के उत्तर में था। इसीलिए दोनों का युगपत् नाम कुरुपांचाल हो गया था।

तत्रैमे कुरुपांचालाः शल्वा माद्रेय जांगला।

(महाभारत, भीष्मपर्व अ० ९)

पंचाल नाम पड़ने का कारण यह बताया जाता है कि इस प्रदेश के प्राचीन नरेश हर्यश्व ने अपने पाँच पुत्रों मुद्गल, सृंजय, बृहदिषु, प्रवीर और कंपिल्य के लिए इस प्रदेश को पाँच भागों में बाट दिया था, इसी कारण यह पंचाल कहा गया। महाभारत से पता चलता है कि हिमालय के अंचल से चंबल तक फैले गंगा के उभयवर्ती प्रदेश को पंचाल कहा जाता था। प्राचीन दक्षिण पंचाल राज्य के पूर्वचिह्न अब कहीं लक्षित नहीं होते। केवल बदाऊँ, फर्रुखाबाद जिले के मध्यवर्ती दोआब प्रदेश में गंगा के प्राचीन गर्त की बाईं ओर अनेक भग्न इष्टकादि पाये गए हैं। उत्तर पांचाल की प्राचीन राजधानी अहिच्छत्रा पुरी में अनेक ध्यानी बुद्ध तीर्थंकर पार्श्वनाथ आदि की मूर्तियाँ पाई गई हैं। कनिंघम ने इन मूर्तियों को देख कर अनुमान लगाया था कि ये ईस्वीपूर्व तीसरी-चौथी शताब्दी में निर्मित हुई होंगी। रोहित खंड के अंतर्गत कंपिल नगर से ये प्राप्त एक भास्कर कार्य युक्त प्राचीन चतुरस्र वेदी भारतीय म्यूजिम में रखी हुई है।[2]

---

१. मध्यदेश, डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १६-१७।

२. हिंदी विश्वकोश, सं० नगेंद्रनाथ वसु।

पंचाल के उपरिलिखित विवरण से कवि पुहकर की धार्मिक मान्यता आदि के विषय में भी थोड़ा बहुत स्पष्टीकरण हो जाता है। कवि ने अपनी शिक्षा-दीक्षा के विषय में लिखा है।

प्रथम वृत्ति काइस्थ लिखन लेखन अवगाहन।
विषम करन नृप सेव तुरत आयसु निरवाहन॥
द्वादस विधि अवदान सुनत नव गुन अवराधन।
छंद वंद पिंगल प्रबंध वहु रूप विचारन॥
पारसीय काव्य पुनि सैर विधि नजम नसर अवियात कहिय।
परतिच्छ देवि सारदा भई उर निवास मुख वसि रहिय॥
(आदिखण्ड ८३)

इसके पहले कवि बता चुका है कि पिता ने यतिनाथ की स्थापना करके पूजा कराई और द्वार पर मौलवी रखकर फारसी की शिक्षा दिलाई।

नवम बरस यतिनाथ थापि पूजा करवाई।
राखि द्वारा आपून पिता पारसी पढ़ाई॥८२॥

"यतिनाथ" से जैन धर्म की ओर संकेत मानना अनुचित होगा। "नमो सिद्ध" आज भी हिन्दू बालक से पाठारंभ के समय कहलाया जाता है। पुहकर कवि ने अपने को कायस्थ बताया है और यह भी कहा है कि "विषम से विषम" राजाज्ञा का पालन करना हमारा धर्म है। इससे यदि चाहें तो यह अनुमान कर सकते हैं कि पुहकर कवि किसी विषम राजाज्ञा के निर्वाह में असफल होने के कारण राजदण्ड पा चुके थे, जैसा उपर्युक्त जनश्रुति में कहा गया है और जिसे शुक्लजी ने अपने इतिहास में भी उद्धृत किया है।

कवि पुहकर ने अपने को नव गुणों (धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य) का आराधक कहा है और द्वादस अवदान का सुनने वाला बताया है।

अवदान शब्द पालि भाषा के अपदान का विकृत रूप है जिसका अर्थ होता है कोई महत्वपूर्ण उल्लेख्य योग्य बात। अवदानों में जातक कथाओं की ही तरह बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथाओं का वर्णन किया गया है। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका में अवदान साहित्य के बारे में विचार करते हुए लिखा है—"अवदान एक समय में बहुत ही लोकप्रिय विषय था। इस विषयके निश्चय ही सैकड़ों ग्रंथ लिखे गए होंगे। जो काल चक्र के पहिये के नीचे पिस

गए हैं। कइयों का पता चीनी और तिब्बती अनुवादकों की कृपा से ही लगा है। अवदानों में से कई एक ऐसे हैं जिनकी भाषा अलंकृत और मजी हुई है। और जो कवित्व के सुंदर नमूने हैं'।[1] लेकिन पुहकर ने जिस "द्वादस विध अवदान" की बात की है, उसका स्पष्ट अर्थ नहीं खुल पाता, क्योंकि अवदानों के साथ द्वादस की कोई रूढ़ संख्या नहीं मानी गई है।

कवि पुहकर अपने को छंद, पिंगल और प्रबंध के रूपों का जानकार भी बताते हैं। साथ ही वे फारसी काव्य में भी काफी सैर कर चुके थे, यहाँ तक कि वे गद्य (नसर) तथा पद्य (नज्म) दोनों में गति रखते थे और अबियात (बैत) में भी दिलचस्पी लेते थे।

कवि का व्यक्तित्व

राज्याश्रय—कवि पुहकर श्रृंगारिक व्यक्तित्व के प्रेमी जीव मालूम होते हैं। कवि के व्यक्तित्व के निर्णय का एक मात्र आधार उसका वातावरण, चरित्रके विशेष गुण तथा सौन्दर्य बोध और उसकी रुचि ही होती है। कवि पुहकर जिस वातावरण में उपजे, पनपे और बढ़े वह निश्चित तौर से ह्रासशील सामन्त-वाद से आक्रान्त था। कवि का सम्बन्ध जहाँगीर के दरबार से था, जिसका विवरण उनके जीवन वृत्त के सिलसिले में दिया गया है। उन्होंने एक निकट द्रष्टा की तरह जहाँगीर के दरबार का बड़ा सूक्ष्म वर्णन किया है। मुगल दरबार अपनी ऐय्याशी और श्रृंगारिकता के लिए प्रसिद्ध था। ऐसे दरबार में कवि के ऊपर वे सभी प्रकार के प्रभाव पड़े जो आश्रित कवियों के ऊपर पड़ा करते हैं। यह सच है कि पुहकर जहाँगीर के आश्रित कवि थे, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु वे स्वयं "विषय नृप सेवा" को बहुत बड़ी बात मानते थे, इससे प्रकट हो जाता है कि उनकी रुचि दरबारी कामों के करने में संतुष्ट होती थी। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि गुणी वही है जिसकी सेवा को स्वामी सराहे।

ना जानौ पिय किहि गुन राँचै।
कंचन कौन सुहागै आँचै॥
सेवक सकल करैं बहु काजा।
सो सुजान जिहि बूझहिँ राजा॥
(रसरतन, युद्ध खण्ड २०१)

---

१. हिंदी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ २०५

आश्रय दाता की प्रशंसा में वे भी उसी प्रकार अतिशयोक्ति और अतिरंजना का आश्रय लेते हैं, जैसे परवर्ती रीतिकाल के कवि लिखा करते थे।

शृंगारिकता और कामशास्त्र—पुहकर के ऊपर इस वातावरण का दूसरा प्रभाव यह पड़ा कि वे आनन्द विहार के उपकरणों के प्रति बहुत आसक्त हो गए। कवि एक तटस्थ व्यक्ति की तरह राज वैभव का चित्रण नहीं करता बल्कि उसकी रुचि में भोक्ता की आसक्ति भी झलकती रहती है। यह कवि पुहकर के व्यक्तित्व की बहुत बड़ी विशेषता है, इसे हम गुण भी कह सकते हैं और दोष भी। गुण इसलिए कि कवि वर्ण्य वस्तु के प्रति इस लगाव के कारण कहीं ज्यादा मनोयोग का परिचय देता है। उसकी एक एक बारीकी को उभारने में सफल हो सका है। दोष इसलिए कि यह आसक्ति कवि को कई स्थानों पर विकृति और नग्नता की ओर खींच ले गई है।

मध्यकालीन समाज विशेषतः सामंती संस्कृति से प्रभावित समाज, एक खास प्रकार की दिनचर्या में अपने को सीमित कर चुका था। नागर जन के कलाविनोद बधी बँधाई परिपाटी से संचालित हुआ करते थे। वात्स्यायन का कामसूत्र ऐसे व्यक्तियों के जीवन रहस्यों की कुंजी है। इसे देखने से पता चल जाता है कि काम भावना का अतिरेक किस प्रकार जीवन की गति विधि, आदर्श और पुरुषार्थों का नियमन करता था। 'फलभूताश्च धर्मार्थयोः' कह कर इस काम को अन्य सभी पुरुषार्थों से वरीयता दे दी गई। नर नारी नायक और नायिका बन गए तथा उनके जीवन को नाना प्रकार के कृत्रिम भेदोपभेदों से खंडित करके मैथुन सुख के लिए निवेदित कर दिया गया।

काम शास्त्र के अंतर्गत नायक नायिका के अनेक भेद किये गए। नायिका स्वभावतः ज्यादा विवेच्य बनी। नायिका के पद्मिनी, शंखिनी, चित्रिणी, हस्तिनी, मृगी, बडवा, करिणी, देवसत्वा, गंधर्वसत्वा, यक्षसत्वा, मनुष्यसत्वा, पिशाचसत्वा आदि भेद बताये गए। और उसके वर्ण, गंध, स्वर, गति, लावण्य तथा नखशिख सौंदर्य का क्रमशः नख, चरण, पाँव, जाँघ, जानु, उरु, कटि, नितंब, योनि, बस्ति, नाभि, पेट, त्रिवली, वक्ष, स्तन, कुच, हँसली, कंधा, हाथ, पीठ, ग्रीवा, चिबुक, कपोल, मुख, अधर, दाँत, जिह्वा, हास्य, नाक, नेत्र, भौंह, कान, ललाट, कपाल, केश, तिल आदि को विभिन्न भागों में बाँट कर वर्णन किया गया।

कवि पुहकर इन तमाम भेदोपभेदों से अच्छी भाँति परिचित हैं, और रसरतन में यथावसर अपना यह ज्ञान उपस्थित करते चलते हैं। स्वयंवरखंड

का रम्भा-नखशिख वर्णन इसका प्रमाण है। कंदर्प निवास कामशास्त्र का एक प्रमुख विषय है। नारी के शरीर में काम संचरण की क्रिया इस प्रकार बताई गई है।

अंगुष्ठे पद गुल्फ जानु जघने नाभौ च वक्षः स्तने
कक्षा कंठ कपोल दन्त वसने नेत्रालिका मूर्द्धनि।
शुक्ला शुक्ल विभागतो मृगदृशासंगेष्वनंगस्थिति
ऊर्ध्वाधोगमनेन वाम पदतः पक्षद्वये लक्षयेत्

कवि पुहकर का मत उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

प्रतिदिन मदन वास फिरि बसै।
नर नारी के अँग अँग लसै॥
पदम अंगुष्ठ आदि उपजाहीं।
ससि के संग सीस लगि जाहीं ॥१०२॥

दक्छिन अंग पुरिष कै बढ़ै।
बाये अंग त्रिया कै चढ़ै॥
कृष्ण पक्ष दूजे अंग आवै।
मावस उतरि तँही ठहरावै ॥१०३॥

तिथि विचार कर यह जिय जानौ।
मदन वास निश्चै पहिचानौ ॥१०४॥

(विजयपाल खंड)

कामशास्त्र का दूसरा विषय काम विज्ञान की शिक्षा है। काम शास्त्र और उसकी अंग विद्याओं अर्थात् चौसठ कलाओं का ज्ञान अनिवार्य माना जाता है। सोलह शयनोपचारिक और चार उत्तर कलायें अत्यंत आवश्यक बताई गई हैं।

शयनोपचारिक कलायें क्रमशः ये हैं—

(१) पुरुषस्यभावग्रहणम् (२) स्वराग प्रकाशनम् (३) प्रत्यंग दानम् (४) नखदन्तयोर्विचारौ (५) नीवीसंस्त्रनम् (६) गुह्यस्य संस्पर्शानुलोभ्यन् (७) परमार्थ कौशलम् (८) हर्षणम् (९) समानार्थताकृतार्थता (१०) अनुप्रोत्सानम् (११) मृदुक्रोध प्रवर्तनम् (१२) सम्यक् क्रोध निबर्तनम् (१३) क्रुद्ध प्रसादनम् (१४) सुप्त परित्यागः (१५) चरमस्वापविधिः (१६)

गुह्यगूहनम्। उत्तर कलाएँ (१७) साश्रुपातं रमणायशापदानम् (१८) स्वशपथ क्रिया (१९) प्रतिस्थानुगमनम् (२०) पुनर्पुनर्निरीक्षणम्।

इन वीस कलाओं का वर्णन इसलिए किया गया कि कवि पुहकर ने इन पर विशेष ध्यान दिया है और उन्होंने विजयपाल खंड में तीसरे अध्याय में रंभा को ये सारी कलायें बड़े विस्तार से उसकी सखियों के द्वारा सिखवाई हैं। इन प्रक्रियाओं का व्यावहारिक पुरस्सर वर्णन कवि ने स्वयंबरखंड के समागम वर्णन में उपस्थित किया है।

कामशास्त्र का प्रभाव पुहकर पर और भी कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। कन्या विस्रंभण, रतिसदन-निर्माण, प्रणयोपचार, आलिंगन चुम्बन, नखक्षत, दंतक्षत, सुहागरात आदि के वर्णन बिल्कुल रूढ़ हैं और ऐसे शास्त्रों में बताये लक्षणों से पूर्णतः शासित हैं। कवि ने सोलह कलाओं, सोलह शृंगार, द्वादस आभरण, बत्तीस लक्षणों आदि के भी नाम गिनाये हैं। रंभा की सखियों में मुदिता, रूप उदिता, गुणमंजरी, कोकिला, अंबा तथा चंद्रविंबा अपने अपने नाम और गुण के अनुरूप तरह तरह की कलाएँ बताती हैं। मदनमुदित प्रिय के साथ अनंग में मुदित मन रहने की सीख देती है। रूप उदित रूप-रक्षा और विकास के उपाय बताती है। गुनमंजरी गुणों का हार बना कर पिन्हाती है। कोकिला कोककला बताती है और अंबा जल-प्रकृति का रहस्य बताती है कि किस प्रकार प्रिय की रुचि में प्रिया की रुचि मिल जानी चाहिए। चंद्र विंबा 'सरद रैन उजियारी' छवि के गुप्त भेद बतलाती है।

कवि पुहकर कोककला, और कोकिल कला: दोनों कलाओं में अपनी गति का प्रमाण देते हैं। कहीं कहीं उन्होंने कपोत-कला की भी बात की है।

कोकिल कल अस कोक कल कला कंठ कलराउ।
कूका कुहुकुनि कुहुक है, क्रम क्रम कहसि सुभाव॥

(विजयपाल खंड १०७)

गनीमत है कि कुछ स्थानों पर उन्हें अपना पाठक भी याद आ जाता है और वे उसकी रसिकता-प्रिय शक्ति पर विश्वास करके बाकी बातें गुप्त ही रहने देते हैं:

बहुत भेद वरननि कियौ, चारि वीस अरु चारि।
पुहुकर प्रगट न कहि सकै, लैहैं रसिक विचारि॥

(वि० पा० १०६)

बहुश्रुतत्व

पुहकर एक बहुश्रुत व्यक्ति थे। रसरतन पढ़ने से लगता है कि उन्हें काफी विषयों का थोड़ा बहुत ज्ञान था। मूलतया वे श्रृंगार के कवि हैं इसलिए संयोग और वियोग श्रृंगार की सारी प्रक्रियाओं के वे रहस्य समझते हैं। उनके भेदोपभेद और लक्षण जानते हैं। किंतु इसके अलावा भी उनके दिलचस्पी के कई क्षेत्र हैं। ज्योतिष पुहकर का प्रिय विषय है। वे रंभा और सूरसेन की जन्म कुंडली को दृष्टि में रखकर ग्रहों की गति का विश्लेषण करके बताते हैं कि उनके जीवन के अच्छे बुरे कर्म-फल किस ग्रह के किस स्थान और गति से प्रभावित हुए। सूरसेन की कुंडली का विवरण देखिए।

बैठे पंडित ज्योतिष ग्याना। जन्म पत्र फल कहैं प्रमाना॥
तन रवि बुध धन भवन बखानौ। सहज भवन सनि राहु समानौ॥१२२॥
बुद्धि भवन सुर गुरु ठहरायो। चौथे शुक्र उच्च फल पायो॥
कर्म भवन पृथ्वी सुत देखा। कुल दीपक उन गन्यो विसेखा॥१२३॥
लाभ भवन पुकराज गृह, नवम केत नव जोग।
पंडित गुन फल लेखहीं, भोगी सब रस योग॥१२४॥
(आदि खंड)

इसी प्रकार उन्होंने रंभा की जन्मकुंडली (आदि० १८३) का भी वर्णन है। यही नहीं कवि खास खास अवसरों पर यात्रा, राज्याभिषेक, विवाह, प्रस्थान आदि के लिए भी मुहूर्त बताता है। सूरसेन रंभा के स्वयंबर में जाने को उद्यत हुआ। कवि पुहकर ने एक मुहूर्त यों बताया।

जेठ मास सिति पच्छमीजु तिथ दसमी दिन मानहिँ।
वितीपात गरकरन जोग आनन्द बषानहिँ॥
नखत हस्त बुधवार चंद्र कन्या वृषभानहिँ।
कहत ताहि दसहरा हरत दस पाप पुरानहिँ॥
(विजयपाल० २३५)

केवल फलित ही नहीं गणित ज्योतिष में भी कवि का अनुराग दर्शनीय है। वैरागर खंड में उन्होंने दो कुट्टक गणित प्रस्तुत किये हैं और बड़े गर्व से कहा है कि इसका उत्तर या तो सरस्वती का कोई विशेष कृपा-पात्र दे सकता है या तो वह जिसने 'लीलावती' पढ़ी हो।

मिले हते केहि विधि चढ़े, खंड खंड वहि भाँति।
मुनि केहि विधि सम सम भये, वाइस वाइस पाँति॥
जो जानै लीलावती, कै सरस्वती प्रसाद।
सो पावै या भेद कौ, नातर कठिन विवाद॥
(वैरागर खंड १८३-८४)

कवि पुहकर संगीत और नृत्य में भी कम रुचि नहीं लेते। रुचि लेना एक बात है और विषय के शास्त्रीय पत्त से परिचित होना बिलकुल दूसरी। मानो नृत्य गीत विषयक अपने इस ज्ञान को दिखाने के लिए ही उन्होंने अप्सराखंड में 'अच्छरि-नृत्य' का आयोजन किया है। राजकुमार सूरसेन इस नृत्य को देखकर अपने जन्म को कृतार्थ मानता है और उसी प्रकार कवि पुहकर हमारे सामने इसका वर्णन करके अपने को धन्य समझते हैं। अप्सराखंड के २०४ संख्या से २१८ तक के छंद कवि पुहकर के नृत्य-उल्लास-वर्णन के साक्षी हैं।

कवि पुहकर को सामुद्रिक का भी पर्याप्त ज्ञान था। नायक नायिकाओं के वर्णन में वे स्थान स्थान पर अपने इस ज्ञान का परिचय देते हैं। उन्होंने जहाँगीर को बत्तीस लक्षणों से युक्त पुरुष बताया है और बत्तीस लक्षण इस प्रकार मिलाए हैं:—

पंच दीह कच नैन बाँह वर जंघ बषानिय।
वहुर केस कटि अधर उदर सूक्ष्म तुच जानिय॥
अरुन सप्त दृग ओंठ तालु नष जिभ्य चरन कर।
कंध भाल मन पलक ग्रीव वासा उन्नत वर॥
उर श्रवन पीठ विश्नोति लघु दंतिपंति इंद्री सुगनि।
गंभीरनाभि सुरचित्त मति ये लच्छन बत्तीस भनि॥
(आदिखंड ३३)

रस रतन में ऐसे अनेक स्थल हैं जो कवि की विभिन्न क्षेत्रों में प्रसरित रुचि, अध्यवसाय और बहुश्रुतत्व का परिचय देते हैं।

भावप्रवण संस्कारी चित्त

ऊपर के विवरण से यह भ्रम हो सकता है कि पुहकर चमत्कार प्रिय, प्रदर्शनात्मक रुचि के कवि थे; किंतु ऐसी बात नहीं है। कवि पुहकर का

व्यक्तित्व विरोधाभासों का अद्भुत स्तवक है। वे रीतिकालीन कवियों की परंपरा में गृहीत नहीं किये जा सकते, किंतु वे लक्षणकार थे। रस, नायिका भेद उनके प्रिय विषय हैं, और मौका आने पर वे इनके विषय में पूरी जानकारी देने में कभी चूकते भी नहीं। किंतु आचार्यत्व प्रदर्शन के इन क्षणिक प्रयत्नों से प्रेम कथा का रचनात्मक प्रवाह कभी बाधित नहीं होता। कवि का मन कथा के एक सूत्रात्मक अखंडित रस परिपाक में इतना तल्लीन है कि अलंकार नायिका भेद तथा अन्य प्रकार के चमत्कारों के प्रदर्शन की प्रवृत्ति ऊपरी वीचि विलास की तरह वर्तमान रह कर भी मूल धारा की गति को कभी क्षति नहीं पहुँचाती। सच तो यह है कि पुहकर इतने भावप्रवण कवि हैं कि उनके मन के संवेग किसी भी प्रकार की रुकावट सह ही नहीं सकते। वे शृंगार के सूक्ष्म स्तरों के कवि हैं। उनकी वाणी में भोक्ता कवि की वास्तविकता और अनुभव की गहराई है। वे विरह और संयोग दोनो ही अवस्थाओं के सूक्ष्म द्रष्टा हैं, इसी कारण रसरतन प्रेम के उभय पक्षों के चित्रण की मार्मिकता और सजीवता से स्पंदित है।

यह सही है कि रसरतन के कवि का प्रेम वर्णन शास्त्रीयता और रूढ़ियों से आक्रांत दिखाई पड़ता है। किंतु यदि गहराई से देखा जाय तो यह भी भ्रम ही सिद्ध होगा। पुहकर एक संस्कारी चित्त के कवि थे। उन्होंने काव्य के संस्कारों को अपनी आत्मा में उतार लिया था। परिणामतः सहज वर्णन भी उनके संस्कारों की छाप से मुक्त न रह सके। मेरी दृष्टि में तो हिंदी में बहुत कम कवि हैं जिनकी रचनाओं में सहजता और अलंकरण का, अकृत्रिम ग्राम्यता और संस्कार का, निरावृत्त प्रेम और उच्छल सौंदर्य का, ऐसा अच्छा समन्वय और संतुलन दिखाई पड़े। कवि पुहकर रूढ़ियों, कवि - प्रौढ़ोक्तियों, कवि-समय आदि के विरोधी नहीं हैं, बल्कि सचेष्ट समर्थक हैं, किंतु यह परंपरा-प्रियता उनकी मौलिक रसवत्ता को कभी आक्रांत नहीं करती। यह मामूली सफलता की बात नहीं है।

आध्यात्मिक मान्यताएँ

आचार्य शुक्ल ने रसरतन के महत्व का एक कारण यह भी बताया था कि यह हिंदू कवि द्वारा लिखा हुआ भारतीय प्रेमाख्यानक है। हिंदी में अधिकतर प्रेमाख्यानक सूफी मुसलमान कवियों ने ही लिखे हैं, जिनमें एक खास प्रकार की आध्यात्मिकता का संपुटन सर्वत्र वर्तमान रहता है। प्रश्न हो

सकता है कि क्या रसरतन पर भी प्रतीकात्मक शैली के अध्यात्म का कोई असर दिखाई पड़ता है।

पुहकर का आध्यात्मिक मान्यता के प्रति कोई सचेष्ट लगाव नहीं दिखाई पड़ता। वे पंचदेवोपासक उदार हिंदू ही प्रतीत होते हैं। रसरतन के आरंभ में उन्होंने निर्गुण निरूप की वंदना की है तो सगुण कृष्ण का कीर्तन भी। शिव की वंदना उनको अक्सर प्रिय है। महिषासुर गंजनि का पुनीत स्मरण भी वे अपना कर्तव्य मानते हैं।

कवि के लिए "कुन्देंदु तुषार हार" धारण करने वाली भगवती सरस्वती का ध्यान तो अनिवार्य है ही, और फिर पुहकर कवि को तो गर्व है।

परतिच्छ देवी सारदा भई उर निवास मुख वसि रहिय।
(आदिखंड ८३)

पुहकर हिन्दू शास्त्रानुमोदित कर्म के सिद्धान्त को मानते हैं। मान्य देवताओं के प्रति उनकी श्रद्धा और भक्ति है। युद्ध खंड में अवश्य प्रतीकात्मक अध्यात्म का कुछ प्रपंच दिखाई पड़ता है। और मुझे लगता है कि इस पर सूफी रहस्यवाद का भी कुछ असर है। कवि वन के फल फूल लता वृक्ष आदि को लक्ष्य करके कहता है।

बौहुर हौंहि नव पल्लव हरे। फूलहिँ फलहिँ सकल रस भरे।
बहुर पीत ह्वै है रँग पाके। तब फिर काम न आवहिँ ताके ॥१६१॥
बाउ एक बहिहैं इक वारा। एकहिँ बार होहिँ पतझारा।
जो रँग सुरँग सु थिर न रहाई। जो उपजत सो विनसत भाई॥१६३॥
मन जनु जान कंत है मेरा। यह वह नाइक सबहीँ केरा।
जोर दिष्टि चितवै चष फेरी। रानी होहिँ पलक महँ चेरी ॥१६५॥
जिहि तिरिया कहँ होहि बड़ाई। ताकौं साँचु रूप तरुनाई।
सो सुहाग सब ऊपर राजै। जिहिँ नाइक कर कृपा विराजै ॥१६६॥
एकु चित्त करि सेवहु ताही। जानहु रब सब ऊपर आही ॥१६७॥

सखियों की इस सीख को सुनकर रंभा उत्तर देती है :—

हौं निरगुन पिय अति गुनवंता। क्यौं करि कहौं कै मेरौ कंता।
जानौं नहीं जगत विधि सेवा। जथा सक्ति कर पूजौं देवा ॥२००॥
ना जानैं पिय केहि गुन राचै। कंचन कौन सुहागै आँचै ॥२०१॥

यहाँ कवि ने प्रेम मार्ग की प्रधानता तो दिखाया ही है। "रब" को सबके ऊपर बताया है। सूफी कवियों की परिपाटी के अनुसार प्रेमास्पद यहाँ नारी नहीं है, पुरुष है। यह अन्तर स्पष्ट कर देती है कि कवि सूफी रहस्यवाद को स्वीकार नहीं करता। उसकी मान्यता भारतीय ही है।

इसी खंड में आगे मायानगर का रूपक भी दिखाई पड़ता है। ब्रह्मकुंड के पास मायानगर है। कुमार सूरसेन अपनी अप्सरा पत्नी कल्पलता से मिलने जाते समय मायानगर के पास पहुँचता है।

इहि मारग कोई निवह न जाई। मायापुरी कठिन गुन गाई ॥२१६॥
उत्तर पंथ अगम अति भारी। गिरवर गहन विपन वन सारी।
मदन देव राजा बलबंडा। जोते भूप बहुत गुन चंडा ॥२२२॥
उलट जात तौ जात बड़ाई। ब्रह्मकुंड पुन नियरे ताई।
फेर उलट नाही पैसारा। सकल देव माया विस्थारा ॥२२३॥
जो निबहै इहि तहँ हरद्वारा। भेटहि जाइ अमर पुर दारा ॥२२४॥

स्पष्ट है कि यहाँ कवि ब्रह्मप्राप्ति में माया और मदन को बाधक मानता है। और इनसे डर कर भाग जाने को जीवन की निरर्थकता बताता है। जीवन की सार्थकता इस गढ़ को तोड़ने में है, क्योंकि तभी मनुष्य 'अमरत्व' को प्राप्त कर सकता है। जिसका प्रतीक कल्पलता है।

वैरागर खंड में भी एक स्थल ऐसा है जो कवि की दार्शनिक और आध्यात्मिक मान्यता पर प्रकाश डालता है। वैरागर नाम में भी एक दार्शनिक संकेत है। कवि कहता है कि इस वैरागर का [वैराग्य ऐसा श्लेष से लगता है] मार्ग बड़ा अगम है। इस हीरक क्षेत्र के दो रास्ते है। दोनों का वर्णन कवि से ही सुनिए।

दूर देस वहु आइ न नीरा। कहत जाहि वैरागर हीरा।
ताहँ गवन विवि मारग आही। हीर खेत नर चाहत जाँही ॥
एक पंथ नियरे नहिं तासू। बिरले निवह सकत नहिं जासू।
उच्च उतंग सिखर अति घाटा। खड्ग धार सूछम अत बाटा ॥
ताहर समुद गहिर गंभीरा। दुहुँ दिस वाट इदच्छन तीरा ॥
बीच न कहूँ वसनकर ठाऊँ। वसगत ग्रेह नगर नहिं गाऊँ ॥
इक चित चलै नगर ठहरायै। करहि न डीठ दाहने बाँयै ॥
चलै चरन गिरिहिते गिराई। बूड़ै उदधि रसातल जाई ॥

निबहै आइ निपट अति नीरा । लहै वेग वैरागर हीरा ॥
उहि पग सुगम न निबहै भारा । निबहै नहीं कुटुम परिवारा ॥
जोगी जती जाइ उहि पंथा । तजहिं बसन मुकुतन करि कंथा ॥
अंबर छाडि डिगंबर होई । उहि अगमन मग निबहै सोई ॥

(वैरागर खंड ८७-९१)

यह योगी यतियों का दिगंबर पंथ है, जहाँ कुटुंब परिवार छोड़ कर ही चलना पड़ता है। दूसरा पंथ उन वनजारों का है, सीधा-सुगम। इस पंथ में पंच विकारों के चोरों का डर अवश्य है, पर सावधान सचेत रहने से आदमी पार लग ही जाता है।

दूजै पंथ चलै वनजारा । लादौ बनज संग परिवारा ॥
मारग सरल तीर बहु ठाऊँ । ठाँव ठाँव बसै सब गाऊँ ॥
पंच चोर बर ये अति आहीं । सोवत सौज मूसि लै जाहीं ॥
तिहिं सँग चोर आहिं बहु ठाटा । पाथक सब मिलि बाँधत घाटा ॥
जागै पंथ सकल निसि माहीं । तिहिं कहँ कछू चोर भय नाहीं ॥
पहुकर पथिक पयान करि, सावधान चित होइ ।
जो सोवै ते मूसिये, जागत छलहिं न कोई ॥

(वैरागर खंड ९३-९७)

वैरागर खंड में ही अंतिम हिस्से में एक नट-नाटक देख कर सूरसेन के गुरु चिंतामणि के मन में सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और प्रलय के सभी दृश्य क्रमशः उत्पन्न हुए। यह सृष्टि भी किसी अदृश्य नट की लीला ही तो है।

पुरुष प्रकृति शिवशक्ति भन, मातु पिता जिय जान ।
गुन माया नटवत रच्यौ, सो नट नटी वखान ॥

उस नट ने सत, रज, तम गुणों के मेल से सृष्टि की। त्रिगुन की डोरी बनाई। उसी ने नर और नारी की सृष्टि की, मोह का बंधन उपजाया। विना खंभे और विना ईंटों के सहारे उसने अद्भुत महल का वितान ताना। चौदह खंड इस महल में सूर्य और चंद्रमा के दो दीपक जला कर रक्खे। जल के ऊपर बना यह मंदिर कितना अद्भुत है। जल को हवा से सुखाकर माटी के मूर्ति गढ़ता है, अग्नि से तपा कर रंग डालता है। गगन से शब्द लेकर उसमें वाक्शक्ति डालता है, और अनेक रूपों की सृष्टि करता है। इन चौरासी लक्ष प्रकार की मूर्तियों से अनेक तरह के खेल रचाता है।

इक घट गंगा जल भरयौ, एक भर्‍यौ जल और।
प्रतिभा से सम दुहुन में, चंद तजै नहिँ ठौर॥
सब ऊपर इक धाम है, जानत सकल जहान।
पूरब पच्छिम चार दिस, सींच मंत्र संधान॥
परब्रह्म परमात्मा, जो गुरू दियौ बताय।
अलख अगोचर प्रकट है, सब घट रह्यौ समाय॥

(२०७-२०६)

❀

परमेश्वर तहँ पंच है, जगत बिदित यह बात।
निगम दिया नरकर लिए, आपुन खोजत जात॥ (३१७)

❀

चिंतामणि इमि उच्चरै, ऐसो यह संसार।
विष्णु भक्ति वैराग्य युत, ताहि न ल्यावहु वार॥ (३२७)

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि पुहकर अद्वैत को माननेवाले थे, हाँ उन्होंने सृष्टि की प्रक्रिया में सांख्य की धारणाओं को स्वीकार किया है। भक्ति को जीव की परममुक्ति का साधन मानते हैं।

आचार्यत्व

हम संक्षेप में यहाँ पुहकर के आचार्यत्व पर भी कुछ कह देना चाहते हैं। पुहकर केशव को छोड़कर बाकी सभी रीतिकालीन आचार्यों के पूर्ववर्ती हैं। इसीलिये उनके इस पक्ष का महत्व भी बढ़ जाता है। पुहकर ने रसवर्णन भी किया है और नायिकाभेद का निरूपण भी। ग्रंथ में सखी, दूती, मंडन, सहेट आदि की भी पुरस्सर चर्चा है। सोलह श्रृंगारों का भी निरूपण है। उन्होंने इस दिशा में संस्कृत आचार्यों से कोई भिन्न बात नहीं कही है और यह दोष सिर्फ उन्हीं को नहीं, रीतिकाल के अधिकांश आचार्यों को लगाया जा सकता है। पुहकर श्रृंगार को रसराज मानते हैं।

गननायक गनपति गुरू, ससिनायक उजियार।
दिननायक रवि जानिये, रसनाइक सिंगार॥१०॥

(आदि खंड)

इस श्रृंगार रस के दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। नायक नायिका एक दूसरे के दर्शन से आकृष्ट होते हैं। दर्शन तीन प्रकार के होते हैं—

काम कहै सुनु सुंदरी, दरसन तीन प्रकार।
स्वप्न चित्र परितिच्छ प्रिय, प्रगट प्रेमविस्तार ॥१५॥
(स्वप्न खंड)

विरह की दस अवस्थाएँ इस प्रकार हैं—

प्रथम उपजि अभिलाष बहुरि चिंता सुमिरन गनि।
गुनत गुनिय गुनकथन दुसह उद्वेग जासु भनि॥
तापर प्रगटि प्रलाप और उन्माद बखानहिं।
विषम व्याधि वपु बढ़ै जागत जड़ता जिय जानहिं॥
कवि कहत निधन दसमी दसा, जबहिं होत मन आनि बस।
पुहुकर प्रकास मनमथ के, सु विप्रलंभ सिंगार रस॥

इसके बाद क्रम से सभी अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। यही स्वप्न खंड के अंतर्गत 'नव अवस्थ वर्ननो नाम' आठवाँ अध्याय है।

नायिका भेद का वर्णन पूर्णतया रसमंजरी के अनुसरण पर किया गया है। वैरागरखंड में सूरसेन और उनकी दोनो पत्नियों के स्वागत के अवसर पर जो नागरिकाओं की भीड़ आई, उसमें पुहकर को ११५२ प्रकार की नायिकाएँ दिखलाई पड़ गई।

आई नगर नारि सब नागरि। रूप सरूप गरुव गुन आगरि।
चित्रिन हस्थिन संखिनि धाई। पद्मिनि अंगविलोकनि आई॥१६६॥
मुग्ध मध्य प्रौढ़ा वर नारी। रूप रासि जोबन उजियारी।
अष्ट नारि रसभेद बखानी। तें आई देखन रतिरानी॥१६७॥
पतिस्वाधीन कहीं त्रिय सोई। पति जिहि प्रेम सदाबस होई।
सुख संयोग परस्पर प्रीती। मदन मनोहर आनंद रीती॥१६८॥

पुहुकर ने स्वीया, परकीया, सामान्या के लक्षण बताए हैं। स्वीया त्रिविध—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। मुग्धा द्विविध—अज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना। मानी त्रिविध—धीरा, अधीरा, धीराधीरा। मान के लघु, मध्यम, गुरु तीन भेद हैं। वे सोलह प्रकार की नायिकाओं में प्रत्येक अष्टविध—प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका और अभिसारिका। ये उत्तमा, मध्यमा और अधमा भेद से कुल ३८४ प्रकार की हो जाती हैं। पुनः दिव्या, अदिव्या और दिव्यादिव्या भेद से कुल ११५२ प्रकार की नायिकाएँ बताई जाती हैं।

अंत में कवि कहता है—

बहु विध अंतर भाय वहि, मो मुख बरनि न जाय।
अष्ट नारि बरनन कियौ, सूत्तम सुगम सुभाय ॥१८४॥

पुहुकर ने सोलह शृंगार का वर्णन इस प्रकार किया है—

प्रथम सुमज्जन चारु चीर कंचुकि हिय सोहै।
अंजनु तिलकन भाल, करन कुंडल मन मोहै ॥
बनि बेसरि बेनी रसाल मनि कंठ बिराजै।
छुद्रघंटिका बनी हार मोतिन के छाजै ॥
नुपूर नवीन पुहुकर सुकवि मुख तमोल चातुरिय भनि।
कवि कहत ग्रंथमति जानि कै सु ये षोडस सिंगार गनि ॥

(अप्सरा खंड ७६)

१२वीं शताब्दी के वल्लभदेव की सुभाषितावली में (कीथ के मतानुसार) षोडश शृंगार की चर्चा की गई है—

आदौ मज्जन चीर हार तिलकं नेत्राञ्जनं कुंडले।
नासामौक्तिक केशपाशरचनासत्कंचुकं नुपुरौ ॥
सौगंध्यं करकङ्कणं चरणयोः रागोरणन्मेखला।
ताम्बूलं करदर्पणं चतुरता शृंगारकाः षोडशाः ॥

सोलह शृंगार के साथ ही साथ पुहुकर ने द्वादश आभरण की भी चर्चा की है—

सीसफूल ताटंक कंठभूषन मनिमंडित।
पहुपहार उर मुक्तमाल अप्छरि छबि खंडित ॥
कर कंगन अंगमृद केस कय्यूर बाहु बनि।
छुद्रघंटि कटि डोर चरन नुपुर अप्पय धुनि॥
सिंगार सरस सोरह सहज सुख सुहाग पिय मनहरन।
नवरंग संग पुहुकर सुकवि सोभित द्वादस आभरन ॥

(अप्सरा खंड ७७)

पुहकर कवि ने नायिकाभेद विषयक एक अलग ग्रंथ भी लिखा था, यह बात अबतक सुनी न गई; किन्तु जहाँगीरकालीन कुछ चित्रों के नीचे उनका परिचय देनेवाले कवित्त मिले हैं। जिनके रचयिता कवि

पुहकर ही हैं और इन कवित्तों को देखने से पता चलता है कवि पुहकर ने 'रसवेलि' नामक एक नायिका भेद विषयक ग्रंथ भी लिखा था। जिसके कुछ थोड़े से छन्द उदाहरण के रूप में इन चित्रों के साथ बच रहे हैं, पर इतना भी कवि पुहकर के आचार्यत्व का प्रमाण देने के लिए अपर्याप्त नहीं है।

कवि के प्रेरक पूर्वज कवि

कवि पुहकर एक सुरुचिसंपन्न कवि थे। उन्होंने प्राचीन शास्त्र और साहित्य पर पुष्कल अध्यवसाय किया था। फलतः उनके काव्य में अध्ययन परिष्कृत वैदुष्य और काव्योरोजित सौंदर्यबोध दोनों ही दिखाई पड़ते हैं। कवि पुहुकर के कुछ प्रिय कवि हैं। इनकी सूची देखने से भली भाँति पता चल जाता है कि कवि का आदर्श और उद्देश्य क्या था। रसरतन के आरंभ में कवि ने अपने पूर्वज कवियों की वंदना करते हुए लिखा है—

प्रथम शेष अरु व्यासदेव सुखदेवहँ पाय।
बालमोकि श्रीहर्ष कालिदासहँ गुन गायौ।
माघ माघ दिन जेमि बांन जयदेव सुदंडिय।
भानुदत्त उदयेन चंदबरदाइक चंडिय।
ये काव्व सरस विद्यानिपुन वाक बानि कँठह धरन।
कबिराज सकल गुनगनतिलक सुकवि पौहकर बंदत चरन ॥१२॥

शेष, व्यास, शुकदेव और वाल्मीकि ऋषि हैं, कवि उनकी वंदना करता है। श्रीहर्ष, कालिदास के गुन गाता है। माघ माघ दिन की तरह हैं 'जिमि गरीब के देह पर माघ पूस को घाम'। इसके बाद आते हैं कादंबरीकार बाण, गीतिगोबिंद के रचयिता जयदेव[1], दशकुमारचरित के दंडी, रसमंजरीकार भानुदत्त, दार्शनिक उदयनाचार्य[2] और चंडीवाले चंदबरदाई, ये सभी सरस

१—गीतगोविन्दकार जयदेव के अलावा एक दूसरे जयदेव कवि थे। वे भी शृंगारिक कविता लिखते थे।

२—उदयन मूलतया दार्शनिक थे पर इन्होंने न्यायकुसुमांजलि में कविताएँ भी लिखी हैं। फिर पथविपथ कहीं भी चलते हुए अपने रास्ते को ही पथ माननेवाले कवि की गर्वोक्ति क्या भूलने की वस्तु है—

वयमिह पदविद्यां तर्कमान्वीक्षिकीं वा सुपथि च विपथे वा वर्तयामः स पन्थाः।
उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा नहि तरणिरुदीते दिक्पराधीनवृत्तिः॥
—न्यायकुसुमांजलि।

काव्यविद्या के निपुण हैं, इन्होंने वाणी को कंठ में धारण किया। ये सभी कविराज गुणगण तिलक हैं, सुकवि पुहकर इनके चरणों की वंदना करता है।

पुहकर श्रीहर्ष की तरह गूढ़ अर्थव्यंजना के पक्षपाती हैं। कालिदास से उन्होंने सौंदर्यचित्रण सीखा है, माघ से अर्थगौरव, बाण से कथासंयोजन, जयदेव से शृंगार और रति का चित्रण, दंडी से आलंकारिकता, भानुदत्त से नायिकाभेद, उदयन से सृष्टि की उत्पत्ति के सिद्धांत और ईश्वरप्राप्ति के साधनों का निरूपण और महाकबि चंदबरदाई से पिंगल की अनोखी अभिव्यक्ति—छप्पय, पद्धरी और त्रोटक की अद्‌भुत भंगिमा। इस कथन की सत्यता को वही समझ सकता है जो इस काव्य का आद्योपांत पारायण करे।

इन कवियों की सूची में दो नाम बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। एक भानुदत्त का और दूसरा चंदबरदाई का। भानुदत्त रीतिकालीन हिंदी आचार्यों के प्रमुख प्रेरणास्रोत रहे हैं। भानुदत्त का संभवतः यह पहला स्पष्ट उल्लेख है जो उस काल में व्याप्त उनके महत्व की पूरी अभ्यर्थना करता है। कहा जाता है कि नंददास ने 'रसमंजरी' का उल्लेख किया है किंतु यह रसमंजरी भानुदत्त की है, इसे प्रमाणित करने का कोई आधार नहीं है। नंददास ने लिखा है—

रसमंजरि अनुसारि कै, नंद सुमति अनुसार।
बर्नन बनिताभेद कहँ, प्रेमसार बिस्तार॥

इस 'रसमंजरी' को नंददास ग्रंथावली के संपादक पं० उमाशंकर शुक्ल भानुदत्त की रसमंजरी ही मानते हैं और उन्होंने दोनों के उदाहरणों में साम्य दिखाने का बहुत प्रयत्न किया है।[1] जो भी हो भानुदत्त के स्पष्ट उल्लेख का श्रेय पुहकर को ही देना पड़ेगा।

चंदबरदाई का नाम आना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। रासो जैसे महान् ग्रंथ के रचनाकार का यह कम दुर्भाग्य नहीं रहा है कि उसके अस्तित्व को नकारनेवाले अनेक निबंध समय समय पर अनवरत निकलते रहे। मोतीलाल मेनारिया ने रासो को १७०० के बाद का जाली ग्रंथ बताने का न जाने कितना प्रयास किया। ऐसी स्थिति में विक्रमी संवत् १६७३ के एक कवि द्वारा चंदबरदाई का उल्लेख मामूली बात नहीं है। उल्लेख ही नहीं उसे महान् कवियों की चमचमाती हुई पंक्ति में रखकर वंदनीय मानना उसके अक्षुण्ण यश का

१—नंददास ग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० ३६।

अकाव्य प्रमाण है। उसे 'चंदबरदाइक चंडिय' कहना तो मानो चंडी के वरदान की निजंधरी कथा की भी पुष्टि है। चंडी के इस वरदपुत्र की पुहकर ने सिर्फ वंदना ही नहीं की, उसकी शैली का पुरस्सर अनुसरण भी किया। छप्पयों के नमूने ऊपर दिए जा चुके हैं। तद्भव शब्दों पर अनुस्वार लगाकर उन्हें संस्कृत का जामा पहनाने के लिये चंदबरदाई बदनाम हैं। 'कुरानं च पुरानं' लिखनेवाले चंदबरदाई की शैली में पुहकर द्वारा लिखी हुई यह सूर्य-वंदना देखिए—

नमो देव देवं दिवानाथ सूरं।
महातेजसोभं तिहूँ लोक रूपं।
उदै जासु दीसं प्रदोसं प्रकासं।
हियौ कोक सोकं तमं जासु नासं॥
(स्वप्न खंड २३४)

अथवा शिवस्तुति की ये पंक्तियाँ—

कपाल माल व्यालग्रीव चंद्रभाल सोहनं।
त्रिलोकनाथ कालनाथ विश्वनाथ मोहनं।
अनंग भंग राग रंग संग जासु सुंदरी।
मसानभूमि सैनि साज गूढ़ कंदरा दरी॥
(चंपावती खंड १६०)

इतना ही नहीं शब्दों को तोड़ने मरोड़ने में भी पुहकर के रूप में चंद का एक प्रतिद्वंद्वी सामने आ गया है। द्वितीयावस्था के लिये दुतियविवस्त (स्वप्न० १६४), दाड़िम > दारौं (आदि० २०३), विहंगवर के लिये विगावर (युद्ध० १३६), उद्वेलित के लिये उडलित (युद्ध० ३५४), वर्ष एक के लिये बरसक (वैरा० २८), तिमिंगल के लिये तिमगन (स्वयं० १२४), इरावती के लिये यौरावत आदि। शब्दों के अंगभंग और खींचतान का नमूना युद्धखंड के इस पद्य में देखिए—

जबै राग बंधी बजौं राग मारू।
कियौ अच्छरी अच्छ मंगल्ल चारू।
दुहूँ ओर निस्सान सो बज्जै जुझाऊ।
उठै जीय जोधान जूझंत चाऊ॥२४३॥

परै एक घाइल्ल घूमंत धाई।
तिनै देखि सूरान के चित्त चाई॥
फटौ खोपरी गुंद फेलंत पिंडी।
मनौ माथ मारग्ग फूटी दहिंडी ॥२५१॥॥

चंद से पुहकर की शैली का साम्य दिखाने के लिये इन प्रसंगों को उद्धृत किया गया। इनके आधार पर सोचना कि पुहकर की भाषा भी चंद की तरह ही ऊबड़खाबड़ है, कवि के साथ घोर अन्याय होगा। क्योंकि पुहुकर ने एक ओर यदि पिंगल की चारणशैली को अपनाया है तो दूसरी ओर ब्रजभाषा की मँजी हुई सवैये कवित्त की मनोरम शैली को भी। वस्तुतः पुहुकर समय और अवसर के अनुसार भाषा के प्रयोग में पूरे माहिर थे। उन्होंने भाषा को भाव की अनुगामिनी बनाया है अनुशासिनी नहीं।

लेखक की रचनाएँ

पुहकर की मुख्यरचना **रसरतन** ही है। वैसे एकाध खोज रिपोर्ट में उनकी एक रचना नखशिख भी बताई गई है; किंतु नखशिख कोई अलग रचना नहीं है, वह रसरतन के स्वयंबर खंड का 'नखसिख वर्नन नामक' तीसरा अध्याय ही है।

इधर कवि पुहकर के एक नये ग्रंथ का पता चला है। यह ग्रंथ है नायिका-भेद पर आधारित **'रसवेलि'**। रसवेलि कितना बड़ा ग्रंथ था, यह जानने का कोई आधार नहीं है। मगर यह एक पूर्ण ग्रंथ अवश्य था, जिसमें कवि ने भिन्न भिन्न नायिकाओं के लक्षण और उदाहरण दिये हैं। कवि पुहकर रसमंजरीकार भानुदत्त से बहुत प्रभावित थे और यह असंभव नहीं है कि उन्होंने 'रसवेलि' ग्रंथ रसमंजरी के ही ढंग पर उसी की प्रेरणा से लिखा हो। ऐसी हालत में यह अनुमान करना निराधार न होगा कि इस ग्रंथ में भी नायिका-निरूपण, सखी मंडन, उपालंभ, शिक्षा, परिहास, दूती, नायक, शृंगार, संयोग, विप्रलंभ, तथा स्मरदशा निरूपण रहा होगा। क्योंकि रसरतन में भी कवि ने आवश्यक स्थलों पर इन विषयों पर न सिर्फ ध्यान रक्खा है बल्कि इनके शास्त्रीय पक्ष पर अपने मत भी प्रकट किये हैं।

'रसवेलि' नामक ग्रंथ की सूचना यहाँ हिंदी में पहली बार प्रकाशित की जा रही है। यह ग्रंथ काल प्रवाह में लुप्त ही हो चुका था कि सहसा जहाँगीर-

कालीन कुछ चित्रों के नीचे कवि पुहकर के कुछ छंद मिल गए। ये चित्र नायिका-भेद को दर्शाने के लिये ही बनाए गए थे। मेरे मित्र डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने कृपापूर्वक इन चित्रों के नीचे के छंदों की फोटो-कापी मेरे लिए उपलब्ध कर दी। डा० गुप्त को ये चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली के चित्र-कक्ष में दिखाई पड़े। उन्होंने इस फोटो-कापी के साथ यह भी लिखा है कि प्राचीन चित्रों के साथ संलग्न सामग्री बहुत बड़ी है किंतु खेद की बात है कि हिंदी के विद्वानों और शोधकों का ध्यान इधर नहीं गया है। पता नहीं इन चित्रों के साथ संलग्न सामग्री का ठीक से निरीक्षण किया जाय, तो कितनी अलभ्य कृतियाँ पूर्ण या अपूर्ण रूप में सामने आ सकती हैं।

पुहकर कवि की इस रसवेलि को चित्रकार सुखदेव ने चित्रित किया था या इन चित्रों के नीचे पुहकर के कवित्त लिखकर दस्तखत किया था जैसा कि ३७ वें चित्र के नीचे लिखे छपद के साथ दी हुई पुष्पिका से प्रतीत होता है। छपद और संलग्न पुष्पिका इस प्रकार है।

राजति अलक सुकंठ मनहु सारद पर बारद।
सुहृद भुंमि सुभ देस सलिल सज्जन श्रुति आरद॥
प्रगट पत्र बहु नेद मदन अंकुरि करि सोहै।
ललित लता लहलहै सुनत रसिकन मन मोहै॥
रसवेलि बरनि पुहकर सुकवि गिराफूल आनद लसत।
अलि गन सुमत्त वर जग सुहरष ये प्रसिद्ध जुग जुग हँसत॥
इति रसवेलि पूर्णः। लिष्पितं चित्रु दसकत सुखदेव चित्री।
गुरुप्रताप श्री राम कृपा सहाय रहै सदा।

प्रश्न हो सकता है कि यह रसवेलि पुहकर कवि की ही क्यों मानी जाये। प्रथम तो हिंदी में कोई और, पुहकर नाम का कवि हुआ है या था, यह प्रश्न नहीं उठता। पुहकर नाम के किसी दूसरे कवि के बारे में हिंदी संसार को कोई सूचना नहीं है। दूसरे प्रत्येक पद के साथ पुहकर की भणिता दी हुई है। रसरतन पढ़नेवाला व्यक्ति भली भाँति जान जायेगा कि यह भाषा, ये शब्द, यह विश्वास पुहकर कवि का ही है। फिर रसवेलि का एक पद ऐसा भी है जो रसरतन के एक पद से पूर्णतः साम्य रखता है, किंचित् हेर फेर के साथ। वह हेर फेर इसलिए कि नायिका भेद के वर्णनों के आलंबन राधा कृष्ण रूढ़ हो चुके हैं इसीलिए रसरतन के उस पद में राधा कृष्ण का प्रसंग जोड़ दिया गया है।

रसरतन का पद इस प्रकार है—

आवति आये घर जाति उन संग लागि
नैनन की निद्रा किधौं नाह अनुगामिनी।
कर की कमान काम कान लगि तान बान
मारत निसान प्रान कैसे रहै कामिनी॥
कहै कवि पुहकर प्रीतम पियारे पिउ
बिछुरै तैं दुसह दुहेली भई जामिनी।
सूनी भई पिया बिनु सूनी हौं बिरह बाल
ऊनी भई सेज तब दूनी भई जामिनी॥

(युद्ध खंड ५१)

अब जरा इसी के साथ रसबेलि का २४ वाँ पद सामने रख कर देखिए—

आवति है आये घर जात पुनि संग लागि
नैननि की नींद कैधों नाह अनुगामिनी।
कर की कमान काम कान लागी तान बान
मारत निसान प्रान कैसे सहै कामिनी॥
कहै कवि पुहकर मुरली धरन कान्ह
बिछुरैं तैं दुसह दुहेली भई दामिनी।
उठी भारी पिया बिनु सुनि हे बिरह बैरी
सूनी भई सेज तब दूनी भई जामिनी॥

अब भी किसी को इन पदों के कवि के बारे में शंका हो तो उन्हें दूसरा पद देखना चाहिए। इस पद में कवि एक पंक्ति में कहता है—

पुहकर त्रिभुवन नाथ कवि चित्र प्रिय
ऐसे मिलि जाहु जैसे मिलै जलु रंग मैं।

कौन है यह त्रिभुवननाथ जो काव्य और चित्र दोनों का प्रेमी है। जहाँगीर को चित्रों में किसी चित्र को सराहती मुद्रा में अंकित देखनेवाले तुरंत कहेंगे कि यह त्रिभुवननाथ विशेषण जहाँगीर का विशेषण ही नहीं नामार्थ भी है।

तो यह है कवि पुहकर की दूसरी कृति रसबेलि, जो काल के जबड़ों से, अपूर्ण रूप में ही सही, इसलिये बचकर बाहर आ सकी कि जहाँगीर कालीन

किसी सुखदेव नामक चित्रकार ने अपने या किसी और के बनाए हुए चित्रों के नीचे इसके कवित्तों को उदाहरण के रूप में अंकित कर दिया था। हो सकता है कि यह कार्य चित्रप्रिय बादशाह की आज्ञा से किया गया हो। नीचे पदों की संख्या और कोष्ठकों में चित्रों के कैटलग-नंबर दिये जा रहे हैं।

अंतिम चित्र से पता चलता है कि कुल ३७ चित्र रहे होंगे। किंतु अभाग्यवश इनमें से कुल चौबीस ही उपलब्ध हैं।

२ [५१.६३।१] ३ [५१.६३।२] ४ [५१.६३।३] ५ [५१.६३।४]; ६ [५१.६३।५] ८ [५१.६३।६] ९ [५१.६३।७] १० [५१.६३।८] ११ [५१.६३।९] १२ [५१.६३।१३] १४ [५१.६३।१२] १६ [५१.६३।११] २१ [५१.६३।१४] २२ [५१.६३।१५] २३ [५१.६३।१६] २४ [५१.६३।१७] २५ [५१.६३।१८] २६ [५१.६३।१९] २७ [५१.६३।२०] २८ [५१.६३।२१] २९ [५१.६३।२२] ३१ [५१.६३।२३] ३२ [५१.६३।२४] ३७ [५१.६३।२५] यानी मूलतः ३७ चित्रों में ३७ छंद थे लेकिन १३ चित्रों के प्राप्त न होने से सं० १, ७, १३, १५, १७, १८, १९, २०, ३०, ३३, ३४, ३५, ३६ के पद प्राप्त नहीं हुए।

इस ग्रंथ के साहित्यिक और शास्त्रीय पक्ष पर 'पुहकर का नायिकाभेद वर्णन' प्रसंग में विचार किया जायेगा।

———

रसरतन की विभिन्न पांडुलिपियाँ और यह पाठ

(१) रसरतन की पांडुलिपियों की सूचनायें यदाकदा हिंदी हस्तलेखों की खोज रिपोर्टों में प्रकाशित होती रही हैं। सबसे पहली सूचना १९०९ ई० की रिपोर्ट में छपी थी। वैसे एक सूचना १९०३ की रिपोर्ट में थी, किंतु सूचना संख्या १६१ में जहाँ इसकी प्रतिलिपि के बारे में विवरण प्राप्य था, लिखा है कि 'दीमकों से विनष्ट'। इसलिये १९०९ की सूचना ही सबसे प्राचीन कही जायगी। १९०९ की पांडुलिपि सूचना संख्या ४८ के अनुसार देशी कागज पर २३२ पन्नों की थी जो ८½ × ६½ के आकार के प्रत्येक पर १७ पंक्तियाँ थीं। श्लोक संख्या ४४३७ बताई गई है। पांडुलिपि छतरपुर के दीवान शत्रुजीत सिंह के पास सुरक्षित बताई गई है। जिसका लिपिकाल १८९२ संवत् दिया हुआ है।

अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है:—

'संपूर्ण समाप्त संवत् १८९२ अष्वन मासे कृष्ण पक्षे तिथौ चतुर्थीयाम भौमवासरे लिष्यते कायस्थ छोटेलाल, मिरजापुरे, गंगा निकटे, विंध्य क्षेत्रे। अस्थि तटं मलंगज मंगल ददातु।'

(२) सर्च रिपोर्ट १९०६–८ में पुनः सूचना छपी। जिसमें पांडुलिपि के बारे में सूचना संख्या २०८ में बताया गया कि यह २६९ पन्नों की ८½ × ६½ आकार की १५ पंक्ति पृष्ठवाली ३००० श्लोकों की प्रति है जो श्री हनुमत मिरदहा चरखारी के पास सुरक्षित है। इस सूचना में रचना काल १६१८ ई० यानी १६७५ संवत् बताया गया है।

(३) तीसरी सूचना १९१७–१९ की रिपोर्ट में छपी। इसमें भी (संख्या १४०) कवि का रचना काल १६१८ ई० बताया गया। संपादक ने लिखा कि 'यह एक विचित्र बात है कि यह पांडुलिपि जो बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, बी० ए०, एल-एल० बी, प्रयाग के निजी पुस्तकालय में मिली वह एकदम वैसी ही है जो बाबू जगन्नाथ प्रसाद छतरपुर के पास से मिली जिसके बारे में १९०९ की रिपोर्ट में संख्या ४८ में विचार किया गया है। श्री पुरुषोत्तमदास टंडन से प्राप्त प्रतिलिपि का लिपिकार कोई छेदीलाल कायस्थ

हैं जिन्होंने आश्विन् कृष्ण ४, १८६२ संवत् को मीरजापुर, गंगातट, पर इसे पूरा किया। स्पष्ट है कि बाबू जगन्नाथप्रसाद ने टंडन जी को यह पांडुलिपि भेंट की थी।

इस पांडुलिपि का रूपाकार इस प्रकार बताया गया है। देशी कागज, २३२ पन्ने, आकार ९″ × ६″, १७ पंक्ति-पृष्ठ, २७६० श्लोक। लिपिकाल १८६२ संवत्।

(४) चौथी सूचना १९२०—२२ की रिपोर्ट में छपी। सूचना संख्या १२८ के अनुसार प्रति में कुल ६८ पृष्ठ हैं, आकार ८३⁄४″ × ६३⁄४″ प्रत्येक पृष्ठ में १३ पंक्तियाँ ११२१ श्लोक, अपूर्ण। सुरक्षित नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

(५) पाँचवीं सूचना पंजाब प्रांत में हिंदी हस्तलेखों के खोज विवरण के १९२२—२४ की रिपोर्ट में छपी। इसमें ग्रंथ के रूपाकार के विषय में कोई सूचना नहीं दी हुई है। संपादक ने कवि परिचय, वंश विवरण, आदि पर अवश्य विचार किया है।

इस प्रकार रसरतन के संबंध में उसकी पांडुलिपियों के विषय में जो सूचनाएँ प्राप्त हैं, उनसे मालूम होता है कि पाँच पांडुलिपियों की जानकारी मिल चुकी है।

मैंने जिन पांडुलिपियों को इस पाठ के आधार रूप में स्वीकार किया है उनका विवरण इस प्रकार हैं।

'अ' प्रति

यह प्रति पूर्णतः खंडित है, अर्थात् इसमें आरंभ और अंत के कई पृष्ठ तो त्रुटित हैं ही, बीच के कुछ पृष्ठ भी त्रुटित हैं। आरंभ में आदि खंड के ३४ छंद तक के पत्र त्रुटित हैं। प्रति यहाँ से लगातार ठीक चलती है आदि खंड में ही १५९ संख्या पद के बाद पुनः त्रुटित है। अ प्रति चित्रखंड की छंद संख्या २२६ से पुनः चालू होती है। और अंतिम रूप से यह प्रति चंपावती खंड की छंद संख्या ३० तक चलकर पूर्णतः चिरखंडित हो जाती है।

जाहिर है कि इस प्रति का विवरण किसी भी सर्च-रिपोर्ट में नहीं दिया गया है। यद्यपि यह प्रति त्रुटित है किंतु रसरतन ग्रंथ की अद्यावधि प्राप्त प्रतियों में यह सर्वाधिक प्रमाणिक और पुरानी मालूम होती है। पुरानी कहने का कोई खास आधार तो नहीं है क्योंकि प्रति में लेखन काल की सूचना प्राप्त नहीं होती किंतु कोई भी हस्तलेखों से परिचय रखनेवाला व्यक्ति इसे प्राचीन प्रति

कहने के लिए बाध्य होगा। लिपि पद्धति, लिखावट, कागज, सभी इसके प्रमाण हैं। इसके एक पृष्ठ का ब्लाक पुस्तक के साथ संयुक्त है, जो इन बातों का प्रमाण देगा।

'ब' प्रति

यही प्रति इस पाठ का मूल आधार है। यह प्रति देशी कागज के २४१ पत्रों की ८½×″ ६½″ आकार की है। बीच में एक स्थान पर आदिखंड में छंद संख्या १२२ से १२४ तक की पंक्तियों में वर्णित जन्मकुंडली को समझाने के लिए एक कुंडलीचक्र और कुछ नये छंद अलग पत्र पर लिख कर जोड़े गए हैं। इस पत्र को छोड़कर बाकी पांडुलिपि एक ही लिखावट की है जिसके अंत में लिपिकार और लेखनादि के बारे में यह पुष्पिका दी हुई है।

'इति शुभम्। सम्वत् १६६१ अगहनमासे कृष्णपक्षे
तिथि चतुर्थी ॥ ४ ॥'

रविवासरे श्रीमान महाराज कोमार श्री दिवान सत्तरजीत जू देव की आज्ञानुसार—

हस्ताक्षर
कुँवर कन्हैया जू
उपनाम (बलभद्र) कवि।

स्पष्ट ही यह प्रति भी उसी परंपरा की है जिसमें सर्च रिपोर्ट १६०५ तथा १६१७-१६ की प्रतियाँ आती हैं। बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन और बाबू जगन्नाथ प्रसाद की प्रतियों को लेकर १६१७-१६ की रिपोर्ट में संपादक ने बड़ा आश्चर्य प्रकट किया था। १६०५ वाली रिपोर्ट में प्राप्त पांडुलिपि को संपादक ने बाबू जगन्नाथ प्रसाद की प्रति कहा है किंतु रिपोर्ट सूचना संख्या ४८ में इसे शत्रुजीत सिंह के पास सुरक्षित बताया गया है। इस प्रति के मूल लिपिकार कायस्थ छोटेलाल हैं। इसे ही संपादक ने भ्रम से छेदीलाल लिखा है। छोटेलाल नाम १६०५ के हस्तलेख विवरण संख्या ४८ में पुष्पिका में दिया हुआ है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि १६०५ वाली और १६१७-१६ वाली रिपोर्ट्स में वर्णित हस्तलेख एक ही हैं। एक नहीं हैं तो एक दूसरे की नकल हैं। लगता है दीवान शत्रुजीत सिंह के वहाँ से इस ग्रंथ की कई नकलें हुई थीं। क्योंकि हमारी ब प्रति भी शत्रुजीत सिंह की आज्ञा से ही तैयार

धीरजु परई ॥ रहि वियि नैनय पेम अलापे ॥ मनहुम
नम जटहीं रलगाये ॥ ११० ॥ दोहा ॥ वहु विनोद व
हु मोद मनन बहु यन प्रान अधार ॥ वैहै नैन अंगु
किपै बेहै पियै आहार ॥ १११ ॥ चौपही ॥ दोषि जु पमु
दिता बालि नारी ॥ थकित मनहु ठगमुरी षाई ॥ फि
रि (चिदि) जव सुरति सम्हा अंगा ॥ लागे जुगल नैन उ
हि संगा ॥ मुदिता कहहि सुनहु सुकुमारी ॥ विषम
नेह निबाहन हारी ॥ प्रीत मयी तिसु नेह मानन ॥ र
रसना ऐक न जाइ वषाना ॥ ११३ ॥ बुधि यवि किक
हीह म सेती ॥ होमु षवरि निन जानतु येती ॥ वैराग तु
षेमु अधपाति आही ॥ कहत राज सौ भरता ही ॥ सर
सै निति हि पु जुसु मारा ॥ मानहु विष अनु उ पत्र
वतारा ॥ रूप रेब मनन मधु विसे ष्यो ॥ सो नुमस्वप्न
चित्र द्रुग देष्यो ॥ ११५ ॥ उहि पुनि स्वप्न जयो तिहि
मैला ॥ जव तु अइ विरह वे हाल ॥ उहि दिन वेहै रे
निति जियारी ॥ निरषि नैन रैन जाउन्ह वारी ॥ उन्न
पवरम अव आइ अतीते ॥ राज कुमर अहदुव मे
वीते ॥ जव हि विचित गयो उहि गाव ॥ श्रवन सुन्यो
रंभावति नाव ॥ चउनु वाचे जु चित्रो दिष रापो ॥
तव हि प्रान घट भीतर आपो ॥ जीवन सुमल मानि

अ प्रति पर्ण सं० ६२ (विजयपाल खंड, छं० सं० १२-२१)

51·63/1 २

॥मुग्धा॥कवित्तु॥नवल नवोढ़ा नवलाज हिलपेटिनी नीका मकरंद तिनाहि रमैजा॥
॥कैअंग मै॥ताहि तजि अनुराई चातुरी सो वसकै रैधीरैधीरैधीरै दैकै है धरै चित्त संग॥
॥मे॥वाही की प्रतीति बढै वा की रुचि वातकहै मतु करलियै रहै आवैजो अनंग मे॥
॥पुहकर त्रभुवन नाथ कवि चित्र पिय ऐसे मिलिया कु जैसे मिलै जलु रंग मे॥२॥

51·63/25 २७

॥मध्यमा॥कवित्तु छप्पै॥राजति अलक सुकंठ मनकुंसा स्वबर बारद॥सु॥
॥हद कुंभि सुनदेस सलिल मज्जन श्रुति आरद॥प्रगट पत्र वकुनेद मदनु॥
॥अंकुरि करि सोहै॥लालित लता न्हहलहै सुनत रसिकानि मनु मोहै॥रा॥
॥सवेलि वरनि पुहकार सुकवि गिरा फूल आनंद लसतं॥अलि गप सुम॥
॥त्वरजग सुहरसु ये प्रासधिनु गजु गहसत॥२७॥रसवेलि संपूर्नं:॥
॥लिखितं विनुद समकत सुषदेव चि श्री गुरप्रताप श्रीराम कृष्ण सहाइ रहै सदा॥
॥२७॥

रसवेलि, चित्र नं० २ और २७ के नीचे के कवित्त; इनके कैटलग नंबर अंग्रेजी में साथ ही अंकित हैं।

श्री गणेशाय नमः श्री परम गुरुभ्यो न
मः अथ रासरननकाम्य पोहकर कृत
लिष्यते ॥ छप्पय ॥ अगुन रूप निर्गुन
निरूपन्न लु गुन विस्तारन ॥ अविना
सी अविगति अनादि अथ अघ टारन
बारन ॥ घट घट प्रगट प्रसिध्धि गुप्त नि
रलेष निरंजन ॥ तुम अरूप तुम त्रिगुन
तुमहि त्रैपुर अनुरंजन ॥ तुमहि आदि
तुम अंत हौं तुमहि मध्य माया करन ॥
पहचारि नाथ कहलगि कहौं सोना
रायन असरन सरन ॥ १ ॥ चौपाई रून श्रं
गार मात कहना मुनि पंडित ॥ आपु हास र
स जुक्त मान मध्य न्याव ल पंडित ॥ बाल वै
स अद्भुत चरित्र ब्रजवासिनि जान्यौ
लिष वीर बलि भद्र रुद्र सुरपति भय मा
न्यौ ॥ अति प्रताप बीभत्स हूव गोव गो
प संत: करन ॥ पोहकर प्रताप तिहु पुर

ब प्रति का आदिपर्ण (आदि खंड, छं० सं० १-२)

[redacted]॥२४१॥

काव्ये इक्तिन लोगंगीरा॥६६॥ इतिश्रीरस
रतनकाव्ये कबिपदुम्कर विरंचित वैरागरख
डे ज्ञान वैराग्य सत्ता राज्य तन्व वर्णोनोन म
षोडसमोध्याय:॥१६॥ इतिशुभम॥ संव
त,१९६१ फागुन मासे कृष्णपक्षे तिथि
चतुर्थी।४॥ रविवासरे -

श्रीमन महाराज कौमार श्री दिवान सवार
जीतसिंह देवकी आज्ञानुसार -

हस्ताक्षर-

कुवर कन्हैयाजू

उपनाम (बलभद्र) कवि

ब प्रति का अंतिम पर्ण, (वैरागर खंड, छं० सं० ३५५ और पुष्पिका)

कराई गई थी, जो रूप आकार में पहले दोनों हस्तलेखों के समान होते हुए भी पन्नों की संख्या में भिन्न है। यही नहीं इसमें लिपिकार भी भिन्न है। यह प्रति भी कायस्थ छोटेलाल द्वारा प्रस्तुत प्रति की नकल ही मालूम होती है। परंतु इसे किसने लिखा, यह स्पष्ट नहीं होता। हस्ताक्षर करनेवाले कुँवर कन्हैया जी, उपनाम बलभद्र कवि लिपिकार भी हो सकते हैं, या उन्होंने दीवान साहब की आज्ञा से किसी से लिपि करा कर उसे मूल से मिला कर सही करते हुए अपने हस्ताक्षर कर दिए हैं। लेकिन ये हस्ताक्षर यदि कुँवर कन्हैया के हाथ के हैं तो लगता है कि लिपिकार भी वही हैं, क्योंकि हस्ताक्षर की लिखावट और हस्तलेख की लिखावट बहुत साम्य रखती है। १६०९ की सूचना में ग्रंथ में ४४३७ श्लोक बताए गए हैं। यह गणना पूर्णतः काल्पनिक लगती है। १७-१९ की रिपोर्ट में छंद संख्या २७६० बताई गई है। हमारी ब प्रति की छंद संख्या कुल २७६८ है। ८ छंद अधिक इसलिये हैं कि मैंने एक अर्धाली की अधूरी चौपाई को भी, जिस पर प्रति में छंद संख्या नहीं दी है, पूरा छंद मान लिया है।

मैंने ऊपर कहा है कि ब प्रति भी कायस्थ छोटेलाल द्वारा लिखी प्रति की नकल मालूम होती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं है किंतु भाग्यवश कायस्थ छोटेलाल की लिखी प्रति की रिपोर्टर ने बड़ी विशद सूचना प्रस्तुत की है। मैं यहाँ वह पूर्ण सूचना ज्यों की त्यों इसलिये दे देना चाहता हूँ ताकि इससे ब प्रति के आधार पर प्रस्तुत इस पाठ का विषयानुक्रम पूरी तरह मिलाया जा सके। आदि अंत के अंश भी रिपोर्ट में दिए हैं। उसे भी यहाँ दे दिया गया है। अंतिम अंश में दोनों प्रतियों में छंद संख्या की समानता भी द्रष्टव्य है।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ श्री परम गुरुभे—नमः ॥ अथ रसरतन काव्य पौहकर कृत लिष्यते ॥ छप्पय ॥ सगुन रूप निर्गुन निरूप वौह गुन विस्थारन ॥ अविनासी अवगति अनादि अघ अटक निवारन ॥ घट घट प्रगट प्रसिध्धि गुप्त निरलेष निरंजन ॥ तुम त्रिरूप तुम त्रिगुन तुमहिं त्रैपुर अनुरंजन ॥ तुमहिं आदि तुम अंत हो तुमहिं मध्य माया करन ॥ यह चरित नाथ कहँ लगि कहौं नाराइनि असरन सरन ॥ १ ॥ घोष तरुनि भृंगार मात कहना मुनि पंडित ॥ आपु हास रस जुक्त भान मघवा बल षंडित ॥ बाल बैस अद्भुत चरित्र वृज बासिन जान्यौ ॥ मेव बीर बलिभद्र रुद्र सुरपति भय मान्यौ ॥ अति प्रताप वीभस्त हुव गौव गोप संतः करन ॥ पौहकर प्रताप तिहुपुर प्रगट

सु नव रस वस गिरधर सरन ॥ २ ॥ सुख समुद्र सब जग्न मग्न वत्सल प्रति पालन ॥ धरैं गवरि अरधंग प्रेम विस्तारन कारन ॥

अंत—पुहुकर वेद पुरान मिलि कीनौ यहै विचार ॥ इहि संसार असार में राम नाम निज सार ॥६१॥ वैरागर वैराग वपु हीरा हित हरि नामु ॥ प्रीति जोति जिय जगमगै हेरे त्रिविधि तनु तामु ॥६२॥ सत संगति सत बुद्धि उर विवि घरनी संग लाइ ॥ ग्यानवान प्रस्थान करि तजै विषै सुष भाइ ॥६३॥ तातैं तत्तु लहै सुकरु सूझि देषि मन मांहि ॥ कोई तेरे काम नहि तू काहू को नाहिं ॥६४॥ पर धन पर दारा रहित पर पीरहि मन लाहि ॥ काम क्रोध मद लोभु तजि विजय निसान वजाहि ॥ ६५ ॥ पहुकर भवसागर गरूव निपटहिं गहिर गंभीर ॥ राम नाम नौका चढ़ै हरिजन लागै तीर ॥६६॥ इति श्री रस-रतन काव्ये कवि पहुकर विरंचिते वैरागर खंडे ग्यान वैराग्य सत्ता राज्य तत्त बर्ननो नाम षोड़समोध्याय ॥१६॥ सम्पूर्ण समाप्तं ॥ संवत् १८६२ ॥ अथ अथ नमासे ॥ शुक्ल पक्षे तिथौ चतुर्थीयां ॥४॥ भौमवासरे ॥ लिष्यते कायस्थ छोटेलाल ॥ शाकीन मिरजापुरे ॥ गंगा निकटे विंध्य क्षेत्रे ॥ अस्थि तटं मलगंज ॥ मंगलं दयातुः ॥

१७२. कल्पलता की बारहमासी
१८१. शुक संदेश
१८२. चंपावती नगर वर्णन
१८७. दंपति संवाद
१८६. वन विहार
१६०. आखेट वर्णन
१६१. सैन्य वर्णन
१६३. युद्ध शिवमाल योद्धा वर्णन
१९७. सह गौन वर्णन
१६८. कल्पलता सूरसैन मिलन
२०३. चन्द्रसैन उत्पत्ति
२०४. शिशु लीला वर्णन
२०५. दूत संदेश
२०७. सूरसैन राजा दूत संवाद
२०८. कुंवर दर्शन
२१०. पयान वर्णन
२११. पंथ वर्णन
२१२. वैरागर आगमन
२१५. गृह प्रवेश वर्णन
२१६. जागरन
२१८. नव नायिका
२२०. दिग्विजय
२२१. संतान वर्णन
२२२. राज तिलक
२२३. चन्द्रसैन दर्शन
२२४. नट नाटक कौतूहल
२३२. ज्ञान वैराग्य सत्ता राज्य

नोट—ऐतिहासिक उद्धरण—नूरदीन गाजो सक वंदी ॥ जिहि के राज कथा रस बंधी ॥ जुग जुग तासु बरष धर राजू ॥ तिहि सन कियौ कथा कर साजू ॥२७॥ येक सहस ऊपर पैंतीसा ॥ सन रसूल सो तुरकन दीसा ॥ अग्नि सिंधु रस इन्द्र प्रवाना ॥ सो विक्रमु संवतु ठहराना ॥२८॥

इस सूचना को ध्यान से पढ़ने पर लगेगा कि इस पाठ के लिये प्राप्त ब प्रति और १६०५ या १६१७-१६ की सूचनावाली यह प्रति वस्तुतः एक ही मूल प्रति की दो नकलें हैं। या ब प्रति १६०५ की सूचित प्रति की नकल है। इसमें किसी भी प्रकार के संदेह की कोई गुंजायश नहीं रह जाती।

'स' प्रति—वही है जिसकी सूचना १६२०-२२ की रिपोर्ट में छपी है। स प्रति भी मूलतः ब प्रति की परंपरा में ही है। लेखन संबंधी कुछ अंतर अवश्य है। किंतु यह अंतर पाठ की दृष्टि से महत्वपूर्ण बिल्कुल नहीं है। ब प्रति में प्रायः द्ध को ध्य लिखा गया है, स प्रति में हमेशा द्ध ही रहा है। कभी कभी स प्रति में तद्भव रूपों को तत्सम बना देने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। यानी कहना चाहें तो कह सकते हैं कि स प्रति का लिपिकार कहीं ज्यादा सचेत और शब्दों की मूल प्रवृत्ति से अभिज्ञ व्यक्ति है। यह परिवर्तन लिपिकार ने अपनी मर्जी से नहीं किया है बल्कि उसके पास जो मूलप्रति थी उसकी लिखावट में ही ये अंतर विद्यमान थे, ऐसा प्रतीत होता है।

स प्रति के रूपाकार के विषय में हम आरंभ में ही १६२०—२२ की रिपोर्ट की प्रति के विवरण में बता चुके हैं। यह प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा, के संग्रह में विद्यमान है। इस प्रति से ब प्रति की भिन्नता इस संस्करण के पाठांतर में दिखा दी गई है। कई स्थानों पर स प्रति के शब्द ज्यादा व्यावहारिक और कम भ्रष्ट हैं, उन्हें मूल पाठ में संमिलित कर लिया गया है और उनके स्थान पर ब प्रति के विकृत शब्दों को पाठांतर में नीचे दे दिया गया है। यह प्रति अपूर्ण है, इसलिये उसकी सहायता सिर्फ चित्रखंड तक के पाठ निर्णय में ही मिल सकी है। चित्रखंड समाप्त होते होते यह प्रति भी समाप्त हो जाती है।

१६२०—२२ की रिपोर्ट में सूचना एकत्र करनेवाले व्यक्ति ने कुछ गलत बातें भी नोट कर दी हैं। लिखा है—'कवि पौहकर का आत्म वर्णन, नाम पुस्तक और समुद्र मंथन का वर्णन, बागेश्वर प्रसाद का वर्णन, स्यात ये कवि के आश्रयदाता हों······।' बागेश्वरप्रसाद कोई व्यक्ति नहीं हैं कवि बागेश्वरी सरस्वती के प्रसाद यानी कृपा की बात कर रहा है।

'द' प्रति—द प्रति स का ही अक्षरशः लिपिकरण है। इसे किसी व्यक्ति ने बहुत हाल में सामान्य कागज पर प्रचलित स्याही में उतार दिया है। यह प्रति भी नागरीप्रचारिणी के पुस्तकालय में सुरक्षित है। प्रति अपूर्ण है, जहाँ से स प्रति समाप्त होती है, वहीं यह भी समाप्त हो जाती है। स प्रति की अंतिम पंक्ति अपूर्ण है, वैसे ही द की भी।

अ और ब प्रतियों के विषय में

भाग्यवश इस पाठ के तैयार करने में अ प्रति का सहारा मिला। अ प्रति रसरतन काव्य के शुद्ध पाठ की कुंजी है; किंतु यह प्रति पूर्ण नहीं है। जैसा मैंने ऊपर निवेदन किया ब, स, और द तीनों समुपलब्ध प्रतियाँ एक ही परंपरा की हैं। तीनों के पाठ, छंदसंयोजन आदि एक जैसे हैं। तीनों प्रतियों में छंद संख्या एक जैसी है। एक से सौ तक अंक देकर पुनः एक से आरंभ करने की पद्धति तीनों में चलाई गई है। ब से स और द के छंदों में अत्यंत अल्प अंतर दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिये आदि खंड के ७ वें छंद में स द प्रतियों में अर्धाली का क्रम बदला है। ४२ संख्या-वाले छप्पय में ब प्रति में दूसरी और तीसरी पंक्तियाँ मिलकर एक हो गई हैं, स द में ऐसा नहीं हुआ है। ५४ संख्या दंडक में नीचे की पंक्ति ब में बिल्कुल

अशुद्ध है। स द का पाठ 'जैसे साहजहाँ साह जहाँगीर के' फिर भी कुछ ठीक है। वैसे अ प्रति में यह स्पष्ट है। आदि खंड के १०६—१० संख्या के छंद स द में नहीं हैं। इस प्रकार के अत्यंत सामान्य अन्तर ब प्रति और स द के बीच दिखाई पड़ते हैं जो पाठशोध के लिए बहुत सहायक नहीं हो पाते। इसी को दृष्टि में रखकर मैंने इन तीनों प्रतियों को एक परंपरा की बताया है। हाँ यह कहा जा सकता है कि स द प्रतियाँ ब का पुनर्लेख नहीं हैं। किंतु जिस प्रति से यह लिखी गई है, वह या उसकी पूर्वज प्रति ब की किसी न किसी पूर्वज प्रति से मिलती जुलती अवश्य रही होगी।

अ प्रति बिल्कुल भिन्न परंपरा की है। ब परंपरा से कहीं अधिक शुद्ध सही और सुसंस्कृत परंपरा की प्रतिनिधि होने के कारण अ प्रति में अशुद्धियाँ कम से कम हैं। अनेक स्थानों पर ब प्रति के अशुद्ध पाठों को शुद्ध करने में अ प्रति से सहायता मिली है।

अ प्रति में छंद संख्या एक से आरंभ होकर अटूट क्रम में चलती है। उसमें खंडों में अलग अलग छंद संख्याएँ हैं, पर सबको समेट कर एक अटूट छन्द संख्या भी चलती रहती है। और यह छंद संख्या ब प्रति से अक्सर भिन्न हो जाया करती है। उदाहरण के लिये अ प्रति के आरंभ के अंश त्रुटित हैं। ३७ संख्या के पद को अ में अड़तीस कहा गया है। ३८ संख्या के पद को ब प्रति दंडक और अ सवैया बताती है। ब स द प्रतियों से अ के पाठांतर पर ध्यान दीजिए। निमिदण्ड [अ,नृपदंड आदि ३९] विविलाल [अ, कविलास आदि० ४३] नुर साहब ते वजि खात [अ, साहि तेज विख्यात आदि ४८] मेरु सुमेर फँनिद मेदिनि पर छाने [अ, जब लगि अचल सुमेर फनिद फन मेदिनि छाजै, आदि ५२]। आदि खंड के १२१ वें छंद के बाद ब प्रति में 'षड्दरसन' की व्याख्या करने के लिये एक दोहा ऊपर से जोड़ दिया गया है, जो अ में नहीं है। यह दोहा स और द में भी नहीं है। उसी प्रकार ब प्रति में १२१-१२४ वाले छंदों के बाद दो नई चौपाइयाँ और एक नया दोहा भिन्न कागज पर जोड़ दिया गया है जो किसी भी प्रति में नहीं है। किसी व्यक्ति ने, जो ज्योतिष में कुछ दिलचस्पी रखता था, पुहकर के द्वारा वर्णित ग्रहगति और फल को बदल कर अपने हिसाब से कर दिया है।

यह ध्यान देने की बात है कि ब प्रति में जितने भी बड़ी बड़ी पंक्तियोंवाले छंद हैं, यथा छप्पय, दंडक या सवैया, कवित्त, कुंडरिया आदि, वे अक्सर अशुद्ध हो जाते हैं, ऐसे सभी स्थलों पर अ प्रति की मदद से इन्हें शुद्ध किया

गया है। ब प्रति स्वयं भी काफी स्पष्ट थी, इसलिये रसरतन के इस पाठ को तैयार करने में ज्यादा बाधाएँ नहीं हुईं। कुछ विशिष्ट पाठभेद और निर्णय इस प्रकार हैं।

१—आदि खंड में १४१ संख्या पद और उसके आगे वर्णन में अ प्रति के पाठ को इसलिये स्वीकार किया गया है कि ब परम्परा की प्रतियों में निचली पंक्तियों में पुनरुक्ति आ जाती है। अ प्रति में ऐसा नहीं होता।

२—ब प्रति में सर्वत्र विषय की सूचना देने के लिये 'अथ अमुक…' दिया गया है, अ में यह पद्धति नहीं है। पाठकों की सुविधा के लिये ब प्रति की इस पद्धति को स्वीकार कर लिया गया है।

३—कहीं कहीं अध्यायों की क्रमसंख्या और नाम में फर्क है किंतु चूँकि अ प्रति त्रुटित है, इस कारण ब प्रति को ही प्रामाणिक मान लेना पड़ा है।

४—अ प्रति में विजयपाल खंड में दोहा संख्या ८ के स्थान पर एक भिन्न दोहा दिया हुआ है, किंतु चूँकि वही दोहा आगे २२ वीं संख्या में दोनों प्रतियों में था, इसलिये इसे प्रति की अशुद्धि मानकर पाठांतर में दे दिया गया है।

५—विजयपाल खंड छंद संख्या ११ में ब प्रति में 'रोम रोम की सिपत बतावै' चरण को दुहरा कर अर्धाली पूरी की गई है। वहाँ पर अ प्रति का पाठ ही ठीक है।

६—विजयपाल खंड में छंद वथूह में लिखे हुए ५४-५७ संख्या के पदों का पाठ ब प्रति में बिल्कुल अशुद्ध है। इसे अ प्रति के हिसाब से शुद्ध किया गया है। इन नामों के विषय में जहाँगीरनामा, अलबरूनीकालीन भारत आदि ग्रंथों से भी सहायता ली गई है।

७—इसी खंड में उपर्युक्त देश वर्णन के ठीक बाद अ प्रति में एक दोहा और तीन चौपाइयाँ विशेष मिलती हैं। जिनमें स्वयंबर सामग्री एकत्र करने का वर्णन है। इसे पाठांतर में दिया गया है, किंतु यह मूल पाठ का अंग भी हो सकता है।

८—विजयपाल खंड का १०७ संख्यक दोहा दोनों प्रतियों में अशुद्ध सा प्रतीत होता है। यह दोहा रतिसंयोग संबंधी है। रसवेलि में रतिप्रसंग में इसी प्रकार की एक पंक्ति आती है [देखिए, रसवेलि छंद संख्या ७] वहाँ भी 'कुहुकि कुहुकि उठै कामिनी' यह पाठ है। 'कूका कुहुकनि

कुहुक है' इस पंक्ति का अर्थ यह है कि रति क्रीडा के दो रूप है। कोक कला और कोकिल कला। इसलिये एक में कूक है, दूसरे में कुहुक हैं।

९—विजयपाल खंड का १३३ छंद ब प्रति में नहीं है। यह आवश्यक प्रतीत होता है, संदर्भ की दृष्टि से इसलिये इसे मूल पाठ में स्वीकृत किया गया।

१०—विजयपाल खंड का १८१वाँ पद भी, जो ब में नहीं है स्वीकार किया गया है, क्योंकि उसमें बताया हुआ तिथिक्रम बाद के २३९ संख्यक छप्पय में भी दिया हुआ है।

११—विजयपाल खंड का २१८ संख्यक छप्पय भी ब प्रति में बहुत अशुद्ध है। दोनो में दूसरा चरण भिन्न है। मैंने अ प्रति के पाठ को इसलिये ठीक माना कि ब की पंक्ति का कोई सार्थक अर्थ नहीं प्रतीत होता। ब प्रति में दिया हुआ है 'कमठ द्वार लग्गिहि किवार मेदिनि सो भर-क्किय'। जबकि अ का निम्नलिखित पाठ प्रसंग में पूर्णतः समीचीन और सार्थक प्रतीत होता है—

विकसि कमल सकुचंत कोक कुल वपू धरक्किय

१२—२३९ संख्या का तिथिक्रम वर्णन करनेवाला छप्पय अ प्रति का ज्यादा शुद्ध नहीं लगता। मैंने ब वाले पाठ को ही ठीक माना है। विचारणीय दोनों हो सकते हैं।

१३—२४९ संख्या में एक श्लोक अ प्रति में है, ब में नहीं है। इस तरह की विकृत संस्कृत पदावली को किसी छंद में ढालकर एक पद बना लेने की प्रवृत्ति इस ग्रंथ में और स्थानों पर दिखाई पड़ती है। इस कारण इसे स्वीकार कर लिया गया है।

१४—अप्सरा खंड के आरंभ की सूचना किसी भी प्रति में नहीं है। न तो यह अ में है, न तो ब में। ब प्रति में स्पष्ट ही यह भूल है क्योंकि बाकी खंडों के आरंभ में ही 'अथ अमुक खंड' ऐसा लिखकर यह बात स्पष्ट कर दी गई है। अ प्रति में ऐसा नहीं किया गया है। यह अवश्य है कि यहाँ से ब प्रति में छंद संख्या पुनः एक से शुरू होती है, जैसा कि अन्य खंडों के आरंभ में होता रहा है, इससे अनुमान होता है कि

यहाँ से कोई नया खंड आरंभ होता है। चूकि खंडों का क्रम आरंभ में ही एक छंद में बता दिया गया है, और बाद के अध्यायों की समाप्ति पर उन्हें अप्सराखंड के अंतर्गत बताया गया है, इस आधार पर यहाँ से अप्सरा खंड मान लिया गया है।

१५—अप्सराखंड में १०९ संख्यक सवैया को अ प्रति के आधार पर शुद्ध किया गया है। ब प्रति में 'रया कासी करति' गलत है, इसके स्थान पर अ प्रति में है 'श्रम सीकरनि' जो उचित प्रतीत हुआ।

१६—ब में अप्सराखंड छंद सं० ११४ में 'फूल धरै' को दो बार लिखकर पादपूर्ति की गई है जबकि अ में 'फूलझरी छुटि फूल झरै' बहुत सुंदर पाठ है। खास तौर से इसलिये कि रसरतन के कवि को आतिशबाजी बहुत पसंद है और फिर यह सभी जानते हैं कि जहाँगीर-कालीन अनेक चित्रों में फूलझरी को छुटाते हुए दिखाया गया है।

१७—इसी खंड का छंद नं० १४७ का सवैया ब प्रति में कितना भ्रष्ट था, इसे पाठांतर देखकर ही समझा जा सकता है।

१८—अप्सराखंड में छंद संख्या २१२ से २१४ तक के पद जिनमें नृत्य और वाद्य के ताल सुर बताए गए हैं, ब में बिल्कुल भ्रष्ट हैं।

१९—इसी खंड का २२७ संख्यक दोहा अ में नहीं था। इसे प्रसंगोचित समझकर स्वीकार कर लिया गया है।

इन कतिपय प्रमुख पाठांतरों से भी पता चल जायेगा कि अ प्रति कितनी महत्त्वपूर्ण और शुद्ध है। अभाग्यवश प्रति अपूर्ण थी, इसलिये टूटे हुए अंश के आगेवाले पाठ विवश होकर ब प्रति के हिसाब से ही निर्धारित करने पड़े हैं; किंतु उन अंशों को भी पुहकर की भाषा, छंदरचना की प्रवृत्ति, वर्णन में बहुप्रयुक्त प्रिय शब्दों की स्थिति और अन्य तरीकों के आधार पर यथासंभव ठीक और शुद्ध बनाने का प्रयत्न किया गया है। यह सत्य है कि एकाध और पूर्ण प्रतियाँ मिल गई होतीं, तो इस पाठ को बहुत हद तक प्रामाणिक बनाने में सफलता मिल जाती। इन पांडुलिपियों के आधार पर जो कुछ भी हो सका है, वह विज्ञ जनों को संतोष दे सकेगा, ऐसी आशा अवश्य है।

———

रसरतन का रचनाकाल और ऐतिहासिक संदर्भ

कवि पुहकर ने 'छत्र सिंहासन वर्णन' के अंतर्गत रसरतन का रचनाकाल बताते हुए निम्नलिखित चौपाई दी है ।

एक सहस ऊपर पैंतीसा । सन रसूल सों तुरकन दीसा ॥
अग्नि[3] सिंधु[7] रस[6] इंदु[1] प्रमाना । सो विक्रम सम्वत् ठहराना ॥
(आदि खंड २८)

यही पाठ सभी उपलब्ध प्रतियों में मिलता है । नागरी प्र० सभा की सभी खोज रिपोर्टों[1] में जिसमें रसरतन में सूचनाएँ दी हुई हैं, यही पाठ मिलता है । १९०६-८ की रिपोर्ट में कुछ भिन्नता है जिसमें कवि को १६१८ ई० का बताया गया है । यहाँ १६७३ विक्रम संवत् के स्थान पर अग्नि की संख्या पाँच मानकर १६७५ कहा गया है । विक्रम संवत् के साथ ही साथ कवि ने हिजरी संवत् भी दिया है जो १०३५ है । किंतु सभी प्रकार की गणनाओं के आधार पर देखने से लगता है कि यह सन् गलत है । १६७३ विक्रम संवत् १६१६ ईस्वी में पड़ता हैं, और उस बर्ष हिजरी १०२५ होना चाहिए । १९१७-१९ की रिपोर्ट के संपादक को यह अशुद्धि खटकी थी और उन्होंने इसके बारे में लिखा 'इसका रचनाकाल कवि ने विक्रम संवत् १६७५ बताया है जिसका समानांतर सन् रसूल १०३५ कहा गया है । सन् रसूल निश्चित ही हिजरी सन् है; किंतु विक्रम वर्ष १०३५ हिजरी में न पड़कर १०२८ में पड़ता है । १०३५ सन् संबत् १६८२ में पड़ता है । यह एक गड़बड़ी है जिसके विषय में मैंने दीवान बहादुर स्वामी कन्नू पिल्लई से परामर्श किया किंतु कोई संतोषजनक समाधान न मिल सका ।[2]'

---

१. १९०५, १९०६-८, १९१७—१९१९, १९२०-२२ तथा पंजाब में हिंदी पुस्तकों की खोज रिपोर्ट १९२२-२४ ।

२. १९१७-१९ रिपोर्ट सूचना संख्या १४० ।

जाहिर है कि यहाँ संपादक ने रचनाकाल १६७५ संबत् मान कर यह निष्कर्ष निकाला है। १६७३ विक्रम संवत् १०२५ हिजरी में पड़ता है। उस साल मंगलवार प्रथम जिल्कदः के दिन १० नवंबर सन् १६१६ ईस्वी था।[1] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ १०२५ हिजरी में लिखा गया जो जहाँगीरनामे का ग्यारहवाँ जलूसी वर्ष था। उस साल १६७३ विक्रम संवत् अथवा १६१६ ईस्वी में इस ग्रंथ की रचना हुई। लगता है लिपिकर्ताओं ने 'पचीसा' के स्थान पर 'पैंतीसा' पाठ कर दिया। यह पाठ अब तक की प्राप्त सभी पांडुलिपियों में मिलता है, यह सही है; किंतु ये सभी पांडुलिपियाँ एक परंपरा की हैं, इस कारण यह अशुद्धि सब में दिखाई पड़ती है। मूल पाठ यों होना चाहिए—

एक सहस ऊपर पंचीसा, सन रसूल सो तुरकन दीसा।
अग्नि सिंधु रस इंदु प्रमाना, सो विक्रम संबत ठहराना॥

पुहकर ने एक पंक्ति में शाहजादा शाहजहाँ का नाम लिया है। बारहवें जलूसी वर्ष में गुरुवार मेह महीने की दसवीं को, जो हमारे बारहवें जलूसी वर्ष में, ११ शव्वाल सन् १०२६ हि० होता है, तीन पहर एक घड़ी दिन व्यतीत होने पर शुभ मुहूर्त में खुर्रम ने प्रसन्नता के साथ माँडू दुर्ग में प्रवेश किया और हम दोनों ग्यारह महीने ग्यारह दिन पर मिले।[2] गुरुवार २७ वीं को नूरजहाँ बेगम ने हमारे पुत्र शाहजहाँ के विजय के उपलक्ष में जलसा किया। जिसमें तीन लाख रुपये खर्च हुए।[3] इसी के बाद शाहजहाँ विद्रोही हो गया और 'फर्जंद' शाहजहाँ को जहाँगीर ने 'बेदौलत' कहे जाने का फर्मान दिया। जाहिर है कि उसके विद्रोही होने के पहले यानी हिजरी १०२६ के पहले पुहकर ने ये पंक्तियाँ लिखी थीं।

कहै कवि पुहकर कस्सिप कैं कुल भानु,
अचिरज कौन रघुवंश रघुवीर कै।
अकबर साहि जू के साहि जहाँगीर जैसे,
जैसो साहिजादौ साहिजहाँ जँहगीर कै॥
(आदि ५४)

---

१. जहाँगीरनामा, ना० प्र० सभा संस्करण, संवत् २०१४ पृष्ठ ४०४। संबत सुदी ८ संबत १६७५ के दिन शुक्र ८ शहरिवर सन् १०२७ हिजरी था (पृष्ठ ६) इस प्रकार १६७५ के लिए १०२८ मानना भी ठीक नहीं होगा।

२. वही पृष्ठ ४५६ वही ३. पृष्ठ ४५६।

पुहकर जहाँगीरकाल के कवि थे। कवि ने छत्र सिंहासन वर्णन के अंतर्गत जहाँगीर की प्रशंसा की है। इन वर्णनों को देखने से लगता है कि कवि ने ये वर्णन केवल रूढ़ि निर्वाह के लिये, अपने समय के बादशाह की स्तुति के लिये, यों ही नहीं कह दिए हैं, बल्कि उन्होंने जहाँगीर के दर्बार को निकट से देखा था। कवि बादशाह का आश्रित था, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता, पर उसकी दर्बार तक पहुँच थी, ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रसंग में एक बात और निवेदन कर दूँ। आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि "कहते हैं कि जहाँगीर ने किसी बात पर इन्हें आगरे में कैद कर लिया था। वहीं कारागार में उन्होंने रसरतन नामक ग्रंथ संवत् १६७३ में लिखा, जिसपर प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें कारागार से मुक्त कर दिया।"[1]। शुक्लजी ने इसे जनश्रुति कहा है, और यही ठीक भी है क्योंकि न तो इस ग्रंथ से और न तो किसी दूसरे सूत्र से इस बात की पुष्टि होती है। यह असंभव है, ऐसा कहना भी ठीक न होगा क्योंकि जहाँगीरनामा देखनेवाला हर व्यक्ति जानता है कि कितनी सामान्य बात पर लोग कैद कर लिए जाते थे, और उसी तरह से किसी मामूली बात से प्रसन्न होकर बादशाह उन्हें छोड़ भी देता था।

जहाँगीर की पाँच रानियाँ थीं। कवि लिखता है :

तिमिर वंस अवतंस साहि अकबर कुल नन्दन।
जगत गुरू जगपाल जगत नाइक जगवन्दन॥
साहिनशाह आलम पनाह नरनाह धुरंधर।
तेग वृत्ति दिल्ली नरेश त्रिय चारि जासु घर॥
अर्धंग अंग पंचम घरनि तरनि तेज महि चक्कवै।
नर राज मनहुँ पंचम सहित सुंपचह मिलि महि भुग्गवै॥
(आदि० ३१)

ऐतिहासिक मत है कि जहाँगीर ने पाँच विवाह किए थे। पहला विवाह सन् १५८५ ई० में राजा भगवानदास की पुत्री मानमती से हुआ। १५८६ में तीन विवाह और हुए। एक जोधपुर के राजा उदयसिंह उर्फ मोटा राजा की पुत्री जगत गोसाइन से, दूसरा बीकानेर के राजा रामसिंह की पुत्री से तथा

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, छठा संस्करण, पृष्ठ २२८

तीसरा सईदखाँ काशगरी की पुत्री से हुआ, इस प्रकार ये चार विवाह सामान्य हुए। पाँचवा विवाह विशिष्ट था जो १६११ में नूरजहाँ बेगम से हुआ, और यही 'घरनि' बादशाह की 'अर्धंग अंग' थी, इसमें सन्देह नहीं।

बत्तीस लक्षणों से युक्त, जहाँगीर को कवि ने वीर, दानी, न्यायपरायण और सभी गुणों से विभूषित बताया है। किन्तु सर्वाधिक सविस्तर वर्णन उन्होंने जहाँगीर की सेना का किया है। दल (सेना) और अदल (न्याय) का बयान करते समय कवि पुहकर प्रियव्रत, पृथु, पुरूरवा आदि नरेशों को भी जहाँगीर के सामने भुला देने को विवश हो जाते हैं। जहाँगीर के युद्धों का पूरा विश्लेषण करने पर इतिहासकार इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि जहाँगीर की विजययात्रा १६०६ से १६२२ ई० तक लगातार जारी रही। उसने बंगाल का विद्रोह दबाया। मेवाड़ विजय किया। अहमद नगर पर हमला किया, कांगड़ा जीता। कंदहार पर विजय प्राप्त की। यह समय मोटे रूप से १६६३ विक्रमी से १६७८ विक्रमी तक कहा जा सकता है, पुहकर ने १६७३ में यानी इस विजययात्रा के करीब करीब मध्य में अपने ग्रंथ का प्रणयन किया। इसलिये उनके ऊपर जिस वस्तु का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा, वह थी जहाँगीर की फौज। इसीलिये वे इस अपार सेना को देखकर आश्चर्य से कह उठते हैं—

अबिरल बानी गनै पुहकर कवित्त कौन,
मन के मनोरथ अलोल चित्त चाइ की।
सहस बदन चतुरान सकै न गन
फौजें जहाँगीर जू की मौजें दरियाइ की॥

[आदि० ३८]

पुहकर के कवित्तों की अविरल बानी, मन के मनोरथ, चित्त के चाव कौन गिन सकता है। जहाँगीर की नदी की लहरों की तरह उमड़ती सेना को तो शेषनाग और ब्रह्मा भी नहीं गिन सकते। फिर भी कवि पुहकर ने अनुमान तो लगाया ही :

बीस लाष तुष्षार सहस सत्तरि सुंडाहल।
पंच लाख रथ सुरथ सज्जि बिवि कोटि पयद्दल॥
तीन लाख निस्सान मेघ भादो जिमि गज्जहिं।
अति असंख सेना समूह उडगन गन लज्जहिं॥

चहुँ ओर अष्ट योजन कटक संक भान धसमस धरनि ।
दिग्पाल हलहिं व्याकुल कमठ गगन रैनि मुंदी तरनि ॥
(आदि० ३७)

बीस लाख घोड़े, सत्तर हजार हाथी, पाँच लाख सुसज्जित रथ और दो करोड़ पैदल सेना की विजय यात्रा ने क्या क्या परिणाम दिखाये :

दुरजन देस रह्यो नहिं कोई । देस पती मिल किंकर होई ॥
उत्तर देस अठारह षानै । ते नृप दण्ड सदा सिर मानैं ॥
(आदि० ३९)

यह अठारह देश कौन कौन थे ? गुलेरी जी ने, सिद्ध हेमव्याकरण के प्रसंग में कि परीक्षा में 'अक्लिन्न' निकलने पर राजा ने ३०० लेखकों से तीन बर्ष तक प्रतियाँ लिखवा कर अट्ठारह स्थानों में पठन पाठन के लिये भेजी, 'अठारह षानै' का विवरण इस प्रकार दिया है :

'अठारह देश—कर्नाट, गुर्जर, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिंधु, उच्च, भँभेरी, मरु, मालव, कौंकण, राष्ट्रकीर, जालंधर; सपादलक्ष, मेवाड़, दीप, आभीर, [जिनमंडन का कुमारपाल प्रबंध, पत्र ८१ (१)][1]'

पुहकर का यहाँ मतलब धुर दक्षिण के कुछेक स्थानों को छोड़कर सम्पूर्ण भारतवर्ष से प्रतीत होता है ।

जहाँगीर जब सैर शिकार को भी निकलता था तो लंका में शंका और खुरासान में भय व्याप्त हो जाता था ।

सैल सिकार जो करै पयाना । संकत लंक डरै षुरसाना ।

एक दूसरे छप्पय में उन्होंने लंक, अलक, मसाम, वंदकसान, षुरसान के भयभीत रहने की बात लिखी है । कर्नाट, लाट, केरल, फारस, सिंहल के संकुचित होने तथा हिन्दू राजाओं द्वारा रमणी और पुत्र भेंट कर बादशाह के शरणागत होने का वर्णन किया है । जहाँगीरनामा में कर्णाटक (पृष्ठ ३६३, ४७४, ५०२, ५३१), खुरासान (६७, १४७, २६३, ३३०, ३३८, ४८५, ५१६, ६६६, ७४६, ७६४), बदख्शा (१२, ४४, ५१, ५८-५६, तथा अनेक पृष्ठों पर), फारस (७५३ ७५४ तथा अनेक स्थानों पर) आदि स्थानों के बारे में विशेष वर्णन दिया हुआ है । जहाँगीर ने सिंहल पर चढ़ाई करने का मनसूबा बाँधा था, यह इतिहास प्रसिद्ध है ही ।

---

१. पुरानी हिंदी, ना० प्र० सभा २००५, पृष्ठ १४०-४१

सेना के बाद कवि का ध्यान जहाँगीर के शासन और न्याय की ओर गया है। अदलेजहाँगीर इतिहासकारों के नजदीक जैसा भी मूल्य रखता हो, जहाँगीरनामा में उसकी प्रशंसा भूरि भूरि मिलती है। जहाँगीरनामा में खुद जहाँगीर उसकी प्रशंसा करते हुए नहीं अघाता। उसने पहले जलूसी साल के बयान के शुरू में ही लिखा है "जिस घड़ी हम स्वेच्छा से सिंहासन पर बैठे, उस समय जो पहली आज्ञा की, वह न्याय की जंजीर लगाने की थी। जिसका एक सिरा शाह बुर्ज के कंगूरे में दृढ़ किया हुआ था, और दूसरे को नदी के तट पर ले जाकर पत्थर के खंभे में, जो बन चुका था, बाँध दिया गया था। वह इसलिये था कि यदि न्यायालयों के अध्यक्ष निर्णय करने में विलंब करें तो न्यायेच्छुक तथा शीघ्रता करनेवाला इस लटकती जंजीर तक आकर थोड़े ही दिनों में अपने काम को पूरा कर न्याय को पा जाय। इस जंजीर को बहुत व्यय कर सोने की बनवाई थी जो चालीस गज लम्बी थी और जिसमें साठ घंटियां लगी थीं, उनकी तौल १० मन के लगभग है।"[1]

उसी वर्ष में जहाँगीर ने प्रजा के सुख के लिये बारह नियमों की घोषणा की। इन नियमों का जिक्र भी उसने जहाँगीरनामा में विस्तार से किया है। जक़ात (कर) क्षमा कर दी जिससे शासन को आठ सौ मन सोने की प्राप्ति होती थी। रास्तों पर सुरक्षा का प्रबंध कराया। मद्-निषेध कराया (हालाँकि खुद बहुत पीता था) प्रजा के घर में बलात् प्रवेश और अधिकार को रोका। दवा दारू का प्रबंध कराया। पशुवलि और मांसभोजन सप्ताह में दो दिन बन्द करवा दिया आदि आदि।[2]

पुहकर कवि ने जहाँगीर के इन कार्यों को नजदीक से देखा होगा। वे कहते हैं—

दल वरनन वहु विध कियौ, अदल न वरन्यो जाय।
गैया नैया छोर सो, राषे संग लगाइ॥
मूषन अरु मंजारि मिलि, संग साहु बसै चोर।
व्रिक बकरी इक ठाँ करी, कोइ करै नहीं जोर॥
वीर अभय पंथी चलै, रवि न सतावै ताहि।
प्रगट्यो परम पुनीत कलि, जहाँगीर पति साहि॥

१. जहाँगीरनामा पृष्ठ १४-१५

२. जहाँगीरनामा पृष्ठ १५ से २१

मैं न कछू कवि विधि कही साँचि कही सब बात।
सरल सिह निर्विस उरग साहि तेज विष्यात॥
ज्यों पयोधि मौजे करै अरब षरब दिन देइ।
छाँड्यो ठंड जगाति कौ धर्म अंस रस लेइ॥

(आदि खंड ४५-४६)

कवि पुहकर ने जहाँगीर के एक शौक का भी बड़ा मजेदार वर्णन किया है। जहाँगीरनामा में सैर-शिकार का वर्णन तो भरा पड़ा है ही, हारे हुए नरेशों, सामंतों, सेनापतियों और जागीरदारों के निरंतर उपहार-भेट उपस्थित करने का भी विस्तृत वर्णन है। हाथी घोड़े, लाल हीरे, आभूषण, तलवार-कृपाण, आम-अंगूर तथा किस्म किस्म के पशुपक्षी रोज बादशाह को भेंट में मिलते थे और वह सब का मुआइना करता था और उपहार देनेवाले की तारीफ करता था।

सातवें जलूसी वर्ष का बयान करते हुए उसने एक स्थान पर कमायूँ के राजा लक्ष्मीचंद द्वारा भेंट की गई वस्तुओं की लिस्ट इस प्रकार दी है। पहाड़ी टट्टू, शिकारी पक्षी, वाज, जुर्रा आदि, कस्तूरी की नाभि, मृग, मृग की खाल, खाँडे, कटार, आदि।[1] १२ आजर को कूच विहार से जागीरदारों की ओर से जो भेंट आई उसमें चौरानवे हाथी थे, जिनमें से कुछ मैंने अपने हथसाल में रख लिए।[2] इन्हीं बातों को लक्ष्य करके पुहकर कवि कहते हैं—

चित्रक खग मृगराज गज, सुक सिचान बहु भाँति।
आम षास दरबार मैं, षरै ते पाँतिन पाँति॥

(आदि० ५०)

रसरतन में ब्रह्मकुंड ने पास कवि पुहकर ने माया नगर का जो युद्ध वर्णन किया है, उस पर जहाँगीर के कागंडा और कुमायूँ विजय का प्रभाव प्रतीत होता है। बाद में सूरसेन अपने पुत्रों को जब राज्य वितरित करता है, तो कवि कहता है—

माया देस पुर नगर कुमाऊँ।
पर्वत राज्य दीन चित चाऊँ॥

(वैरागर खंड ३४०)

१. जहाँगीरनामा पृष्ठ २८८।
२. वही, पृष्ठ ३३।

इस स्थान में प्राप्त होनेवाली वस्तुओं के बारे में कवि ने कहा है—

कनक आदि सब धातु प्रमाना । उपजहिँ बहुत जु बाज सिंचाना ॥
उपजहिं सुरह धेनु धन पूरी । विजन वाल मृगमद कस्तूरी ॥
उपजहिं तुरग गूढ़ गज ठाटा । सुघर मधुर मधु सोभित हाटा ॥
कदलि सानु अरु विद्रुम वेली । सोंठ पीपरैं सहज सकेली ॥
(युद्ध खंड ३२८–३२६)

पुहकर कवि की यह सूची जहाँगीर द्वारा वर्णित कुमायूँ के राजा से प्राप्त वस्तुओं की सूची से कितना आश्चर्यजनक साम्य रखती है । यह इतिहास प्रसिद्ध है कि जहाँगीर ने कांगडा-विजय के बाद अपनी साम्राज्ञी नूरजहाँ के नाम पर नूरपुर नामक नगर बसाया । सूरसेन ने भी मायापुर को विजय करके कल्पलता के निवासस्थान के पास एक नगर बसाया—

तिहिं ठाँ आइ निकट नहिं ग्रामू ।
केवल कलपलता कर धामू ॥
सूरसैन तहँ नगर बसावा ।
परम रम्य सोभा अति पावा ॥
(युद्ध खंड ३२६)

मुगलकालीन इतिहास और संस्कृति के विद्यार्थी के लिये रसरतन का एक और भी महत्त्व है । कवि ने सेना, अस्त्र-शस्त्र, घोड़े, और उनके साजों, रणबाद्यों, डंके, निसान आदि का जो वर्णन किया है, वह उस काल की परंपरा से पूर्णतः प्रभावित है । भवन, जलाशय, मस्जिद आदि के निर्माण के लिये जहाँगीर मशहूर था । विशेष रूप से जल-गृह और ज्योति-नहरों का वह बड़ा शौकीन था । कवि पुहकर ने रसरतन में अनेक स्थानों पर इस प्रकार के जलाशयों का वर्णन दिया है ।[1]

उत्सव के अवसरों पर अगरबत्ती, ऊदबत्ती, गुग्गुल, लोहबान आदि के जलाने का रवाज आज भी प्रचलित है, तब भी था । जहाँगीर ने लिखा है कि पर्वेज के निकाह में हिंदुस्तानी तौल से दस मन ऊद तथा सुगंधित द्रव्य खर्च हुए ।[2] निशान, शहनाई, डंका के वर्णनों से तो जहाँगीरनामा का हर जलूसी वर्ष गूँजता ही रहता है ।

---

१. देखिए वस्तुवर्णन शीर्षक परिच्छेद ।
२. जहाँगीरनामा, पृष्ठ ४६ ।

आतिशबाजी आज भी प्रचलित है, मुगल काल में भी प्रचलित थी। बान और आतिशबाजी छूटती थी। जहाँगीर ने लिखा है 'मैंने इन शत्रुओं के विरुद्ध वर्गिओं की एक सेना भेजी। रात्रि में वे बान और आतिशबाजी छोड़ने से नहीं चूकते थे।'[1] पुहकर के वर्णनों से इनकी तुलना कीजिए—

शहनाई, निखानादि

वजै श्रृंग सारंग भेरी मृदंगा।
वजै वाँसुरी शंख शहनाई संगा॥
(युद्ध खंड, २४६)

वजै वाँसुरी संख शहनाइ तूरं।
भये शब्द दिग्पाल के कर्ण पूरं॥
भई पंच हज्जार दुंदुभि धुक्कारं।
उठै नीर पाताल चलि वार पारं॥
(विजयपाल खंड १६७)

अगरवत्ती, सुंगधित द्रव्यादि

चोवा भेद जिवादिहिं लीनो। केसर मिलै अरगजा कीनौ॥
चंपक वेलि गुलाबनि हार। फूल सेज वह रचीं अपार॥
मलयागिरि उदीप सुखराती। चहुँदिसि वरै अगर की बाती॥
(अप्सरा खंड ८४-८५)

आतिशबाजी

हथफूल, हवाई आदि छूटने लगीं। चारों तरफ आतिशबाजी का जाल छा गया—

वरैं तहँ लच्छिन लच्छ मसाल।
उठै अति आतसवाजुव जाल॥
छुटैं हथफूल हवाइनि गुंज।
दुरौ दुति इंदु तमी तम पुंज॥
(स्वयंवर खंड १४१)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि पुहकर ने जहाँगीरकालीन मुगल दरबार की गतिविधि, उत्सव, त्यौहार तथा खेलतमाशों आदि को बहुत नजदीक से देखा और उन्होंने अपने इस अनुभव का इस ग्रंथ में अनेक प्रकार से उपयोग भी किया।

---

१. जहाँगीरनामा पृष्ठ २८६।

कथावस्तु

कवि पुहकर रसरतन में प्रेम की वह अपूर्व कथा कहना चाहते हैं जहाँ बैरागर के राजा सोमेश्वर के पुत्र सूरसेन और चंपावति-नरेश विजयपाल की तनया रंभावती के बीच अद्भुत संयोग कराने के लिये भुवनमोहन पुष्पधन्वा काम को स्वयं दूत बनना पड़ा।

नृप तनया रंभावती, सूर पृथ्वीपति पूत।
बरनौं तिनकौं प्रेम-रस, मदन भयौ तहँ दूत॥

(आदि० १०२)

सोमवंशी राजा सोमेश्वर पूर्व दिशा में राज्य करते थे। प्राची दिशा अनन्य महत्वशालिनी है, क्योंकि इसी दिशा में सूर्य का उदय होता है। बैरागर का प्रदेश अमूल्य हीरों के लिये और वीर सुंडाहलों (हाथी) के लिये प्रसिद्ध था। राजा सब प्रकार से वैभवसंपन्न था; किंतु पुत्र का आभाव उसे शूल की तरह सालता था। इसी लिये एक बार वह रानियों के साथ काशीपुरी आया। चिंतामणि पंडित को गुरु बनाया जिन्होंने उसे मनसा, वाचा, कर्मणा शिवसेवा करने का उपदेश दिया। राजदंपति ने लगन पूर्वक शिवार्चा आरंभ की। शिव प्रसन्न हुए और उनकी कृपा से पटरानी कमलावती ने गर्भ धारण किया। समय आने पर कमलावती के गर्भ से कुमार ने जन्म लिया। पंडितों ने जन्म लग्न का विचार करके भविष्यवाणी की कि राजकुमार बहुत गुणी होगा, चक्रवर्ती नरेश बनेगा; किंतु बारह वर्ष पूरा करके जब कुँवर तेरहवें में प्रवेश करेगा तो त्रिया-विरह में दुखी होगा। वियोग से अतिशय कष्ट होगा, वैद्य और दूसरे गुनीजन इसका उपचार सोच न पाएँगे। तीन वर्ष तक वियोगी रहेगा। पुनः वह योगी होकर भटकेगा, और अंत में चौथे वर्ष संजीवनी (प्रिया-संयोग) पाकर सभी प्रकार के दुःखों से छुटकारा पा सकेगा। दो नारियाँ गृहिणी बनेंगी और चार पुत्र होंगे जो पृथ्वी का शासन करेंगे। यह कुमार कुल की शोभा बढ़ावेगा। रूप में काम, ज्ञान में गोरख दान में बलि, साहस में विक्रमादित्य, शस्त्रप्रयोग में अर्जुन, बल में भीम, व्रत में भीष्म, विद्या में भोज, सौंददर्य में चंद्रमा और शौर्य में सूर्य की तरह

प्रदीप्त होगा। पाँच कम सौ वर्ष की आयु होगी। राजा ने पंडितों को दान देकर विदा किया। कुमार सूरसेन के पालन-पोषण के लिये धायें रक्खीं जो प्रेम से दूध पिलाती थीं। कुमार दिन दिन बढ़ने लगे। पाँच बरस के हुए तो बाँस की धनुही और लाख के बान लेकर चिड़ियों को मारकर खलिहान करने लगे। आठ बरस के होने पर विद्यारंभ हुआ। वेद, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, छंद, और संगीत शास्त्र का अध्ययन किया। अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखी। नाटक, रसायन, मल्लयुद्ध, मायायुद्ध आदि चौदह विद्याएँ सीख लीं। तेरहवें वर्ष की संधि निकट आई। अंग अंग में तरुणाई फूट पड़ी। संगीत और काव्य में मन पगा रहने लगा। उसी समय राजा ने मंत्रियों से विचार विमर्श करके यह तय किया कि कुमार से कोई प्रेम की बात न करे, वे कभी किसी तरुणी को देखने न पाएँ।

उधर चंपावती में राजा विजयपाल का राज्य था, जिसे समुद्र वलय की तरह घेरे हुए था। प्रजा सुखी थी, देश में सुख शांति थी। गुर्जर देश का वह राजा सब प्रकार से संपन्न था। उसके अंतःपुर में एक से एक रमणीय त्रियाएँ थीं, कल्पवृक्ष पर आश्रित लताओं की तरह, पर सभी निष्फल थीं। राजा को संतति न थी। एक बार जब राजा दीन भाव से बैठा हुआ था, एक सिद्ध आया। राजा ने अर्घ्य देकर सत्कार किया और मन की अभिलाषा व्यक्त की। सिद्ध ने चंडीपूजा का उपदेश दिया और भविष्यवाणी की कि एक कन्यारत्न का जन्म होगा। समय पाकर जिस प्रकार स्वाति बूँद सीप में मुक्ता का रूप धारण करती है, उसी प्रकार पटरानी पुष्पावती के गर्भ में चंडी की कृपा से कन्या का आगमन हुआ। स्वाति नक्षत्र में वह कन्या जन्मी। ज्योतिषी बुलाए गए। लग्न शोध कर पंडितों ने कहा कि यह कन्या भाग्यशालिनी रानी होगी, जिसकी कहानी पृथ्वी में युगों तक चलेगी। दस वर्ष बीत जाने पर, ग्यारवाँ वर्ष अवर्ष के समान होगा, तन में पीड़ा और मन में मूढ़ता व्याप्त होगी, जब कन्या चौदहवें में प्रवेश करेगी, तब रोगनाश होगा और कुटुंब की चिंता बीतेगी। नृप ने कन्या का सभी प्रकार 'लाड़-गोड़' किया, कोई कसर न रहने दी, सुत से अधिक सुता को प्यार मिला। जब रंभा ने दसवें वर्ष में प्रवेश किया कि अचानक मनमथ अंग में प्रविष्ट हो गया। वयसंधि का यह रूप त्रिभुवन को विजय करने के लिये उद्यत होने लगा। अंग में धूपछाँही सौंदर्य बढ़ने लगा। भौंहें नुकीली हो गईं, आँखें कान तक खिंचने लगीं। कमल पत्र पर बैठे चंचल भौंरे की तरह आँखें उड़ने को पर तोलने

लगीं। कुंडल की चमक कपोलों पर प्रतिविंबित होने लगी। श्वेत दसनपंक्ति सुधा से सींचे दाड़िम की तरह मालूम होती। यौवन जल में झाँकती कमल-कली की तरह फूटने लगा।

एक समय अपने पति की सेज पर सुख में खोई रति ने पूछा—नाथ, समूचा त्रिभुवन तुम्हारे आधीन है, सुर, नर, नाग, मुनि कोई भी तुम्हारे प्रेम, पाश से मुक्त नहीं है। कृपा करके यह बताइए कि तीन लोक में कौन तरुण और तरुणी सर्वाधिक सुन्दर हैं। पत्नी की बात सुनकर मदन ने कहा कि पृथ्वी पर अनेक रत्न हैं, इनमें कौन कम है कौन अधिक यह विवेक नहीं हो सकता; फिर भी चंपावती नरेश विजयपाल की कन्या रंभा और बैरागर के राजा सोमेश्वर का पुत्र सूरसेन निश्चय ही अद्वितीय हैं। पति की बात सुनकर रति ने हठ किया कि दोनों का संयोग करा दीजिए। मदन सोचने लगे। जहाँ इन दोनों के बीच सैकड़ों योजन का अन्तर है, संयोग कैसे हो सकेगा। काम ने कहा—'हे सुन्दरी, दर्शन तीन प्रकार के होते हैं। स्वप्न, चित्र और प्रत्यक्ष। तुम बैरागर जाकर रंभा के वेश में सूरसेन को दर्शन दो, मैं सूरसेन का रूप धर कर रंभा को मोहित करूँगा। रति ने पति की आज्ञा मान कर सूरसेन को रंभा का रूप दिखाया। और उन्हे प्रेम समुद्र में डुबो कर चली आई।

मोहन, सोहन, उन्मादन, उच्चाटन और मारण शर लेकर कामदेव चंपावती चले। चाँद, चाँदनी और चंदनचर्चित अंग लेकर अनंग रंभा विजय को निकले। अर्धरात्रि के समय, द्वारपालों को अचेत छोड़, काम अंतःपुर में रंभा की सेज पर जाकर बैठ गए। उच्चाटन बाण के लगते ही नींद उचाट हुई रंभा इस अपरूप रूप को देखती रह गई। वह नाम धाम पूछना चाहती थी कि मनमथ ने मोहन शर का संधान किया। बैन थकित रह गए, लोचन विजड़ित हो गए। अबला को अधीर बनाकर मदन अंतर्धान हो गए। प्रातः काल राजकुमारी की यह दशा देखकर सखियाँ परेशान हो गईं। एक कहती हवा लगी है, एक कहती कि जूड़ी है, कोई कहती भूत का भय है, कोई कहती किसी की नजर लग गई है। एक दौड़ कर उपचार के लिये चली, एक बेहोश होकर गिर गई, एक रंभा रंभा की रट लगाए रही, एक आसुओं से नहा गई। तभी अकाशवाणी हुई कि सखियों, खेद दूर करो, आस रक्खो, 'सूर विथाहर' बनेंगे। रानी को खबर मिली। गुनी विप्रजन बुलाये गए। उपाय आरंभ हुए। राजा बहुत उदास हो गए। वैद्यों ने उसीर जल, कुंकुम आदि का

लेप लगवाया, खस का पंखा झलवाया, चन्दन लगवाया, भानुकिरणों के लिये पूरा अवरोध बनवाया; किंतु कुछ लाभ न हुआ। एक मास बीत गया। मदनमुदिता नामक चतुर सखी ने कुछ सोचा, राजकुमारी की दशा देखकर उसने प्रेमपीड़ा का अनुमान किया। स्वेद, स्तंभ, रोमांच, वेपथु, स्वरभंग, अश्रुपात, विवर्णता, और प्रलय आदि स्मरदशाओं का रंभा के शरीर में संधान पाकर उसने सखियों से अपनी शंका बताई। सभी रंभा के पास गई। मदन मुदिता ने छलपूर्वक नलदमयंती, कामकंदला, उषा अनिरुद्ध की कथा सुनाई। अंतिम कथा को सुनकर रंभा आकृष्ट हुई। मदनमुदिता ने अपनी कसम दिलाकर चितचोर का नाम पूछा। रंभा ने सूरसेन के रूप का वर्णन किया, स्वप्न की बात बताई, पर नायक का नाम धाम न बता सकी। रंभा का विप्रलंभ अभिलाष, चिंता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता को पार करके निधन की दसवीं अवस्था छूने लगा। लाचार मदनमुदिता रानी के पास गई। सारी बात बताकर उसने यह राय दी कि अनेक चित्रकार देश देशांतर भेजे जायँ, वे सभी रूप गुणवान् राजकुमारों का चित्र बनाकर ले आएँ, इसी बीच मदन ने रंभा को एक बार पुनः दर्शन दिया और यह बताया कि मैं इसी पृथ्वी का निवासी हूँ। मुदिता की राय मान कर रानी ने मंत्री सुमतिसागर को बुलवाया। राजा से छिपाकर अनेक चित्रकार राजकुमारों का चित्र बनाने के लिये भेज दिए गए।

इधर मनभावन प्रिय के चित्र की आशा में रंभा विसूरती रही। उधर विरह में सूरसेन तड़प रहे थे। आँखों से नींद चली गई, अंग से कांति। न उन्हें रात दिन का अंतर मालूम होता था, न सूर्य और चंद्रमा का फर्क जान पड़ता था। जिस दिन से राजकुमार ने स्वप्न में रंभाकृति रति को देखा उसी दिन से विरह वृक्ष अंकुरित होने लगा। नैनों के जल से वह सींचा जाता रहा और दिन प्रतिदिन बढ़ते बढ़ते आज ऐसा हो गया कि उसमें वियोग के फल लग गए। राजकुमार के मनवर्ती मित्र उनकी यह दशा देखकर अतिशय खिन्न हो गए। राय रघुवीर आदि राजपुत्रों ने बहुत प्रकार समझाया। स्वप्न की निस्सारता के उपदेश दिए, किंतु कोई लाभ न हुआ। कुमार के मनो-विनोद के लिये राजकौतुक किए गए। लक्ष्यवेध, मृगक्रीड़ा आदि कई तरह के खेल तमाशों में चित्त को भुलाने का प्रयत्न किया गया, पर सब व्यर्थ। राजा सोमेश्वर ने गुनी पंडितों को बुलाकर वैराग्यजनक उपदेश दिलवाए पर उनसे भी कुछ शांति न मिली। कुँवर के शरीर में बिरह उद्वेग नाना प्रकार से

प्रकट होने लगा। शरीर छीजने लगा, मन मलिन रहने लगा। इस प्रकार एक वर्ष और छः महीने बीत गए। तभी देश देशांतर के राजकुमारों का चित्र बनाते हुए बुद्धिविचित्र नामक चित्रकार वैरागर पहुँचा। राजधानी की सुषुमा देखकर वह ठगा सा रह गया। नगर प्रवेश करते समय अनेक सगुन हुए। उस दिन वह देवदत्त ब्राह्मण के घर ठहरा। देवदत्त राजभवन के पुजारी थे, उन्होंने राजकुमार की दुःखद अवस्था का वर्णन किया। स्वप्न की बात बताई। बुद्धिविचित्र को रंभा की ऐसी ही अवस्था का स्मरण आया 'सूर हरहिंगो पीर' की भविष्यवाणी याद पड़ी और उसने देवदत्त से राजकुमार को दिखाने का आग्रह किया। एकांत में बुद्धिविचित्र ने राजकुमार से उनके रोग का कारण बताया। राजकुमार चैतन्य होकर बैठ गया। चित्रकार ने रंभा की अनुकृति बनाकर दिखाया। चित्र में आठ सखियों के साथ रंभा बैठी थी। राजकुमार ने देखते ही पहचान लिया। वह चित्र देखकर मंत्रमुग्ध ताकता रह गया। नैनों से चित्र अलग न कर पाता, कभी हृदय लगा कर शांति पाता। अंत में उसने अपने मित्र का नाम ग्राम पूछा। चित्रकार ने कहा कि यह राजकुमारी रंभा है जो चंपावतिनरेश विजयपाल की एकमात्र कन्या है। बुद्धिविचित्र ने रंभाजन्म, लग्नफल आदि की बातें बताई। एकादश वर्ष में यौवनांकुर की स्थिति बताई और उस रात के स्वप्न का हाल कहा जिसके कारण राजकुमारी विरह वेदना से अतिशय संतप्त हुई। मदनमुदिता आदि सखियों की परेशानी का वर्णन किया और वे सब बातें बताई जिनके कारण देशदेशांतर में चित्रकार भेजे गए। बुद्धिविचित्र ने राजकुमार को सौगंध दिलाई कि यह भेद किसी से न कहें क्योंकि यदि राजा विजयपाल को पता चला तो वे कन्या को गंगा में बहा देंगे। उसने राजकुमार का एक चित्र बनाया और चंपावती लौट जाने की आज्ञा माँगी। राजकुमार बहुत दीन भाव से बुद्धिविचित्र को बिदा करने के लिये तत्पर हुए। बुद्धिविचित्र ने कहा कि राजा विजयपाल शीघ्र ही सुतास्वयंबर का अनुष्ठान करेंगे, तब कुमार को राजमर्यादा के साथ चंपावती आकर प्रिया का बरण करना चाहिए। शीघ्रता में काम बिगड़ जाने का अंदेशा है। चलते वक्त कुमार ने बुद्धिविचित्र को रंभा के नाम एक पत्र और अपनी नामांकित मुद्रिका भेंट दी तथा कलाकार को बहुमूल्य उपहार दिए।

बुद्धिविचित्र चंपावती पहुँचा, वहाँ वह मंत्री सुमतिसागर से मिला। दोनों साथ साथ अंतःपुर के वहिः द्वार तक गए। मुदिता को बुलाकर चित्र

पत्र और मुद्रिका राजकुमारी के पास भेज दी गई। रानी ने मुदिता से प्रसन्न-कारक वार्ता सुनकर राजा से सुतास्वयंवर करने के लिए आग्रह किया। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक रानी की बात मान ली और राज्यमंत्री को स्वयंवर रचने की आज्ञा दी। राजनिमंत्रण लेकर अनेक अनुचर देशदेशांतर के नरेशों को सूचना देने के लिये चल पड़े। विजयपाल के राजभवन के सामने तम्बू-कनातों की भीड़ लग गई। अनेक प्रकार की साज सामग्री एकत्र होने लगी।

इधर रंभा की सखियाँ उसे व्यवहारकुशलता का उपदेश देने लगीं। कोई प्रिय को रिझाने और वशीभूत करने का उपाय बताती। कोई शृंगार के नये नये और आकर्षक तरीके। पहले देवता और गुरुजन का पूजन सिखाया। फिर शील की शिक्षा दी। लज्जा, पतिसेवा, आदि के नियम बताए। रूप उदित ने मनोहर रूप की सुरक्षा के उपाय बताए। नारीसुलभ गुणों की व्याख्या की गई। रंभा ने संस्कृत और प्राकृत काव्य की शिक्षा ली। रूपक और छंदभेद सीखे। संगीत का ज्ञान पाया। सौगंधिक, तांबूल, पुष्पहार आदि बनाने की कलायें सीखीं। वशीकरन का मूल गुर नम्र वचन है, इसलिये मधुर बोलने की राय दी गई। कोक कला का भी पूरा उपदेश मिला। मदन के प्रमुख स्थान और उसको उद्दीप्त करने के ढंग बताए गए। चौरासी मुद्रायें बताई गई। प्रिय के अप्रिय वचनों को भी सह जाने की संमति मिली। प्रेम करके उराहना देना उचित नहीं है इसलिये यदि प्रिय सिर पर 'तरवार' दे तो उसके पद पर 'सिर वार' देने की शिक्षा मिली।

इधर सूरसेन ने मंत्री से विजयपाल द्वारा आयोजित स्वयंवर की सूचना देते हुए वहाँ जाने की इच्छा व्यक्त की। मंत्री गुनगंभीर राजकुँवर के संकेत पर राजा सोमेश्वर के पास गए और उन्हें विविध प्रकार समझा कर राजकुमार को चंपावती भेजने के लिये तैयार कर लिया। वैशाख महीने के कृष्णपक्ष की पंचमी तदनुसार पुष्य नक्षत्र गुरुवार के दिन विजयप्रयाण का निश्चय हुआ। पुत्र को विदा करते समय रानी कमलावती का कंठ भर आया।

सूरसेन की सेना चली। बाजों की आवाजों से दिगंत भर उठा। बाँसुरी, शंख, शहनाई की आवाजें गूँजने लगीं। झूमते हुए मदमंत्त हाथी चले। जिनके सिंदूरमंडित कुंभ पहाड़ के समान लगते। काले काले हाथियों के दाँत बादल में उड़ती बग-पाँति की तरह प्रतीत होते। गंडस्थल से नीर झरता जिस पर भौंरे गुंजार कर रहे थे। दूसरी और ताजी जाति के, तीव्र गतिवाले

तुरंगों पर पलानें (काठी) कसी गईं। अरबी, तुर्की, आदि तरह तरह के लाल, श्वेत, दुरंग, सुरंग घोड़े हिरनोंकी तरह चौकड़ी भरते हुए चले।

सूरसेन अपनी सेना के साथ विस्तृत पथ पार करते हुए मानसरोवर के तट पर पहुँचे। जिसके किनारे बहुत सुंदर और ताल-तमाल-साल के पेड़ों से आच्छादित थे। कमल फूले थे और भौंरे गुंजार कर रहे थे। दूसरे दिन एकादशी थी, इसलिये कुँवर ने वहाँ विश्राम-स्नान करने का निश्चय किया। उसी दिन अर्द्धरात्रि के बाद अप्सरायें वहाँ जल-क्रीड़ा करने के लिये आईं। नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित वे नारियाँ ऐसी लग रही थीं मानो विद्युत् दमक उठी हो। चाँदनी रात थी। नील गगन, नील जल और नील कानन की नीली छाया। आकाश में उजले तारे थे और कानन में मालती, बेला और कुंद के फूल। ये अप्सरायें रंभा की सलाह मानकर क्रीड़ाकमलों से खिलवाड़ करती हुईं, मंदिर की ओर बढ़ीं, जहाँ उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा कि एक अनुपम सुंदर युवक बहुमूल्य पलंग पर सोया हुआ है। सूरसेन का आकर्षक रूप देख कर अप्सराएँ ठगी सी रह गईं, तभी उन्हें अपनी अभिशप्ता सखी कल्पलता भी याद पड़ी जो इंद्र के शाप से स्वर्गच्युत होकर पृथ्वी पर ब्रह्मकुंड नामक स्थान पर निवास करती थी। अप्सराओं ने सोचा कि यदि इस प्रकार के अनंगमोहन रूप वाले युवक से कल्पलता का विवाह हो जाय, तो निश्चय ही अभिशाप वरदान में बदल जाएगा। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर अप्सराओं ने पलंग उठाया और उसे आकाश मार्ग से ब्रह्मकुंड की ओर ले चलीं। अप्सराओं द्वारा परिगृहीत वह पलंग आकाश में यों घूम रहा था, जैसे इलात चक्र डोल रहा हो। कल्पलता के पास पहुँचकर अप्सराओं ने उसे जगाया और कुशल समाचार के बाद उसे उधर आकृष्ट किया जहाँ पलंग पर एक मदनमूर्ति लेटी थी। अप्सराओं ने सूरसेन और कल्पलता का गंधर्व-रीति से विवाह कराना निश्चित किया और तदनुरूप साज-सामान एकत्र करने लगीं। उन्होंने हाथ में कंगन बाँधा और प्रेम की गाँठ कस दी। रात्रि का अंत समीप आया जान सुरसुंदरियाँ नवदंपति को प्रेमक्रीडा के निमित्त एकांत में छोड़ कर गगन में उड़ चलीं। कल्पलता की सखी ने उसका सभी प्रकार शृंगार किया। षोडस शृंगार और द्वादस आभरण से अलंकृत होकर वह प्रियमिलन को चली। प्रिय को जगाकर उसकी आरती उतारी, सखियों ने मंगल गान गाया। सूरसेन कल्पलता के रूप को देख कर आश्चर्य में पड़ गए। उन्हें लगा कि वह निश्चित ही रंभा है। जो मनुष्य के मन में बसता है,

वही नेत्रों से दिखाई पड़ता है। कामोदीप्त तरुण-युगल ने एक दूसरे को आलिंगन में ले लिया। दोनों की सुरति केलि के वर्णन में कवि पुहकर ने अपनी काम कला विदग्धता का संपूर्ण परिचय उपस्थित कर दिया। स्मर क्षेत्र के उस अद्‌भुत युद्ध का वर्णन कवि ने पूरी सफाई के साथ प्रस्तुत किया है। सुरति के बीच में कल्पलता की 'चतुराई' से कुँवर के मन में शंका उपजी कि यह रंभा नहीं। इसी लिये कुमार ने उसका परिचय पूछा। कल्पलता ने बताया कि वह इंद्रसभा की एक प्रसिद्ध अप्सरा है। एक बार नृत्य के समय राजा नल को देखकर वह विमोहित हो गई, नृत्य में बाधा पड़ी। लय तान भूल गई। इंद्र ने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया पृथ्वीवास का दंड मिला। अश्रुजल से वस्त्र भींग गए। इंद्र का हृदय द्रवित हुआ और उन्होंने कहा—मनुष्य तेरा पति होगा, जो सुप्रसिद्ध नरेश होगा। मेरी कृपा से तुझे कभी सुख और भोग में कमी न होगी।' मानसरोवर के किनारे आपको देखकर अप्सरा सखियों को मेरी याद आई, और वे आपको यहाँ उठा लाई। कल्पलता के पूछने पर कुमार ने अपना परिचय दिया। बाद में कुमार के आग्रह पर कल्पलता ने अपनी अप्सरा-सखियों से स्वर्गीय नृत्य दिखवाया। एक दिन सोये हुए कुमार के गले में रत्नजटित 'उरवसी' में रंभा का चित्र देख कर कल्पलता ने इसका भेद पूछा। कुमार ने बात छिपा ली। कहा कि यह चंपावती राजा की कन्या है, जिसका स्वयंवर होनेवाला है। एक चित्रकार ने यह चित्र दिया था। कुछ दिनों के बाद कुमार रंभा की याद से संतप्त होकर एक साधु-मंडली के पास गया जहाँ उसने चंपावती का मार्ग पूछा। पता चला कि चंपावती बहुत दूर है और रास्ता बड़ा विकट है। कुमार ने योगी का वेश धारण किया, नाथ-सिद्ध का रूप बनाकर गंतव्य की ओर चल पड़ा। नदी, पहाड़, जंगल को पार करता चलता गया। उसकी वीना की आवाज सुनकर हिंसक पशु मुग्ध हो जाते। हिरन और सर्प साथ साथ चलने लगते। सूरसेन गर्मी-शीत की बिना परवाह किए शंकर का ध्यान करते हुए चंपावती को चलते गए।

इधर प्रातःकाल होने पर जब वैरागर के मंत्री गुनगंभीर ने शैया के समय कुमार को लापता देखा तो बड़ी चिंता में पड़ गए। सारी सेना में कुहराम मच गया। सभी विलख विलख कर रोने लगे। मंत्री ने सोचा कि हो न हो कोई अप्सरा कुमार को उड़ा ले गई। उन्हें चित्ररेखा की याद आई जो अनिरुद्ध को उठा लाई थीं। मधु और मालती की कथा भी याद पड़ी और

यही सोच कर उन्होंने सेना को चंपावती की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा दी ।

बहुत दिनों तक मार्ग की पीड़ा झेलते हुए कुमार सूरसेन एक अद्भुत अनूपम बाग में पहुँचे । वहाँ चतुर माली थे और पौधों को सींचने के लिये रहँट चल रहे थे । नाना प्रकार के फल-फूलवाले वृत्त थे, सामने स्वच्छ जल का रमणीय सरोवर था, जिसके किनारे पत्थरों के बने थे । वहाँ नाना प्रकार की हाव-भाववाली सुंदरियाँ जल भर रही थीं । सूरसेन ने वहीं बैठ कर बीना बजाना आरंभ किया जिसे सुनकर मृग-मीन अधीन हो गए । कुवँर का रूप देख कर तरुणियाँ वैचित्य से भर उठीं । सूरसेन ने चंपावती नगरी में प्रवेश किया, उनके आने की खबर जल भरनेवालियों के द्वारा पहले ही फैल चुकी थी । अब उनकी मादक बीना की ध्वनि ने तो सब का चित्त ही चुरा लिया । पुरवासियों से विश्राम योग्य स्थान का पता पूछते हुए कुमार शिव-मंदिर पहुँचे, वहाँ उन्होंने शिव की स्तुति की ।

इधर लग्न का समय निकट आने लगा, देश देश के महीप कुमारी के स्वयंवर के निमित्त आने लगे । सूरसेन का कोई संदेश न मिला । सूरसेन की वीणा के स्वर नगर पर निरंतर इंद्रजाल डाल रहे थे, कोई उस प्रभाव से मुक्त न रह सका । रंभा की सखी गुनमंजरी इस अद्भुत योगी का रहस्य जानने आई । सूरसेन ने उसे देखकर और विचक्षण समझ कर एक गाथा पढ़ी जिसमें विरह की दुःसह अवस्था का वर्णन था । गुनमंजरी ने भेद समझा और राजकुमारी की लज्जा तथा मर्यादा की सीमाओं का वर्णन किया । गुनमंजरी दौड़ी दौड़ी अंतःपुर गई जहाँ उसने सारा भेद मदनमुदिता को बताया । मदनमुदिता ने योगी का रंग ढंग सुन कर सोचा कि हो न हो यह छद्म वेश में कुमार सूरसेन ही हैं । रंभा की आज्ञा पाकर मदनमुदिता सूरसून से मिलने चली । रंभा की अष्टसखियाँ एक साथ शिव-मंदिर पहुँचीं । उसने कुमार से रंभा के प्रणय की बात कही; पर कोई भी योगी-नृपति नहीं चाहता, ऐसी शंका भी व्यक्त की । कुमार ने बुद्धिविचित्र का पता पूछा और मुदिता से राजकुमारी से मिलने की आकांक्षा व्यक्त की । मुदिता ने रंभा से कुमार के आने का समाचार दिया और बताया कि सेना पीछे आ रही है, चिंता की कोई बात नहीं है, साज सामान में कोई कमी नहीं है । रानी पुष्पावती की आज्ञा से रंभा विवाह के पहले शिवकृपा-याचना के लिये मंदिर पहुँची । चंपावती की सेना कुमारी के अंगरक्षक के रूप में मंदिर के

चारों तरफ खड़ी थी। प्रथम मिलन के अवसर पर दोनों अवाक् एक दूसरे को देखते रह गए। मालती के कुंज की आड़ में खड़ी वह बाला नैन से देखने पर नैन में समाती प्रतीत होती। रंभा लौटी तो कुमार बेहोश हो गए। मदनमुदिता ने सावधानी से सब काम करने की सलाह दी। कुमार उसी समय बैरागर से आती हुई अपनी सेना और मित्रों आदि से मिले। मंत्री ने कुमार को अच्छी प्रकार केसर आदि के उबटन से मलवाया और स्नान कराया। बैरागर की सेना चंपावती नगर की ओर चली और सरोवर के किनारे विश्राम किया। चंपावती नरेश ने मंत्री को बुलाकर सूरसेन और उनकी सेना के लिये सब प्रकार के स्वागत के आयोजन की आज्ञा दी।

चंपावती नरेश ने शुभ दिन पर मंडप रचा कर कन्या के स्वयंबर के लिये आगत नरेशोंका बुलावा दिया। रंभा की सखियों ने उसका सब प्रकार से मंडन किया। रंभा की नखशिख सुंदरता देखते ही बनती थी। शरीर की चंपक कांति लाल चूनर में चौगुनी बढ़ रही थी। ऐसी अनुपम अप्सरा रूपमोहिनी तरुणी निश्चय ही बड़ी तपश्चर्या के बाद उपलब्ध होती है। उधर मंडप में अनेक राजा निरंतर आते जा रहे थे। उन अनेक नरेशों के बीच बैरागर के कुमार सूरसेन का तेज सूर्य के समान उद्दीप्त हो रहा था। कुमारी ने मंडप में प्रवेश किया। अनेक नरेशों के सामने से होती हुई वह सूरसेन के सामने पहुँची और गले में जयमाल डाल कर सूरसेन के पैरों में झुक गई। सूरसेन और रंभा का विवाह सभी रीतियों के साथ आनंद और उल्लास के बीच सम्पन्न हुआ।

चंपावती नरेश ने कन्या को पराई होते देख सूरसेन से याचना की कि वे कृपापूर्वक तब तक चंपावती में रहे जब तक रंभा पुत्र का मुँह न देख ले। विजयपाल ने उस भावी पुत्र को संपूर्ण राज्य संकल्प कर दिया। मंत्री ने राजा की आज्ञा मानकर कुमार से चंपावती रहने का आग्रह किया। कुमार रात्रि में शयन के लिए चित्रशाला में गए जो अनेक प्रकार के कलापूर्ण चित्रों से भरी हुई थी। प्रथम समागम के समय आशंकिता रंभा सखियों के द्वारा छलपूर्वक चित्रशाला में कुमार के पास भेज दी गई। जीवन की सारी कामनाएँ पूर्ण हुई और कष्टकारक विरह की दुःसह पीड़ा मिलन के क्षणों में तिरोहित हो गई। बाद में अपने मित्रों से कुमार ने कल्पलता से अपने विवाह की कहानी सुनाई; पर रंभा से इसे छिपा रखा।

प्रिय वियोग में कल्पलता की रातें दूभर हो गईं। एक के बाद एक महीने बीतने लगे। बादल आए, घिरे और बरसे। पृथ्वी चारों तरफ हरियाली

से ढँक गई। संयोगिनी नारियों ने अपने अपने प्रियजनों के साथ हिंडोले सजाए, पर कल्पलता विरह के झूले में झूलती रही। भादों की काली रातें बीतीं, पर पिय नहीं आया। आश्विन में पंथ बंध खुल गए। सुहानी चाँदनी छाने लगी, कार्तिक में दीपमाला सजी, पर कल्पलता का घर अंधियारे में डूबा रहा। अंत में लाचार होकर उसने विद्यापति नामक शुक को अपना विरह बताकर चंपावती भेजा। ऐसे विलक्षण शुक को बाग में देखकर रंभा ने पकड़ लिया और बड़े प्यार से सोने के पिंजरे में दूध भात खिलाकर रक्खा। कीर ने नायक के 'विसासी' होने का वर्णन करते हुए एक गाथा पढ़ी। रंभा को कुछ शक हुआ, और उसने पूरा विश्वास दिलाकर पति से इसका रहस्य पूछा। कल्पलता की कहानी सुनकर रंभा का जी भर आया और उसने कुमार से आग्रह किया कि वह कल्पलता को शीघ्र ले आए। शिकार खेलने का बहाना करके कुमार ने मंत्री द्वारा विजयपाल से आज्ञा माँगी और सेना लेकर ब्रह्मकुंड को चल पड़ा। साथ में परिचारिकाएँ और रंभा भी थी। नाना प्रकार की वनक्रीड़ा करते हुए कुमार माया नगर की सीमा पर पहुँचे, जहाँ मदन का राज्य था। उसने आगे जाने का मार्ग देने से इन्कार किया। जिससे दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध छिड़ गया। अविजेय राजा मदन कुमार सूरसेन के हाथों मारा गया और सूरसेन ने युद्ध में कटे अनेक मुंडों का माल्यार्पण करके शिव को प्रसन्न किया। कल्पलता और रंभा की भेंट यों हुई जैसे दो बहनें परस्पर मिलीं। कुमार अपनी दोनों रानियों के साथ चंपावती लौट आया। समय पाकर रंभा के गर्भ से कुमार चंद्रसेन ने जन्म लिया, जिसकी खुशी में याचक अयाचक बने। कल्पलता भी ने पुष्कल दान दिए।

बेटे की जुदाई में राजा सोमेश्वर और रानी कमलावती का बुरा हाल था। वे बार बार कलियुग को कोसते जिसमें बेटे जन्मदाता माँ बाप को भूलकर पत्नी में रम रहते हैं। उन्होंने पुरोहितपुत्र पुरुषोत्तम को संदेश लेकर चम्पावती भेजा, ताकि वे माँ बाप की अवस्था बताकर कुमार को शीघ्र वैरागर वापिस ले आएँ। माँ बाप की पुकार पर कुमार ने राजा विजयपाल के बहुत आग्रह पर भी एक दिन के लिये चंपावती में और रुकना स्वीकार न किया। रंभा और कुमार की बिदाई के समय सारा राज परिवार बिलख बिलख कर रो पड़ा। रंभा सखियों से मिलीं, रोई और पतिगृह के लिये चल पड़ी। शिविका में रानियाँ चलीं, कुछ चुने हुए जन साथ हुए, बाकी सेना और दहेज सामग्री पीछे आने के लिये छोड़

दी गई। सूरसेन वैरागर पहुँचे। रानी कमलावती का आँचल स्नेह दूध से भींग गया। सूरसेन ने अपने और रानियों के लिये एक अद्भुत महल का निर्माण कराया जिसमें रुक्म के कोट थे, सोने की दीवालें। स्फटिक का सरोवर, मूंगे के किनारे। मर्कत की सीढ़ियाँ। रानियों के मध्य सुशोभित कुमार महल में आए तो चंद्रमा सूर्य के युगपत् उदय से कमल कुमुद वन में विभ्रम छा गया। कमलावती रानी का भाग जाग गया था जिसके घर ऐसी बहुयें आईं जिन्हें देखने के लिए नगर की ग्यारह सौ बावन प्रकार की नायिकाएँ उमड़ पड़ीं। सूरसेन ने पिता की आज्ञा से पश्चिम दिशा को भी जीत लिया इस प्रकार वे चक्रवर्ती नरेश हो गए। कुमार के चार लड़के थे। जब सूरसेन ने तीस वर्ष तक युवराज पद का भोग कर लिया तो राजा सोमेश्वर की मृत्यु हो गई। राजा की मृत्यु से कुमार बहुत दुःखी हुए; परन्तु किसी प्रकार धैर्य धारण किया। राजकार्य सँभाला। उनके शासनकाल में प्रजा सुखी थी, कहीं भी रोग दुःख न था। रंभा ने चंद्रसेन को बुलाया, जिसे बचपन ही में वह चंपावती छोड़ आई थी। सूरसेन के राज्य में कला उन्नति के शिखर पर थी। एक बार एक नटमंडल आया। जिसका खेल देखने के लिए प्रजा उमड़ पड़ी। बाइस खंड महल में यह खेल रचाया गया। ऊपरी खंड में भीड़ बढ़ने लगी। बाद में ऊपर के लोग डर कर नीचे आये और सभी खंडों में एक अद्भुत गणित से बाइस बाइस पंक्तियों में समान संख्या के लोग खड़े हो गए। एक बार दूसरे गुनी नट ने सृष्टि की उत्पत्ति का सारा विधान नाटक में दर्शाया जिसे देखकर और गुरु चिंतामणि का उपदेश सुनकर राजा सूरसेन को वैराग्य हो आया और उन्होंने सारा राज्य पुत्रों में बाँट कर चिंतामणि को संग ले रानियों के साथ काशीवास का निश्चय किया।

———

हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यपरंपरा और रसरतन

हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यपरंपरा न सिर्फ नाना वैविध्यपूर्ण सामग्री से परिपुष्ट है बल्कि उसके भीतर तरह तरह के देशी-विदेशी प्रभावों की अद्भुत सम्मिश्रित रंगीनी भी है। इसी लिये हिंदी प्रेमाख्यानक परंपरा के अध्येता के लिये इसकी पृष्ठभूमि में वर्तमान और इसके ऋक्थ-रूप में स्वीकृत संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश परंपराओं तथा फारसी प्रेमाख्यानकों का अध्ययन भी अनिवार्य हो जाता है। इस प्रेम या प्रणय के मूल में काम अथवा इच्छा शक्ति का विलास है। यही कामशक्ति महद् उद्देश्यों से परिचालित होकर जीव के भावजगत् में पूर्णकाम ईश्वरी सत्ता का आविर्भाव कराती है और यही गलत या निम्न उद्देश्यों से प्रेरित होकर मिथ्या काम या बौद्ध परिभाषा में 'मिच्छाचार' का रूप धारण करती है। भारतीय ऋषि इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे इसी कारण उन्होंने कामशक्ति को हेय या आवर्ज्य मान कर कभी भी उसकी कदर्थना नहीं की। उन्होंने अमोघ सृष्टिकारक शक्ति के रूप में इसकी वंदना की—

कामस्तग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
(ऋ० १०।१२९।४)

कामशक्ति को हेय रूप में, बाद में, इसके गलत अर्थ की व्याप्ति और मिच्छाचार से पीड़ित समाज के प्रति शुभेच्छा की भावना से प्रेरित होकर, चित्रित किया गया। आवर्जनामूलक उपदेशों ने हमारे जीवन को कितना पंगु और स्थिर अथवा निष्प्राण कर दिया, यह एक दूसरा प्रश्न है। गीता ने 'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ' (७।११) कह कर एक बार पुनः समाज में प्रणय के सही रूप और उसकी अदम्य जीवनी शक्ति को प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया। रसरतनकार काम की शक्ति और उसके अनंत प्रभाव से पूर्ण परिचित है। तुलसी ने योगअग्नि से ज्ञानदीप प्रदीप्त कर मदादिक विकारों के विनाश का उपदेश दिया। उत्तरकांड में उन्होंने सात्त्विक श्रद्धा धेनु के दूध से विराग के नवनीत को प्राप्त करने की पद्धति बताई है और उसे पूरी तरह बाती आदि से सजा कर जलाने का विधान किया है।

एहि विधि लेसै दीप, तेज रासि विज्ञानमय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब ॥

कवि पुहुकर ने भी एक दीप जलाया है···उनका भी एक उद्देश्य रहा है। उनके सामने भी मनुष्य के जीवन का और उसके उन्नयन का प्रश्न रहा है। किंतु वे आवर्जना की पद्धति के द्वारा मनुष्य जीवन को मंगलमय बनाने के पक्ष में न थे। इसी लिये उसके जीवन में एक नई ज्योति देने के लिये उन्होंने 'मदनदीप' जलाने का उपक्रम किया। उन्होंने लिखा—

बानी बाति सनेह दै, गुन गाहकन समीप।
मरन अग्नि उद्दीप कर, किय कवि पौहकर दीप ॥
(आदि खंड १६)

वे जानते थे कि जो परम सत्ता ब्रह्मा के रूप में सृष्टि का सृजन करती है, विष्णु के रूप में पालन करती है, रुद्र के रूप में विनाश करती है वही काम रूप से क्रीड़ा करती है इसी कामरूप महाक्रीडा का वर्णन कवि का लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये अनेक प्रसिद्ध कथाओं में से एक को कवि ने अपनाकर अपने उद्देश्य की पूर्णता का प्रयत्न किया—

ब्रह्म रूप सिरजै जगत, विष्नु रूप प्रतिपाल।
काम रूप क्रीड़ा करी, रुद्र रूप महाकाल ॥
काम रूप क्रीडा करै, ते कलि कथा अनेक।
मन भोरौ, थोरी सुमति, पौहकर वरनत एक ॥
(आ० खं० १६-१७)

इस दृष्टि से रसरतनकार बाणभट्ट के दृष्टिकोण से अधिक प्रभावित प्रतीत होता हैं। बाणभट्ट ने कादंबरी में काम की अदम्य शक्ति को स्वीकार कर उसे तपःपूत बनाने का उपदेश दिया। कादंबरी के एक सांस्कृतिक अध्ययन में इसी बात की ओर लक्ष्य करते हुए डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है—'मन की अप्रतिहत शक्ति काम है। सृष्टि की कामना ही सिसृक्षा है। वही मन का रेत या वीर्य है। काम विश्व का मूल है। कामतत्त्व ही कादंबरी है। मन सोम है। काम सुरा है। कादंबरी काममयी सुरा है। कामशक्ति के रूप में मन की सबसे दुर्धर्ष अजय्य शक्ति है। चंद्रापीड़ सोमतत्त्व है। मदिरा की पुत्री कादंबरी सुरा है। पारमेष्ठ्य शक्ति समुद्र के मंथन से सोम और सुरा

दोनों का जन्म होता है। सुरा वारुणी है। सोम दैवी है। सुरा ही तपाने से सोम में परिणत होती है। सुरा मादक रूप है। सोम उसी का स्वच्छ प्रशांत रूप है, सोम का सुराभाव केवल तप द्वारा ही प्रशांत बनता है।[1]

भारतीय अर्थात् हिंदू प्रेमाख्यानकों के इस सही रूप को समझने का प्रयत्न नहीं किया गया। सूफियों के रहस्यवाद ने हमें इतना आकृष्ट किया कि हमने अपने प्रेमकाव्यों को सस्ते स्तर की प्रेमकथाएँ मान लीं और यह एक मिथ्या धारणा बना ली कि प्रेम के भीतर से ईश्वरीय सत्ता के संपर्क का रास्ता विदेशी प्रभाव की देन है। यह सही है कि भारतीय प्रेमाख्यानकों में रहस्यात्मक तत्त्व (मिस्टिसिज्म) की प्रधानता नहीं दिखाई पड़ती; किंतु प्रेम का जो रूप सूफी प्रेमाख्यानकों में प्रेम के उन्नयनशील रहस्यवादी पद्धति के बीच से प्रस्फुटित होता था, वह हिंदू काव्यों में प्रेम की नैसर्गिक महत्ता और उसके व्यापक प्रभाव को सही ढंग से स्वीकार करने के कारण अपने आप आविर्भूत हो जाता था। कालिदास ने प्रेम के विषय में जब यह कहा था कि शरीर के प्रति स्थूल आसक्ति प्रेम का विषय नहीं है, बल्कि आत्मिक सौभाग्य प्रेम का उद्देश्य है, तो उन्होंने भारतीय परंपरा में स्वीकृत प्रेम की महत् शक्ति की घोषणा की थी—

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥
(कुमार० ५।१)

वस्तुतः भारतीय प्रेमाख्यान सर्वदातपःपूत काम अथवा प्रेम की अभ्यर्थना करते हैं। इन काव्यों में प्रेमी समूची स्थूल तथा मानसिक बाधाएँ पार करता हुआ जीवन में अद्वितीय एकाग्रता और उत्सर्ग का परिचय देता हुआ अपने प्रणय की अग्निपरीक्षा में सफल होने का प्रयत्न करता है। यह प्रणय आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'अपना मधुर और अनुरंजनकारी प्रकाश जीवनयात्रा के नाना पथों पर फेंकता है। प्रेमी जगत् के बीच अपने अस्तित्व की रमणीयता का अनुभव आप भी करता है और अपने प्रिय को भी कराना चाहता है। प्रेम के दिव्य प्रभाव से उसे अपने आसपास चारों ओर सौंदर्य की छाया

१. कादंबरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, चौखंभा विद्याभवन, संवत् २०१४, पृष्ठ ३४५–४६।

फैली हुई दिखाई पड़ती है, जिसके बीच वह बड़े उत्साह और प्रफुल्लता के साथ अपना कर्म सौंदर्य प्रदर्शित करता है। यह प्रवृत्ति इस बात का पूरा संकेत करती है कि मनुष्य की अंतःप्रकृति में जाकर प्रेम का जो विकास हुआ है वह सृष्टि के बीच सौंदर्य विधान की प्रेरणा करनेवाली एक दिव्य शक्ति के रूप में'। (चिंतामणि, प्रथम भाग, ८९)

प्रेम के इसी रूप को लेकर हिंदू प्रेमाख्यानक कवि अपने काव्य का सृजन करता है। किंतु सर्वत्र इसी आदर्श का पालन किया गया है, ऐसा कहना ठीक न होगा।

भारतीय प्रेमाख्यानक की परंपरा बड़ी पुरानी है। संभवतः उर्वशी और पुरूरवा की कहानी विश्व का प्राचीनतम प्रेमाख्यान है जिसका संकेत ऋग्वेद में प्राप्त होता है। पेजर ने इसे संसार की प्राचीनतम कथा माना है और उनका कहना है कि हंसपरी (स्वान फेयरी टेल्स) कथाएँ, जो संसार के प्रायः सभी भागों में किसी न किसी रूप में पाई जाती हैं, इसी से प्रभावित अथवा विकसित हुई हैं।[1] इस कथा को उपजीव्य बनाकर कई काव्य नाटक आदि लिखे गए। कालिदास का विक्रमोर्वशीय इसी कथा का साहित्यिक क्लासीकी रूपांतर है। नल दमयंती का आख्यान भी बड़ा प्रसिद्ध रहा है। महाभारत के नलोपाख्यान से विकसित होकर संस्कृत में नैषधचरित में तथा बाद में अनेक अपभ्रंश और हिंदी कथा-काव्यों में इसके रूप का निखार विस्तार होता रहा[2]। उषा अनिरुद्ध की प्रेम कथा भी कम आकर्षक नहीं थी। हरिवंश पुराण में इसका सविस्तर वर्णन है। वैसे किसी न किसी रूप में यह एकाधिक पुराणों में वर्णित है। इस कथा का भी परवर्ती काल में बड़ा व्यापक प्रचार था।[3] कवि पुहकर ने इन कथाओं को सुना था, इनके बारे में लिखे हुए आख्यानकों को पढ़ा भी था। उन्होंने इन कथाओं को इस प्रकार स्मरण किया है:—

दमयंती नल प्रीति कहानी, भाषति सरस मधुर मुख वानी।
बहुत अनंद प्रेम गुन गावै, एक एक अच्छर समुझावै॥

---

१. कथा सरित्सागर की भूमिका (दि ओशेन ऑव स्टोरीज़ सन् १९२४, पृ० २४९।)

२. नलदमन (सूरदास) नल चरित्र (मुकुंद सिंह) नलदमयंती चरित्र (सेवाराम) आदि।

३. उषा कथा (रामदास), उषा चरित (मुरलीदास)।

माधव काम की कीर्ति बखानी, जिहि सुनि मन बिसरावै रानी।
उषा कथा जवै अनुसारी, तब चितई भरि नैन कुमारी॥
(स्वप्न० ११८-११६)

माधवानल कामकंदला की कथा पर आधारित अनेक प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गए। इसमें सब से प्राचीन गणपति का कामकंदला है। जो संवत् १५८४ में लिखा गया। १६०० के आसपास किसी अज्ञात कवि ने माधवानल कामकंदला नाम से एक काव्य लिखा जो लखनऊ के याज्ञिक संग्रह में सुरक्षित है। कुशललाभ ने इसी नाम से एक काव्य १६१३ संवत् में लिखा। राजकवि केसि का माधवानल नाटक सं० १७१७ में लिखा गया जिसकी पांडुलिपि साहित्य संमेलन प्रयाग के संग्रहालय में है। दामोदर की लिखी माधवानल कथा १७३७ में रचित हुई जिसे गणपति, कुशललाभ की कंदलाओं के साथ गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज में प्रकाशित किया गया है, इसी ग्रंथ में आनंदधर का लिखा हुआ माधवानल आख्यानम् भी प्रकाशित है। कवि आलम की माधवानल कामकंदला संवत् १६४० में लिखी गई और बोधा कवि ने विरह वारीस संवत् १८०९-१९ में इसी कथा को अपना आधार बनाया। इस सूची से स्पष्ट मालूम हो जायगा कि कामकंदला की कथा मध्ययुग की कितनी लोकप्रिय और आकर्षक वस्तु रही है। इस कथा का आरंभ कब हुआ, इसके विकास का ऐतिहासिक क्रम क्या है, भिन्न भिन्न समय में लिखी गई रचनाओं में यह कहानी सामाजिक परिवेश और जनरुचि के कारण किस प्रकार बदलती गई? ये प्रश्न अद्यावधि अनुत्तरित पड़े हैं। माधवानल कथा के विषय में जो कुछ भी गवेषणा हुई है वह माधवानल कामकला (गायकवाड़ सीरीज XCVIII) की भूमिका और एकाध छिटफुट निबंधों तक ही सीमित है। श्री कृष्ण सेवक कटिनी ने बडौदा के प्राच्य विद्या संमेलन, १९३३ में एक निबंध पढ़ा था जिसमें उन्होंने माधव और कंदला कथा का ऐतिहासिक आधार ढूँढ़ने का प्रयत्न किया था। उनके मत से १२वीं शताब्दी के आरंभ में मध्यप्रदेश के विलहरी (पूर्वनाम पुष्पावती) में माधव का जन्म हुआ। पिता का नाम शंकरदास था। कंदला का जन्म डोंगरगढ़ (खैरागढ़ रियासत) के समीप कामसेन पुरी (पूर्वनाम कामावती) में हुआ।[1] बोधा ने इस कथा के स्रोत के विषय में लिखा है—

१. प्रोसीडिंग्स एंड ट्रैन्जैक्शंस आव द सेवेंथ आल इंडिया ओरिएंटल कान्फरेंस बडौदा, दिसंबर १९३३।

सुन सुभान अब कथा सुहाई। कालिदास बहु रुचि सहँ गाई॥
सिंहासन बत्तीसी माहीं। पुरिन कही भोज नृप पाहीं॥
पिंगल कहँ बैताल सुनाई। बोधा खेत सिंह सहँ गाई॥
रुचिर कथा सुनु हे दिल माहिर। इश्क हकीकी है जग जाहिर॥

सिंहासन बत्तीसी के सभी प्रकार के पाठों का जब तक वैज्ञानिक रीति से अनुसंधान नहीं किया जाता, तब तक यह स्रोत भी आनुमानिक ही रहेगा। वैसे ऊपर के पद से यह स्पष्ट है कि बोधा कवि ने 'सिंहासन बत्तीसी माँही' यह कथा देखी थी।

जो भी हो कामकंदला पर आधारित आख्यानक मध्ययुगीन संस्कृति के बदलते हुए रूप को स्पष्ट करने में बहुत सहायक हैं। इनकी शैली, भाषा, वर्णनपद्धति, कविसमय, रूढ़ियाँ, कथानक अभिप्राय, सामाजिक परिस्थितियाँ और सांस्कृतिक परिवेश सभी हमारे सामने १२ वीं शताब्दी से १८ वीं तक के भारतीय जीवन में शनै शनैः उपस्थित होते हुए परिवर्तनों के अभिसाक्ष्य हैं। कवि पुहुकर ने इस कथा पर आधारित आख्यानकों को देखा था, क्योंकि बहुत सी रूढ़ियाँ जो गणपति और कुशललाभ के आख्यानकों में वर्तमान हैं, पुहुकर ने भी स्वीकार कर ली हैं। यह सही है कि इन सब का स्रोत इनसे भी पहले वर्तमान भारतीय प्रेमाख्यानकों की सार्वजनिक परंपरा थी, जहाँ से इन सबने प्रेरणा और सामग्री ली, किंतु कुछ विशेष परिस्थितियों के सृजन में पुहुकर ने कामकंदला कथा को अपना उपजीव्य अवश्य बनाया था।

पुहुकर ने तीन और कथाओं का संदर्भ दिया है। मधुमालती, अग्निमित्र यौरावत (इरावती) तथा पिंगला और भरथरी की कथा—

चित्ररेख अनुरुद्ध कौं लाई, जब ऊषा मनमथ्थ सताई।
मधुमालति सौं कुँवर मिलावा, सो कविता गुन गाननि गावा॥
(चंपावती खंड ७८)

चित्रे जहाँ सर्व सर्वानी, परम प्रीति नहिं जात बखानी।
रति रतिनाथ चित्रु पुनि कीन्हा, उषा हित अनरुध मनु लीन्हा॥
चित्रित सकल प्रेम रस प्रीती, माधौ कामकंदला रीती।
अग्निमित्र यौरावत धाता, भरतरि प्रेम पिंगला राता॥
(स्वयंवर खण्ड, २३३-३४)

संस्कृत में महाकवि भवभूति का लिखा मालतीमाधव नामक नाटक प्रसिद्ध है। भाषा में मधुमालती नाम से पहली रचना चतुर्भुजदास कायस्थ की बताई जाती है। जिसका समय डा० माताप्रसाद गुप्त १५५० वि० सम्वत् के करीब मानते हैं। उसके बाद मंझन कवि ने मधुमालती लिखी। मधुमालती अपने समय की बड़ी लोकप्रिय रचना थी जिसका पता जायसी के पद्मावत और बनारसीदास के अर्धकथानक के उल्लेखों से चलता है।[1] मधुमालती का उल्लेख उसमान ने १६७२ सम्वत् चित्रावली में तथा दुखहरनदास ने पुहुपावती (१७२६ सम्वत्) में भी किया है।

उन उल्लेखों के बारे में एक विवाद है कि इन कवियों ने किस मधु-मालती की ओर संकेत किया है। मधुमालती की कथा बहुत व्यापक रूप में लोकप्रिय रही है, और समय समय पर उसमें परिवर्तन भी होते रहे हैं, इस-लिये निश्चित रूप से कुछ कह सकना तो कठिन है। किंतु इतना सत्य है कि पद्मावत के कवि जायसी मंझन के पहले अपनी रचना लिख चुके थे इसलिये उनका संकेत मंझनकृत मधुमालती की ओर नहीं है। मधुमालती के संपादक डा० शिवगोपाल मिश्र ने लिखा है—'यह संकेत (जायसी का) चतुर्भुजदास की मधुमालती की ओर भी नहीं क्योंकि चतुर्भुजदास की रचना के नायक नायिका कथा भर में कहीं वियुक्त वर्णित नहीं हुए। और न नायक कहीं भी योगसाधना करता है। शेष तीनों उल्लेख मंझनकृत मधुमालती की ओर संकेत करते हैं'।[3]

कवि पुहकर भी मधुमालती की ओर संकेत करते हैं और यह संकेत बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। मधुमालती का जिक्र पुहुकर ने एक खास प्रसंग में किया

---

१. साधा कुँवर मनोहर जोगू। मधुमालति कहँ कीन्ह वियोगू॥

—पद्मावत

२. तब घर में बैठे रहैं, जाहिं न हाट बजार।
मधुमालति मिरगावती, पोथी दोइ उदार॥
ते बाँचहि रजनी समै, आवहिं नर दस बीस।
गावैं अरु बातैं करहिं, नित उठ देहिं असीस॥

—अर्धकथानक

३. मंझनकृत मधुमालती, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९५७ पृष्ठ १०

है । रसरतन का नायक सूरसेन अपनी प्रेमिका रंभा के स्वयंवर में जाते समय मानसरोवर के किनारे शिविर डालकर विश्राम करता है । रात्रि में अप्सराएँ वहाँ जलक्रीडा करने आती हैं, और शिविर में सोए राजकुमार के रूप पर मुग्ध होकर उसे अपनी शापग्रस्त मानुषी जन्मप्राप्त सखी कल्पलता के साथ विवाह करने के लिये उठा ले जाती हैं । प्रातः होने पर मंत्री, सामंत और सेनापति चिंतित होते हैं, तब गुनगंभीर नामक मंत्री पूर्वकथाओं में इसी प्रकार की घटनाओं का स्मरण कर इसे अप्सराओं की कारस्तानी बताता है और उदाहरण के लिये उषाअनिरुद्ध और मधुमालती की कथा का जिक्र करता है । हमें अब यह देखना है कि पुहकर के समसामयिक (१६७३ विक्रमी) अथवा उसके पहले के किस कवि या कवियों ने मधुमालती कथा में अप्सराओं द्वारा शय्याहरण का वर्णन किया है । मंझनकृत मधुमालती के अप्सरा खंड में यह कथा आती है, रसरतन का शय्याहरण भी अप्सरा अथवा अछ्छरि खंड में वर्णित है ।

भवभूति के मालतीमाधव नाटक में अप्सराओं द्वारा शय्या अपहरण का कोई दृश्य नहीं है, हाँ प्रेमी प्रेमिका में बिछोह होता है अवश्य, पर किसी दूसरे तरीके से । मालती को अघोरघंट की हत्या का बदला लेने की गरज से कपालकुंडला उठा ले जाती है । नवें अंक में माधव को अपनी प्रिया के बिछोह में जंगल जंगल घूमते दिखाया गया है ।

मधुमालती कथा पर आधारित अनेक काव्य मिलते हैं । मंझन के अलावा इसी कथा पर दक्किनी के सूफी कवि नुसरती ने 'गुलशने इश्क', संवत् १७१४ में, जान कवि ने मधुकर मालती संवत् १६९१ में, बँगला कवि अमीर हमज़ा ने मनोहर मधुमालती संवत् १८५० में, तथा गोविंदचंद्र चट्टोपाध्याय ने मधुमालती संवत् १९०१ में लिखी । ये रचनाएँ रसरतन की परवर्ती हैं । रसरतन से पहले लिखी गई रचना जो प्राप्त है वह चतुर्भुजदास की मधुमालती है, जिसमें शय्याअपहरण का दृश्य नहीं है । पद्मावत में जायसी ने जिस मधुमालती का जिक्र किया है, उसके नायक का नायिका से वियोग हुआ किंतु शय्याअपहरण का संकेत नहीं है, हो भी नहीं सकता था । चतुर्भुजदास की नायक नायिका में वियोग का वह रूप नहीं है जो परवर्ती मधुमालती कथाओं में है । आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि 'मैंने चार ऐसी प्रतियाँ देखी हैं, जिन सबमें (मधुमालती के) नायक का ऐसा नाम लिखा है जिसे खंडावत, कुंदावत, कंडावत, गंधावत, इत्यादि ही पढ़ सकते हैं । केवल एक हस्तलिखित

प्रति (पद्मावत की) हिंदू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में ऐसी है जिसमें साफ मनोहर पाठ है[1]। शुक्ल जी ने यह बात जायसी के मधुमालतीवाले संकेत में नायक के खंडावत नाम के विषय में लिखी है। और इन सभी आधारों पर शुक्ल जी मंझन को जायसी के कुछ पहले रखना चाहते हैं। मंझनकृत मधुमालती के संपादक डा० शिवगोपाल मिश्र शुक्ल जी के इस कथन को निराधार बताते हैं और उनके मत से मंझनकृत मधुमालती का रचनाकाल संवत् १६०२ निश्चित और प्रमाणित है।[2]

इन सब बातों पर विचार करने पर लगता है कि पुहकर ने जिस मधु-मालती का संकेत किया है वह मंझन की हो सकती है। जायसी का संकेत फिर भी समस्या ही बना रह जाता है। पद्मावत की जिस प्रति में मनोहर दिया हुआ है, वह बाद का परिवर्तन भी हो सकता है। यदि जायसी निश्चित ही मंझन की रचना के पहले पद्मावत लिख चुके थे तो 'खंडावत मधुमालती' की कथा का अलग से संधान होना चाहिए···पुहुकर ने शय्या अपहरणवाले दृश्य के संदर्भ में मधुमालती का नाम तो लिया है किंतु नायक का नाम नहीं दिया···शय्याहरण के दृश्य के महत्व को स्वीकार करते हुए मैं रसरतन पर मंझनकृत मधुमालती का प्रभाव मानना आवश्यक समझता हूँ। इस प्रसंग में एक और विवाद चलता है कि परवर्ती कवियों ने मधुमालती के महत्व को स्वीकार करके उसी की ओर संकेत किया—क्या तब तक पद्मावत उतना लोकप्रिय नहीं था। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि पद्मावत के पहले मधुमालती की अधिक प्रसिद्धि थी।[3] इसका कारण बिल्कुल स्पष्ट है। पद्मावत का सूफी रहस्यवादी महत्व जो भी रहा हो, कथा में अलाउद्दीन का प्रवेश और पद्मिनी के अपहरण की जो कुचेष्टा वर्णित है, उसने हिंदू चित्त को रमने नहीं दिया और जायसी ने कहीं भी अलाउद्दीन को उसकी कुचेष्टा के लिए निंदित नहीं किया है। यह बात शुद्ध प्रेमाख्यान को दूषित कर देती है···हिंदू प्रेमाख्यानों में नायक नायिका के बीच बाधा डालनेवाले या तो राक्षस माने जाते रहे हैं या खल। मेरी दृष्टि से जायसी का पद्मावत इसी कारण मध्यकाल के हिंदू

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, छठा संस्करण, २००७ वि० पृष्ठ ९८; ९९
२. मंझनकृत मधुमालती पृष्ठ १३
३. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ९९

पाठक के मन को, जो विदेशी आक्रमण को अभी भूला न था, अच्छी तरह रमा न सका।

रसरतन में दो अन्य महत्त्वपूर्ण प्रेमाख्यानों का निर्देश है। अग्निमित्र इरावती का आख्यान मध्ययुग में बहुत लोकप्रिय रहा होगा, ऐसा इस संकेत से ध्वनित होता है। किंतु हिंदी में इस कथा पर आधारित काव्य नहीं लिखे गए यह आश्चर्य की बात है।

इरावती अग्निमित्र की दुर्ललित प्रेमिका थी, इसका पता तो कालिदास के मालविकाग्निमित्र से ही चल जाता है। अग्निमित्र अशोकदोहद के समय मालविका से छिपकर प्रेमालिंगन करना चाहता है, इरावती यह देखकर इतना कुपित होती है कि अपनी स्वर्णकांची (करधनी) से राजा को मारने के लिये उद्यत हो जाती है, उस समय राजा गिड़गिड़ा कर कहता है कि आँखों में आँसू भरे, क्रोध से लाल, और अपने नितंबों पर से अनादर के कारण छूटी हुई करधनी से मुझको पीटने को उद्यत यह इरावती ऐसी लग रही है जैसे घनी बदली बिजली गिराकर विंध्याचल को तोड़ना चाहती है—

> वाष्पासारा हेमकाञ्चीगुणेन श्रोणीविम्वादप्युपेक्षाच्युतेन।
> चण्डी चण्डं हन्तुमभ्युद्यता मां विद्युद्दाम्ना मेघराजीव विन्ध्यम्॥
> (माल० ३।२१)

राजा उस करधनीयुक्त हाथ को पकड़ कर कहता है—'हे घुँघराले बालोंवाली, तुम मुझ अपराध करनेवाले को दंड देते देते रुक क्यों गई, इस समय क्रोध के कारण तुम्हारी शोभा और भी बढ़ गई है—

> अपराधिनि मयि दण्डं संहरसि किमुद्यतं कुटिलकेशि।
> वर्धयसि विलसितं त्वं दास जनायाद्य कुप्यसि च॥
> (वही, २२)

हिंदी में इस अद्भुत प्रेमीयुगल के प्रेमकथा को आधार बनाकर स्वर्गीय महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' इरावती नामक उपन्यास लिख रहे थे, जो असमाप्त ही रह गया। इस कथा की ओर मध्ययुग में कवियों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ, यह आश्चर्य की बात है। किंतु कथा लोकप्रिय अवश्य थी, इस ओर संकेत करके पुहकर ने एक अमूल्य आख्यान को विस्मृत होने से बचा लिया है।

भरथरी और पिंगला की कथा को आधार बनाकर कोई काव्य हिंदी में लिखा गया हो, यह मुझे स्मरण नहीं आता। किंतु यह कहानी लोककाव्य का विषय रही है, इसे सभी जानते हैं और आज भी गावों में घूमनेवाले 'जोगी' सारंगी बजा बजाकर इस लोककाव्य को एक अद्‌भुत दर्द-मिश्रित ढंग से गाते हैं और अपनी प्रियतमा से भिक्षा माँगनेवाले योगी राजा भरथरी की वैराग्यपूर्ण बातों से रानी के टूटे हुए दिल की व्यथा को तारों में झंकृत कर देते हैं।

संस्कृत प्रेमाख्यानों की परंपरा का यत्किंचित् संकेत पहले किया जा चुका है। संस्कृत का कथा और आख्यायिका साहित्य भी एक प्रकार से प्रेमाख्यानक ही कहा जा सकता है। बौद्ध और जैन साहित्य में भी इस प्रकार की परंपरा रही है। कट्ठहारि जातक में भी प्रेमाख्यान वर्णित है। राजा ब्रह्मदत्त लकड़हारिन के प्रेम में पड़ जाता है। शुभा की कथा थेरीगाथा में अपना विशेष महत्त्व रखती है। जैन वाङ्‌मय की मल्ली की कथा, तरंगवती, लीलावती, भविसयत्तकहा, मयणपराजय, आदि कथाओं में भी प्रेम तत्त्व की परिपुष्टि दिखाई पड़ती है।[1]

इस परंपरा में सूफी संतों के प्रभाव के कारण कुछ नये तत्त्व भी संमिश्रित हो गए। इस प्रकार भारतीय प्रेमाख्यानक परंपरा में एक ओर संस्कृत पुराण, कथा, इतिहास तथा महाकाव्यों का योग है, तो दूसरी ओर इसमें जैन, बौद्ध कथाओं का संगम भी। इस पर लोककथाओं का असर भी कम नहीं पड़ा। इसकी शैली में चरित काव्यों के तत्त्व हैं तो फारसी ऐतिहासिक काव्यों का उपादान भी। मध्यकाल में नाना प्रकार की जातियों के संमिश्रण से इनके कलेवर में न जाने कितने प्रकार के देशी विदेशी सांस्कृतिक तत्त्व आयत्त हो चुके हैं। भारतीय प्रेमाख्यानक संपूर्ण एशियाई संस्कृति की प्रतिफलन पीठिका हैं, इनमें अनुस्यूत तत्त्वों के समाजशास्त्रीय, पुरातात्त्विक और ऐतिहासिक अध्ययन का अभी आरंभ ही हुआ है। यह विपुल ज्ञानराशि अनेकानेक सुधी जनों के श्रम और शक्ति का आह्वान करती है।

पुहकर का रसरतन इसी महत्त्वपूर्ण परंपरा की एक मूल्यवान कड़ी है। इसी कारण इसकी शैली, वस्तु, कथाभिप्राय और साजसज्जा का अध्ययन पूरे

---

१. विस्तार के लिये देखिए: भारतीय प्रेमाख्यानक की परंपरा, परशुराम चतुर्वेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९५६।

भारतीय आख्यानकों के पूरे परिवेश को दृष्टि में रखकर किया जाना चाहिए। यह संक्षिप्त निबंध इस समस्या और अध्ययनगुरुता की ओर यत्किंचित् संकेत भी कर सके, तो बहुत है।

रसरतन पौराणिक महाकाव्यात्मक शैली में लिखा हुआ एक प्रेमाख्यान है। इसे महाकाव्य भी कहा जा सकता है। सिर्फ इसलिये नहीं कि मध्ययुगीन महाकाव्यों का रूप बहुत कुछ विकसित अथवा परिवर्तित होकर इतना लचीला हो गया था कि उसकी सीमा में सभी प्रकार की बड़ी काव्यात्मक कृतियाँ समाहित हो जाती थीं; बल्कि इसलिये कि संस्कृत महाकाव्यों के रूढ़ लक्षण भी इस काव्य में काफी हदतक सुरक्षित दिखाई पड़ते हैं। महाकाव्य के लक्षणों के विश्लेषण और विवेचन के बाद जो कुछ महत्त्वपूर्ण नियम हम निर्धारित कर सकते हैं; वे इस प्रकार हैं—

इतिहास अथवा कथा से उद्भूत कथानक, नायक क्षत्रियकुलोत्पन्न देवता अथवा द्विजकुलोत्पन्न, सर्वगुणसम्पन्न, महान् वीर, विजीगीषु, शक्तिमान्, नीतिज्ञ, कुशल राजा होना चाहिए। जिसका उद्देश्य चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति हो, जो अलंकृत भावों और रसों से भरा हुआ और बृहद् आकार का सर्गवद्ध पंचसंधियों से युक्त काव्य हो। अर्थानुरूप छंद, समस्त लोकरंजकता आदि गुणों से भूषित काव्य अनिवार्य शर्त है[1]। ये बातें मुख्य हैं, वाह्य लक्षण तो और भी अनेक निर्धारित किए जा सकते हैं।

कवि पुहकर अपने काव्य के अंतः और वहिः पक्ष का संकेत देते हुए जो बातें बताते हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके मन में महाकाव्य के लक्षण स्पष्ट विद्यमान थे, जिन्हें उन्होंने यथासंभव अपनाया। कथा की अभिव्यक्ति के माध्यम की दृष्टि से, नायक के चरित्र तथा उसके जीवन के विभिन्न पक्षों की दृष्टि से, विराट् कनवैस और उस पर कवि की मणिकुट्टिम पच्चीकारी को देखते हुए रसरतन को महाकाव्यात्मक शैली का प्रेमाख्यान कहना अनिवार्य हो जाता है। यह काव्य कुल नौ सर्गों या खंडों में विभाजित है। इनका क्रम कवि ने इस प्रकार बताया है—

---

१. महाकाव्य के लक्षण के लिये देखिए भामह काव्यालंकार १।१६।२१; दण्डी का काव्यादर्श १।१४।१६; हेमचंद काव्यानुशासन अध्याय ६; विश्वनाथ साहित्य दर्पण ६।३१५-२८ तथा रुद्रट काव्यालंकार (अ० १६।२-१६)।

आदि स्वप्न अरु चित्र विजै अच्छरि चंपावति।
बहुरि स्वयंवर खंड सूर बरनौं रंभावति॥
जुद्ध खंड विस्तरौं जहाँ दुहुँ दिसि दल सज्जिय।
भरौ पात्र जोगिनी सारु छत्री कर वज्जिय॥
आनंद कंद वैरागरहँ तात मातु बहु मोद मन।
नवखंड प्रगट नव खंड महँ सु यह प्रसिद्ध नव रसरतन॥
(आदि खंड ६६)

इस काव्य का उद्देश्य कवि ने स्पष्ट रूप से नव रसों का परिपाक दिखाना स्वीकार किया है। इसी कारण इसका नाम उन्होंने 'रसरतन' रक्खा।

वहि समुद्र चौदा रतन, मथे असुर सुर सैन।
इहि समुद्र नव रस रतन, नाम धरौ कवि तैन॥

तथा—

नवरस भेद आहिं इहि माहीं। बहुत अर्थ कछु थोरौ नाहीं॥
यह तो समुद गहिर गँभीरू। लेहि बुद्धि भाजन भरि नीरू॥

कवि रूपक के माध्यम से इस नवरस नवनीत की उपलब्धि की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहता है कि मैंने गुणसमुद्र को प्रेम की डोरी बनाकर ज्ञान की मथानी से मथा।

गुन समुद्र मंथान ग्यान मंथानिय ढुंढिय।
जेतु हेतु गहि हाथ रतन नवरस मथ काढ्ढय॥
वागेसुर परसाद प्रघट क्रम क्रम सब दिष्षह।
अलप बुद्धि कहँ हेत धीर मुँहि दोस न दिज्जह॥
गुरु नाम सुमर पौहकर सुकवि गरुव ग्रंथ आरंभ किय।
रस रचित कथा रसकनि रुचित रुचिर नाम रसरतन दिय॥
(आदि खंड २०)

सूफी कवियों की तरह पुहुकर सहज रूप से अनलंकृत भाषा में काव्य लिखने के पक्ष में न थे। उन्होंने ग्रंथ के आरंभ में जिन महाकवियों का स्मरण किया है, उनका प्रभूत प्रभाव कवि की शैली पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत आलंकारिकों ने महाकाव्य में नाना प्रकार के भावानुकूल छंद और शब्दवैचित्र्य तथा अर्थवैचित्र्य को आवश्यक गुण माना (काव्यानुशासन अध्याय ८)। कवि पुहकर भी इस मत को स्वीकार करते हैं। उन्होंने लिखा है :

वानी निरस जो जुक्ति बिनु रहत कहत कवि छंद ।
पै न हरै मन रसिक को ज्यों रजनी बिनु इंदु ॥
पौहकर सकल कवित्त करि प्रघट अर्थ गुन गूढ़ ।
उक्ति विवेक बिसेष धरि गूढ़ करै ते मूढ़ ॥
(आदि० २४-२५)

वे उक्ति के वैचित्र्य के पक्षपाती थे, किंतु उस उक्ति को जो रचना को गूढ़ और अस्पष्ट कर दे, गुण नहीं मानते थे। छंदों का वैविध्य इस काव्य में देखते ही बनता है।

उन्होंने मूलतया रसों के विविध रूपों की सृष्टि ही काव्य का प्रयोजन माना। रस को वे काव्य की आत्मा मानते हैं। उन्होंने रसों के संपूर्ण भेदोपभेदों को नियोजित करने के लिये ही मानों इस काव्य की रचना की।

कहूँ वीर वीभत्स बखाना। कहूँ भयानक अद्‌भुत आना ॥
वरनौं उभय ओर की प्रीती। अरु सिंगार विरह कै रीती ॥
विप्रलंभ संयोग सिंगारा। वरनौ उभै वोर विस्तारा ॥
कहूं कहूं करुना रस पावा। कहुँ विचार परमारथ गावा ॥
हास विलास वरन वहु भाँती। सांति सुनै सोई मन साँती ॥
(आदि० ८६-६२)

दंतकथा

अब कथासंयोजन की दृष्टि से इसके रसरतन पर विचार किया जाय। रसरतन एक 'दंतकथा' अर्थात् काल्पनिक कथा है। कवि स्वयं कहता है :

पहले दंत कथा हम सुनी। तिहि पर छंद वंद हम गुनी ॥
श्रवनन सुनी कथा हम थोरी। कछुवक आप उकति तैं जोरी ॥
(आदि० खंड ८८)

'कथा' शब्द का प्रयोग यद्यपि काफी शिथिल ढंग से होता है, किंतु इसके भी स्वरूप आदि के विषय में काफी विचार हुआ है। वैसे प्राकृत अपभ्रंश में, बहुत सी रचनाओं को कथा या 'कहा' कहा गया है। लीलावई कहा, समराइच्च कहा, भविसयत्त कहा आदि। संस्कृत आचार्यों ने कथा और आख्यायिका में भेद किया था। रुद्रट संस्कृत कथा का गद्य में लिखा जाना आवश्यक मानते हैं। हालाँ कि अन्य भाषाओं की कथाएँ भी उनके सामने थीं। जो पद्य में लिखी जाती थीं। भामह ने गद्य और पद्य में लिखी जानेवाली कथाओं की

शैली को दृष्टि में रखकर कथा के लक्षण और प्रकार का निर्णय किया। उन्होंने लिखा कि सुंदर गद्य में लिखी सरस कहानीवाली रचना को आख्यायिका कहा जाता है। यह उच्छ्वासों में विभक्त होती है। वक्ता स्वयं नायक होता है। उसके बीच बीच में वक्त्र और अपवक्त्र छंद आते हैं। कन्याहरण, युद्ध तथा अंत में नायक की विजय का वर्णन होता है।[1] संस्कृत के अधिकांश आचार्य कथा का गद्य में लिखा जाना आवश्यक मानते हैं;[2] किंतु रुद्रट तथा हेमचंद्र ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंशादि भाषाओं में कथा पद्यवद्ध होती है।

हेमचंद्र ने स्पष्ट कहा—

धीरशांत नायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा।

(काव्यानुशासन, अध्याय ८)

इन सभी आचार्यों में रुद्रट का मत ही सर्वथा उपयुक्त और युक्तियुक्त प्रतीत होता है। रुद्रट ने लिखा है कि कथा के आरंभ में देवता और गुरु की वंदना होनी चाहिए। फिर ग्रंथकार को अपना और अपने काव्य का परिचय देना चाहिए। कथा लिखने का उद्देश्य बताना चाहिए। सभी शृंगारों से विभूषित कन्यालाभ ही इस कथा का उद्देश्य होता है।

श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरुन्नमस्कृत्य।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात् स्वं च कर्तृतया॥
सानुप्रासेन ततो लघ्वक्षरेण गद्येन।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुर वर्णक प्रभृतीनि॥
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपंचितं सम्यक्।
लघु तावत् संधानं प्रक्रान्तकथावताराय॥
कन्यालाभ फलां वा सम्यग् विन्यस्य सकल शृंगारम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन॥

(रुद्रट काव्यालंकार १६।२०-२३)

कथा की इससे स्पष्ट परिभाषा मिलना कठिन है। इन आचार्यों की सभी

---

१. भामह काव्यालंकार १।२५-२८
२. काव्यादर्श (दंडी) १।२३-२८. विश्वनाथ साहित्यदर्पण, १।२६

समीक्षाओं को सम्यक् रूप से रखकर विचार किया जाय तो निम्नलिखित प्रधान लक्षण इस प्रकार निर्धारित किए जा सकते हैं ।[1]

(१) कथा संस्कृत में गद्य में होती है, प्राकृत, अपभ्रंशादि में पद्य में भी ।

(२) कथा में कन्यालाभ अर्थात् प्रेम, अपहरण, विवाह आदि वर्णन अनिवार्य हैं ।

(३) कथानक स्पष्ट और प्रवाहयुक्त भाषा में गुंफित होना चाहिए ।

(४) ऐतिहासिक कथाओं में कल्पना पर अंकुश हो सकता है, मगर दंतकथाएँ तो कल्पना शक्ति की उपज ही हैं, उनमें किसी भी प्रकार का अंकुश नहीं होता ।

(५) शैली की दृष्टि से कथा एक अलंकृत काव्यकृति है ।

रसरतन का कवि रुद्रट की परिभाषा का पुरस्सर अनुसरण करता प्रतीत होता है । उन्होंने आरंभ में देवताओं की वंदना की है । सूफी प्रेमाख्यानों की तरह शाहेवक्त की स्तुति की है । छत्रसिंहासन वर्णन में जहाँगीर की प्रशस्ति इसी बात की द्योतक है । पुनः कवि ने अपने वंश का पूरा परिचय दिया है । सम्यक् प्रकार से कथाशरीर का न्यास किया है । बीच में एक संक्षिप्त अंतराल प्रकारांतर कथा का है जब सूरसेन को अप्सराएँ मानसरोवर से उठाकर ब्रह्मकुंड ले जाती हैं । प्रेम तथा शृंगार का वर्णन तो कवि का अभीष्ट है ही । कन्यालाभ के इस महत्त्व को कवि पुहकर समझते हैं इसी लिये तो वे कहते हैं—

जिहि कारन भव दधि मथ्यौ, अरु दुष सह्यौ अपार ।
जप तप सो त्रिय पाइ कै, त्रिपित भये तिहि वार ॥
(स्वयंबर खंड ३२६)

नायक सूरसेन कन्यालाभ के इस प्रसंग को समुद्रमंथन तुलित करता है और बड़े गर्व से कहता है कि

मथ्यौ सिंधु मिलि दानव देवा । बहु विध करी बहुत विधि सेवा ॥
इक इक रतन सबनि मिल लाए । तेमे रतन चतुर्दस पाए ॥

---

१. विस्तार के लिए देखिए लेखक की पुस्तक सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य ।

कोई विषु लै जु सुधा लै कोई। कोइ गज तुरंग धेनु धन होई ॥
काहू कलप तरोवर लीना। नाम नाथ कमलावति कीना ॥
मैं प्रभु कृपा प्रसाद तैं, सब पाये इक ठौर।
रत्न चंद रस गेह मम, बाटनहार न और ॥
(स्वयंवर० ३२६–३१)

असल में कवि पुहकर रंभाप्राप्ति को समुद्रमंथन से रत्नप्राप्ति मानकर ही अपने इस काव्य का नाम रसरतन रखते हैं। यह रस न सिर्फ साहित्य का नव रस है, बल्कि प्रेम रस भी है। उन्होंने रसरतन के आरंभ में (आदि खंड २०) एक छप्पय में ज्ञानसमुद्र के मंथन का जो रूपक बाँधा है, उसकी परिणति रंभाप्राप्ति में होती है। समुद्र से प्राप्त चौदह रत्न रंभा में एकत्र समन्वित हो जाते हैं, पुहकर कवि सोल्लास शृंगारसज्जित इस कन्या का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

जुवति वृंद मनि गनित गुनन कमला गज गामिनि।
पारिजात परमल सुअंगम मन मथ मद कामिनि ॥
विरह व्याध बर वेध धनुक भृकुटी विधु आननि।
लोचन लोल तुरंग अधर अमृत रंग बाननि ॥
त्रिवलीय संष विस मान जन कामधेनु सम सील भनि।
गुन नाम सील रंभा कुँवरि सो अंग चतुर्दस अंग बनि ॥
(स्वयंवर० ३३२)

रसरतन की कथानक रूढ़ियाँ

कथानक रूढ़ियाँ मध्यकाल के प्रायः प्रत्येक कथा-काव्य में पाई जाती हैं। ये रूढ़ियाँ हमारे जीवन की अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक गुत्थियों को स्पष्ट करनेवाली हैं। इनका यदि सूक्ष्मता से विश्लेषण किया जाय तो हमारे जीवन के विविध अंगों, अस्पष्ट प्रथाओं और रीति-रवाजों, आदि से संबंधित अनेक प्रश्नों का समाधान हो सकता है। कथानक रूढ़ि अथवा कथाभिप्राय का प्रयोग हिंदी में 'मोटिफ' के लिये किया जाता है। चित्रकला में इसका प्रयोग बहुत पहले से होता रहा है। कलाकृतियों में सजावट के लिये बनाए गए रूपाकारों को जो किसी चल या अचल, सजीव या निर्जीव, प्राकृतिक या काल्पनिक वस्तु पर आधारित होते थे, 'मोटिफ' कहा जाता था। प्रत्येक देश के साहित्य में भी इस प्रकार के कुछ 'मोटिफ' होते हैं जिनका प्रयोग परंपरागत तरीके से रूढ़ रूप में

होता रहता है। ये 'मोटिफ' स्थूल रूप से बड़े आश्चर्यजनक, अविश्वसनीय तथा पूर्णतः काल्पनिक प्रतीत होते हैं किंतु उनका विश्लेषण करके प्रतीक पद्धति पर अध्ययन किया जाए तो इनसे संस्कृतियों के मिश्रण और अंतरावलंबन का बहुत कुछ रहस्य स्पष्ट हो जाता है। मध्यकालीन रूढ़ियों के विषय में श्री एम० ब्यूमफिल्ड ने सन् १६१७—२४ के बीच जर्नल आव अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी में प्रकाशित अपने निबंधों में तथा पेंजर ने कथा सरित्सागर के नए संस्करण की टिप्पणियों में विस्तार से विचार किया है। श्री एम० एन० दासगुप्त तथा श्री एस० के० डे० ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में संस्कृत काव्यों में प्राप्त होनेवाले कथाभिप्रायों का अध्ययन किया है। हिंदी में इस ओर लोगों का ध्यान सबसे पहले आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आकृष्ट किया और हिंदी साहित्य का आदिकाल में उन्होंने रासो की कथानक रूढ़ियों का विश्लेषण किया।

रसरतन में भी अनेक कथानक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है।

(१) वंध्या दंपति को ईशाराधन या किसी तांत्रिक आदि के वरदान से पुत्र होना—इस रूढ़ि का प्रयोग पुहकर ने सूरसेन तथा रंभा दोनों के जन्म की कथा में किया है। राजा सोमेश्वर और पटरानी कमलावती को शिवाराधन से पुत्र प्राप्त होता है। उधर चंपावती-नरेश विजयपाल को सिद्ध की आज्ञा से चंडीपूजा का उपदेश मिलता है और चंडीकृपा से रंभा नामक कन्या का जन्म होता है।

(२) स्वप्नदर्शन—रंभा को कामदेव सूरसेन के रूप में दर्शन देकर मोहविद्ध करता है और उसी प्रकार रति रंभा के रूप में सूरसेन को स्वप्न दिखाकर आकृष्ट करती है।

(३) आकाशवाणी—विरहविदग्ध रंभा की अवस्था निरंतर गिरती जाती है तभी उसकी सखियों को संबोधित करके आकाशवाणी होती है कि 'सूर विथा हर' होंगे, धैर्य रखो।

(४) अभिज्ञान या सहदानी—बुद्धिविचित्र नामक चित्रकार वैरागर जाकर सूरसेन को रंभा का चित्र दिखलाता है जिसे पहचानकर उसकी उन्मत्तावस्था दूर हो जाती है, उसी प्रकार सूरसेन के चित्र को देखकर रंभा अपने स्वप्नमित्र को पहचान लेती है।

(५) स्वयंवर के माध्यम से सूरसेन को बुलाने का उपक्रम किया जाता है।

(६) सूरसेन को मानसरोवर के किनारे से उठाकर अप्सरायें ब्रह्मकुंड ले जाती हैं जहाँ वे उनके साथ अपनी शापित सखी कल्पलता का गंधर्व विवाह की पद्धति से ब्याह रचा देती हैं। यह रूढ़ि सबसे पहले उषा अनिरुद्ध उपाख्यान में प्रयुक्त हुई थी।

(७) अप्सरा नृत्य—सूरसेन अपनी विवाहिता अप्सरा पत्नी कल्पलता से आग्रह करके उसकी सखी अप्सराओं का स्वर्गीय नृत्य देखता है।

(८) राजकुमार सूरसेन कल्पलता के प्रेम में रंभा को भूलता नहीं। वह साधुओं से चंपावती का पता पूछ कर योगी वेश में चल पड़ता है।

(९) सूरसेन की वीना की आवाज से पशुपत्ती मोहित हो जाते हैं। यह स्वर संमोहन चंपावती की नागरिकाओं को विवश कर देता है, और वे विपरीत आचरण करने लगती हैं।

(१०) शिवपूजा के बहाने रंभा सूरसेन से आकर मिलती है।

(११) कल्पलता के विरह का संदेश लेकर विद्यापति नामक शुक चंपावती आता है। पक्षियों के द्वारा संदेश भेजने की रूढ़ि बहुत प्रचलित है।

(१२) बारहमासे की पद्धति में कल्पलता का विप्रलंभ वर्णन।

ये रसरतन की कुछ प्रसिद्ध कथानक रूढ़ियाँ हैं, जिन्हें देखकर कोई भी प्रबुद्ध पाठक यह अनुमान कर सकता है कि कवि पुहकर ने किस प्रकार इन प्रसिद्ध अप्रसिद्ध रूढ़ियों को अपने कथानक में अच्छी तरह स्थापित करके उसके भीतर चमत्कार और कुतूहल की सृष्टि की है।

कथा का उद्देश्य और प्रतीकसंकेत

वैसे तो रुद्रट के अनुसार कथा का मुख्य उद्देश्य कन्यालाभ ही है; किंतु रसरतन का कवि इस उद्देश्य से ऊपर उठकर अपनी कृति को जीवन की सार्थकता के महत् उद्देश्य से भी जोड़ देना चाहता है। चूँकि रसरतन की शैली में महाकाव्य की शैली का भी प्रभाव है, इसलिये महत् उद्देश्य की स्थापना भी कवि का लक्ष्य रही है। ग्रंथ के अंत में कवि ने उस उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि यह संसार असार है। इससे मुक्ति पाना ही

जीवन का लक्ष्य है। इसी लिये अंत में पुहकर इस प्रेमकाव्य को मात्र प्रेम-काव्य ही नहीं रहने देना चाहते; बल्कि एक भिन्न प्रतीकार्थ भी देना चाहते हैं। उनके हिसाब से वैरागर वैराग्य का रूप है। सूरसेन जीव है। उसकी दो पत्नियाँ सत्संगति और सद्बुद्धि हैं। और इनके सहारे प्रीति की ज्योति जलाकर कवि ईश्वर को प्राप्त कर लेना चाहता है।

वैरागर वैराग वपु, हीरा हित हरिनाम।
प्रीत जोत जिय जगमगै, हरै त्रिविध तनु ताम॥
सतसंगति सतबुद्धि उर, विव घरनी सँग लाय।
ज्ञान वान प्रस्थान करि, तजै विषै सुख पाय॥
(वैरागर० ३५१-३५२)

इस प्रतीकसंकेत को सूफी प्रेमाख्यानकों के प्रभाव का द्योतक मानना बहुत उचित न होगा; क्योंकि प्रतीक शैली का प्रयोग हिंदू, बौद्ध, जैन कवियों ने भी बहुत किया है। वैराग्य का यह रूप हिंदू वर्णाश्रम व्यवस्था का एक अविभाज्य अंग रहा है। इसी कारण रसरतन का अंत भी शांत रस में ही होता है। कवि को अंत में जैसे अपने जीवन की निरर्थकता का एकाएक आभास हो आता है और वे इसके परिमार्जन के लिये व्यग्र हो उठते हैं—

चला जात पृथ्वी संसारा। विनसत देह न लागै वारा॥
सुर नर नाग राय अरु राने। जे उपजै ते सबै समाने॥
आगे पाछै सबै समाहीं। हमहीं बैठे मारग माहीं॥
अच्छिर चार कहै इहिं ठाऊँ। रहै हमार पृथी में नाऊँ॥
(वैरागर० ३४५-४६)

भावसंपदा

कवि पुहकर विविध भावों के सृजन और उनकी अभिव्यक्ति में पूर्ण कुशल थे। वैसे तो रसरतन में कई रसों का समावेश है; किंतु उसका मूल रस श्रृंगार ही है, अतः यह उचित ही है कि श्रृंगार के दोनों पक्षों से संबंधित अनेक भावों की कवि स्फुरणा करे और उन्हें कथा के मूल ढाँचे और जीवंत परिवेश में भली भाँति नियोजित करने का प्रयत्न करे। भाव की गहराई कवि की अपनी अनुभूति पर आधृत रहती है। सूरसेन और रंभा के प्रेम का पथ प्रेमी की स्वभावज कठिनाइयों से हमेशा ही आक्रांत रहा। इस प्रणय के सभी रूपों के चित्रण में कवि पुहकर ने बड़ी जागरूकता और कुशलता का परिचय दिया है। विविध भावों की यह अभिव्यक्ति अक्सर कवि की मौलिक उद्भावनाओं से स्पंदित है; किंतु उसमें प्राचीन यशःकाय कवियों की प्रेरणा और प्रभाव का भी कम महत्वपूर्ण हाथ नहीं रहा है।

रंभा जिस दिन स्वप्न में सूरसेन की मूर्ति में काम को देखती है, उसी दिन से उसके तन मन में एक अजीब प्रकार की उन्मादिता प्रकट होने लगती है। रंभा की इस अवस्था को कामदेव ने भी सोचा था, जब उन्होंने एक अबोध बाला पर अपने सभी विषम पंचशरों को निक्षिप्त किया। अंतिम बाण मारते समय एक क्षण के लिये कामदेव भी पछताया होगा। कवि कहता है—

दस घटिका तिहि तीर, छवि निरखत मनमथ रह्यौ।
अबला करी अधीर, अंतर अंतर ध्यान हुव॥
उनमादक जो वान विय, ते पुनि त्रिय तन लाय।
बिरह जलधि मैं डारिकै, मदन चल्यौ पछिताय॥
(स्वप्न० ३८-३९)

कामदेव का यह पश्चात्ताप सचेत कलाकारिकता का सूचक है; क्योंकि इसे प्रकट करके कवि ने पाठक के हृदय में अपनी नायिका और उसकी अनहेतुक पीड़ा के प्रति उच्छल सहानुभूति का भाव जगा दिया। स्वप्नविमुक्त रंभा निश्चेत पाषाणी की तरह ठगी सी रह गई। उसकी दशा को देखकर सखियों में एक अजीब किस्म की खलबली और घबड़ाहट फैल गई। विभिन्न

संस्कार, विश्वास और अनुभववाली ये सखियाँ रंभा के प्रति असंदिग्ध प्रेम और शुभेच्छा के कारण किस प्रकार परेशान हो गईं, इसका वर्णन पुहकर इस प्रकार करते हैं—

एक कहैं बाय एक सोचति उपाइ अंग,
एक कहैं भयो जुरु जूडी ओ जनाई है।
एक कहैं भूत भय संषिनी की झंका भई,
एक कहैं लोनो अति काहू डीठि लाई है।
एक कहैं आज लाल चूनरी पहिरि साँझ,
गई फुलवारी माँझ तहाँ भरमाई है।
एक कहैं योजगी है एक कहैं छली काहू,
एक कहैं काहू करतूति करवाई है।

(स्वप्र० ५०)

कोई कहती है हवा लग गई, कोई ज्वर का जाड़ा समझती है, कोई भूत-भय का अंदेशा बताती है। कोई कहती है नजर लग गई। लाल चूनरी पहनकर सुगंधित फूलों के बाग में गई थी, वहीं भरम गई। एक बहुत इत्मीनान से कहती है कि किसी ने ईर्ष्या के कारण अपना भूत इसके ऊपर करवाने की करतूत की है। और तब सभी सखियाँ अजीब तरह से घबरा जाती हैं—

एक चलै धाइ एक परै मुरझाइ धर,
एकै कहैं हाइ हाइ कौन यहाँ आई है।
एकै गहैं पाइ एकै बदन बलाई लेइ,
हा हा इत हेरि नेक कौने डरवाई है।
उठि अकुलाइ एकै बैठहि अरस्याइ फेरि,
कछू ना बसाइ बिधि कैसी धौं बनाई है।
रंभा रंभा नाम एकै रसना लगाइ रही,
एक सखी नैन के प्रवाह जल न्हाई है॥

(स्वप्र० ५१)

इन पदों में न सिर्फ घबराहट का सूक्ष्म चित्रण है, बल्कि एक गत्वर क्रिया-व्यापार का बहुत ही बिंबात्मक रूप उपस्थित कर दिया गया है। यह चित्रात्मकता बहुत थोड़े कवियों को प्राप्त हो पाती है। इधर सखियों की इस

प्रकार की किंकर्तव्यविमूढ़ कर देनेवाली अवस्था थी, उधर रंभा के मन में तीव्र वेदना ने अद्भुत मूढ़ता उत्पन्न कर दी—

कामरस माती उन्माती सी बिहाल बाल,
प्रेम के समुद्र माँझ मगन परी है जू।
भूली सी फिरति ज्यों कुरंगिनी कुरंगनैनी,
मानो सरपंचनैनी जीवनि हरी है जू।
अंजनु बनायौ भाल चंदन सौं आँजे दृग,
सकल सिंगार बिपरीत सों करी है जू।
बीरी लावै कान नहिं ग्यान न सयान कहू,
बारुनी के पान ज्यों बिधान बिसरी है जू॥
(स्वप्र० २०१)

विरह की उन्मादावस्था को प्राप्त रंभा का यह चित्र पुहुकर की सूक्ष्म कलाकारिता का प्रमाण है।

कवि ने रूढ़ियों का पुरस्सर अनुसरण करते हुए रंभा के शरीर पर होनेवाले उपचारों की गिनती भी गिनाई है। विरह ज्वाला की यह अतिरंजना बिहारी और दूसरे रीतिकालीन कवियों में जिस पराकाष्ठा को पहुँची, उसका रूप पुहकर में भी दिखाई पड़ेगा—

चंदन चिनगी घनसार मानौ सार धार,
बिमल कँवल कल कल न परत है।
सीर सों उसीर लागे कंकुमा करौत ऐसे,
पवन दवनु मानो देखत डरतु है॥
तीर ऐसो नीर तरवारि सों तुसार तन,
नेजा ऐसो सेज मानो जीवनु हरत है।
फूलन तें सूल होहिं दाहन दुकूल अंग,
घरी घरी घटै मानौ घरी सी भरत है॥

रंभा की शारीरिक शक्ति का जलभरी घड़ी की तरह धीरे धीरे एक एक बूंद टपक कर घटना चमत्कारिक लग सकता है, पर इसमें पीड़ा की सहज विवृति भी है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

रंभा के शरीर और प्राणों की यह अवस्था जिस प्रेम ने की, उसे कवि सराहेगा ही क्योंकि उसे मालूम है कि प्रेम ईश्वर प्रदत्त महान् शक्ति है जो मनुष्य को अजर अमर बना देती है—

जिहि तन प्रगट प्रेम तन कीनौ। सो तनु अजर अमर कर दीनौ॥
तिहिं तन जोग भोग नहिं भावै। तिहि तन सदन सुरति नहिं आवै॥
तिहि तन सिरजनहार न जान्यौ। एक प्रान वल्लभ पहिचान्यौ॥
सो तन और नीर नहिं पीवै। सुधा स्वाति विनु नैक न जीवै॥
विसै तत्त्व सब तिहि तन त्यागौ। केवल प्रेम प्रीतरस पागौ॥
कठिन पंथ जिहि अंत न पायौ। बहु विधि विविध बहुत विधि गायौ॥
(स्वप्न० ६६-१०१)

सखियाँ रंभा से उसके चितचोर का नाम जानना चाहती हैं, और वह अबोध बालिका लज्जा से गड़ जाती है। कहे भी तो क्या कहे। उसने न तो आभरण लिए, न यह मौलिक सौंदर्य। बस मन ले गया। जीभ, नैन, कानों की शक्ति ले गया—

सखि तसकर वह जन मन होई। नहि तसकर बस करि सषि सोई॥
सषि अभरन अरु मोलिक अंगा। केवलु मन हरि लै गयौ संगा॥
रसनाकरन नैन हरि लीनै। गुनहि छिड़ाई पंगु सब कीनै॥
विद्युत दसनि हसनि छबि देखी। सो मम हृदय आनि अवरेखी॥
मूरति मैन नैन अनियारे। प्रान काढि लै गयौ हमारे॥
और न नाम कह्यो विसवासी। कौन आइ किहि ठाँ कर वासी॥
(स्वप्न० १४२-१४४)

विसासी ने नाम बताया न धाम। कुछ लिया भी नहीं सिर्फ मन चुरा ले गया। इसी तरह का एक श्लोक भानुदत्त की रसमंजरी में भी आता है—

मुक्ताहारं न च कुच गिरेः कङ्कणं नैव हस्तात्।
कर्णात् स्वर्णाभरण मयि वा नीतवान्नैव तावत्॥
अद्य स्वप्ने वकुलमुकुलं भूषणं सन्दधानः।
कोऽयं चौरो हृदयमहरत्तन्वितन्न प्रतीमः॥
(रसमंजरी १३४)

स्पष्ट है कि पुहकर ने इस श्लोक से प्रेरणा ली है, अनुवाद नहीं किया है।

रंभा की इस दारुण अवस्था से कामदेव का मन द्रवित हो आया और उन्होंने एक बार पुनः स्वप्न में सूरसेन के रूप में रंभा को दर्शन दिया। नाम धाम भी बताया। किंतु अभी रंभा भर आँखों उस छवि को देख भी नहीं पाई थी कि प्रिय अंतर्धान हुआ और आँखों की नींद टूट गई—

बिरहानल मैं जड़ ह्वै जुवती निसि पौढ़ि पलंक पलक्क लगायौ।
प्रभु पेषत प्रेम प्रसन्न भये सपनै प्रिय प्रान पती दिषरायौ॥
अति आनंद चाहि प्रमुक्कि प्रिया अरु चाहति लाल हियै उरलायौ।
ताहि समै दृग नींद नठी उघरीं अँखियाँ असुँवा भरि आयो॥
(स्वप्र० २६६)

देव के "झिहिरि झिहिरि झीनी बूँद हैं परति मानौ" कवित्त के प्रशंसकों को इस सवैया पर भी ध्यान देना चाहिए।

कवि पुहकर ने रंभा के वियोग में पीड़ित सूरसेन की अवस्था का चित्रण भी बड़ी सहानुभूति के साथ प्रस्तुत किया है। प्रेम की अनन्यता सूरसेन के हृदय में इस प्रकार घर कर चुकी है कि उसे रंभा के अलावा कुछ भी नहीं दीखता। वह उसी के ध्यान में पूर्ण रूप से निमग्न हो चुका है—

तुही मेरौ धन ध्यान तेरौई करत दिन,
तुही मेरो प्राण प्रान तोही में वसतु हैं।
तुही मेरैं चैन चैनु चरचा चलावै कौनु,
तुहीं मेरे नैन नैन तोहीं को चहतु हैं।
पुहकर कहैं तुही तुही दिन रैन कहौं,
तेरी धुनि सुनिबे को स्रवन दहतु हैं।
तुही मेरो प्यारी होत न हृदै तै न्यारी,
परम अयानैं लोग बिछुरौ कहतु हैं॥
(चित्र० १५६)

प्रेम की यह अनन्यता ही श्रृंगार को स्थूल विवृति से उठाकर उन्नयनशील ऊर्ध्वमुख आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करती है। कवि पुहकर ने श्रृंगार के इस सक्षम कंचनकारी रूप को अपने काव्य में भली भाँति उभारने का प्रयत्न किया है। इस विप्रलंभ के व्यापक प्रभाव से आक्रांत चित्र को पुहकर ने अग्नि में डाले हुए पारे के समान कहा है जिस पर उपदेश और सीख का कोई असर नहीं होता—

पुहकर डाह वियोग, प्रान विरह बस होहिं जब।
का समझावहिं लोग, अग्नि न थिर पारो रहे॥
(चित्र० ६१)

चित्रकार बुद्धिविचित्र जब कुमार को रंभा का चित्र बनाकर दिखलाता है तब उसकी अटूट विरह व्यथा कुछ शांत होती है और वह इस चित्र को देख कर जिस दीनता और भावावेश का परिचय देता है, उसे देखकर चित्रकार भी ठगा सा रह जाता है। इस प्रकार की चंचल और भावातुर परिस्थितियों में भी पुहकर पारिवारिक मर्यादा को भूल नहीं पाते, यह बहुत बड़ी बात है। कवि पुहकर विवाहिता स्वकीया के साथ रति का जितना भी गाढ़ और नग्न चित्रण करें, उन्हें विवाहपूर्व किसी नारी की मर्यादा का पूर्ण ध्यान बना रहता है। बुद्धिविचित्र इसी कारण सूरसेन से आग्रह करता है—

विजैपाल भूपति सुर ग्याँनी। तपत तेज मानौ वृषभानी॥
जो यह भेद नैक सुन पावै। तौ तनया लै गंग बहावै॥
(चित्र० २१४)

और तब स्वयंवर का दिन आता है। रंभा की सखियाँ उसे युवती नारी के योग्य सभी कलाओं की शिक्षा देती हैं। यह शिक्षा सिर्फ यौवनरक्षा और पतिप्रेम तक ही सीमित नहीं रहती। शील, स्वभाव और गुरुपूजा की भी शिक्षा मिलती है—

प्रथम सिखावहिं सुर गुर पूजा। सील स्वभाव सिखावहिं दूजा॥
दृढ़ कर लाज सिखावहि नारी। सुरति समै परिहरियै प्यारी॥
मन वच क्रम कीजै पति सेवा। पति तै और वियौ नहिं देवा॥
जौ निश्चै पतिव्रत मन धरहीं। सो तिरिया भवसागर तरहीं॥
(विजय० ७२-७३)

पति-पत्नी के बीच का सारा स्वारस्य प्रीति-पारस्पर्य और उसकी नित नूतनता पर ही आधारित है। इस लिए 'नवीनो नेह' के नित्य निर्वाह के लिये प्रिय के अप्रिय वचनों को मानने की भी शिक्षा दी गई। पुहकर के ये दो पद्य तो जैसे इस प्रेम-शिक्षा के अनमोल रत्न ही हैं—

अप्रिय वचन प्रियतम करि मानि लीजै,
नित ही नवीनो नेह नेह पै निवाहनो।

कहै कवि पुहकर औगुन गुनिनि गारे,
प्यारे कौ छबीलो मुष चौप करि चाहनौ।
रसहू ते रोस भारी गारी सो परम प्यारी,
कलह-कठोर काम अंगनि कै दाहनौ।
लीजिए ढराइ संग भींजिए अमृत्त रस,
कीजिए जौ प्रीति तौ न दीजिए उराहनौ॥

प्रेम विधाता की अद्भुत सृष्टि है इसमें रोस और रिस भी गुण बन जाते हैं। इन्हें सँभालने और प्रसन्नता में बदलने की उदारता चाहिए। न तो मधुकर को कमल में कंटक का बोध होता है और न तो पतंग को दीपक की जलन का। इस सारे रहस्य का भेद है समर्पण।

कल्पलता को छोड़कर कुमार सूरसेन चंपावती को चल देता है। उसके वियोग में कल्पलता की जो अवस्था होती है उसका वर्णन भी कवि पुहुकर ने उसी सहृदयता से किया है जिससे वे मिलन के आनंदपूर्ण क्षणों का किया करते हैं। कल्पलता की अवस्था सिर्फ विरहिणी की ही नहीं है बल्कि आत्मग्लानि में डूबी उसी शापित अप्सरा की है जिसके उड़ने की शक्ति छीन ली गई है।

झरत नैन झर सावन जानौ। पिय पिय रटति पपीहा मानौ॥
तलफति तलफ अनाथ अकेली। दिन दूभर अरु नैन दुहेली॥
निर्गुन निठुर नाह निरमोही। कौन चूकि जिय जान बिछोही॥
अप्सरि सक्ति हरी सुर राजा। नातर फिरति पहुमि तुव काजा॥
(चंपावती० २६।३१)

और तब उसकी सखियाँ उसे प्रबोधती हुई अनेक प्रेम कथाओं का उदाहरण देती समझाती हैं कि जो प्रभु विरह के समुद्र में डालता है वही पुनः मेल भी कराता है।

नल दमयंती मिली जो आई। माधव काम कंदला पाई॥
मधुकर संग मालती मेला। करै नाथ तौ निपट सुहेला॥
(चंपा० ४०)

किंतु कल्पलता इन सांत्वना भरे उपदेशों से कहाँ तक शांत रहती उसे मालूम था कि इस तरह की प्रीति आश्विन के मेघ की तरह अस्थिर होती है।

पुहकर अश्वनि मेह। परछाँही की छाँहरी ॥
निरमोही को नेह। तीनौ तुरत पलट्टियौ ॥
(चंपा० ३७)

कल्पलता के विरह को कवि ने भारतीय सांस्कृतिक मर्यादा के अनुकूल ही चित्रित किया है। इस विरह पर फारसी या सूफी कवियों के विकृति का, जिसे शुक्ल जी ने बहुत जुगुप्सित बताया है, कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। कल्पलता अपने दुःख में संसार को जलते भुनते नहीं देखबा चाहती। वह इसे अपना भाग्यदोष मानकर ही सह लेती है।

पुहकर मित्र विदेसिया, लैजु गयौ चित चोरि।
पाहन लीक ललाट की, काहि लगाऊँ खोरि।
(चंपा० ५१)

पुहकर सिर्फ व्यक्तिगत राग और आकर्षण से उत्पन्न मानसिक चंचलता और उदासी के चित्रण में ही प्रवीण नहीं है बल्कि समूह के चित्त में इस भावना के कारण उत्पन्न अस्थिरता को भी वे सफलता से बाँधने में समर्थ हो सके हैं। सूरसेन के आकर्षक वीणावादन से उन्मत्त चंपावती नागरिकाओं की अवस्था 'कामिनीमोहन' छंद के माध्यम से इस प्रकार चित्रित की गई है।

देखि सोभा रही रीझि प्यारी। मग्न भूलै चलै चित्त हारै त्रिया ॥
संग छांड़ै मृगी जेमि भूली फिरैं। हार टूटै हियैं भूमि मोती गिरैं ॥
छूटि बेनी गई बार बंधै नहीं। नेह लाग्यौ नयौ मैन अग्नी दही ॥
प्रान दीनै जहाँ वीन बानी सुनी। पानु कीनै मनौ माधुरी वारुना ॥
जीप जंपै नहीं बिखुरी बत्तियाँ। नैन आँसू चलैं दाह दैं छत्तियाँ ॥
रित्तु पावस्स ज्यौं नीर नद्दो बहै। प्रीति पूरी हियै कावि कित्तो कहै ॥
(चंपा० १२५-१२७)

प्रेम में का यह विचित्र नशा है। यह वारुणी तो है किंतु, माधुरी भी। जिसे पीकर बातें बिसर जाती हैं, बोल नहीं निकल पाते। नैन में आँसू और छाती में दाह भर जाता है। पावस की नदी की तरह राग में बहती ये नागरिकायें अपनी अवस्था कहें भी तो किससे और कैसे ?

नगर की यह अवस्था अतिशयोक्ति को भी छूती है; किंतु उसके रूप में पारिवारिक अनुभूतियों का ऐसा सुंदर चित्रण है कि अतिरंजना खटक नहीं पाती; उद्वेग का यह रूप कभी कभी तो हास्य से भी दमक उठा है।

अंजन दियै एकही नैना। भूली एक कछू कहि बैना॥
पति गृह तिया जिमावन लागी। तन मन लीन अतन अनुरागी॥
बिसरै चित्त न पेषहिं बारी। भोजन दियौ भूमि मैं डारी॥
इक त्रिय पान षवायत नाहीँ। सुंदर रूप वस्यौ मन माहीँ॥
जतन जतन करि वीरी कीन्ही। सो तजि मुष्ष चुनौती दीनी॥
दीपक एकु उदीपन आई। दिया छोड़ि आंगुरी लराई॥

अज और इंदुमती के जोड़े को नगर की सड़कों से गुजरते हुए देख ऐसी ही दशा नगर की नारियों की भी हो गई थी।

स्वयंवर में हाथ में जयमाल लेकर प्रत्येक राजा के सामने से निकलती हुई रंभा को कवि पुहकर 'चंद्र चिराग' के समान कहते हैं। इंदुमती के स्वयंवर के ऐसे ही वर्णनों से जो लोग परिचित हैं उन्हें 'दीपशिखा' कवि कालिदास का स्मरण बरबस हो जायेगा। पुहकर ने लिखा है।

छवि रूप कहाँ लगि ओप गनो। संग डोलत चंद्र चिराक मनौ॥
जिहि भूपहिं चाहि पमुक्कि चलै। मुष होहिं मलीन तजंतु बलै॥
(स्वयं० ९७)

कालिदास की इंदुमती दीपशिखा के समान चलती हुई जिस नरेश को छोड़कर आगे बढ़ जाती थी वह मार्ग की अट्टालिका के समान एक क्षण आशा से प्रकाशित होकर दूसरे ही क्षण अंधकार में डूब जाता था।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेंद्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णं भावं स स भूमिपालः॥
(रघु० ६।६७)

स्पष्ट है कि पुहकर ने कालिदास की इस उपमा को भ्रष्ट करके रख दिया है।

पुहकर पारिवारिक जीवन की सूक्ष्मताओं के भी पारखी कवि थे। रंभा के विवाह के समय चंपावती नरेश विजयपाल का कन्या-विश्लेष दुःख कवि की लेखनी से चित्रित होकर पर्याप्त संवेदनीय हो गया है—

ले उसाँस बोलत नृप बैना। भरे वारि वर वारिज नैना॥
संपति सुता न संचति माहीं। परबस परी कछू बस नाहीं॥

द्वादस बरस लाड़ लड़वाई। सो तनया अब भई पराई ॥
पुत्री पुत सब वातन ऊना। होहिं भँडार सदन दोउ सूना ॥
(स्वयं १५६-१५७)

उत्साह वर्णन नामक १० वें अध्याय (स्वयंवर खंड) के अंतर्गत कवि पुहकर ने जेवनार का जो वर्णन किया है, वह पुरस्सर रूढ़ि निर्वाह मात्र है। उनका लंबा "मेनू" पाठकों की जीभ से लार टपकाने में भले सफल हो जाये, साहित्य की दृष्टि से इसे सस्ती रुचि का प्रदर्शन ही कहेंगे। मानो हलवाई की दूकान का विवरण छाप दिया गया हो। उन्हें इतने पर भी संतोष नहीं होता—

त्रिपित भये भोजन सब कोई। वरनत वियौ ग्रंथ इक होई ॥

चलिए गनीमत है कि कवि ने एक दूसरा ग्रंथ भोजन सामग्री के संबंध में तैयार करने का कष्ट नहीं उठाया। कवि के वर्णन में मुगलकालीन मुसलमानी खाद्य-सामग्री का भी यथेष्ट परिचय मिल जाता है। प्याली, रकेवी में भर भर कर तरि करेज, सूला (शोरवा) तीतर, लवा, वटेर का मसालेदार गोश्त काफी चटखारा था।

विविध माँस चकतारे कीने। सूला रुचिर मांगि पुनि लीने ॥

कवि पुहकर को दधि में उदारता से डाली हुई शकर तो बहुत ही पसन्द है। उन्हें लगता है कि मानों प्रेम के भँवर में चंद्रमा उलझ गया हो—

मगन मिठा दधि मैं दये, जेवँति अति आनंद।
मनौ प्रेम चहलै परे, निकसि सकत नहिं चंद ॥
(स्वयं० २०८)

पगे हुए मखाने भी थे, और 'सिखरनि शरबत छन्ना पानी' भी। और अंत में पान भी मिला ही। पान के तत्कालीन ढंग में रुचि रखनेवालों के लिए ये पंक्तियाँ, शायद रुचिकर हों।

सुष सुवास तंबोल मँगाए। आदरसहित थार भर लाये ॥
पान पचास बनाये वोरा। उज्ज्वल अमल दिपहिं जनु हीरा ॥
फूलनि संग सुपारो वासी। मुतिया जरित चून सुख कासी ॥
एला लौंग ललित कस्तूरी। भरे कपूर दई रुचि पूरी ॥
(स्वयं० २१७-२१८)

कवि पुहकर श्रृंगार के अलावा दूसरे भावों के वर्णन में भी अपनी काव्य-शक्ति का परिचय देते हैं किंतु उनका मन तो निश्चय ही श्रृंगार में ही रमा था। उन्होंने वीर, वीभत्स, हास्य आदि के भी संक्षिप्त चित्रण यथावसर अवश्य किए हैं। पुहकर ने पारिवारिक मर्यादा, गुरुसंमान, पति-पत्नी-प्रेम आदि विषयों पर भी अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं। कल्पलता और रंभा के पारस्परिक प्रेम और बहनापे के भाव को अधिक गहराई से चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकाल के उस समाज में जहाँ बहुपत्नीत्व की प्रथा थी; कविके लिये यह एक विचारणीय और दिलचस्प विषय था कि वह किस प्रकार एकाधिक पत्नियों के बीच प्रेम सौहार्द को बनाये रखने की शिक्षा दे पाता है।

संक्षेप में, कवि पुहकर बहुविध भावनाओं में रुचि रखने वाले उच्चकोटि के भावप्रवण कवि थे, जिन्होंने अपनी अनुभूतियों को अध्यवसाय से काफी सुसंस्कृत और परिष्कृत भी किया था।

सौंदर्यवर्णन

सौंदर्यचित्रण में कवि पुहकर की दृष्टि रूढ़ि निर्वाह पर अवश्य रही है; किंतु रूप-चित्रण में वे कभी अपनी निजी आभूतियों और उमंगों की उपेक्षा नहीं करते थे। रूप को कवि पुहकर एक समर्थ शक्ति के रूप में स्वीकार करते थे, इसी लिये इसके चित्रण में उनकी सजगता और जागरूकता भी प्रत्यक्ष लक्षित होती रहती है। कवि के लिए रूप कामदेव की अपरिमेय शक्ति का विजयगान है। इसलिये इससे सार्वभौम प्रताप को कभी भी झुठलाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

सौंदर्य वर्णन का समारंभ रंभा के वयःसंधि-चित्रण से आरंभ होता है। रंभा का यह रूप मानो मनमथ की ज्योति फानूस में रक्खी हुई है। शैशव और यौवन की संधि-आभा के लिये कितनी सुंदर उपमा है—

सैसव ताई जतन तनु, प्रगट तरुनता होति।
दुतहिं देषि फाँनूस ज्यों, पुहकर मनमथ जोति॥

(आदि खंड १६८)

वयसंधि का यह रूप कवि पुहकर के शब्दों में इस प्रकार साकार किया गया है—

भौंह चक्र पच्छिम अनियारे। मद खंजन जनु वान सँवारे॥
स्रवन सींव लोचन रतनारे। पदम पत्र पर भँवर विचारे॥

चमकते हुए कुंडल की कपोलों पर छाया पड़ती रहती है। मंद स्थित में झलकते दाँत अमृत से सींचे दाड़िम बीजों की तरह लगते हैं। उरोजों पर फेंके आँचल को देखकर कवि को एक अनुपम उपमा सूझ जाती है—

जुग उरोज कछु दई दिखाई। उपमा इक मेरे मन आई॥
कमल कली सोभा सुखदाई। जोवन सर झीने पट झाँई॥

(आदि० २०४)

अधरों की लाली देख कर तो कवि को लगता है कि इन्होंने संपूर्ण विश्व जीतने की आकांक्षा से कामदेव की आज्ञा से 'पान का बीड़ा' उठाया है—

पुहुकर अधरन अरुनता, किहि गुन भई अँचान।
जग जीतन को मदन पै, लिये पैज करि पान॥
(आदि० २०६)

मदन की विजयगाथा के रूप में चित्रित रंभा का यह सौंदर्य विरह की अवस्था में किस प्रकार पीड़ा से विगलित होता रहा, इसे कवि ने रंभा के वियोग की दसो अवस्था के चित्रण में दिखाया है। जिस मदन ने अपनी अनिर्वचनीय शक्ति को प्रकट करने के लिये इस रूप की सृष्टि की, उसी को उसके विरह-पयोधि में जान कर डुबो भी दिया।

रंभा के रूप का विशद नखशिख चित्रण स्वयंवर खंड के अंतर्गत इसी नाम के अध्याय में किया गया है। यह चित्रण कई दृष्टियों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। एक तो कवि ने इस पूरे वर्णन को कवित्तों में उपस्थित किया है। इस प्रकार के गठे हुए कवित्त, विशेषकर रूपवर्णन संबंधी, इसके पहले नहीं लिखे गए। यह संभवतः ब्रजभाषा के मजे हुए कवित्तों में संनिवेशित पहला नखशिख वर्णन है। इस दृष्टि से विचार करने पर इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

मज्जनोपरांत रंभा के शरीर पर शोभा की राशि एकत्र हो गई। उसके गोरे गोरे गात की आभा के सामने केशर, चंपा और दीपक की ज्योति भी मलिन होने लगी। सुगंधि, कोमलता और प्रकाश का एकत्र संमिलन। पद्मिनी नायिका के शरीर की गंध से अलि उन्मत्त होकर मँडराने लगे। और चंद्रमुख देखकर तो चकोर भी ललचा उठे। मनुष्य तो मनुष्य इस रूप को देख कर मुनि और सिद्ध भी आश्चर्य विजड़ित हो जाते। रंभा के नख मानों कामदेव की आरती के दीप हों। अथवा पंचवाण ही हैं या महावर लगे पैर जैसे वर्षागम पर वीर-वधूटी उभर आई हों।

अरुण एड़ी की शोभा का क्या कहना। मनो शीशी में रंग डोल रहा है। ऐसी ही एक उपमा कवि ने रसवेलि में भी दी है—

बाल दसा मधि जोवनु को रंग
यौं झलकै जनु जावक सीसी।
(पद संख्या ५)

चटक मंद चाल देख तो कबूतर तथा मतवाले हाथी तक पराजय मान लें। और मराल तो क्या ठहरता। और नुपुर ?—

नुपुर झनक्क रव घूँघुर घनक्क घोर
घाइल कर प्रान राखे पाइल जु पाइ कौ ।
पीवैं तैं पराग उन्मत्त किलकारी मानो
पंकज के मध्य अलि सावक सुभाइ कौ ॥

घूँघुर के शब्द, नूपुर की झनक, और पायल की ध्वनि जैसे कवि पूरी तरह श्रव्य बना देना चाहता है। और जेहरी [पाजेब] तो जैसे रंभा के वपु पर आरोहण करने को उद्यत कामदेव की जड़ाऊ सीढ़ी ही है। क्षीण कटि की सूक्ष्मता के वर्णन के समय तो पुहकर परेशान ही हो गए। न तो यह कटि नैन में आती थी न तो मनमें ही। दुखी के प्राणों से भी अधिक क्षीण यह कटि वैसी ही है जैसे विरही का बल [अभाव] और विरहिणी का हास विलास। कहीं योग, युक्ति, जप, ज्योतिष आदि का ज्ञान एकत्र हो तो इस कटि की क्षीणता का पता लगाया जा सके। बिहारी की नायिकाएँ भी पुहकर की इस चमत्कारिकता के आगे पानी पानी हो सकती हैं। रंभा की त्रिवली कवि के त्रिवेनी के समान शांतिदायक प्रतीत होती है। दोनों उरोजों के बीच मोतियों की लर में गुँथा हुआ गोल लाकेट तो ऐसा प्रतीत होता है मानों सुमेरु गिरि की श्रेणियों के बीच में मखतूल के झूले में चंद्रमा झूल रहा है। यद्यपि यह उत्प्रेक्षा रूढ़ जैसी ही लगती है; किंतु इसमें परिष्कृति रुचि और मौलिकता का पूर्व संयोग भी दिखाई पड़ता है—

नगन की ज्योति उर लसै लर मोतिनि की
चकचौंधि होति मनि गन गुन जालजू।
कैधौं मखतूल झूल झूलति हिंडोरा मानो
सिखिर सुमेर बीच बारिधि को बालजू ॥

(स्वयं० ४६)

गाल के तिल का वर्णन करते समय तो कवि पुहकर उसके स्थूल वाह्य और मानसिक आंतरिक सभी गुणों का एकत्र समन्वय कर देना चाहते हैं। यह 'डिठौना' जैसे उन्होंने खुद बहुत सचेत मन से अपनी कल्पना की इस सुंदरी के गाल पर दृष्टिदोष परिहार के लिये लगा दिया है।

चाषौ सुहाग कौ कि भाग अनुराग कौ हैं
हिय को हुलास किधौं पिय को खिलौना है।

कैधौं तन तामस दुरौहे मुख दीप तन
कैधौं कंज कुंज पाइ पौढ़ो अलि छौना[1] है।
कैधौं कवि पुहुकर कंत के रिझाइबे कौ
सौतिन सताइबे को कीनौ कुछ टौना है।
चातुरी कौ भाउ किधौं दाउ प्रेम पासि कौ है
डीठिहू की डीठि किधौं चिबुक डिठौना है।
(स्वयंवर० ५१)

ऐसा ही एक सुंदर बिंब उन्होंने पारदर्शी श्वेत रंग की कंचुकी से ढँके उरोजों के लिये भी प्रस्तुत किया है—

चुपरि चुनाई चोली सेत श्री साफ छबि
छाजत कवीन मन उकति को धायौ है।
मेरे जान हेम गिरि सिखिर उतंग बिबि
ता पर तुषार पूरि पातरो सो छायौ है।
(स्वयंवर ४५)

लाल अधरों की अरुणिमा तक ही कवि सीमित नहीं रह जाता बल्कि उसके माधुर्य और विकास के लिये भी 'उक्ति' ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है—

अधर अनूप बिय विद्रुम बँधूप बिंब
मेरे जान चंद्र खंड दोऊ लै मिलाये हैं।
ऊष तै पऊष तै मऊष तै हैं मीठे अति
सरस रसाल गुनि गीतन में गाए हैं।

ऊख से, पियूष से और चंद्रकिरणों से भी अधिक मीठे इन अधरों की मिठास और रसालता जैसे फिर भी अवर्णित ही रह गई। इसलिये पुहकर कहते हैं कि ये उतने मीठे हैं जितने लोकगीतों में इनकी मिठास का गान हुआ है। यह एक बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि है, जिसे रूढ़ि निर्वाह मात्र कह देना उचित न होगा। पुहकर कवि का नखशिख वर्णन भाषा की अद्‌भुत रवानी, चित्रात्मकता और कवि की सुरुचिपूर्ण सौंदर्य दृष्टि के कारण अत्यंत आकर्षक हो गया है। इसमें परंपरा निर्वाह भी है, अलंकारों का बहुल प्रयोग भी तथा नखशिख वर्णन की पुरानी रूढ़ियों का अनुसरण भी; किंतु इन सबके भीतर एक ऐसा उच्छल आनंद भी है जो कवि के भावों को जड़ीभूत होने से बचा लेता है। रीतिकालीन अनेक कवियों ने इन्हीं पिटेपिटाए अलंकरण उपादानों

१. मूल पाठ में यह पंक्ति भूल से छूट गई है। कृपया सुधार लें।

का प्रयोग किया है किंतु उनकी रचना प्रायः निर्जीव इसलिये हो जाती है कि कवि के मन पर सौंदर्य का समष्टिगत सजीव जीवंत प्रभाव नहीं रहता। पुहकर के छंद कहीं कहीं लचर भी हो जाते हैं। वह जिस उमंग में पहली अथवा दूसरी पंक्ति लिखते हैं, उसी में बाकी पंक्तियाँ समन्वित नहीं कर पाते। यह दोष है। किंतु इस दोष से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि कवि सौंदर्य के गतिशील रूप से इतना उत्तेजित है कि वह इस वेग को पूरी तरह उतारने में सक्षम नहीं हो सका है।

रूपवर्णन के और भी अनेक प्रसंग रसरतन में भरे पड़े हैं। नारी रूप के साथ ही साथ पुरुष रूप का वर्णन भी कवि का प्रिय विषय रहा है। आदि खंड में छंद संख्या ३२ से ३५ तक कामदेव का रूपवर्णन, चित्रखंड में १६२ छंद से १६६ तक चित्रकार बुद्धिविचित्र द्वारा बनाए हुए चित्र में रंभा की संक्षिप्त नखशिख शोभा, विजयपाल खंड में छंद २१० से २१७ तक कुमार सूरसेन का रूपवर्णन, अप्सरा खंड में छंद ६७ से ७५ तक कल्पलता का शृंगार-वर्णन, चंपावती खंड में प्रवानिक छंद २४२ से २४८ तक शिवपूजा के लिये जाती रंभा का रूपवर्णन आदि प्रसंग तथा स्वयंवर खंड में सूरसेन का दूलह रूप १३५-१४४, इसी खंड में रंभा का रत्युत्सर रूपवर्णन २६६-३०२ तथा अंत में कवि द्वारा मित्रमहोत्सव वर्णन ३१९-३२१ इस बात के साक्षी हैं कि कवि पुहकर किसी भी ऐसे अवसर को हाथ से निकलने नहीं देना चाहते थे, जहाँ वे मनुष्य के उल्लसित सौंदर्य का वर्णन कर सकें। बहुत कम कवि ऐसे होते हैं जो मानवरूप की इतनी विशद और तरह तरह की छवियों का इतना सजीव अंकन कर सकें। रूपवर्णन की सूक्ष्मता नायक नायिका के प्रथम दर्शन के उस क्षण में प्रस्तुत की गई है जब रंभा को फूलों के बीच देख कर कुमार सूरसेन उसके भुवनमोहन रूप के ऐंद्रजालिक प्रभाव से विथकित-सा हो जाता है—

चंद उजियारी प्यारी नेकु न निहारी परै
चंद की कला तैं दुति दुनी दरसाति है।
ललित लतानि मैं लता सी लगै सुकुँवारि
मालती सी फूलै जब मृदु मुसकाति है॥
पुहकर कहै जित देखिए बिराजे तित
परम बिचित्र चारु चित्र मिलि जाति है।
आवै मन माहि तब रहै मन ही मैं गड़ि
नैननि बिलोकै बाल नैननि समाति है॥

निसर्गनिरीक्षण

कवि पुहकर उस मध्ययुग के कवि थे, जिसमें निसर्ग का स्थान जीवन के स्पंदन से च्युत होकर मात्र अलंकरण का रह गया था। यह बड़े आश्चर्य का विषय रहा है कि मध्ययुग के हिंदी कवियों ने प्रकृति की इतनी अवहेलना क्यों की। भारतीय काव्य में प्रकृति मानव जीवन के ही एक अविभाज्य अंग के रूप में हमेशा महत्व पाती रही है। आदि काव्य रामायण में इसके उदात्त रूप का सुंदर वर्णन है। कालिदास तो निसर्ग के कवि ही कहे जाते हैं। उन्होंने प्रकृति के कोमल और मसृण पक्ष को अपनी सूक्ष्म कला के द्वारा निखार और परिष्कार प्रदान किया। आचार्य शुक्ल ने हिंदी कवियों की प्रकृति-विषयक उदासीनता की ओर लक्ष्य करते हुए लिखा है कि 'हिंदी कविता का उत्थान उस समय हुआ जब संस्कृत काव्य लक्ष्यच्युत हो गया था इसी से हिंदी की कविताओं में प्राकृतिक दृश्यों का वह सूक्ष्म वर्णन नहीं है, जो संस्कृत की प्राचीन कविताओं में पाया जाता है[1]।' वस्तुतः सामंतवादी पतनशील संस्कृति के बीच राजप्रशस्ति और विलोभक रूढ़ श्रृंगार वर्णन के लिये जितना अवकाश था, उतना प्रकृति के लिये नहीं, क्योंकि उस काल में कवि का स्थान जीवनद्रष्टा का नहीं, जीवनच्युत दरबारी का रह गया था, जो सड़े और रुग्ण मन के राजानरेशों के लिये कामोत्तेजक रसायन बना रहे थे। आचार्य बनने का हौसला, प्रबंध काव्यों का अभाव और अतिशय एकांगी श्रृंगारिकता ने प्रकृति को काव्य का विषय ही नहीं रहने दिया। शुक्ल जी के ही शब्दों में 'अलंकार और नायिका भेद के लक्षण ग्रंथ लिखकर अपने रचे उदाहरण देने में ही कवियों ने अपने कार्य की समाप्ति मान ली[2]'; किंतु पुहकर इन रीतिकालीन कवियों से कुछ भिन्न प्रवृत्ति के जीव थे। यह सच है कि पुहकर के काव्य में भी रूढ़ अलंकरण की प्रधानता है जो उस समय के हिंदू परंपराभुक्त प्रत्येक कवि में दिखाई पड़ती है, फिर भी प्रबंध रचना की विशेष रुचि के कारण वे प्रकृति को पूरी तरह विस्मृत नहीं कर सके हैं। यही नहीं, कहीं कहीं मन की

---

१. चिंतामणि, काशी, संवत् २००२, पृष्ठ २५

२. वही, पृष्ठ २५

स्वच्छंद धारा में निमग्न होने पर प्रकृति के मोहक रूप को भी देख सके हैं और उसे भाषा की सहजता और कल्पना की रंगसाजी में अच्छी तरह बाँधने में सफल हुए हैं।

पुहकर के काव्य में चित्रित प्रकृति को हम दो दृष्टियों से देख सकते हैं, (१) प्रकृति के वे चित्रण जो आलंबन के रूप में आए हैं, (२) वे जो मात्र अलंकरण के रूप में व्यवहृत किए गए हैं। इसी दूसरे वर्ग के अंतर्गत अलग से बारहमासा और षड्ऋतु-वर्णन पर विचार किया जाएगा।

आचार्य शुक्ल को मध्यकालीन हिंदी कवियों की प्रकृतिविषयक उदासीनता ने काफी पीड़ा पहुँचाई है; पता नहीं यदि उन्होंने रसरतन को प्रकाशित रूप में देखा होता और उसके कुछ प्रकृति वर्णनों का रसास्वादन करते तो क्या निर्णय देते; परंतु इतना तो कहा ही जा सकता है कि एकाध स्थलों पर पुहकर का प्रकृति वर्णन सेनापति को चुनौती देता प्रतीत होता है। सेनापति के विषय में कही हुई आचार्य शुक्ल की ये पंक्तियाँ अनायास याद आ जाती हैं कि 'ऋतुवर्णन तो इनके (सेनापति) ऐसा और किसी शृंगारी कवि ने नहीं किया है। इनके ऋतुवर्णन में प्रकृतिनिरीक्षण पाया जाता है[1]।' मुझे पूरा विश्वास है कि रसरतन के इन अंशों को यदि शुक्ल जी देखते तो उन्हें रीतिकालीन काव्य में प्रकृति की घनघोर उदासीनता से जो ग्लानि हुई थी, कुछ कम हो गई होती।

कवि पुहकर चाँदनी रात में शांत मानसरोवर और उसके किनारों पर छाई हुई हरियाली का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि नील गगन, नीलमणि की तरह नील जल और नील कानन की एकत्र शोभा का क्या कहना। यह शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो यह सब किसी एक ही अदृश्य रूप की परछाइयाँ हैं। मानसरोवर के फूलों से लदे हुए किनारे जल में प्रतिबिंबित हो रहे हैं मानों ये छाया की दो फैली हुई भुजायें हैं। ऐसा लगता है कि नाग लोक के बीच में नीचे ऊपर स्वर्ग लोक छा गया है। ये तीनों लोक शिव की तीन बड़ी बड़ी नील आखों से प्रतीत हो रहे हैं—

निर्मल नील गगन मन मोहै। इतहि नील कानन अति सोहै॥
सरवर नील नील मनि झाई। तरवर तीर बिंब सुषदाई॥
(अप्सरा० ८)

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, छठा संस्करण, पृष्ठ २२३

आकाश में श्वेत नक्षत्र, कानन में मालती, बेला और कुंद के श्वेत पुष्प और इन से लदे हुए वृक्षों का सरोवर में झाँकता हुआ प्रतिबिंब—

सोई सोभा गगन अवनि पुनि सोई सोभा,
तैसिये पताल सोभा एक उनहारि है।
पुहुकर कहै कुछ बरनी न जात मो पै,
मेरे मन आई सो कही मैं बिचारि है।
मानसर तीर तरु फूले हैं अनेक फूल,
ताकौं प्रतिबिंब रह्यौ भुजा सी पसारि है।
नाग लोक माँझ अध ऊरध अमर लोक,
तीनौ लोक मानौ तीन नैन त्रिपुरारि है॥

(अप्सरा० १२)

चाँदनी रात में सरोवर के किनारे की पुष्पाच्छादित वृक्षराशि भी मानो एक छायालोक ही है। इसलिये कवि जल के प्रतिबिंब, चाँदनी में स्नात वृक्ष, लतादि और नक्षत्रखचित आकाश तीनों को एक दूसरे की 'उनहारि' मानता है। और किनारों के प्रतिबिंब को भुजाओं के समान बताना तो सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का अद्भुत प्रमाण है ही। अंत में इन पाताल (जल में धसी छायाएँ), पृथ्वी और अमरलोक के दृश्य-त्रय को शिव के नेत्रों से उत्प्रेक्षित करके तो कवि ने इस शांत सुषमा में एक अद्भुत पवित्रता और महिमा ला दी है। स्थूल ऐंद्रिक सौंदर्य अतींद्रिय रहस्य में अवगुंठित हो गया है। यहाँ सहसा कालिदास का स्मरण हो आता है। गंगायमुना के संगम स्थल का नाना प्रकार के उपमानों के सहारे वर्णन करते हुए कवि अंत में लिखते हैं—

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशाः॥
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः॥

(रघुवंश १३। ५६-५७)

नील श्वेत, श्वेत नील जल का परस्पर संमिलन एक अद्भुत रंग की सृष्टि करता है। सभी उपमान एक एक कर इस वर्ण संयोजन को स्पष्ट करते हैं, कवि को लगता है कि शायद सौंदर्य की सूक्ष्मता आ जाने पर भी, इसकी

पवित्रता और गरिमा छूट गई इसलिये अंतिम श्लोक में वे उपमान के रूप में अपने आराध्य शिव को ही उपस्थित कर देते हैं जिनके कर्पूरगौरांग शरीर पर भस्म के संमिलन से उसी प्रकार की श्वेतनीलाभ छटा छाई रहती है।

पुहकर ने वन, नदी, पहाड़ और अन्य प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन भी बड़ी सूक्ष्मता से किए हैं। वैसे यह कहना शायद सही नहीं होगा कि उनके वर्णन सर्वत्र सूक्ष्म निरीक्षण को आधार मानकर ही चले हैं। किंतु इन वर्णनों से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि कवि के मन में प्रकृति के प्रति एक साहचर्य और आकर्षण का भाव वर्तमान था। युद्ध खंड में कुमार सूरसेन अपनी सेना के साथ जंगल से होता हुआ गुजरता है, तो कवि को वन की सुषुमा हठात् अपनी ओर खींच लेती है—

सोभित विपिन वसन्त अनूपा। कूजित विहँग विविध विधि नूपा॥
नवल वसन्त नवल पिक जोरी। नवल संग गुन आगर गोरी॥
सहचर नवल नवल सब संगी। नाइक नवल नवल नव रंगी॥
पेखित वन अद्भुत असथाना। रंभावति मन आनंद माना॥
(युद्ध० १८८-८९)

नवल वसंत के नवल उन्माद का यह वर्णन विद्यापति के ऐसे ही एक वर्णन से बहुत साम्य रखता है—

नव वृन्दावन नव नव तरुगन नव नव विकसित फूल।
नवल वसंत नवल मलयानिल मातल नव अलि कूल।
विहरइ नवल किसोर
कालिन्दि पुलिन कुंज वन सोभन नव नव प्रेम विभोर॥

मध्यकालीन कवियों ने प्रकृति का चित्रण बहुत रूढ़ ढंग से किया है। इसका प्रमुख कारण यह था कि ये अपने स्वतंत्र अनुभव और निरीक्षण को उतना महत्त्व नहीं देते थे, जितना आचार्यों द्वारा निर्धारित नियमों के पालन और वस्तुओं के परिगणन को।

बारहमासा

रसरतन में कल्पलता के विरहवर्णन के प्रसंग में बारहमासा का अवतरण कविपरिपाटी निर्वाह का ही प्रयत्न कहा जाएगा; किंतु पुहकर के

बारहमासे में विरह की पीड़ा का स्वर भी इतना प्रधान तो अवश्य है कि किसी भी सहृदय पाठक को दुःख की अनुभूति करा सकता है।

बारहमासा और षड्ऋतु वर्णन दोनों ही प्रकृतिचित्रण के रूढ़ प्रकार हैं। भारतीय साहित्य में प्रकृति के समष्टिगत रूप का आलंबन के रूप में प्रभूत चित्रण हुआ है; किंतु बाद में प्रकृति को आलंबन के प्रमुख स्थान से हटाकर उसे उद्दीपन विभाव में ही केंद्रित कर दिया गया। ऐसा कई प्रकार के सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों से ही हुआ होगा, इसमें संदेह नहीं; किंतु इसे हम प्रकृति चित्रण की प्रवृत्ति का ह्रास ही कहेंगे। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि ऐसा 'अनुमान होता है कि कालिदास के समय से या उसके कुछ पहले से ही दृश्यवर्णन के संबंध में कवियों ने दो मार्ग निकाले। स्थल-वर्णन में तो वस्तुवर्णन की सूक्ष्मता कुछ दिनों तक वैसी ही बनी रही; पर ऋतुवर्णन में चित्रण उतना आवश्यक नहीं समझा गया जितना कुछ इनी गिनी वस्तुओं का कथनमात्र करके भावों के उद्दीपन का वर्णन। जान पड़ता है कि ऋतुवर्णन वैसे ही फुटकल पद्यों के रूप में पढ़े जाने लगे जैसे बारह-मासा पढ़ा जाता है'।[1]

षड्ऋतु और बारहमासे के सभी रूपों का काव्यगत विश्लेषण करते हुए यदि उनके रूपों के लाक्षणिक तारतम्य को दृष्टि में रखकर देखें तो निम्नलिखित विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं—

(१) षड्ऋतु और बारहमासा दोनों ही उद्दीपन के निमित्त व्यवहृत काव्य प्रकार हैं। किंतु सामान्यतः षड्ऋतु का वर्णन संयोगशृंगार और बारहमासे का विरह में होता है।

(२) षड्ऋतु वर्णन ग्रीष्म ऋतु से आरंभ होता है। बारहमासे की पद्धति के प्रभाव के कारण कई स्थानों पर वर्षा से भी आरंभ किया गया है। बारहमासा प्रायः आषाढ़ महीने से आरंभ होता है।

(३) इन काव्यों की पद्धति बहुत रूढ़ हो गई है। कविप्रथा और कविसमय का पालन बहुत कड़ाई से होता है। इसलिये मौलिक उद्भावना की कमी दिखाई पड़ती है।

---

१. चिंतामणि, दूसरा भाग, काशी संवत् २००२, पृष्ठ २१

इन काव्यरूपों का मध्यकालीन साहित्य में ही नहीं बाद तक भी बहुत व्यापक प्रचार प्रसार था।[1] पुहकर ने षड्ऋतु और बारहमासे को एक में मिला देने का प्रयत्न किया है। उन्होंने भी बारहमासे का आरंभ आषाढ़ महीने से ही किया है। युद्ध खंड के दूसरे अध्याय में जो 'बारहमासा वर्णन' नामक अध्याय ही है, कवि लिखता है—

प्रथमहिँ आइ असाढ़ जनावा। विरहिन विरह त्रास मन आवा॥
रितु आगम अलि दीन दिखाई। मानौ मदन फौज चढ़ि आई॥

वर्षा के वर्णन में आषाढ़ में मेघों का घुमड़ना, गरजना, बिजली का कौंधना, बूँदों की झड़ी, बगुलों की पाँत का उड़ना तथा सावन में मेघ और मेदिनी का संमिलन, धरती की हरियाली, हिंडोले, पपीहे की पुकार आदि का वर्णन किया गया है। भादों के वर्णन में प्रायः भयंकरता रहती है। यहाँ भी मेघगर्जन सिंह की दहाड़ के समान बताई गई है। साथ ही अजस्र मेघ की झड़ी और कालरात्रि की भयानकता आदि का भी वर्णन किया गया है। ये सभी वस्तुएँ रूढ़ हैं। आश्विन में अगस्त नक्षत्र का उदय, वर्षा का घटना, रास्तों का सूखना, कास-कुमुद का फूलना, चन्द्रमा की शुभ्रता, धमारी और रास का मचना, आदि प्रसिद्धियों का यहाँ भी पालन किया गया है। एक छंद में पूरी लिस्ट भी दिखाई पड़ती है।

रितु सरद सुहाई, जय जग भाई, जोति जुन्हाई उद्दितियं।
उज्जल रस नीरं, भौरनि भीरं, सुरसरि तीरं उन्मत्तीयं॥
चात्रिक जल आसं, सूरप्रकासं, बल्लभ आसं, तन वासं।
सौंहैं नर नारी, पीयहिं पियारी, जोवनवारी संभोगं॥

(युद्ध० ३८-३९)

राजशेखर की काव्यमीमांसा में शरद् ऋतु के वर्ण्य विषयों की लिस्ट से इसकी तुलना करने से मालूम हो जाएगा कि रूढ़ि क्या थी और कवि लोग आँखें मूँदकर कैसे उसका निर्वाह किया करते थे। शरद् ऋतु के वर्ण्य विषय—

---

१. विस्तार के लिये देखिए 'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य', पृष्ठ ३३२—३३७

उपानयन्ती कलहंसयूथमगस्त्यदृष्ट्या पुनती पयांसि।
मुक्तासु शुभ्रं दधती च गर्भं शरद्विचित्रैश्चरितैश्चकास्ति॥
अत्रावदातद्युति चन्द्रिकाम्बु नीलावभासं च नभः समन्तात्।
सुरेभवीथी दिवसावतारो जीर्णाभ्रखण्डानि च पाण्डुराणि॥
(काव्यमीमांसा, १८ वाँ अध्याय)

वही कलहंसों का आविर्भाव, अगस्त का उदय, जलाशयों की स्वच्छता, शुभ्र चन्द्र ज्योत्स्ना, आदि।

कातिक महीने में दीपमालिका जली पर, कल्पलता का प्रिय उसके घर को अँधेरे में डालकर चला गया। सूरज तुला राशि में क्या गया, विरहिणी को विरह की तुला पर चढ़ा गया। अगहन की शीत रातें आ गईं। वृश्चिक राशि आई। विरह का वृश्चिक अंग को डंक मार गया। पूष में ऊख मीठी हो गई लेकिन विरहिणी के लिये तो प्रियपीयूष अप्राप्य ही हो गया। पूष की कटु शीत तो अंग के अनंग से और भी अधिक प्रज्वलित हो जाती है—

औरन तन तापन करै, वारि वरोसी घाम।
विरहिन अंग प्रजार कै, सेकत है कर काम॥
(युद्ध० ६५)

माघ महीने में विरहिणी का तन-मन घरी घरी घटता रहा। भानु ने स्वयं कामपथ का अनुसरण किया, इसी कारण उसका तेज नष्ट हो गया। फागुन में फाग मची। चाँचरि और धमारी खेलते लोगों का उत्साह पृथ्वी पर छा गया। चैत्र महीने में वसंत की सुषमा से पृथ्वी ढँक गई। अंकुरित पत्र हरित नील रंग धारण करने लगे मानों मदन के हाथियों के दल कान हिलाकर चल रहे हों—

अंकुरित पत्र तरु हरित नील। हलि चलत मनौ दल मदन पील॥
रँग अरुन फूल किसुंक विधान। जनु कटक माँझ सोभित वितान॥
सोभित्त सरस छबि अंब मौर। सिर ढरहिं मनो मनमथ्थ चौर॥
केवरौ मलति मालती जाइ। जनु मैनवान राखिय वनाइ॥
गुंजरत भ्रमर कोकिल सुकीर। जनु भनत बंदि जन विप्र धीर॥
लपटाइ लता लागी तमाल। जनु करत त्रिया कर अंकमाल॥
(युद्ध० ८०-८२)

इस वर्णन से कालिदास के निम्न श्लोक की तुलना करने पर पता चल जाएगा कि कवि पुहकर किस श्रेणी के स्वाध्यायप्रिय व्यक्ति थे—

आम्री मञ्जुलमञ्जरी वरशरः सत्किंशुकं यद्धनु-
र्ज्या यस्यालिकुलं कलङ्करहितं छत्रं सितांशु सितम्।
मत्तेभो मलयानिलः परभृता यद्वन्दिनो लोकजि-
त्सोऽयं वो वितरीतरीतु, वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः॥

(ऋतुसंहार षष्ठ सर्ग ३८)

आम के बौर ही जिसके बाण हैं, टेसू का धनुष, भौरों की पाँत की डोरी, मलयाचल पवन ही मतवाला हाथी, कोयल गायक और शरीर न रहते हुए भी संसार को जीतनेवाला कामदेव ही योद्धा है, वसंत से युक्त वह आपका कल्याण करे।

पुहकर के बारहमासे की सब से सुंदर वस्तु बीच बीच के दोहे और सोरठे हैं जिनके माध्यम से कवि बदलते हुए प्रकृति दृश्यों को विरहिणी के मनोभावों से जोड़ देता है। जैसे—

सावन आवन कीन, पिय आवन पेषत नहीं।
बिरह अधिक दुख दीन, सुन सुक स्याम सहाइ विनु॥
भादौं गहिल गंभीर, मघा मेघ उनमत्त अति।
बरखत लोचन नीर, नारि अकेली सेज मैं॥
पुहकर माघ अतीत हुव, दिवस बढ़ै घटि राति।
मो घट साँसन साँस अति, घटी घटी घट जाति॥
षट रितु बारह मास गै, पुनि फिर आइ असाढ़।
मनमथ पीर न छिन घटी, बिरह दिनै दिन बाढ़॥

———

वस्तुवर्णन

कविसमय की रूढ़ परिपाटी

कविता को ईश्वरीय सृष्टि का अवास्तविक अनुकरण कह कर भले ही तिरस्कृत किया जाय, किंतु यह तो स्वीकार करना ही होगा कि आसपास की देखी अदेखी सभी प्रकार की वस्तुओं के बारे में मनुष्य के मन में एक अमिट जिज्ञासा का भाव है और इसी लिये इन वस्तुओं के वर्णन उसके अंतश्चक्षुओं के संमुख कभी वास्तविक कभी किंचित् या अधिक कल्पनानुरंजित दृश्य उपस्थित करके उसके मन को परितृप्त करते रहे हैं। अतः वस्तु वर्णन काव्य का, चाहे वह किसी भी विधा का काव्य हो, एक अविभाज्य अंग रहा है। भारतीय साहित्य में वस्तु वर्णन की सूक्ष्मता और रंगीनी एक स्तुत्य वस्तु रही है, संस्कृत के कवियों ने वस्तुओं के बाह्य जड़ रूप को ही विश्लेषित विवीक्षित नहीं किया था बल्कि उनके अंतरस्तल में व्याप्त चेतना सत्ता की एकरूपता को भी परिलक्षित किया था। कालांतर में वस्तु वर्णन की परिपाटी रूढ़ होने लगी। अध्ययन मौलिकता की प्रेरणाशक्ति के रूप में नहीं अनुकरण के साधन के रूप में प्रयुक्त होने लगा। एक की देखादेखी दूसरे में पद्धति और पैटर्न का अनुवर्तन होने लगा और एक समय ऐसा भी आया कि आचार्यों ने खास खास वस्तुओं के वर्णन में क्षेत्र और आयाम और परिप्रेक्ष्य की सीमाएँ निर्धारित कर दीं। जाति, द्रव्य, क्रिया, देश और काल के वर्णन में न सिर्फ मिथ्या सीमाएँ बना दी गईं बल्कि इन्हें अवास्तविक ढंग से चित्रित या वर्णित किए जाने को ही कविकर्म मान लिया गया। अशास्त्रीय, अलौकिक, परंपरायात अर्थ को ही कविनियम या कविसमय मान लिया गया। यायावरीय राजशेखर ने इसे उचित और आवश्यक ठहराते हुए लिखा कि 'प्राचीन विद्वानों ने, सहस्रों शाखावाले वेदों का अंगों संहित अध्ययन करके शास्त्रों का तत्त्वज्ञान करके, देशांतर और द्वीपांतरों का भ्रमण करके जिन वस्तुओं को देख, सुन और समझ कर उल्लिखित किया है, उन वस्तुओं और पदार्थों का देश, काल और कारणभेद होने पर या विपरीत हो जाने पर भी उसी प्राक्तन अविकृत रूप में वर्णन करना कविसमय है।' यायावरीय के मन में कविसमय की महत्ता को

स्वीकार करने के आधार स्वरूप जो भी कारण रहे हों, इसमें संदेह नहीं कि बाद में तो कवियों ने इसे बने बनाए 'मसाले' के रूप में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि कवि की निरीक्षण शक्ति कुंद होती गई और खानापूरी करके निश्चित वस्तुओं का नाम भर गिना देना वस्तुवर्णन की इयत्ता समझ ली गई।

कवि पुहुकर इसी परंपराविहित परिपाटी के मानसपुत्र थे। इसी कारण उनके वस्तुवर्णन में निश्चित पद्धति या पैटर्न का पूर्णतया परिपालन दिखाई पड़ता है। कविसमय के अंतर्गत स्वर्ग्य, भौम और पातालीय तीन विभाग किए जाते हैं। इसमें भी भौम कविसमय को उसके विस्तार और वैविध्य के कारण प्रधान माना गया है। भौम कविसमय जातिरूप, द्रव्यरूप, गुणरूप और क्रियारूप से चार प्रकार का होता है और इनमें प्रत्येक के तीन भेद होते हैं—(१) असत् का उल्लेख, (२) सत् का अनुल्लेख और (३) नियम।

नदियों में कमल, जलाशयों में हंस तथा पर्वतों में सुवर्ण, रत्न आदि का वर्णन असत् निबंध है। पुहकर के काव्य से नदी, जलाशय और पर्वतों के वर्णनों के उद्धरण इस बात की पुष्टि करेंगे कि कवि ने उपर्युक्त नियमों का किस कड़ाई से पालन किया है। रसरतन में सरोवर के वर्णन अनेक बार आते हैं। मानसरोवर का वर्णन है, जहाँ सूरसेन ने चंपावती यात्रा में विश्राम किया था, और जहाँ से उसे सुषुप्तावस्था में उठा कर अप्सरायें ब्रह्मकुंड ले गईं। चंपावती नगर के उपकंठ में भी सरोवर है, जहाँ वैरागर की सेना के साथ उसने स्वयंवर के अवसर पर विश्राम किया; पुनः वैरागर में उसने अपनी रानियों के लिये जो महल बनाया उसमें भी सरोवर बनवाया गया था। मानसरोवर के वर्णन की विशेषताएँ निसर्गनिरीक्षण के अंतर्गत देखी जा सकती है। शेष दोनों सरोवरों का वर्णन देखिए—

बनी जहँ पारि जटी नग हीर। प्रफुल्लित पंकज भौंरनि भीर।
महा जल जूथ घनै जल जंतु। मनो पथ सागर नाहिनु अंतु॥
तरव्वक सारस हंस चकोर। चकवा चकई जहँ सारस मोर॥
(चंपावती० ११२)

यहाँ न सिर्फ कमल, भौंरे और हंस ही हैं, बल्कि पक्षियों की एक लंबी तालिका भी प्रस्तुत कर दी गई है। वैरागर के अंतःपुर के सरोवर की छटा भी कुछ ऐसी ही है—

अंगनि चौक फटिक मनि साजा । ता मधि अमल सरोवर राजा ॥
विद्रुम पारि रची दिसि चारी । मरकत मन की सिढ़ी सँवारी ॥
नाना वरन सरोवर सोहै । दिजकुल केलि करत मन मोहै ॥
(वैरागर० १४०–१४१)

और जब सूरसेन अपनी दोनों रानियों के साथ इस सरोवर के पास आए तो दो चन्द्रमाओं के बीच सूर्य के युगपत् दृश्य ने अलंकारों ने ऐंद्रजालिक दृश्य ही खड़ा कर दिया—

प्रथम आइ अंगन भये ठाढ़े । सरवर देखि हरष मन बाढ़े ॥
दोउ भामिनि सँग देखन लागीं । कंत प्रीति सरवर अनुरागीं ॥
भये बिवस कोकनद कोका । पल महँ आनंद पल महँ सोका ॥
बिहँसत सकुचि कमल बिहसाई । कुमुद सकुच पुनि सकुचत नाई ॥
कोक वधू मानति रति केली । बहुर अमित फिर चलहि अकेली ॥
पुनि फिर आइ मिलन पिय संगा । बिछुरि मिलन बाढ्यो आनंगा ॥
अलि कुल निरख अचंभो होई । दिन अरु रैन न जानत कोई ॥
बहु छबिभेद सबन्ह मिलि चीन्हा । बिय ससि बीच उदय रवि कीन्हा ॥
(वैरागर० १४५–१४८)

सरोवर की तरह ही बाग-वृक्ष, भवन, आदि के वर्णन में भी रूढ़ियों का निर्वाह किया गया है । कुमार सूरसेन चंपावती नगर के पास उपकंठ में स्थित बाग को देखता है । उसका वर्णन करते हुए कवि ने वृक्ष, फल-फूल, लतादि का कोई बिम्बग्राही दृश्यविधान नहीं किया है । केवल नाम परिगणन से ही जैसे संतुष्ट हो जाता है—

सुन्यो पुर मित्र बढ्यो अनुराग । विलोकित नैन मनोहर बाग ॥
रह्यो सुख संपति आनँद केलि । घनै फुल फुलहिं लसै द्रुम बेलि ॥
सदा फर दाड़िम सोभित अंब । वनै वर पीपर नीम कदंब ॥
महारंग नारंग निब्बू संग । लता जनु अमृत सींचि लवंग ॥
जभीरी गलग्गल श्रीफल सेव । फलै कदली फल चाषहिं देव ॥
षजूरिनि षारक ताल तमाल । सुधा सम दाख अनूप रसाल ॥
चमेलिय चंपक बेल गुलाब । बँधूप सरूपित सोभित लाल ॥
(चंपावती० १००–१०३)

इसी स्थान पर बाग को सींचने के लिये कूप में रहँट चल रहा था, जिसे देखकर कवि का मन कुछ दार्शनिक भी हो गया है—

माली मुदित विजच्छिनु भारी। चलहिं रहँट सींचहिं बनवारी॥
बैठो जाइ कुँवर इक ठाऊँ। पूछन हेत नम्र कर नाऊँ॥
निरषि नैन देखहिं जो बारी। कौतिक मगन भयौ अति भारी॥
रहँट फेरि गुन घरी बनाई। बाँधी एक जोरि सब लाई॥
सकल चपल पलु धीर न रहई। घन इक अध घन ऊरध रहई॥
सीधो एक एक बिपरीती। एक घरी इक आवहिं रीती॥
उहि गुन डोर बँधो जल आवै। तिहि जल तैं बिस्थार बढ़ावै॥
कुँवर चरित्र सबै यह देख्यौ। बहु बिध अर्थ हियै महँ लेख्यौ॥

(चंपावती० ६१-६७)

ये सभी वर्णन कवियों के लिये बनेबनाए मसालों पर ही आधृत हैं। भूमिश्री के अंतर्गत इन विषयों की लिस्ट गिना दी गई है। इसी को ऐसे कवि निरंतर दुहराते तिहराते रहते थे।

केशव ने जो पुहकर के करीब करीब समकालीन ही थे, कविप्रिया के सातवें प्रकरण में नगर, वन, बाग, गिरि, ताल, सरिता आदि के वर्णन में परिगण्य वस्तुओं की सूची दी है, जिसे देखने से पता चल जाएगा कि यह व्यापार कितना रूढ़िग्रस्त और नीरस हो गया था।

पुहकर ने चंपावती नगर का भी वर्णन बड़े विस्तार से किया है। नगरवर्णन में केशव के अनुसार निम्नलिखित वस्तुओं की परिगणना होनी चाहिए—

खाँई, कोट, अटा, ध्वजा, वापी कूप तड़ाग।
वारनारि असती सती, वर नहु नगर सभाग॥

(कविप्रिया ७।४)

पुहकर की इतनी विशेषता जरूर है कि उन्होंने अपने को इतना सीमित नहीं कर लिया। रूढ़ियों का अनुसरण किया अवश्य; पर व्यापक और परंपरा से स्वीकृति पद्धति के साथ। उदाहरण के लिये उन्होंने कोट, अट्टालिका, भवन, नागरिकाओं और वेश्याओं का वर्णन तो किया ही, पर साथ ही विभिन्न हाटों का भी वर्णन किया। उन्होंने इस दिशा में मानसोल्लास, कादंबरी,

कीर्तिलता, वर्ण रत्नाकर, पृथ्वीचंद्र चरित्र आदि ग्रंथों में वर्णित पद्धति को स्वीकार किया। हाटों का वर्णन देखिए—

पटंबर मंडित सोभित हाट। रच्यो जनु देव सुरप्पति बाट॥
कहुँ नग मोतिय बेचत लाल। करैं तहँ लच्छिय मोल दलाल॥
कहुँ गढ़ै कंचन चारु सुनार। कहुँ नट नाटिक कौतिक हार॥
कहुँ पट पाट बनैं जरतार। कहुँ हय फेरत हैं असवार॥
कहुँ गुहैं मालिनि चौसर हार। कहुँ तिसबारत हैं हथियार॥
कहुँ बरई कर फेरत पान। कहुँ गुनी गाइन साजत गान॥
कहुँ पढ़ै पंडित वेद पुरान। कहुँ नर तानत बान कमान॥
कहुँ गनिका गन रूप निधान। कहुँ मुनि ईस करै तप ध्यान॥
चल्यौ नगरी सब देखत सूर। कहूँ मृगमद सुगंध कपूर॥
रहै इक नागरि नैन निहार। चलै इक पाट गवाप उघार॥
(चंपा० १४६-१५३)

कीर्तिलता में विद्यापति ने जौनपुर का जो विस्तृत वर्णन किया है, उससे इसकी तुलना की जाय तो मालूम हो जाएगा कि पुहकर ने परवर्ती हिंदी कवियों का नहीं पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों का अनुसरण किया है।

सूरसेन विवाहोपरांत चित्रसारी में प्रथम समागम के लिये प्रवेश करता है। चित्रशाला अथवा रंगशाला का भी वर्णन पूर्ववर्ती साहित्य में रूढ़ हो चुका था—

लखि रहइ भूमि मृग पहुँमिपाल। अति रुचिर रुचितवर चित्रसाल॥
राखिय सुगंध भरि करि बनाइ। अंगनह मध्यि सरवर सुभाइ॥
गुंजरत भृंग रसबास लीन। मृगवाल नाद स्वादहिं अधीन॥
परजंक मंड तहँ चित्त चार। मनि मुक्त हीर मानिक जराइ॥
चहुँ ओर चित्र पुतरीय चारि। परवार हेतु जनु अमर नारि॥
इक हथ्थ पाइ इक हथ्थ चौरि। इक कर सुगंध गहि मुकुर औरि॥
पचरंग पाट सीरक बिछाइ। वहि रूप ओप बरनी न जाइ॥
वहु फूल सूल सम धरि बनाइ। पट झीन झारि चादर चुनाइ॥
गिंडूव जुगल दुहुँ ओर साज। सुर सरित सेज दोउ कूल राज॥
झलकंति मुक्ति झालर अपार। चंदोव चंद जनु जलजतार॥
(चंपावती० २२३-२२८)

यह है चित्रशाला, जिसमें तरह तरह के चित्र बने हुए थे जिनका वर्णन छंद संख्या २३० से २३७ में मिलेगा। इसमें दशावतार के चित्र थे, साथ ही अनेक देवी-देवताओं के। अग्निमित्र इरावती, भरथरी पिंगला, काम कंदला आदि के कथाचित्र भी अंकित थे। धवलधाम बहुत प्रकार के फूलों से छाया हुआ था। धवलगृह, चित्रशाला, प्रासाद के दूसरे अंगों आदि के विषय में जिनकी ज्यादा दिलचस्पी हो वे डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल की प्राचीन ग्रंथों की पूर्वकृत टीकाओं की नवीन टीकाओं को पढ़ें, जिनमें खाके-नक्शे आदि भी मिल जाएँगे।

केशव की कविप्रिया के आठवें प्रभाव में वर्णित राज्यश्री के उपकरणों से परिचित व्यक्ति को पुहकर के इसी विषय से संबद्ध उपादानों के वर्णन पढ़ कर लगेगा कि यहाँ भी वही नाम परिगणनवाली पद्धति ही अपनाई गई। हाँ यह अवश्य है कि पुहकर के वर्णन में मुगलकालीन अनेक वस्तुयें जुट गई हैं। राजसिंहासन की शोभा का वर्णन मित्रमहोत्सव में देखा जा सकता है—

सिर सोहत छत्र चँवर सिंहासन आसन वास विसेषि कियं।
वहु भूषन रत्न रुचिर रचि कुंडल कुंतल मंडित मंडिश्रियं॥
मुकुता मनि ग्रीव गिरावर वारिद वैननिवानी चंगपती।
बत्तीसौ लच्छिन लच्छिलसै तन, ज्यों गुन अच्छरि लीलवती॥
रथ हेवर हीर समद सुंडाहल अति वल पंतनि पंति षरे।
वहु विक्रम स्वान सिचान सिंहमृग पच्छिय पिंजर आनि धरे॥
तहँ राजत राजकुमार सभासद सुन्दर राज सुजान सबै।
कवि पुहकर तेज प्रकास विलोकित लज्जित अंग अनग तबै॥

(स्वयंवर० ३१६७-३२१)

सूरसेन की सेना के, हाथी, घोड़े, शिविर, ध्वज, निशान, भेरी-मृदंग आदि का वर्णन विजयपाल खंड के १९६ संख्यांक पद्य से २१७ तक देखना चाहिए।

हाथी—

चले मत्त मैमत घूमंत मता। मनौ वद्दला स्याम माथै चलंता॥
बनी वग्गरी रूप राजंत दंता। मनौ वग्ग आसाढ़ पातैं उड़ंता॥

लसै पीत लालै सुढालै ढलक्कैं। मनौ चंचला चौंध छाया भलक्कैं ॥
गिरी शृंग के कुंभ सिंदूर मंडे। घटा अग्र पातैं मनौ मारतंडे ॥
वहहिं जोर छंछाल ते मद नीरं। लगे गंड गुंजार तै भौंर भीरं ॥
किये कुंडली कुंड सुडाइलीयं। लसौ चौरमरि जो शृंगार कीयं ॥
(विजयपाल० १९८।२०१)

घोड़े—

पलानैं तहाँ तेज ताजी तुरंगा। परै उच्च उच्छाल मानौ कुरंगा ॥
कथाहे सुलालं दुरंगा सुरंगा। खरै स्वेत पीतं तथा सावरंगा ॥
(विजयपाल० २०३)

पुहकर एक सचेत कवि अवश्य थे, क्योंकि वे जानते थे कि कवि विधि और यथार्थ में क्या अंतर होता है। उन्होंने जहाँगीर की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यह मैं बिल्कुल यथार्थ कह रहा हूँ। इसे कविविधि नहीं मान लेना चाहिए। इसमें शक नहीं कि उन्होंने 'कविविधि' का पुरस्सर अनुकरण और परिपालन किया है; किंतु उनके मन में कवि विधि का अर्थ स्पष्ट था, यही उनकी विशेषता है—

मैं न कछू कवि विधि कही, साच कही सब बात।
सरल सिंह निर्विस उरग, साहि तेज विख्यात ॥

—००—

रसनिरूपण और नायिकाभेद

जैसा कि आरंभ में 'कवि परिचय' देते हुए, पुहकर के आचार्यत्व पर विचार करते हुए कहा गया है कि उन्होंने रसवर्णन और नायिकाभेद पर विशेष ध्यान दिया है, यहाँ हम संक्षेप में इन विषयों पर कवि के योगदान पर विचार करेंगे। कवि को नवरसों की एकत्र एक क्रिया या व्यक्ति में सहज निष्पत्ति का रूप इतना आकृष्ट करता है कि उन्होंने कई स्थानों पर इस तरह के 'नवरस युक्त' वर्णन किए हैं। आरंभ के दूसरे छप्पय में कृष्ण की 'नवरस बस गिरिधर सरन' कह कर स्तुति की गई है। उसी प्रकार आदि खंड के ही १७४ संख्या छप्पय में 'नवरस प्रतिच्छ चंडी चरन' कह कर दुर्गा की वंदना की गई है। वैसे तो कवि ने और भी रसों का यत्रतत्र वर्णन किया है; किंतु मुख्य वर्ण्य रस श्रृंगार ही रहा है। वीर, भयानक, वीभत्स आदि रसों का स्फुट रूप युद्ध खंड में देखा जा सकता है। उन्होंने इन रसों के विषय में आदि खंड ८६–६० संख्या के छंदों में भी संकेत दे दिया है। श्रृंगार रस को रसराज मानकर कवि उसके अतुल प्रभाव की व्याख्या करता है और उसके दोनों रूपों संयोग और वियोग का वर्णन करता है। कवि का तो यही उद्देश्य ही है—

नृप तनया रंभावती सूर पृथ्वी पति पूत।
बरनौं तिनकौं प्रेमरस, मदन भयौ तहँ दूत ॥

विरह—

विरह की आकस्मिकता, पूर्व राग से उत्पन्न विरह की अतींद्रिय पीड़ा को लक्ष्य करके कवि कहता है—

अर्धचंद्र आकास बान लुंभियह हिमाकर।
उभय अग्र विवि धाइ अंग लागत विरहिन वर ॥
विषय दुसह अरु कठिन गूढ़ पुनि मंत्र न मानहिं।
द्वै गुन पंच अवस्थ सुदेस प्राचीन बखानहिं ॥
अभिलाष आदि पुहकर सुकवि एक एक बरनन कियौ।
अवलंब एक पचि सजियौ सुविधि विचार विरहिन हियौ ॥
(आदि० १४८)

इन स्मर दशाओं का अलग अलग वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

(१) अभिलाष—

अभिलाख बखानत धीर हियं। जहँ पूरन प्रेम प्रकास कियं॥
गहिरै परि रूप समुद्र जलं। चित्त आवतु फैननि तेन थलं॥
मनु प्रानपती अनुचार करै। तनु पूरन आयु अवद्धि भरै॥
अति लज्जित सुंदर काम वसं। चित चाहति चाहन रूप रसं॥
तिहि भावतु भौन न सँग सखी। जिहि नैन निरन्तर प्रीत बसी॥
विधि वंधि वषर्गन यौं चलियौ। नट के कर ज्यौं करपत्त लियौ॥
सदा रहत मन वित्त मैं, मन तैं षंडित वित्त।
ताहि कहत अभिलाष कवि, इत उत चलहि न चित्त॥

यह है कवि पुहकर का अभिलाष-वर्णन। 'संगमेच्छाऽभिलाषः' रसमंजरीकार ने यह संक्षिप्त लक्षण बताया है किंतु कवि पुहकर, जो काव्यकार है और अपनी कविता के बीच में इन दशाओं का चित्रण कर रहे हैं, कितना विशद और चित्रात्मक वर्णन करते हैं। विधि द्वारा निर्दिष्ट इस अवस्था में नायिका यों चलती जैसे नट हाथ में करपत्र लेकर। यह अनन्यता और एकाग्रता का चित्र है। रसमंजरी की तुलना के साथ पुहकर के लक्षण नीचे दिये जा रहे हैं।

(२) सन्दर्शनसन्तोषयोः प्रकार जिज्ञासा चिन्ता। (रसमंजरी, १२४)

अब जरा कवि पुहकर का चिंता-लक्षण देखिए—

मिलन होत चिंतनु करहि, जतन विचारहि बाल।
सो अवस्थ चिंता कहत, कोवित काव्य रसाल॥
नहि निरखत नैननि सजनु, सकत न विरह निवाहि।
विरहिन चित चिंता करहि, क्यौं करि देखौं ताहि॥
(स्वप्न० १५८-१५६)

(३) प्रियाश्रित चेष्टाद्युद्बोधितसंस्कार जन्य ज्ञानं स्मृतिः।

अर्थात प्रिय अथवा प्रिया की अनुभूतपूर्व चेष्टाओं आदि द्वारा उद्बोधित संस्कार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान स्मृति कहलाती है। पुहकर कहते हैं—

निसि बासर बिसरै नहीं, लोभ लग्यौ जिहि जाहि।
प्रानपती सुमिरन सदा, सुमृति कहत कवि ताहि॥
रूप रासि मन भावतो, सुदिन चढ्यौ चित आइ।
इंदु महाबल चित्त ज्यौं, क्यों सहि उतर न पाइ॥

(४) विरहकालिककान्ता विषयक प्रशंसा प्रतिपादनम् गुणकीर्तनम्।

सुहृद संग गुन बिस्तरै, प्रीतम प्रीत नवीन।
सो अवस्थ गुन कीरतनु, कोबिद कहत कवीन॥
मुदिता सौं रंभावती, कहति सुनहि सखि बैन।
इहि बिधि रूप सरूप मैं, कहूँ न देख्यौ नैन॥

(५) कायक्लेश जनित सकल विषय हेयता ज्ञानमुद्वेगः।

कायक्लेश से उत्पन्न होनेवाली समस्त विषयों के प्रति हेयता (त्याग) की वृत्ति को उद्वेग कहते हैं।

बिरह बिकल तन मैं परै, दाहन दुखद अनेग।
गेह बिषै बिष समलगै, सो अवस्थ उदवेग॥

(६) प्रियाश्रित काल्पनिक व्याहारः प्रलापः।
कल्पनायाः कारणमन्तःकरण विक्षेपः।
तस्य च निदानम् उत्कंठा।

भानुदत्त के विचार से प्रिय के विषय में व्यर्थ की चर्चा प्रलाप है। विक्षिप्ति ही उसका कारण है। विक्षिप्तावस्था उत्कंठा के कारण होती है। इसलिए प्रताप का मूल कारण उत्कंठा है।

पुहकर कहते हैं—

बिरह दुखित वर बिरहिनी, व्यापँहि उर संताप।
अति बिलाप बिलखति रहै, सो कवि कहत प्रलाप॥

किंतु वे उत्कंठा को भुलाना नहीं चाहते। इसीलिये आगे लिखते हैं—

प्रीतम पै उड़ि जान कौ, जार करौं तनु षेह।
पुहकर बिधि नहिं सहि सकै, भींजै लोचन मेह॥

(७) भानुदत्त ने इसके बाद विपर्यास का वर्णन किया है—

विपर्यासो व्याकुल व्यापारः स च कायिको वाचिकश्च।

इसी को पुहकर उन्माद कहते हैं।

उर अवस्थ उन्माद व्याधि इमि जान बखानहिं।
प्रेम पाउ उन्मत्त जंतु जग मग्ग बखानहिं॥
वचन भुल्लि पुनि कहइ प्रान प्रानेसुर सथ्थहिं।
धीर चित्त नहिं धरहि बुद्धि नहिं आवहि हथ्थहिं॥
अति कठिन पीर जिय जानि करि कबि पुहकर इमि उच्चरहि।
कि होइ जिवनु साजन सहित कि प्रीत फंद कोइ जिन परहि॥

(१६६)

गुन हित ज्यों इंद्री सकल प्रान तजै पुनि जीव।
तिहि अवस्थ उन्माद मैं, प्रान तजै नहिं जीव॥

(२०३)

(८) मदन वेदनासमुत्थ सन्ताप कार्श्यादि दोषो व्याधिः।

स्मर पीड़ा के कारण प्रेमी के शरीर में उत्पन्न कृशता आदि दोष को व्याधि कहते हैं।

मदन अग्नि अति उपजि कै, विरह जरन तन होइ।
वहुर रोग वपु विस्थरै, व्याधि कहत सब कोइ॥
जिहि न मूरि औषध लगै, जाहि तंतु नहि मंतु।
पिय परुष पावै नहीं, व्याधि कहत इमि जंतु॥

(९) विरह व्यथाऽऽविष्कारमात्रमेव जीवनावस्थानं जड़ता।

विरह की व्यथा का आविष्कार मात्र ही जीवन की स्थिति का जब परिचायक रह जाता है, जब जड़ता की दशा होती है।

गुनहिं छोड़ि गति पंगु ह्वै रहै चित्र सम देह।
तासौं कवि जड़ता कहैं, नव अवस्थ नव नेह॥

(१०) निधनस्यामङ्गलत्वान्नोदाहृतिरुदाहृता।

निधन का वर्णन अमंगलजनक है, इसलिये भानुदत्त उदाहरण नहीं देते। साहित्य दर्पणकार की भी ऐसी ही व्यवस्था है।

रसविच्छेदहेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते।
जातप्रायं तु तद्वाच्यं चेतसाऽऽकाङ्क्षितं तथा॥

इन्हीं सब व्यवस्थाओं को दृष्टि में रख कर पुहकर लिखते हैं—

महामोह अरु मूरछा, देखत सखी निरास।
पुहकर जीवनि जानहीं, एक सांस की आस॥
नव अवस्थ बरनन कियौ, पुहकर कवि मति जोइ।
दुस्सह दसम अवस्थ है, सो साजन नहिं होइ॥
सो मुहिं कहति न आवही, राषतु हैं कवि गोइ।
ताहि कहत रसना जरै, मत बरनौ कवि कोइ॥

यही संक्षेप में स्वप्न खंड में नव अवस्था वर्णन नायक आठवाँ अध्याय है।

नायिकाभेद

पुहकर के नायिकाभेद के सिलसिले में आरंभ में ही उनके 'आचार्यत्व' प्रकरण में संक्षेप में विचार किया गया है। पुहकर के नायिकाभेद का कोई अलग मौलिक महत्व नहीं है। उन्होंने इस पक्ष पर भी ध्यान दिया, और रसरतन जैसे प्रेमाख्यानक में जहाँ नायिकाभेद पर विचार करने का अलग से कोई अवसर न था, स्थान ढूँढ़ कर इसे समाविष्ट किया, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नायिका भेद पुहकर का एक प्रिय विषय था। और अब तो 'रसवेलि' के प्राप्त हो जाने से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो ही जाता है। पुहकर के नायिकाभेद पर शास्त्रीय ढंग पर विचार तो तभी हो सकता है, जब उनकी रचना रसवेलि की कोई पूर्ण प्रति मिल सके। बहरहाल रसरतन में उन्होंने नायिकाओं के भेदों के जो कुछ लक्षण दिये हैं उन्हें रसवेलि के उदाहरणों से जोड़कर कुछ सीमा तक उनके इस पक्ष पर प्रकाश डाला जा सकता है। उदाहरण के लिये स्वाधीनपतिका के लक्षण इस प्रकार बताते हैं।

(१) स्वकीया—

पति स्वाधीन कहीं त्रिय सोई। पति जिहि प्रेम सदा बस होई।
सुख संभोग परस्पर प्रीती। मदन मनोरथ आनँद रीती॥

(वैरागर० १६८)

अब इसके उदाहरण के लिये रसवेलि का ४वाँ पद देखिए—

[प्रौढ़ा स्वकीया]

फूलनि की सेज स्याम रोहिनीरवन मुखी,
राजति रास कस गमना घन दामिनी।

काम केलि करत कुमार दोउ काम रूप,
जागत जगावत जुन्हाई जीति जामिनी ॥
पुहकर पियहिं उरज वर उर लावै,
वार वार मानिनि रिझावै गज गामिनी ।
कोकिल के कल कोक कला में प्रवीन प्यारी,
कुहुकि कुहुकि उठै कोक कैसी कामिनी ॥

(२) अभिसारिका—

सो त्रिय सुकवि कहहिं अभिसारा ।
समय हेत साहस युत हारा ॥
(१६६)

उदाहरण के लिये देखिए रसवेलि का ३१ वाँ पद अभिसारिका शीर्षक ।

(३) वासकसज्जा—

वासक सज्जा नारि बखानी । बारि जनी पति आगम जानी ॥
रचै सेज शृंगार बनावै । मिलन मनोरथ मन उपजावै ॥
(१७०)

रसवेलि का उदाहरण प्राप्त नहीं है ।

(४) खंडिता—

नारि खंडिता वही कहावै । जेहि पति यामिनि अनत गँवावै ॥
होत प्रात आवै परभाता । सो तिय कहै व्यंग वर वाता ॥
(१७१)

रसवेलि का उदाहरण देखिए छंद संख्या २६ ।

(५) विप्रलब्धा—

विप्रलब्ध सो नारि जु गाई । कंत परठ संकेत बुलाई ॥
देखें जाइ सदन सो सूना । वंचित सुष्ष होहिं दुख दूना ॥
(१७२)

रसवेलि का उदाहरण छंद सं० २८ ।

(६) उत्का—

वरनि विरह उत्कंठा वाढ़ी । मदन विरह वेदन अति काढ़ी ॥
(१७३)

रसवेलि का उदाहरण छंद सं० २६ ।

(७) प्रोषितपतिका—

प्रोषित पतिका नारि बखानी । पिय बिदेस विरहिनि बिलखानी ॥
सदन सेज श्रृंगार न भावै । विरह वियोग बहुत दुख पावै ॥
(१७४)

उदाहरण देखिये रसवेलि छंद सं० २९ ।

(८) कलहंतारिता—

सुकवि कहत कलहंतर ताही । परै कलह करि अंतर जाही ॥
(१७४)

उदाहरण देखिये रसवेलि छंद २७ ।

इस प्रकार ये आठ नायिकाएँ हुईं ।

इसके बाद कवि मान के आधार पर इनके तीन भेद बताता है—

मानिनि त्रिविध कहत कवि धीरा । धीर अधीर तीसरी धीरा ॥
बचन बिलास सौंह कर पाऊँ । त्रिविध मानकर त्रिविध उपाऊँ ॥
(१७६)

इनके लक्षण—

पति अपराध रोष नहिं करहीं । धीरा नारि धीर चित धरहीं ॥
प्रकट सुरोष नैन जुग नीरा । सो मानिनि कबि कहत अधीरा ॥
त्रिविध त्रिविध पुनि त्रिविध बखानी । उत्तम मध्यम अधमा जानी ॥
मध्यम नित्य प्रीति व्रतचारी । पतिव्रत सील सो उत्तम नारी ॥
कर्कश बैन कर्कशा होई । अधमा नारि कहै सब कोई ॥
दिव्य अदिव्य जु गीत बखानी । तिनकी जुग जुग चलै कहानी ॥
सीता सती और दमयंती । त्रिविध नारि बरनौ गुनवंती ॥
सुकिय परकिया असगुन गाई । बारि नारि रसिकन मन भाई ॥
त्रिविध नार बस नारि सुभाऊ । संयोगिनि विरहिनि को गाऊ ॥
(१७७ १८१)

इनमें से मुग्धा छंद सं० २, पराधीन ३, विश्रब्ध नवोढ़ा ४, अंकुरित यौवना ५, अज्ञात यौवना ६, मध्या ८, परकीया १०, गुप्तहरण, ११, स्वयंदूती १२, धीरा १४, चिंतासच १६, अधीरा २१, धीरा २२, लक्षिता २३, विरहिणी २९, आदि के उदाहरण रसवेलि में मिल जाते हैं ।

———

रसरतन की टीका ?

करीब दो साल पहले डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त ने मेरे पास एक पत्र लिखकर यह सूचित किया कि उन्होंने रायल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के हस्तलेख संग्रह में 'रसरतन' की कोई प्रति देखी थी। उन्होंने यह भी लिखा कि उसके साथ कहीं कहीं अर्थ दिया था। डॉ० साहब ने कृपापूर्वक उस हस्तलेख का नंबर भी लिख भेजा था, जो पी० ४० था। मैं बहुत प्रसन्न हुआ कि चलो रसरतन की एक प्रति और मिल गई और इसकी सहायता से जो कुछ पाठ की यत्किंचित् कठनाई अब भी बच रही है, समाप्त हो जाएगी। मैं इसे देखने कलकत्ते पहुँचा और राजस्थानी सेक्सन की पी० ४० प्रति को निकलवाकर देखा।

यह एक पुराना दीमक लगा ६″ × १२″ आकार का गुटका है जिसमें कई कृतियाँ संकलित हैं। इस गुटके के पृष्ठ १३६ पर लिखा है 'अथ रसरतन ग्रंथ लष्यते'। यह ग्रंथ पृष्ठ १५५ पर समाप्त हो जाता है। जिसके अंत की पुष्पिका में लिखा है 'इति श्री रसरतन की टीका संपुरण। १६४२ साव··· रमस्य' आदि यह देखकर मुझे थोड़ा दुःख हुआ, थोड़ी प्रसन्नता भी। दुःख तो इसलिये कि स्पष्ट ही यह रसरतन की प्रति नहीं है क्योंकि रसरतन बहुत बड़ा काव्य है। सुख थोड़ा इसलिये कि यदि यह वस्तुतः रसरतन की टीका है तो इसका भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। कम से कम इससे इतना तो प्रकट हो ही जाता है कि किसी समय रसरतन एक बहुत ही लोकप्रिय ग्रंथ था और उसके अध्ययन का काफी जागरूक प्रयत्न पहले से होता आ रहा है।

ग्रंथ के अंत में इस टीका के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए तथा अपना परिचय देते हुए टीकाकार लिखता है—

पोथी यह रसरतन की, चवदहि सौ कवित प्रसिद्ध।
जेहि विधि यह टीका भयौ, सुनिये सो बुधि बृंध॥
नगर मेड़ता मध्य रहै, अति सुशील सुग्यान।
नाम सु जइि मुलतान मल, जनके गुन सब मान॥

तिनकी रुचि के कारनै, सुरस कवित्त बनाय।
सुगम ग्रंथ ऐसो कियो, सबै समस्या जाय॥
कही नायका तीन सौ, चावीसु केसव दास।
ग्यारह सौ बावन यहाँ, ग्रंथ माँहि परकास॥
वै बिह रसिक प्रिया बिसै, कह्यो वचन सुबिबेक।
देस काल वय भावतें, केसव जानि अनेक॥
उनहि बच सौं हौ नायिका बरनी बहुत विचार।
चार लाख पैंती सहस छपन जुत सत चार॥
(४३५-४५६)

टीकाकार अपने संरक्षक का वंशवर्णन करते हुए कहता है—

कोग सरन धीर मेडया नगर भये बहुरि टीला जी लायक।
भये जैतसी नाम लालचंद सब सुषदायक॥
पुनि फतैचंद तिनके भये फुनि सुजान मल जगत जस।
मुलतान भल्ल जिनके तिनके सुन चरचा सरस॥ ६॥
तिनके हित टीकाकरी, सुनहु सकल कविराज॥

× × ×

सम्वत् सत अष्टादसै सावन छठि गुरुवार।
टीका हित मुलतान मल, रच्यो अमल सुखसार॥१०॥
रस पोथी को सुष जितौ, टीकौ जान सुजान।
त्यों टींको पढ़ियौं भलौ, नीकौ दैंहे आन॥११॥

इससे जाहिर होता है कि किसी टीकाकार ने मेड़ता नगर के किसी मुलतान मल्ल के लिए १८०० संबत् में यह टीका लिखी थी, जिसका लिपिकाल १९२४ बताया गया है।

यह टीका रसरतन की है? किस रसरतन की? यह प्रश्न एक अजीब समस्या उत्पन्न करता है। टीकाकार कोई बहुत बड़ा विद्वान नहीं जान पड़ता, न तो जागरूक ही। उसने रसरतन तो कहा पर कवि का नाम नहीं लिखा। रसरतन नाम के बारे में एक दोहा इस टीका में यों दिया हुआ है—

चौदहिं रा सब कबत हैं, चौदहि रतन प्रमान।
यातें नाम सुग्रंथ को यह रसरतन सुजान॥६२॥

कवि पुहकर अपने ग्रंथ के इस नामकरण पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

वहि समुद्र चौदा रतन, मथे असुर सुर सैन।
इहि समुद्र नव रसरतन, नाम धरौ कवि तैन॥
(आदि खंड २१)

समुद्र मंथन का रूपक देकर कवि ने २० संख्यक छप्पय में इसी बात को और स्पष्ट किया है। लगता है कि टीकाकार रसरतन नाम के इस रूपक से परिचित अवश्य था। 'चौदहि रास कवत्त हैं' पद अलबत्ता बड़ी उलझन में डालता है। इसका कुछ अर्थ नहीं खुलता। शायद टीकाकार कहता है कि रसरतन में १४०० कवित्त हैं। उन्होंने एक और दोहे में रसरतन के छंदों की संख्या चौदह सौ बताई है। यह संख्या बिलकुल ही निराधार है।

दूसरा झमेला रसरतन के रचनाकाल का है। टीकाकार कहता है कि—

बसु रस मुनि विधु संबतहि, माधव रवि दिन पाय।
रच्यो ग्रंथ यह सुरसु······है श्री······इन सहाय॥

ऊपर के चरण से रचनाकाल १७६८ प्रतीत होता है। रसरतन १६७३ संवत् में रचा गया था। हो सकता है कि टीकाकार का बताया संवत् उस पोथी का लिपिकाल हो। मुनि की संख्या ६ मानने पर भी १६६८ होगा—यह भी ठीक नहीं लगता।

तीसरे दोहे के बाद टीकाकार अपनी सीमा निर्धारित करते हुए लिखता है—'केवल मदन प्रसंग'। इससे लगता है कि 'रसरतन' की पोथी में अनेक और प्रसंग थे। पुहकर के रसरतन में 'मदन प्रसंग' प्रसिद्ध है ही। इसी प्रसंग में विप्रलंभ और उसकी दसों स्मरदशाओं का चित्रण किया गया है।

टीकाकार लिखता है—

द्विविध शृंगार, सँयोग एक, कहै वियोग कवि आदि।
तहाँ वियोग सुन चारविध, पूरब अनुरागादि॥२१॥

अनुतिन्न विप्रलंभ तिहि नाम कहत कवि लोग।
अकस्मात लख चित्र सप्न तीजो यो संयोग॥

कवि पुहकर के रसरतन से तुलनीय—

उभै अंग कीनौ प्रगट, पुहुकर अधिपति काम।
विप्रलंभ संयोग तहँ पायौ, द्वैविध नाम॥
(आदि० ८४)

काम कहै सुनु सहचरी, दरसन तीन प्रकार।
स्वप्न चित्र पर तिच्छ प्रिय, प्रगट प्रेम विस्तार॥
(स्वप्न० १५)

एक और समतासूचक प्रसंग का उल्लेख करके मैं यह भार विद्वानों पर ही सौंपता हूँ कि वे विचार करें कि क्या यह टीका पुहकर के रसरतन की ही है, या किसी अन्य रसरतन की। रसरतन नाम से किसी और ग्रंथ की सूचना मुझे नहीं है। सूरतिमिश्र का रसरत्नमाला और रसरत्नाकर तथा ध्रुवदास और मंडन कवि की रसरत्नावली पुस्तकों की सूचना अलबत्ता है।

कवि पुहकर ने ग्रंथारंभ में नवरस बस गिरधर श्री कृष्ण की वंदना की है। 'घोष तरुनि शृंगार' आदि (दे० आदिखंड; पद सं० २) नवरस रूप कृष्ण की वंदना करते हुए टीकाकार कहता है—

नवरस आप सिंगार पुन, हास, करुन, रुद्र वीर।
भय पावस अद्‌भुत वदन, ध्यान परम गुन धीर॥

इस टीका का सबसे विशिष्ट पक्ष है नायिकाभेद। कवि पुहकर ने ११५२ किस्म की नायिकाएँ बताई हैं और केशवदास ने ३८४ तरह की। टीकाकार ने केशवदास के कुछ संकेतों के आधार पर सुलतान मल्ल को समझाने के लिये ४३५४५६ किस्म की नायिकाएँ गिनाई हैं। यानी ११५२ × ३७८ प्रकार की। इन नायिकाओं को समझाने के लिये ग्रंथ में एक चार्ट भी है। हिंदी में नायिकाभेद पर कार्य करनेवाले विद्वानों को शायद इस चार्ट में दिलचस्पी हो, इसलिये पूरा चार्ट जिसकी लिखावट कैथी में होने के कारण बहुत स्पष्ट नहीं हो पाई है, उपस्थित किया जा रहा है।

पृष्ठ संख्या १५३

अथ प्रथम नायका तीन ३	स्वकीया यानी व्याही स्वकीया के तीन भेद ३	परकीया पर उर बसु मिले	सामान्य वस्या १	मध्या ३ आती पध्या धीरा, जशमध्या जेष्ठा मध्याधीरा-जेष्ठा,मध्याधीरा-कनिष्ठा, मध्या-धीराधीरा कनिष्ठा ६	प्रौढ़ा ६ भाँति। प्रौढ़ा धीरा जेष्ठा प्रौढ़ा। अधीरा जेष्ठा प्रौढ़ा धीरा-धीरा जेष्ठा, प्रौढ़ा धीरा कनिष्ठा, प्रौढ़ा अधीरा कनिष्ठा, प्रौढ़ा धीराधीरा कनिष्ठा ६
मुग्धा १ भोलील	नाअतीर	यध्या लाजकाम सम	प्रौढ़ा ३ काम अती लाज को भयान		

मुग्धा १	सुकिया के तेरह भेद या भाँति भये। ये धीरादीमैं भेद मान मैं होत हैं। धीराधीरज लीयौ॥ अधीरा अधीराज लीये। धीराधीरा धीरज अधीरज लीये। जेष्ठा वो होत प्यार वारी। कनेष्ठा और प्यारवारी।१३।

१३ सुकीया, २ परकीया, १ सामान्या। ऊढ़ा। अनूढा। व्याही। अनव्याही। १२८॥ यन सोलह को आठ भाँति करै त एक सौ अठईसा॥

१	स्वाधीनपतिका	पति जाके अधीन	१२८ नाइका या भाँतिन हुई।
२	उक्ता	पिय न आवै सोवै	
३	वासकसज्जा	सिंगार करिकै पैंड़ो देषै	
४	कलहांतरिता	मान करि पाछे पछतावै	
५	षंडिता	जाकौ पति प्रात आवै भोग करि और से।	
६	विप्रलिब्ध्वा	संकेत मैं प्रिय न पावै	
७	प्रोषितपतीका	विरहिनी भरतार विदेस	
८	अभिसारका	पिय को आपते जाइ मिलै।	

३८४ नायका याँ भाँति भई	३ दिव्यादिव्य भेद कीयौ तीन भाँति। दिव्य १ अदिव्य २ दव्यादव्य ३ देवि १ मानुषी २ दैविनार रूप ३
ये सब तीन भाँति जुतमा १ मानन करै ॥ मध्यमा २ नैसे। मध्यमा ३ वना काजरु दे	११५२ नायक या भाँति भई।

पृष्ठ १५४

सामान्य ३, स्वकीया ३, मुग्धा १ मध्या २, विधि प्रौढ़ा आरूढ़ प्रगल्भ वाचना २ चित्रविभ्रभा नवंतसनि ३ भीतनंगा ३ आक्रमित भव काम ३ सुरदाया ४ लब्धायतलजाप्राय ४		४ मध्या या के चार भेद परकीजा भेद १ गुप्ता १ विदुआर (विदग्धा) २ लक्षिता ३ मुदिता ४ अनुसयना ५
४ प्रौढ़ा के भेद धीरादि भेद सौं त्रिगुनी करै १२		मुगधा ४, मध्या २४, प्रौढ़ा २५ ५ जुढ़ा अनुढ़ा सौ दुनि करै सामान्या १ ६३ या भाँति
ज्येष्टादि सौ त्रिगुनी २४ ६३ भेद भये	धीरादि सौ त्रिगुनकरै १२ ज्येष्टादि से दिगुन करै ४	बीचारै।

१—स्वाधीनपतिका	जाके पिय आधीन
२—नुक्ता	विचारै पिय को न आयौ ।
३—वासकसज्जा	सिंगार करि कै मारग देखै ।
४—कलंहतरिता	मान करि पाछै पछिताइ ।
५—प्रोषितपतिका	विदेस जाको पति ।
६—षंडीता	प्रात आवै पिय और सों भोग करि ।
७—विप्रलब्धा	संकेत में पिय न आवै ।
८—अभिसारका	आपहिं तैं जाइ मिलै ।
९—प्रवत्सपतिका	भरतार परभात विदेस गये ।
१०—आगमित्सपतिका	आवौ चाहै पति को ।
११—आगतपतिका	पति आयौ जाकौ ।
१२—प्रतिस्वाधीना	पति के आधीन जो नायका

६३ कौ १२ गुनै करै तब ७५६ । नुतमादि सौं त्रिगुनी करै तौ २२६८ भये ।

प्रेम गर्व १ रूप गर्व २
कुल गर्व ३ गुन गर्व ४
२७२१६ भेद भये

७५६ भेद भये

२२६८ दिव्यादिव्यसौं तिगुन करै
९०७२ भेद भये

२७२१६ देसविधिपूर्वादिसौं चौगुनी
पूरबी नाइका १, पछिमी नायका २
दछिनी नाइका ३, उत्तरी नाइका ४
१०८८६४ भेद भये

१०८८६४ पद्मिनादिसौ चौगुनी करै
पद्मन, चित्रणी स्वंषणी, हस्तिनी ४
या भाँति ४३५४५६ भेद सब भये

६३ × १२ = ७५६
७५६ × ३ = २२६८
२२६८ × ४ = ९०७२
९०७२ × ३ = २७२१६
२७२१६ × ४ = १०८८६४
१०८८६४ × ४ = ४३५४५६

—०—

रसरतन और अपभ्रंश छंदपरंपरा

कवि पुहकर को छंद और उनकी आत्मा का अद्भुत ज्ञान था। प्रेमाख्यानकों की सूफी परंपरा में दोहा और चौपाई छंद की पद्धति रूढ़ हो गई थी। पुहकर ने इसे स्वीकार नहीं किया। वे छंदों के वैविध्य को पसंद करते हैं। इस दृष्टि से उन्होंने मध्यकालीन अपभ्रंश प्रेमाख्यानकों और काव्यों की पद्धति को ज्यादा उचित और अच्छी समझकर स्वीकार कर लिया। जैन धार्मिक अपभ्रंश काव्यों में छंद वैविध्य पर बहुत ध्यान दिया गया है। पउमचरिउ में गंधोकधारा, द्विपदी, मंजरी, शालभंजिका, आरणाल, पद्धरिका, वदनक, पारणक, मदनावतार, विलासिनी, प्रमाणिका, समानिका, भुजंगप्रयात आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया है। नयनंदी कृत 'सुदंसण चरिउ' में छंदों की बहुलता और विविधता देखते ही बनती है। नयनंदी द्वारा प्रयुक्त छंदों की एक संक्षिप्त सूची नीचे दी जाती है।[1]

पादाकुलय, रमणी, मत्तमायंग, कामवाण, दुवईमयण विलास, भुजंगप्रयात, प्रमाणिका, तोडणऊ, मंदाक्रांता, शार्दूल विक्रीडित, मालिनी, दोधय, समानिका, मयण, त्रिभंगिका, आरणाल, तोमर, अमरपुरसुंदरी, मदनावतार, शालभंजिका, विलासिनी, उविंदवज्जा, इंदवज्जा, उवजाइ, वसंत चच्चर, वंसत्थ, सारीय, चंडवाल, भ्रमरपद, आवली, चंद्रलेखा, वस्तु, णिसेणी, लताकुसुम, रचिता, कुवलयमालिनी, मणिशेखर, दोहा, गाहा, पद्धडिया, मोत्तियदाम, तोणउ, पंचचामर, मंदारदाम, माणिणी।

नयनंदी के ही लिखे एक दूसरे काव्य 'सकलविधिनिधान काव्य' की छंद सूची भी सामने रख लें तो शायद अपभ्रंश भाषा में प्रयुक्त अधिकांश छंदों की एक सूची तैयार हो जाएगी—

श्रेणिका, उपश्रेणिका, हेममणिमाल, रासाकुलक मंदरतार, खंडिका, मंजरी, चारुपद पंक्ति, मनोरथ, कुसुममंजरी, विश्लोक, मयणमंजरी, उजविछिया, सुन्दरमणि भूषण, हंसलीला, रक्ता, हंसिणी, जामिणी, मंदरावली, जमंतिया, मंदोद्धता, कामक्रीड़ा, अणंगभूषण, गुणभूषण, रुचिरँग, आदि।

---

१. अपभ्रंश साहित्य, डा० हरिवंश कोछड, पृष्ठ १७४।

इन छंदों में अनेक संस्कृत के हैं अनेक देशी। अपभ्रंश कवि नयनंदी ने अपने द्वारा प्रयुक्त छंदों के बारे में कहा है—

अलंकार सल्लक्खणं देसि छन्दं।
णं लक्खेमि सत्थांतरं अत्थमंदं॥

कवि अपने को देशी छंदों का विशेषज्ञ कहने में संकोच का अनुभव करता है। संस्कृत से इतर छंदों को ही कवि ने देसी छंद कहा है। नयनंदी की एक विशेषता यह भी है कि वह प्रत्येक छंद में विषयवर्णन के साथ ही साथ उस छंद का नाम भी दे देते हैं—

वसन्त तिलक सिंहोद्धता वा णामेदं छन्दः
तुरंगति मदनो वा छन्दः
पियंवदा अनन्तकोकिला वा नामेदं छन्दः

यहाँ छंदों का अपर नाम भी बताया गया है। नयनंदी के बारे में किंचित् विस्तार से सूचना इसलिये दी गई कि कवि पुहकर कई दृष्टि से इस पद्धति का अनुसरण करते प्रतीत होते हैं। मैं यह नहीं कह रहा कि उन्होंने नयनंदी का अनुकरण किया है। मेरे कहने का तात्पर्य सिर्फ यह है कि नयनंदी ने जिस पद्धति से यह तरीका प्राप्त किया उसी का अनुसरण पुहकर भी करते हैं।

कवि पुहकर ने रसरतन में करीब पैंतीस छंदों का प्रयोग किया है—

१—छप्पय (२) दोहा, (३) सोमकांति (४) घाटक सारदूल (५) चौपही (६) दंडक (७) सवैया (८) तोटक (९) पद्धरी (१०) प्रवंगम (११) मोतीदाम (१२) सोरठा (१३) कुंडलिया (१४) कवित्त (१५) प्रवानिक (१६) गीतिका (१७) कंठभूषण, (१८) भुजंगप्रयात (१९) सोरठा दोहा (२०) वथूह (२१) पैड़ी (२२) गुनदीपक (२३) गीतमालती (२४) मोदिका (२६) तोटकी (२७) कामिनीमोहन (२८) नाराच (२९) गाथा (३०) भुजंगी (३१) लीलावती (३२) दुर्मिला (३३) त्रिभंगी (३४) शंखधारा (३५) चंद्रजोति।

इन छंदों में कई तरह के छंद हैं। कुछ प्राचीन छंद जिनके नाम बदल गए हैं। कुछ नए छंद जो मध्यकाल में ही प्रचलित हुए। उपर्युक्त छंदों में से निम्नलिखित छंद प्राकृत पैंगलम् में मिलते हैं। उनके लक्षण वहाँ से देखने चाहिए। मात्रा वृत्त के अंतर्गत गाहा (पद संख्या ५४-५७) दोहा तथा

दोहा भेद (७८-८३) रोला (९१-९३) छप्पय (१०५-१०८) पज्झ-टिका या पद्धरी (१२५-१२७) अरिल्ल (१२७-१२८) कुंडलिया (१४६-१४८) सोरठा (१७०-१७१) लीलावई (१२९-१६०) त्रिभंगी (१६४-१६५) तथा वर्ण वृत्त के अंतर्गत मालती (५४-५५) प्रमाणिक या अँवानिय (६८-६९) तोटक (१२९-१३०) मौत्तियदाम (१३३-१३४) नाराच (१६८-१६९) सद्दल सट्टक (१८६-१८९) भुजंग प्रयात (१२४-१२६) आदि छंद प्राकृत पैंगलम् में सलक्षण-सोदाहरण दिए हुए हैं। शेष छंद सोमकांति, दंडक, सवैया, कवित्त, प्रयंगम, गीतिका, कंठभूषण, वथूह, पौड़ी, गुन दीपक, त्रोटकी, कामिनी मोहन, भुजंगी, चन्द्रजोति, शंखधारा और मोदिका बच जाते हैं। इन में दंडक, सवैया, कवित्त, गीतिका आदि छंद हिंदी में भी काफी प्रचलित है।

कामिनी मोहन छंद संस्कृत का स्रग्विणी छंद ही है। अपभ्रंश में यशःकीर्ति का एक छंद देखिए—

अस्सथामो मुऊ तेहि ता उत्तऊ।
मुच्छिऊ दोण धनु बाण हत्थह चुऊ॥
चेयणा या लहिवि कस्सा वि णाउँ पत्तिउ।
सच्चवाई य तउ धम्म सुउ पुच्छिउ॥

उसके कहते ही कि अश्वत्थामा मरा, द्रोण मूर्छित हुए और हाथ से धनुष बाण च्युत हो गया। चेतना पाकर किसी का कभी विश्वास न करते हुए धर्मपुत्र से उन्होंने 'सच्च सच्च' पूछा। यहाँ चार रगण हैं, और यह स्रग्विणी छंद है। इसी को कामिनीमोहन भी कहा गया है।

वथूह छंद मुझे रोला का ही एक रूप मालूम होता है। यह वस्तुतः वस्तुक या वत्थुअ रोला ही है। पुहकर का छंद इस प्रकार है—

कासी कौसल कारनाट, कनवज्ज कलिंजर।
काम रूप कैकय कलिंग, केदार कंछधर॥

यहाँ पर १४ मात्रा पर विराम करके १४-१० की कुल चौबीस मात्राएँ होती हैं। प्राकृत पैंगलम् में इसके १३ भेद गिनाए गए हैं।

प्राचीन छंदग्रंथों का अध्ययन करके रोला के बारे में अपने विचार देते हुए डॉ० विपिन बिहारी त्रिवेदी ने लिखा है—'प्राचीन छंद ग्रंथों में कोई रोला

नामक छंद नहीं मिलता। हाँ, काव्य, वस्तु, वदनक, वत्थुओं और वत्थुवयण लगभग इसी के अनुरूप हैं।[1]

प्रयंगम छंद, जिसका उदाहरण पुहकर के विजयपाल खंड में १३२-१३३ तथा चंपावती में ३३५-३४० संख्या में देखा जा सकता है, वस्तुतः २१ मात्राओं का होता है। ८, १३ पर यति आदि में गुरु और अंत में जग (।ऽ। + ऽ) होता है। छं० प्र० में पृष्ठ ४७ पर यह लक्षण दिया है। रूप दीप पिंगल छं० ४७ में २१ मात्राओं और अंत में रगण का नियम दिया है। अप्सरा खंड के छंद ८०-८२ इसी निचले नियम के उदाहरण हैं।

गीत मालती, जिसका प्रयोग पुहकर ने चित्रखंड में १६२-१६६ के अंतर्गत किया है, वस्तुतः हरिगीतिका छंद ही है। रासो में भी यह छंद गीता मालवी, गीता मालती, गीता मालची आदि नामों से आता है। डॉ० त्रिवेदी ने इसे १६ + १२ के विश्राम से २८ मात्राओं का हरिगीतिका बताया है, जिसके चरणांत में प्रायः रगण रहता है।

भुजंगी छंद—चंपावती खंड में ३८६-३८८ संख्या के अंतर्गत प्रयुक्त हुआ है। यह १२ वर्ण और चार यगण का छंद है। भुजंगप्रयात से भिन्न नहीं प्रतीत होता।

मोदिका—पुहकर ने छंद मोदिका का भी प्रयोग किया है। यह छंद युद्ध खंड में संख्या ३१ में दिया हुआ है।

घर घर बाउ जुरे धर अंमर। मो जिय वैरि परयौ अति संमर॥
चात्रक टेक हिये उर सालति। पंकज लीन तजी अलि मालति॥

इस छंद के एक चरण में १६ मात्राएँ और १२ वर्ण हैं। उपर्युक्त उद्धरण में पहले चरण को छोड़ कर शेष चरणों में चार भगण होते हैं। ये लक्षण प्राकृत पैंगलम् में द्वितीय भाग १३५ वें छंद में तथा छंद प्रभाकर के पृष्ठ १५० पर दिये हुए हैं।

कंठभूषन—रसरतन में स्वप्न खंड के १६८-१७० संख्या के छंदों में इस छंद का व्यवहार किया गया है। यह छंद १२ वर्ण, १६ मात्राएँ और चार भगण का मोदक छंद ही है (देखिए चंदवरदाई और उनका काव्य, पृष्ठ २७१)। मोदक या मोदिका के बारे में ऊपर विचार हो चुका है।

---

१. चंदवरदाई और उनका काव्य, पृष्ठ २३६।

संषधारा— भई बुद्धि पंगा। लख्यो सोम श्रंगा॥
अपारं अनूपं। मनौ रासि रूपं॥
(स्वप्नखंड १७५)

इस छंद में प्रत्येक चरण में ६ वर्ण और १० मात्राएँ आती हैं। यह दो यगण का छंद है। असल में इसे ही प्राकृत पैंगलम् में शंखनारी छंद कहा गया है (खंड २ छंद ४२)। छंद प्रभाकर में इसे ही सोमराजी छंद भी कहा गया है। युद्ध खंड में ४७-५० संख्या में प्रयुक्त छंद को पद्धरी लिखा गया है, मगर यह भी शंखधारा या सोमराजी छंद ही है।

श्लोक—

अस्ति जदपि सर्वत्र नीर नीरज मंडितं।
रमते न मरालस्य मानसं विना।
(विजयपाल० २४५)

यह पृथ्वीराज रासो में बहुत प्रयुक्त हुआ है। पिंगल छंदसूत्र के आधार पर इसे लौकिकी अनुष्टुप छंद कहा जा सकता है।

गुनदीपक—

तहँ मान सरोवर सोहनं। सुर नाग नर मनु मोहनं॥
सजि पारि चारिहु ओरई। मन मुक्ति मरकत जोरई॥

इस छंद की प्रत्येक पंक्तियों में १४ मात्राएँ हैं। तीन चौकल के बाद एक गुरु का विधान है। यह रासो के वेलीदुम या प्राकृत पैंगलम् के हाकलि (१।१७२-७४) से मिलता जुलता छंद है।

पैडी—विजयपाल खंड में ६२-६५ में प्रयुक्त। १३ + १० के विश्राम की २३ मात्राओं का छंद। यह निसेणी या निसाणी छंद से साम्य रखता है। निसाणी छंद के लिये देखिए चंदवरदायी और उनका काव्य पृष्ठ २४४।

रंभावति सौं जंपहीं, गुनवंत सहेली।
बाला बोलनि कानु दै, अबला अलबेली॥
पोहर द्वै दिन पाहुनी, जनि होहि गहेली।
अंत चलैगी सासुरे, सुनि नारि नवेली॥

चंद्रजोति—

प्रिया पीय प्यारी, सखी दुहेली।
न सेज सोवै, निसा अकेली॥

सरीर छीनं, सीतकार विकारमारं।
विहालन अंग तजै, त्रिय सिगारं॥
मराल हेतं अहार हारं, जनु पंचवानं।
वसंत वैरी हरति, जु आस प्रिय प्रानं॥

(युद्ध ५६-५८)

गणना करने से मालूम होता है कि इस छंद के पहले चार चरणों में ८+६=१४, ८+६=१४, ८+१४=२२, ११+७=१८ मात्राएँ तथा निचले दो चरणों में १५+९=२४ तथा ११+१०=२१ मात्राएँ हैं। स्पष्ट ही यह छंद लिपिकारों की असावधानी के कारण बहुत भ्रष्ट हो गया है। इसकी तुलना रासो समय २६ के २२३, ३९ में व्यवहृत छंद कमंध से की जा सकती है। यह छंद विचारणीय है।

सोमकांति—

जा कुन्देदु तुषारं हारं। जा सभ्रो बिस्था विस्तारं॥
जा वीना दण्डी मंडीयं। सा मा पातोयं चंडीयं॥

(आदि० ६)

यह छंद प्राकृत पैंगलम् के पादाकुलक से मिलता जुलता है (प्राकृ० पैं० १।१२९)। इसमें प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। लघु गुरू का कोई विधान नहीं होता।

सवैया, दंडक, कवित्त आदि नामों का प्रयोग रसरतन में बड़े शिथिल ढंग से हुआ है। कहीं सवैया को कवित्त और कवित्त को सवैया लिख दिया गया है। दंडक का प्रयोग प्राचीन है, मगर इसके प्रयोग में भी यहाँ शिथिलता दिखाई पड़ती है।

पुहकर द्वारा प्रयुक्त छंद बहुत महत्त्वपूर्ण तथा विचारणीय हैं और ये छंदों पर अध्ययन करनेवालों के लिये आकर्षण के विषय हो सकते हैं।

छंदों के प्रयोग में पुहकर ने वर्णन के बीच में ही छंद के नाम का भी प्रयोग कर दिया है। वहाँ छंद नाम दूसरा प्रासंगिक अर्थ भी रखता है। जैसे—

१. भुजा जनु नाग विराजत बाम। उरस्थल सोभित मौतियदाम॥

(स्वप्न० ३४)

२. एक टक्कै रहीं अंषिया जोहनं। रूप देखौ जहाँ कामिनी मोहनं ॥
३. बत्तीसौ लच्छिन लच्छि लसै तन ज्यों गुन अच्छरि लीलवती।

यहाँ केवल लीलावती छंद का नाम ही नहीं दिया है बल्कि उसका लक्षण भी बताया है कि यह ३२ अक्षर का छंद है।

यह प्रवृत्ति अपभ्रंश कवियों में दिखाई पड़ती है। नयनंदी का उदाहरण ऊपर दिया गया है। रासोकार ने भी इस पद्धति का पूरी तरह निर्वाह किया है। कुछ उदाहरण देखिए—

१—इति मोदक छंदह बंध गती।
जदि सत्र सुभाँतिय बंध मती ॥
२—कठभूषन छंद प्रकासय।
बारह अच्छरि पिंगल भासय ॥

(५२।१७६)

३—नव जंपि नऊ रस वीर नचै।
भमरावलि छंद सुकित्ति रुचै ॥

इन प्रसंगों को देखने से पता चल जायगा कि रसरतन का कवि अपभ्रंश परंपरा का सचेष्ट निर्वाहक ही नहीं उसका पूर्ण जानकार भी था। रसरतन और रासो के छंदों[1] में तो अद्भुत साम्य है। सच पूछिए तो ऐसा लगता है कि पुहकर के सामने चंद और केशव का छंद संबंधी जो आदर्श वर्तमान था, उसका उन्होंने अच्छी तरह पालन किया।

---

१. रासो के छंदों के लिए चंदवरदायी और उनका काव्य में 'छंद समीक्षा' शीर्षक प्रकरण देखिए।

रसरतन की भाषा

रसरतन की भाषा इस दिशा में काम करनेवाले किसी भी शोधार्थी को अपनी बहुरंगी छटा, आदर्श व्रजभाषोचित गठन, पिंगल व्रज की ठसक और अवधी भाषा की घुलीमिली माधुरी के कारण सतत आकृष्ट करेगी। रसरतन की भाषा में जहाँ एक ओर सूर और दूसरे अष्टछाप के कवियों की भाषा की लुनाई और मनोहारिता है, तो वहीं इसमें चंद, नरहरि आदि की पिंगल शैली की चारण व्रजभाषा का प्रयोग भी। कवि का जन्मस्थान पंचाल है, इसलिये भाषा में स्वभावतः अवधी का मिश्रण भी हुआ है। हम चाहें तो इस आधार पर इसे पाँचाली व्रजभाषा भी कह सकते हैं जिसे कुछ विद्वान् कन्नौजी कहते हैं।

कन्नौजी अथवा पांचाली ब्रजभाषा के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद दिखाई पड़ता है। जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया (भाग ६ खंड १ पृष्ठ १-२) में कन्नौजी व्रजभाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं—

(१) औकारांत के स्थान पर ओकारांत प्रयोग।

(२) व्यजनांत संज्ञाओं में उ अथवा इ का जुड़ना।

(३) मध्य ह का लोप।

(४) संकेतवाचक सर्वनाम बौ, जौ, वोहु जोहु आदि।

(५) पूर्वकालिक कृदंत दओ, लओ, गओ आदि।

(६) हतो, हती आदि सहायक क्रिया के भूतकालिक रूप।

(७) रहो, थो आदि सहायक क्रिया के रूप।

हिंदी व्याकरण के प्रसिद्ध लेखक एस० एच० केलाग ने कन्नौजी की जो कुछ खास विशेषताएँ बताई हैं, वे इस प्रकार हैं—

परसर्ग—को, ने, से, सेती, तें, ते; करि, करिके, को, के, की, में, मों पर, लों आदि का प्रयोग।

सर्वनाम—मैं, मोहि, मो को, मोतें, मेरा, आदि ए और ओ रूपवाले, ब्रज के ऐ और औ रूपवाले नहीं।

यिह, उहि, या जेहि, तिह आदि संकेत वाचक,

किहि, कोहु, किसू आदि प्रश्नवाचक,

क्रिया (सहायक) हूँ, हैगा, हैगो, हें, हैंगे, हो ।
थी, हती, हतो, थे, हते,
होऊँ, होए ।
होइहों, होऊँगो, होइहै, होइहैं ।
होत हैं, होत हतो,
भयो हूँ, भयो हतो ।

डॉ० धीरेंद्र वर्मा का कहना है कि ग्रियर्सन द्वारा बताई गई विशेषताएँ ब्रजक्षेत्र में कहीं न कहीं मिल जाती हैं। इसलिये कन्नौजी को अलग भाषा मानने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने लिखा—'इस प्रकार कन्नौजी की ऐसी कोई विशेषता नहीं मिलती जो ग्रियर्सन के अनुसार ब्रजक्षेत्र में न पाई जाती हो। उपर्युक्त तुलनात्मक परीक्षा के आधार पर कन्नौजी को निश्चित रूप से ब्रजभाषा के अंतर्गत रखना चाहिए।[1] ग्रियर्सन ने स्वयं कहा था कि 'वास्तव में कन्नौजी ब्रजभाषा का ही एक रूप है, किंतु जनमत के कारण उस पर अलग विचार किया जा रहा है।'

जो भी हो, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि कन्नौजी का मुख्य ढाँचा ब्रजभाषा का होते हुए भी उसमें कुछ विशेषताएँ हैं। ये विशेषताएँ अनेक कारणों से हो सकती हैं। सबसे बड़ा कारण इस प्रदेश से अवधी क्षेत्र का संनिवेश और संमिलन है। इसी कारण कन्नौजी पर अवधी के प्रभाव के कुछ लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

चूँकि कवि पुहकर इस क्षेत्र के निवासी थे इसलिए उनकी भाषा में कन्नौजी की अनेक विशेषताओं का सुरक्षित रहना स्वाभाविक ही है। उनकी भाषा का मूल ढाँचा ब्रज का ही है, मगर कुछ विशेषताएँ भी हैं। नीचे ये विशिष्टताएँ, जो प्रायः परिनिष्ठित ब्रजभाषा में नहीं दिखाई पड़तीं, या होती भी हैं तो आपवादिक, प्रस्तुत की जा रही हैं। ये सभी रूप अवधी प्रभाव के सूचक हैं। इन्हें पूर्णतया अवधी रूप कहना भी समीचीन न होगा। ये वस्तुत मिश्र रूप हैं। अवधी और ब्रज के प्रभाव और मिश्रण से उत्पन्न विकृत रूप।

---

१. ब्रजभाषा, हिंदुस्तानी एकेडमी, १९५४, पृष्ठ ३४।

(१) बहुवचन में ब्रजभाषा में अक्सर नि प्रत्यय चलता है। पुहकर कन्नौजी की प्रवृत्ति के अनुरूप 'न' ही लिखते हैं। 'नि' का प्रयोग भी बहुलता से मिल जाता है।

भयौ सवन मन धीर (स्वप्न० ४७) सखिन (स्वप्न० ६२)

कविन सबन (आदि १३) गाहकन (आदि १६)

(२) **विशेषण, संज्ञा और क्रियाओं के ओकारांत रूप** भी कन्नौजी प्रवृत्ति के सूचक हैं। भोरो (आदि १७) विवो (विजय० १७१) नवो (स्वयं० २४) जूडीयो (स्वप्न० ४०)।

(३) **परसर्ग**—परसर्गों में ब्रज में सौं, लौं, मैं, पै, उपरि आदि मिलते हैं। केहुँ, के, से, मझि, मझारी, माझे, से, सेती, केरी, केर, आदि अवधी प्रभाव के सूचक हैं। से न देवता (आदि० ४१) दुहुँ के मन (स्वप्न १३) जीवनि केरी (चित्र १९९) घट मधि (चित्र, २००) मुदित कहँ (चित्र० २०३) करौ लाज कर टेके केरी (चित्र० २२२) कही हम सेती (विजै० १७) उहि नायक सेती (विजय० ६४)। चतुरानन दै आदि कवि (आदि० १४) यह 'दै' बहुत ही विशिष्ट रूप है।

(४) **सर्वनाम और सर्वनामिक विशेषण**—भावै ताहि (आदि० १५) जाहि (आदि० १४) जिहि बस (आदि० २६) जिहि आनि (आदि० ३०) जे बरनौ (आदि ३४) तिहि काल (आदि० ४७) तैन काल (आदि १६७) किहि गुन (आदि २०६) तिहि नाम (स्वप्न० १०) जे वैन (स्वप्न० १२)

यहै चित्र (चित्र २००) उहि विधि सेज वहै उजियारी (चित्र २०१) मुहिं मारग माहीं (चित्र २१०) मोहीं (चित्र २२१) यहै मंत्र (चित्र २२६) यै नहिं (विजय० ६३)

वहि समुद्र (आदि २१) इहि समुद्र (आदि २१)

मुहि अनाथ (आदि १७०) कोइ (आदि १७१) केऊ (आदि ९६) वहि सम (स्वप्न० ८)

इन रूपों को देखने से स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि ब्रज के ता, जा, का, वा आदि साधित रूपों से न बनकर ति, जि, जे, के, व या वि आदि रूपों से बने हैं। शुद्ध ब्रज में ताकौ, जाकौ, वाकै, जिसकौ, तिसकौ, आदि बनेंगे। इन पर भी अवधी प्रभाव ही दिखाई पड़ता है।

(५) **क्रिया**—क्रिया रूपों पर भी अवधी प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। कुछ विशिष्ट प्रकार के क्रिया रूपों के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं। **आज्ञार्थक**—करो (आदि० १४) लेहु (आदि० ८०) लेहि (आदि ६१) लावहु; गमावहु (आदि० १५१) होहिं (विजय० ६२) सुनावहु (विजय ६७)

(६) **अवधी क्रिया में भविष्यकाल** में प्रायः 'ब' प्रकार के रूप चलते हैं। ये रूप पश्चिमी हिंदी में प्रायः नहीं होते। रसरतन में भी कहीं कहीं इस प्रकार के रूप मिलते हैं।
आइबै सखी (अप्स० १७४) मिलबै (चंपावती ३८) मरिबौं जुगल नैन टक लाये (युद्ध० २०)। जानबौ (युद्ध० २२६)।

(६) **अवधी की भूतकालिक क्रिया का 'न' रूप**, जो कीन लीन दीन आदि में मिलता है, रसरतन में भी प्राप्त होता है। कवि ने ऐसे रूपों को कहीं कहीं व्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार ओकारांत अथवा औकारांत बनानेका प्रयत्न भी किया है—
कीनै (आदि १४) कीनौ, दीनौ (आदि० ६२) लीनै, कीनै (आदि० ६८) कीन (आदि ९२) लीन्है (स्वप्न० १६)

(७) अपभ्रंश की प्रवृत्ति के अनुसार **भूतकृदंत** के रूपों की सुरक्षा की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है:—बुज्झिय (आदि० ४) सुज्झिय (आदि० ४) किय (आदि २१) हुव (आदि ७१) लिय (आदि० ७६) संदेस लिय (विजय० ३)

(८) **भविष्यत्काल गो, गा, गी वाले, विशिष्ट कन्नौजी रूप** भविष्यकाल में गो, इगो रूप कन्नौजी का अपना रूप है। जैसे—
बिथाहर होहिगौ (स्वप्न० ४८) हरैगो (स्वप्न० ५६) होहिंगौ (स्वप्न० २८४) परैगो (विजय ६४) पछिताहुगी (विजय० ६४) होहिगौ (युद्ध० २२६)

(९) **सहायक क्रिया** के अस् के रूप भी अवधी प्रभाव की सूचना देते हैं। आहि (होना, आदि० ६७) पुत्र राज के आहू (चित्र २१२) ढीह आहि (अप्स० १२७) आहिये (स्वप्न० १४६)

(१०) **मूल धातु का वर्तमान क्रिया के रूप में प्रयोग** अवधी में प्रायः होता है। (देखिए कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, क्रिया प्रकरण),

विनव चाव (आदि० १६८) चामर विराज (स्वयं० ७१) सुरलोक भ्राज (स्वयं० ७१)।

(११) **हती**—को ग्रियर्सन और केलाग दोनों ने विशिष्ट कन्नौजी रूप माना है। रसरतन के प्रयोग देखिए—

जहाँ हती (चित्र० २०३) हौं तो हती चरन तुव दासी (चंपावती० ३५) हती महि मंडल (स्वं० ३३८)

(१२) **मध्यग ह का लोप**—चौवा (आदि० २१०<चौदह<चतुर्दस) समारी (आदि० ६६<संभार) समारे (विजयपाल० १३९<सम्हारे< सं० संभार)

मगर कहीं कहीं ह का आगम भी मिलेगा जैसे मंडफ (स्वयं २३ <मंडप) वहिक्रम (चित्र० २५२<वयक्रम) फानूस (आदि० १६८<पानूस)

रसरतन की भाषा की ध्वनितत्वात्मक विशेषताएँ—

(१) **सानुनासिकता**—कहीं कहीं अकारण और प्रायः संपर्कज सानुनासिकता के उदाहरण मिलते हैं।

१—संपर्कज—कुँवर (विजय० १७६) अँग्या (विजय० १६५<आज्ञा) ठाँ (आदि० ४६<स्थान)

२—अकारण—पहुँकर (विजय० १६३)

(२) **सरलीकरण**—वागेसुर (आदि० २०<वागेश्वरी) राँक (आदि० ८०<रंक) कुटुम(आदि० १८३<कुटुंब)

यह प्रवृत्ति परवर्ती अपभ्रंश से ही आरंभ हो गई थी। व्यंजन द्वित्व की कठोरता को मिटाने के लिये द्वित्व की जगह एक व्यंजन और क्षतिपूर्ति के लिये पूर्ववर्ती स्वर का दीर्घीकरण कर दिया जाता था। पुहकर ने प्राचीन तद्भव शब्दों की जिस प्रकार सुरक्षा की है, उसे देखते हुए उनके लिये सरलीकरण का निर्वाह बहुत आवश्यक था। तद्भव शब्दों पर विचार करते हुए ऐसे बहुत से अन्य उदाहरण दिए गए हैं।

(३) **स्वर संकोच**—तवच्चरै (अप्स० २६<तब+उच्चरै) परदार (विजय ७<पहरेदार) अवहिंत (स्वयं ७०१<आवहिं तहाँ) चक्कवै (आदि० २६<चक्रपति) सपनंतर (आदि० ६२<स्वप्नांतर) अचान (आदि १६४< अचानक)जदिन (स्वप्न० २००<या दिन) धनंतर (स्वप्न० २७४<धनवंतरि)

(४) **रेफ को हटाकर** उसके स्थान पर पूर्ण र का विधान पिंगल व्रज, अवहट्ठ और व्रजभाषा में तथा और भी कई उपभाषाओं में दिखाई पड़ता है।

पारस<पार्श्व (आदि० २०२) पारथ (आदि ५४<पार्थ) दरसन आदि ५५<दर्शन) (देखिए चन्द बरदाई की भाषा, चन्द बरदाई और उनका काव्य, पृष्ठ २६३)

(५) **ओज या टंकार** पैदा करने के लिये, छन्द भंगी के कारण अकारण द्वित्व देने की प्रवृत्ति का पुहकर ने पुरस्सर अनुकरण किया है—

द्वार पालक्क (स्वप्न २७) तिलक्क (स्वप्न ३२) सरोजदल्ल (स्वप्न० ३४) हज्जार (विजय० १९७) मद्द (विजय० २००) ढलक्कैं; झलक्कै (विजय० १९९) तुरक्की (विजय० २०४) लग्गाम (विजय २०७<लगाम) रेसंम्म (विजय० २०७<रेशम) दाडिम्म (विजय० २१२<दाडिम) दलपत्ति (विजय० २१५) भारथ्थ (विजय० २१५<भारत) मारुत्त (विजय० २१६<मारुत) किरन्नि (अप्स० ३८) कप्पाल (आदि० ३)

(६) **मध्यग म>वँ** = विवाँन<विमान (अप्सरा० १) कोवँल (आदि ५१< कोमल) भवैं (युद्ध० २६३<भ्रमै) निविंत (युद्ध० २२०<निमित्त) सावंथ (युद्ध० २४४<सामंत)

रूपतत्व संबंधी विशेषताएँ

(१) परसर्गों और कारक विभक्तियों की दृष्टि से विचार करने पर लगता है कि रसरतन के कवि ने अनेक प्रकार के प्राचीन, नवीन, अवधी ब्रज आदि परसर्गरूपों के एकत्र निर्वाह का प्रयत्न किया है। अवधी रूपों से प्रभावित उदाहरण हम पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं। नीचे उस तरह के उदाहरण दिये जा रहे हैं जो या तो व्रज के हैं अथवा पूर्ण सार्थक परसर्गों के प्रयोग के हैं। अर्थात् जहाँ परसर्ग टूट फूट कर एकदम अर्थहीन द्योतक शब्दों जैसे नहीं हो गए हैं।

चरन जुग वाके (चित्र २०१) वान उर ताके (चित्र २०१) विदा कौ (चित्र २२७) मदन तैं वाढ्यो (चित्र २२९) देखन कौं (चित्र २२९) सजन कौं नाम (चित्र २३१) रथ तैं आयौ (चित्र २४०) विधि सौं (चित्र २१८) जाकौ वरै (विजय० ४१) देवनि कौ (अप्स० २०७) मुख मध्य (अप्स० २०८)

ता मधि (आदि० ५६)

सयन हेत (स्वप्न० २६) स्वयंवर काज (के लिए, विजय ५२) पंथ मैं (चित्र २३०) सेज तन हेरी (अप्स० ४६)

(२) **सर्वनामों के व्रजभाषानुसारी रूप**—ता छिन (अप्स० १६१) मो पर (अप्स० १६७) तुव हेत (अप्स ०१७८) वे यामिनी (अप्स० १९०) मैं (अप्स० १९९) ते (अप्स० २०५) तुवँ (स्वयं० १५) बाकी (चित्र० १५७)

व्रज भाषा में प्रचलित अनेक प्रकार के सर्वनामों का बाहुल्य है। हौं, मैं, तैं, तुवँ, वा, वे आदि पुरुष वाचक तथा उनके अनेक विकारी रूप तथा अपनै, आपनौ निज वाचक में, वा, ता, वाले साधित रूपों के बने अनेक सर्वनाम रूप मिलते हैं।

(३) **षष्ठी कारक की अपभ्रंश 'ह' विभक्ति** कहीं-कहीं सुरक्षित दिखाई पड़ती है। कंठह (आदि० १२) मुखह (आदि० १९४)

क्रिया रूपों की विविधता किसे आश्चर्यचकित नहीं कर देती। नीचे कुछ प्रमुख क्रिया रूप दिये जा रहे हैं—

(४) **वर्तमानकालिक तिङन्त रूप**—निहारै, टारै, (विजय० ११) लायै, लगायै (विजय० १३) आवै (विजै० ५३) मोहैं (विजय० ७५) देई, लेई (विजय० ७७) रहै (अप्स० १३६) कहै (अप्स० १२७) भनिजै (आदि० ३२)

(५) **हिं या छंदानुरोध के कारण हीं विभक्ति वाले रूप** भी पर्याप्त मिलते हैं—सिखरावहीं (प्रेरणार्थक, विजय० ६१) गँवावहिं (विजय० ७०) गावहिं (अप्स० १३५) मानहिं (विजयपाल ३५) बखानहिं (विजय० २३५) विराजहीं विजय० २३९) छाजहीं (विजय० २३९) लाजही (विजय २४०) भाव ही (विजय० २४१) आव ही (विजय० २४१) पावहिं (विजय २४७) कहहिं (अप्स० १४)

(६) **कृदंत का वर्तमान काल में प्रयोग** —

राजंत दन्ता (विजय० १९९) उड़ंता (विजय० १९६)

राजत मुकुट (विजयपाल २१०) सोहंत (विजय० २११) लसत (विजय० २११) झलकंति (विजय० २११) लूटत (अप्सरा० १२०) अलस्यात (अप्स० १६८) मुसक्यात (अप्स० १७०)

(७) भूतकाल स्त्री लिंग रूप—

मुरी (अप्स० १२३) पाई (अप्स० १३१) भई (अप्स० १३२) हँकारी (अप्स० १३३) दई (अप्स० १३७) विलषानी (अप्स० १३७) करी (अप्स० १३८) ल्याई (अप्स० १४०) विहानी (अप्स० १६२) सानी (अप्स० १७०) ऊभी (अप्स० १८०) षेली (अप्स० १८२) वसीं (अप्स० २०४) धँसी, रसीं, सरसीं (अप्स० २०४) लिपटाती, जाती (अप्स० २३३)

(७) विधि के रूप—

धीर धरौ (चित्र० २२३) धारियौ (चित्र० २२५) करि (विजय० ७१) सुनि (विजय ६३) कीजौ (विजय १७८) छिज्जह (आदि० २०)

विधि रूपों में व्रजभाषा में यै और जै दोनों आदरार्थक रूप भी चलते हैं—ठाठियै; हँकारियै (विजय० ३४) दीजियै (चित्र० २१६) कीजियै (विजय० ४१) विवाहिजै (विजै० ४२) सुनियै (विजै० ४६) परिहरियै (विजय० ७२) कीजै (विजय० ७३) दीजै (विजय० ७८)

(८) भूतकाल सामान्य—

करौं (चित्र० २१६) तुलान्यौ (विजय० ६) लेष्यौ, षेष्यौ, (विजय० ६) पहिचान्यौ; जान्यौ (विजय० १०) विसेष्यौ, लैष्यौ (विजय० १८) दिखरायौ, आयौ (विजय० २१) उपज्यौ, बढ्यौ (विजय० २७) भयौ, जियौ (विजय० २६) हँकारियों (विजय० ४१) ठयौ (अप्स० २११)

(९) भविष्यत् काल के रूपों में 'ह' प्रकार के औकरान्त और ऐ कारान्त रूपों के प्रयोगः—

देषिहौ (चित्र० २२३) ठाठिहैं (चित्र० २२४) आइहै (विजय० ३४) पठाइहौं (विजय० १७६) चलहिं (विजय० १७७) होहिं (अप्स० १३८) पैहै (अप्स० १३६) प्रगटिहै (आदि० २३)

(१०) क्रियार्थक संज्ञा—खेलिबौ (विजय०, ६५), रिझाइवौ (विजय० ६८) परिष्यवो (विजय० ६८) मानिवी (विजय ८३)

(११) पूर्वकालिक—सिखै = सिखाकर (विजय० ७६) परवानि (विजय० १७६) आन (स्वयं० ७५ <आनि) भीन (स्वयं० ७५ < भीनि = भीन कर)

इससे स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वकालिक का मुख्य प्रत्यय इ ही है। व्रज

की प्रवृत्ति के अनुरूप पूर्वकालिक द्वित्व (देखिये सू० पू० व्रज० § ६६) भी मिलते हैं। जैसे—

साजिकर (विजय० १७८) लै ढहाइ (अप्स० १२१) जीति करि १२२) रीझि करि (अप्स० १२४) बोलि लै (अप्स० १६६) जाइ कै (स्वयं० ३४३)

(१२) **अव्यय के प्रयोग**—किधौं (अप्सरा १२१) पाद पूरक जू (अप्स० १४१) क्यों करि (अप्स० १४१) इमि (अप्स०१ ६६) जिमि (अप्स० १७१) जनु (अप्स० १७१) जौ (अप्स० १७४) कैहूँ (अप्स० १६६) यौं (अप्सरा २०७) जेमि (आदि १२)

नातर (चंपा० ३१) जनु (आदि १७७)

वेगहीं (स्वप्न ४७) कदाचि (आदि ६५ <कदाचित्)

शब्दसमूह

रसरतन नाना प्रकार के शब्दों का भांडार है। तद्भव शब्दों की तो वह जैसे रत्न मंजूषा ही है। नीचे केवल आदि खंड के शब्द दिये जा रहे हैं। इन्हें देखने से मालूम हो जायगा कि तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों का कैसा संकलन इस ग्रंथ में हुआ है।

तत्सम—अव (आदि० १) घोष (आदि० २) मघवा (आदि २) लाट (आदि ४२) सविता (आदि० ४७) चित्रक (आदि० ५०)

तद्भव—त्रैपुर (आदि० < त्रिपुर) गौव (आदि० २ < गौः) कप्पाल (आदि० ३ < कपाल) फनिंद्र (आदि० ३ < फणींद्र) मैन (आदि० ३ < मदन) चमी (आदि० ३ <चर्मी) पौहप (आदि० ४ <पुष्प) वागेसं (आदि० ८ < वागेश) सुमृत (आदि० १० < स्मृति) सिरजै (आदि० १६ <√सृज्) वागेसुर (आदि २० <वागेश्वरी) मुहि (आदि २० <मह्यम्) गरुव (आदि० २० गुरुक) चौदा (आदि० २१ <चतुर्दश) तैन (आदि० २१ < तेन) जुक्ति (आदि० २४ < युक्ति) पौहपपति (आदि० २६ <पृथ्वी पति) सकवंदी (आदि० २७ शक + वंध) चक्कवै (आदि० २६ <चक्रपति) तरनि (आदि० ३१ < तरणि) करन (आदि० ३२ <कर्ण) गोरिक्ख (आदि० ३२ <गोरक्षनाथ) सौंदुर्ज (आदि ३२ < सौंदर्य) दीह (आदि० ३३ <दीर्घ) तुच (आदि ३३ <त्वचा) जिभ्य (आदि० ३३ < जिह्वा) भनि (आदि० ३३ <√भण) लोइनि (आदि० ३५ < लोचन) सरूप

(आदि० ३५ <सुरूप या स्वरूप) सुंडाहल (आदि० ३७ शुंड +) बिवि आदि० ३७ <द्वे) संकि (आदि० ३७ <शंका) वनराइ (आदि० ३८ < वनराजि) रेनुका (आदि० ३ <रेणुका) किंकिर (आदि० ३९ < किंकर) पव्वय (आदि० ४० < पर्वत) साइर (आदि० ४२ <सागर) पिसान (आदि ४२ < पेषण) कविलास (आदि० ४३ <कैलाश) मूकि (आदि० ४४ <मुक्त) ठाँ (आदि० ४६ < स्थान) विक (आदि ४६ <वृक) निर्विस (आदि० ४८ <निर्विष) सुक (आदि० ५० <शुक) कोवँल (आदि० ५१ <कोमल) चवै (आदि० ५ <√वच्) प्रवान (आदि० ५४ < प्रयाण) दरसन (आदि० ५५ <दर्शन) पयोत्र (आदि० ५५ <पौत्र) तामधि (आदि ५६ <तत् + मध्य) जतनु (आदि ५८ <यत्न) सपनंतर (आदि० ६२ <स्वप्नांतर) ततच्छन (आदि० ६४ <तत् + क्षण) थापि (आदि० ६६ <√स्था) संभरी (आदि० ६७ <शाकंभरि) दधिजात (आदि० ७४ < उदधिजात) तनै (आदि० ७८ <तनय) रांक (आदि० ८० <रङ्क) विनानिय (आदि० ८१ <विज्ञानित) वितीती (आदि० ८२ <व्यतीत) उभै (आदि० ८४ <उभय) कछुवक (आदि० ८८ <कश्चित्) दूषन (आदि० ९६ < दूषण) वरनिबे (आदि० ९८ < वर्णन) अच्छरि (आदि० ९९ < अप्सरा) जोगिनी (आदि० ९९ < योगिनी) सारु (आदि० ९९ <सार)।

देशी—अटक (आदि० १) सुज्झिय (आदि० ४) बुज्झिय (आदि० ४) भोरो (आदि० १७) कड्ढिय (आदि० २०) हलहिं (आदि० ३७) मुंदी (आदि० ३७) हच्चिय (आदि० ४२) थरहरिय (आदि० ४२) खलभल (आदि० ४२) डोंगरनि (आदि० ४४) डौंडा (आदि० ४४) चाहि (आदि० ९८)।

विदेशी—आदिलवली (आदि० २६) षुरसाना (आदि० २९) आलम-पनाह (आदि० ३१) तेग (आदि० ३१) तुषार (आदि० ३७) निस्सान (आदि० १७) मौजे (आदि० ३८) षानै (आदि ३९) सैल (आदि० ४१ <सैर) नौवत (आदि० ४२) जगाति (आदि० ४९) आषून (आदि० ८२) नजम (आदि० ८३) नसर (आदि० ८३) अवियात (आदि० ८३)।

ऊपर केवल आदि खंड के संज्ञा, विशेषण तथा कतिपय क्रिया रूप दिए गए हैं। इन शब्दों को देखने से भी इतना तो प्रकट हो ही जाता है कि रसरतन में सर्वाधिक प्रयोग तद्भव शब्दों का हुआ है। १४वीं शताब्दी के

आसपास से अपभ्रंश ग्रंथों में भी तत्सम की प्रवृत्ति पुनरुज्जीवित होने लगती है। विद्वानों ने इसका मूल कारण ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान तथा भक्ति आंदोलन का आरंभ माना है। जो भी कारण रहा हो, संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग एकाएक पुष्कल मात्रा में होने लगा। तुलसीदास का मानस इस प्रकार की प्रवृत्ति की सबसे प्रतिनिधि रचना है। तत्सम शब्दों से तद्भव शब्द कहीं अधिक सुंदर, मधुर और प्रिय होते हैं, इसी कारण इनकी लोकप्रियता भी निःसंदिग्ध है। अपभ्रंश में विशेषतः जैन अपभ्रंश में स्वरों की विवृति (हायटस) को मिटाने का प्रयत्न नहीं दिखाई पड़ता। इस प्रवृत्ति के कारण तद्भव शब्द बहुत कठिन और अपरिचित जैसे होने लगे। इससे निस्तार पाने के दो ही रास्ते थे। एक तो इनके स्थान पर पुनः तत्सम की ओर झुकाव, दूसरा कृत्रिम 'हायटस' को दूर करके तद्भव शब्दों को अधिक से अधिक बोधगम्य और जनसुलभ बनाना। तुलसीदास ने अपने काव्योद्देश्य और प्रवृत्ति के अनुरूप प्रथम पथ चुना, पुहकर ने द्वितीय। इसमें कोई संदेह नहीं कि मानस और रसरतन का पूरा शब्द समूह यदि एकत्र करके विवेचित-विश्लेषित किया जाय तो हिंदी के मध्यकालीन अतुल शब्द भांडार का पूरा पता चल जाएगा।

विशिष्ट प्रयोगिक तत्त्व

कवि पुहकर की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी जीवंतता है। यह सही है कि उन्होंने चारण शैली की व्रजभाषा के अनुकरण पर अनेक स्थानों पर शब्दों को तोड़ा मरोड़ा है और उनमें कृत्रिमता लाने का प्रयत्न किया है। साथ ही अलंकरण की अतिशयता के कारण उनकी भाषा कहीं कहीं बोझिल भी हो गई हैं, परंतु ऐसा उन्होंने परंपराप्रियता के कारण, अपने को सचेष्ट रूप से परिपाटी से संयुक्त दिखाने के लिये ही किया है। जहाँ उनके मन में यह कृत्रिम सचेष्टता नहीं आई है, वहाँ भाषा अत्यंत सहज और जीवन की गमक और स्पंदनशीलता से भींगी हुई दिखाई पड़ती है। इस लहरा कर चलती हुई भाषा में यथावसर कहावतें, मुहावरें, विम्ब तथा व्यवहारजीवित उपमाओं के फल अनायास खिलते हुए चले जाते हैं। लोक कथाओं में जिस प्रकार के चित्रात्मक, नादपूर्ण, रसभींगे शब्दों और मुहावरों का प्रयोग होता है, वैसी ही छटा पुहकर की भाषा में भी दिखाई पड़ती है। उनकी भाषा एक ओर शास्त्रीय अलंकरण, पौराणिक

चित्र और चित्रात्मक विम्बों से भरी पड़ी है तो दूसरी ओर उसमें लोक गीतों में अपनाई जानेवाली भाषा की लुनाई और भंगिमा भी दिखाई पड़ती है।

नीचे उनकी भाषा में प्रयुक्त कहावतों, मुहावरों तथा चित्रात्मक अन्य विशिष्ट प्रयोगों के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

लाड़ गोड़ बहु विध किये	(आदि० १८९)	स्नेह करना और सेवा करना। (गोड़उ कइलीं मूड़उ कइलीं, बनारसी)
नैन तूल रंभा सम राषी	(आदि० १८७)	आँख का तारा बनाकर रखना।
निसि पलक न लग्गै	(आदि० ४३)	चैन न आना।
कल्पतरु छाँह	(आदि० ३२)	मनोवांछित देनेवाला।
पारस-परस	(आदि० ८१)	दान के लिए प्रसिद्ध।
मोच्छ कर लावै	(आदि० ९३)	मोंछ पर हाथ रखना (शौर्य)।
करै षरिहाना	(आदि० १३८)	ढेर करना; राशि लगा देना।
आनँद पागे	(आदि० १८८)	आनँद में पग जाना।
थकि मुषह पुहकर बैन	(आदि० १९४)	बैन का थकित होना।
लिये पैज कर पान	(आदि० २०६)	पान का बीड़ा उठाना।
नगर पहूँची बाट	(स्वप्न० २२)	रास्ता समाप्त होना।
चेटकु डारि	(स्वप्न० ४०)	जादू डालना।
पुतरी चित्र की	(स्वप्न० ४४)	जड़ीभूत, निश्चेष्ट।
अपुनपौ हारि	(स्वप्न० ४४)	अचेत।
ठग मूरि सि षाई	(स्वप्न० ४७)	बेहोश करनेवाली मूल खा लेना।
काहू डीठि लाई है	(स्वप्न० ५०)	नजर लगाना।
बदन बलाइ लेत	(स्वप्न० ५१)	बलैया लेना।
कछु ना बसाइ	(स्वप्न० ५१)	कुछ बस न चलना।
बारि केरि जल पीवहि	(स्वप्न० ५३)	जल ओइँछ कर पीना।
तोरि त्रनु डारहि	(स्वप्न० ५३)	तिनका तोड़ना (दृष्टिदोष परिहार)
राई नोन उतारहिं	(स्वप्न० ५५)	राई नोन उतारना (टोटका)
भरम नहिं कीजै	(स्वप्न० ६३)	भ्रम करना, प्रेताविष्ट होना।
बिषधर लहरैं अधिकारी	(स्वप्न० ६६)	साँप काटे-सी लहर आना।

गहर पहर नहिं कीजिए	(स्वप्न० ७१)	विलंब न करना।
बाट परी बोलिहै	(स्वप्न० १३३)	अवसर पर बोलना।
अर्ध निसि डहडही	(स्वप्न० २४४)	स्तब्ध, डह डह आधी रात।
तुम बाहँ गही है मेरी करौ लाज कर टेके केरी	(चित्र० २२२)	बाहँ गहे की लाज
पल न परै	(स्वप्न० ८४)	कहीं चैन न पड़ना।
पचि रह्यौ	(स्वप्न० ८६)	लीन होना।
षिन तातो षिन सीयरौ	(स्वप्न० ९३)	विषम अवस्था।
रवि किरन छाँह महि लोक वास	(स्वप्न० २५८)	सूरज के किरण-छाँव में निवास।
तरी फेरि कलिआई	(स्वप्न० २७३)	लता में फिर कलियाँ लगीं।
ऊषा उठत विहान	(चित्र० १३)	प्रातः उषा उठते ही।
पाहन लीक परी मन माँही	(चित्र० ७१)	अमिट धारणा
पुत्र पाँव जो काँटा लागै जाइ पिता के नैननि जागै	(चित्र० ७४)	पुत्र का छोटा दुख भी पिता को बड़ा लगता है।
अंध लकुट मनौ रंक निधि	(चित्र० १८६)	सब प्रकार एकमेव सहारा।
वियौ धनन्तर आही	(चित्र० २३३)	दूसरा धन्वन्तरि।
करि हारिल की लाकरी	(चित्र० २५८)	अनन्य सहारा।
देहि मेरे सिर तर वारि	(विजय० १२३)	सिर पर तलवार देना, अत्याचार।
सिर पाइँ तर वारि देहु	(विजय० १२३)	पैरों पर सिर रख देना समर्पण।
विछौना इहि अभरन विष भये	(चंपावती २८)	सोना - पहनना कष्टपूर्ण हो गया।
भई पतंग दीपक की रीती	(चंपा० ३३)	प्यार का प्रतिकार दुःख।
परछाँही की छाँहरी	(चंपा० ३७)	जीवन की अस्थिरता।
चित रही चुभि	(स्वयं० ३७)	चित्त में चुभना
करभ करेले लागे	(स्वयं० ३६)	हाथी के कडेर बच्चे की तरह जाँघे
माखन की कीने	(स्वयं० ३६)	अत्यन्त मुलायम

साँचे सी सुढारि	(स्वयं० ४९)	सुगठित
सान दै सँवारि	(स्वयं० ५०)	अत्यन्त चमकीले
कीनौ कुछ टौना है	(स्वयं० ५१)	दृष्टिदोष परिहार के लिए।
होड़ सी परति छबि	(स्वयं० ५८)	वदावदी करना
डहडही छवि	(स्वयं० ६०)	अत्यन्त आकर्षक, ताजी।
पैज पालिवे को	(स्वयं० ६१)	प्रतिज्ञा पूरी करने को।
एक पंथ दो काज	(स्वयं० १८१)	एक कार्य के दो फल
अचयौ रूप नैन भरि	(स्वयं० २८१)	नैन से रूप देखना और तृप्त होना
अलरायै हित प्यार	(स्वयं० २८२)	दुलराना।
दुति तालो आली वदन	(स्वयं० ३०५)	ताली की तरह गौरांग-छाया।
जल जिमि रंग मगनु मन	(स्वयं० ३८१)	मन में मन का मिलना।
पर हत्थ विचाइ विसारि गए	(युद्ध० १५)	दूसरे के हो गए
पट्ठुली पीर विछुरि पिय चिंता	(युद्ध० २०)	विरह में पट्ठुली की तरह भूलना
जुगल नैन टक लाई	(युद्ध० २०)	वाट देखते
अड़ित जल धारा	(युद्ध २८)	लगातार वर्षा।
विरहिन अंग प्रजार कै सेकत है कर काम	(युद्ध० ६५)	दूसरे के दुःख में खुश होना।

वार्ताएँ : खड़ी बोली का प्रभाव

वैसे तो यदा कदा भाषा में खड़ी बोली के प्रयोग मिल जाते हैं; पर इसका पूर्ण प्रस्फुटन तो गद्य अथवा वार्ता में ही दिखाई पड़ता है। नीचे एक अंश देखिए —

'वार्ता—श्री श्री सूरसैन राजा स्वयंवर सुन के स्थान से चले वैशाख सुदी ५ को एक महीना वीस रोज में मानसर पै ज्येष्ठ सुदी ११ को पहुँचे। फिर अर्धं रात्रि के समय अप्सरा स्नान करिवै आई और सूरसैन को लेकर उत्तर दिसा ब्रह्मकुंड पर पहुँचीं। और गंधर्व विवाह कल्पलता के साथ रावत भई

फिर काल पाय रह कर चले और कई महीनों में चंपावती नगरी में आये। और इनकी फौज भी चंपावती नगरी मैं पहुँची।' यह वार्ता 'अ' प्रति में नहीं है, पर 'ब' परंपरा की सभी प्रतियों में अध्यायों के आरंभ में विषयसूचक वाक्य और स्वयंबर खंड में प्रथम अध्याय के बाद की यह वार्ता प्राप्त होती है। यह पुहकर की ही मालूम होती है। रासो का अनुकरण करनेवाला कवि 'वार्ता' से जो कुछ भाव प्रकट करना चाहता है, उससे प्रतीत होता है कि मूल पाठ में भी यह अंश अवश्य रहा होगा।

यह गद्य खड़ी बोली गद्य के विकास की पूर्ण सूचना देता है। इससे यह भी लगता है कि अभी खड़ी बोली गद्य व्रजभाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका था। उसमें करवैं, आई, राषत भई, जैसी संयुक्त क्रियाएँ और पाय के आदि पूर्वकालिक रूप स्पष्टतः व्रजभाषा-प्रभाव के सूचक हैं।

भाषा की तीन शैलियाँ

रसरतन काव्य में भाषा की तीन विशिष्ट शैलियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। (१) चारण शैली यानी पिंगल व्रज, (२) औक्तिक व्रज का परिनिष्ठित रूप जिसे हम माधुर्य शैली कह सकते हैं। और (३) खड़ी बोली से प्रभावित मिश्रित व्रज जिसे हम उस समय की हिंदुस्तानी शैली कह सकते हैं जिसे कुछ लोग रेख़्ता भी कहना चाहेंगे।

(१) चारण शैली की व्रजभाषा प्राकृत पैंगलम् में भी स्फुट रूप से मिल जाती है। इसी को लक्ष्य करके डॉ० तेसीतोरी ने कहा था कि 'प्राकृत पैंगलम् की भाषा की पहली संतान पश्चिमी राजस्थानी नहीं, बल्कि भाषा का वह विशिष्ट रूप है जिसका प्रमाण चंद की कविता में मिलता है जो भली भाँति प्राचीन पश्चिमी हिंदी कही जा सकती है।'[1] इसी भाषा का परवर्ती विकास नरिहरि भट्ट, जानकवि के क्यामखाँ रासा और वंशभास्कर में दिखाई पड़ता है। इस भाषा में (१) उपधा या अंत स्वर का लोप जैसे धारा>धार, भाषा>भास आदि (२) स्वर संकोच की प्रवृत्ति जैसे पदातिक>पाइक; ज्वालापुर>जलउर (३) मध्यग म>वँ जैस कमल>कँवल, कुमारी>कुवाँरि (४) मध्यवर्ती र का पूर्ण स्वरागम द्वारा पूर्ण र में परिवर्तन जैसे दुर्ग>दुरग्ग, स्वर्ग>सुरग्ग (५) द्वित्व सरलीकरण जैसे वग्ग>वाग; कज्ज>काज तथा (६) टंकारा या

१. पुरानी राजस्थानी, ना० प्र० सभा, काशी १६५६ पृष्ठ ६।

ओज के लिए अकारण द्वित्व जैसे तिलक > तिलक्क; फलक > फलक्क आदि की ध्वनि प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। इसमें रूप तत्व की दृष्टि से वर्तमान में कृदंतज क्रिया का प्रयोग अप्पन्त दान, झलकंत कनक आदि (७) भविष्य के ग–चिह्न रूप करिग फिरिग आदि प्रयोग (८) किज्जिय, दिज्जिय आदि भूतकालिक कृदंत के रूपों का प्राचुर्य और (९) शब्दों में तद्भव की अधिकता तथा फारसी शब्दों का मिश्रण आदि की प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती है। रसरतन में, छप्पय, पद्धरी, मोतीदाम और त्रोटक में प्रयुक्त भाषा सर्वत्र इसी शैली का अनुसरण करती है। रासो की भाषा का ऐसा सुंदर अनुकरण क्या इस बात का सबूत नहीं है कि कथा काव्य के रूप में उसका रसरतन के कवि के सामने बहुत बड़ा आदर्श था।[1]

(२) औक्तिक व्रज के परिनिष्ठित रूप वाली शैली का अपना विशेष महत्व है क्योंकि इस शैली में पुहकर ने अवधी प्रभावों को आत्मसात् करके भाषा का वह आदर्श रूप उपस्थित किया है जो भक्ति और रीतिकाल के अनेक रससिद्ध कवियों द्वारा स्वीकृत और परिष्कृत हुआ। सूर, बिहारी, घनानंद की भाषा में भी पूर्वी यानी अवधी के प्रयोग मिलते हैं। असल में मध्यकालीन साहित्य के समर्थ माध्यम के रूप जो व्रजभाषा आगे चल कर इतनी प्रसिद्ध हुई उसमें शौरसेनी व्रज को ही विशुद्ध रूप में नहीं ग्रहण किया गया। वह एक प्रकार से राष्ट्रभाषा थी। इसे ही हिंदुई या काव्य भाषा कहा जाता है। स्वाभाविक रूप से इसके कलेवर में पार्श्ववर्ती अवधी भाषा की शक्ति और सामर्थ्य को आत्मसात् करने का प्रयत्न भी रहा। (देखिए सूरपूर्व व्रजभाषा §§२४५-३४३)।

(३) पुहकर ने उस काल में प्रचलित तीसरी शैली का भी अनुसरण किया, हाँलाकि यह शैली पद्य के माध्यम के रूप में उन्होंने स्वीकार नहीं की। हिंदू कवियों ने उस समय भी इस शैली को पद्य के माध्यम के रूप में स्वीकार नहीं किया। रेखता, सधुकड़ी या प्राचीन खड़ी बोली की शैली को नाथसिद्ध, निर्गुणिये संत, खुसरो तथा दूसरे मुसलमान कवियों ने ही स्वीकार किया। जिन लोगों ने स्वीकार भी किया उन्होंने इसका प्रयोग खंडनात्मक प्रवृत्ति की क्रांतिकारी, सुधारवादी, रूढ़िविरोधी रचनाओं में ही किया। प्रेम और समर्पण

---

१. चारणशैली की पिंगल व्रज के विस्तृत भाषाशास्त्रीय रूप के लिए देखिए लेखक की पुस्तक सूरपूर्व व्रजभाषा § ११२-१५०।

संबंधी रचनाओं में इन लोगों ने भी व्रजभाषा की माधुर्य शैली का ही प्रयोग किया। पुहकर की भाषा पर इस शैली का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। विशेषतः जहाँगीर के छत्र सिंहासन वर्णन में तथा स्थान स्थान पर कुछ चटपटे किस्म की इश्क चर्चा में। वैसे गद्य के कई नमूने इस बात के सूचक हैं कि उनका इस शैली से भी लगाव था। इस शैली के भाषा शास्त्रीय रूप का विशद विवेचन सूरपूर्व व्रजभाषा और इसके साहित्य में मैंने §§१६२-१६७ के अंतर्गत उपस्थित किया है।

रासो और रसरतन

रसरतन पृथ्वीराज रासो की परंपरा का ही अग्रिम विकास है। यह कथन शायद आश्चर्यजनक लगे; पर यह वस्तुस्थिति का सही और निस्पक्ष निष्कर्ष है। उन लोगों को शायद यह कथन और भी अधिक आश्चर्यजनक प्रतीत हो जो चन्द की इस महत्त्वपूर्ण कृति को जाली कह कर अपने उत्तर-दायित्व से छुटकारा पा लेना चाहते हैं। मैंने रसरतन के इस अध्ययन के आरंभ में यह दिखाया है कि पुहकर न सिर्फ चन्द वरदाई की अभ्यर्थना और वंदना करते हैं; बल्कि उन्हें पूर्वज महाकवियों की वंदनीय परंपरा में रखकर उनके महत्त्व को आँकने और उन्हें उनका सही प्राप्य स्थान देने का प्रयत्न भी करते हैं। (देखिए पृष्ठ २४-२६) रसरतन ग्रंथ की सभी प्रकार से भाव, वस्तु, कथा-संयोजन, उपस्थापन-पद्धति, छंद, अलंकार, आदि पक्षों की भलीभाँति विवेचना करने पर पता चलेगा कि यद्यपि यह एक प्रेमाख्यानक है जिसकी शैली पर भारतीय प्रेमाख्यानक परंपरा विशेषतः सूफी प्रेमाख्यानकों का प्रभाव है, साथ ही यह एक चरित काव्य भी है जिसकी शैली पर मध्ययुगीन चरित काव्यों की विशेषतः पृथ्वीराज रासो की घनी छाप दिखाई पड़ती है। मैं यहाँ पृथ्वीराज रासो और रसरतन का एक संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहा हूँ ताकि यह स्पष्ट हो सके कि सोलहवीं-सत्रहवीं में न सिर्फ रासो एक जीवंत और महत् काव्य-कृति के रूप में प्रसिद्ध था बल्कि उसकी शैली, भाषा, और दूसरी पद्धतियों का अनुसरण करना कवियों के लिए गौरव की बात मानी जाती थी। रसरतन इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति इसी लिये है कि इसकी भाषा वस्तु और शैली में उस युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों का इतना सुंदर समन्वय है कि इसे देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि यह मध्य युग (आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल) के साहित्य के समझने की अनमोल कुंजी है।

(१) रासो का प्रतिपाद्य रसरतन से कहीं अधिक विस्तृत और बिखरा हुआ है; पर दोनों की वर्ण्यविषय तालिका देखें तो इनमें आश्चर्यजनक साम्य दिखाई पड़ेगा। दोनों ने आरंभ में कवि परिचय दिया है। चंद

अपने काव्य का एक अविच्छेद्य पात्र भी है, इसलिये उसके जीवन का विस्तार और वैविध्य बहुत व्यापक है। चंद के विषय में रूढ़ि है कि वह 'वरदाई' था यानी उसे चंडी ने वरदान देकर सिद्धि प्रदान की थी। पुहकर ने स्वयं 'चंद वरदाइक चंडी' कहकर उसकी अभ्यर्थना की है। चंद ने अपने जीवन की इस घटना को लक्ष्य करके कहा है:—

तब परतिष्ष भई ब्रह्मानी। वीनापानि हंस चढ़ि ध्यानी।
त्रिमल चीर हीर बिन मंड। तिहि कल किंत्ति कही सु प्रचंड॥

(समय० १ छं० ११५)

कवि पुहकर पृष्ठ ४ के छंद सोमक्रांति में 'जा कुंदेद तुषारं हारं' देवी सरस्वती की वंदना करते हैं और कवि परिचय (आदि० छं० सं० ८३) में कहते हैं—

परतिच्छ देवी सारदा भई, उर निवास मुष वसि रहिय।

(२) चंद अपनी भाषा बहुज्ञता की चर्चा करते हुए कहते हैं कि रासो में विशाल धर्म की उक्ति की गई है। राजनीति और नवों रसों का वर्णन है। छः भाषा और कुरान तथा पुराण का समावेश है।

उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं।
षट् भाषा पुराणं च कुराणं कथितं मया॥

(१।८३)

भाषा षट नव रस पढ़त, वर पुच्छै कविराज।
सम्प्रति पंग नरिंद कै, वर दरवार विराज॥
भाषा परिछा भाष छह, दस रस दुब्भर भाग।
वित्त कबित्त जु छंद लौं, पग सम पिंगल नाग॥

(६१।५५५–५५६)

इसी के साथ कवि पुहकर की ये उक्तियाँ रखकर विचार कीजिए:—

द्वादस विधि अवदान सुनत नव गुन अवराधन।
छंद वंद पिंगल प्रबंध बहु रूप विचारन॥

(आदि० ८३)

नव रस भेद आहि इहि माही। बहुत अर्थ कुछ थोरो नाहीं॥

(आदि० ८७)

(३) भाव संपदा की दृष्टि से दोनों ही अतीव प्रतिभासंपन्न कवि हैं। दोनों ही विभिन्न रसों का तथा उनके भाव वैविध्य का चित्रण करते हैं। रस निरूपण में अनेक स्थलों पर इनकी रचनाओं का साम्य आश्चर्य में डाल देता है —

निर्वेद—संसारकी असारता; जीव और जगत्

चंद—

पियै सगति धर ओन पिंड पापक आहारै।
साईं समप्पै प्रान सीस उर संकर धारै॥
अंत तुट्टि पथ चँपहि डिंभ लग्गहिं अग गिद्धिय।
जय वंछै निज स्वामि लगै ताली मन वद्धिय॥
मंडलहँ हंस हंसह जुटै, जीय जोग गति उद्धरै।
निरकार ध्यान राखै जु निज इमि भव सारूपह तिरै॥
(६६।६६१)

पुहकर—

पुरुष प्रकृति सिव सक्ति कहावे। दंपति रूप जगत उपजावे॥
पंच तत्त्व कर जगत उपावा। पंच नाम परमेश्वर गावा॥
रुधिर रेत पाँचो मिल होई। यहि कर भेद न जाने कोई॥
माता अंस रुधिर तन जाही। अरु पितु अंस वीर्य कह ताही॥
रुधिर रेत कहँ पिंड सँवारा। सो तो जगत विदित संसारा॥
मरन भयौ इक द्वैकर नासा। अस सब वस्तु रहै तन पासा॥
जो भर जन्म ज्ञान गुन लेखौ। बिना पंच कछु और न देखौ॥
परमेश्वर यह पंच है, जगत विदित यह बात।
निगम दिया नर कर लिए, आपुन खोजत जात॥
(वैरागर ३१७-३२४)

क्षत्रियमरण

चंद—

जीविते लभ्यते लक्ष्मी, मृते चापि सुरांगणा।
क्षणे विध्वंसिनी काया, का चिंता मरणे रणे॥
(६१-१८२५)

पुहकर—

जुद्ध नाम सुन हौं न डराऊं। दुहु दिसि आज अप्सरी पाऊं॥
जीत्यौं युद्ध मदन दल पेद्दौं। जौर मरौं रविमंडल भेदौं॥
(युद्ध २२५)

सेनाप्रयाण

चंद—

भयौ गज घुंमर घंट निघोर। मनौ फुनि कन्न भयौ सुर रोर॥
गजै गज मद्द मनौ घन भेद। चिकार धिकार भये सुर रुद्द॥
तुरंगम हींस कडक्क लगाम। षरक्किय पष्षर तोन सुताम॥
चमंकत तेज सनाह सनाह। करै धर पद्धरि राह विराह॥
झलक्कत टोप सुटोप उतंग। मनो रज जोति उद्योत विहंग॥
(६।६३-६६)

पुहकर—

सुनै सोर इंदौर तैं इंद्र लज्जौ। जहाँ सैन चतुरंग गंभीर सज्यौं॥
चले मत्त मैमंत घूमंत मंता। मनो बद्दला स्याम माथे चलंता॥
चलंते बँधी पाइ वेरी षरक्कैं। वजै घूँघरू घोर घंटा ठनक्कैं॥
वनी किंकिनी लंक लागी धनक्कै। मनो पावसी रैन झिल्ली झनक्कै॥
पलानै तहाँ तेज ताजी तुरंगा। परै उच्च उच्छाल मानौ कुरंगा॥
(विजय० १९८-२०३)

क्रोध, क्रोध के कारण उत्पन्न अनुभाव

चंद—

सुनत पंग कवि नयन, श्रुत वदन रत्त वर।
भुवन बंक रद अधर, चंपि उर उससि सास झर॥
(६१।५८६)

पुहकर—

सूर सुभट सावंथ दल, विरचित वधिय लाम।
सूर वदन रन रंग श्री, सूर विलोक ललाम॥
(युद्ध २४४)

युद्ध जुगुप्सा

चंद—

घुमै मुक्कि सीसं भटं लोह छक्कै । उभै जानि भूतं महामंत्र हक्कै ॥
फिरै रुंड मुंड रसं रोस रॉचै । मनो भग्गरं नट्ट विद्या कि नाचै ॥
परैं अश्व हुंतं सिरं जोर सूरं । तुरै षुप्परी हड्ड ह्वै भूर मूरं ॥
लगै गुर्ज सीसं भजी भंति छुड्डै । मनो मंषनं दद्धि मंथान उड्डै ॥
हुवै छीन छीनं छरी मार छक्कै । भटं रक्त डोरी महामल्ल हक्कै ॥
(समय २३।८६-६१)

पुहकर—

लगै षग्ग एकै गिरै सीस टूटै । कहूँ वान साँगी दुहूँ आँख फूटै ॥
करै एक अर्ध जु अंगहु भालं । पियौ रक्त काली लई ईश मालं ॥
परै एक घाइल्ल घूमतं धाई । तिनै देषि सूरान के चित्त चाई ॥
फटो षोपरी गुंद फैलंत पिंडो । मनौ माथ मारग्ग फूटी दहिंडो ॥
धनै धाइ वोलै रकन्ते अभक्कै । वहे एक लोहू हिलक्को हिलक्कै ॥
(युद्ध० २५०-२५२)

कैसा अद्भुत साम्य है युद्ध की भयंकरता के इस वर्णन में। एक प्रकार की शब्दावली। फटी हुई खोपड़ी से निकले हुए गूदे के लिये दही की फूटी हाँड़ी की उत्प्रेक्षा दोनों में समान रूप से दिखाई पड़ती है।

भयानक

चंद—

किलकारित भैरव भूत करैं । हलकारत षेतर पाल षरैं ॥
गलै राग गावंत सिंधू सगिंधू । गलै माल जासूल कन्नैर वंधू ॥
अगे षेचरं षेतपालं वेतालं । तहाँ भैरवं नद्द जोगीह कालं ॥
दोउ कन्न जोग्यंन कर पत्र मंडे । तिनं दर्शनं देषि साहस्स षंडे ॥
फिरै तिष्षि निष्षिं पताका तिरच्छी । लुवं जानि लग्गी सग्रीषम्म तत्ती ॥
(६४।२६५-२६६)

पुहकर—

हसै षेत दानैं लसै भूम माँही । फिरैं देविगौरा गहै पीउ वाँही ॥
लिये संग वेताल दैं ताल ताली । सुरा पान कीनै मनो मत्तवाली ॥

नचैं भूत भैरो छुटे केस सीसं। करैं जुग्गिनी पान दमंकंत हीसं॥
तहाँ गौरि भरतार डौंरू बजावै। लसै चंद माथै महासोभ पावै॥

(युद्ध २४७-२४८)

श्रृंगारवर्णन

भ्रमवश पृथ्वीराज रासो वीर काव्य माना जाता है। इसमें संदेह नहीं कि इसमें युद्ध के वर्णन बहुतायत से मिलते हैं, किंतु श्रृंगार में रासोकार की प्रवृत्ति कम पगी नहीं थी। इसी कारण चंद भी रूप वर्णन, विक्षोभक श्रृंगार और प्रेम की विविध अवस्थाओं के चित्रण में काफी दिलचस्पी लेते हैं। नखसिख के वर्णन में दोनों कवियों की समानता शशिव्रता और रंभा के नखशिख वर्णनों में देखी जा सकती है। संयोगिता के साथ पृथ्वीराज की रति क्रीडा को कवि चंद रति युद्ध कहते हैं और उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

लाज गड्ढ़ लोपंत बहिय रद सन ढक रज्जं।
अधर मधुर दंपतिय लूटि अब ईव परज्जं॥
अरस परस भर अंक षेत परजंक षटक्किय।
भूषन टूटि कवच्च रहे अध बीच लटक्किय॥
नीसान थान नूपुर बजिय हाक हास करषत चिहुर।
रति वाह समर सुनि इंछनिय कीर कहत बत्तिय गहर॥

(छंद० १४१)

और अब कवि पुहकर का एक 'सुरति संग्राम' देखिए—

मन के सुरथ चढ़ि सारथी अनंग संग,
भृकुटी धनुक धरे बरनी के बान जू।
अंचल धुजा सो सोहे कंचुकि जिरह जेब,
सुभट कटाछ सेज समर मैदान जू॥
रति सौं रुचिर रूप रैन रति जुद्ध कियौ,
कंकन किंकिनी बाजै बिजै के निसान जू।
पुहकर तीखे नख धाइ सनमुख लागे,
मुरी न पर्यंक मुखी सुरति सुजान जू॥

(अप्सरा० १२३)

इस रति में अडिग रहनेवाले अंगों को नायिका प्रातःकाल रत्यंतर स्नान के बाद आभूषण वस्त्र आदि पहनाती है मानो उनकी वीरता के लिये पुरस्कार दिए जा रहे हैं। चंद लिखते हैं—

कर कंकन मुद्रिका, छुद्र घंटिका कटि तट।
वसन जघन पहिराइ, भार वित्तयौ सघन घट।
कुच निहार कंचुकिय, भुजनि बंधे बाजू बँध।
पग तोड़र नूपुरिय, हरे कपि अडिग खेत मँध॥
संग्राम काम जीते भरनि, करिय रीझ कनवज्जिय।
तंबोल पान दीनो अधर, कीर कहत सुनि इंछिनिय॥

और अब जरा कवि पुहकर का पुरस्कार-वितरण समारोह देखिए—

जीत अंग सनमुख ठहरानै। तिनहिं रीझ कर बगसे बानै॥
उर पहिराइ कंचुकी झीनी। मुक्तमाल उरजन कहँ दीनी॥
कटि किंकनि कंकन कर साजै। नूपुर चरनन अधिक बिराजै॥
नव दुकूल जंघन पहिराये। सोभित अँगद बाँह सुहाये॥
अधर सुधर कहँ बगसे बीरा। दसननं नाम भयौ विवि हीरा॥
(अप्सरा० १६३-१६५)

हाथों को कंकण, कटि को किंकिनी, जंघों को दुकूल, उरजों को कंचुकी, चरणों को नुपूर, बाहों को बाजूबंद, और अधरों को तांबूल बीड़ा का उपहार—और यह सब दोनों कवियों की नायिकाओं ने 'अडिग खेत में रहने' वाले अथवा 'सनमुख ठहरने' वाले अंगो को 'करिय रीझि' या 'रीझ कर' ही वितरित किये।

विप्रलंभ

विरह के वर्णन में कवि चंद भी स्फुट रूप से दस अवस्थाओं का संकेत करते हैं। अभी तक रासो और इस तरह के ग्रंथों में संनिविष्ट लक्षण साहित्य के अध्ययन अन्वेषण का प्रयत्न नहीं किया गया है। रासोकार अपने शृंगार और वीर रस के वर्णन के लिये भले ही याद कर लिए जाते रहे हों, उनके पांडित्य और ज्ञानवैविध्य की ओर ध्यान देना हमारे लिये आवश्यक नहीं रहा है। किंतु मेरा यह ध्रुव विश्वास है कि पृथ्वीराज रासो में स्फुट रूप से व्याप्त लक्षण साहित्य इतना विविध और प्रचुर है कि वह हिंदी के पूरे रीतिकालीन लक्षण साहित्य पर नये सिरे से सोचने के लिये बाध्य कर सकता है।

विरह का वर्णन रासो में भी षड्ऋतु की पद्धति पर ही उपस्थित किया गया है। किंतु वह वर्णन एक साथ एकत्र सभी ऋतुओं के क्रम से नहीं मिलता। ६१ वें समय में अलबत्ता छंद सं० ६ से ७२ तक क्रमवद्ध षड्ऋतु वर्णन दिया हुआ है जब कि पृथ्वीराज कन्नौज जाने को उद्यत होकर अपनी रानियों से अलग अलग विदा लेने के लिये जाते हैं और एक एक ऋतु उनके आग्रह पर वहीं रुक जाते हैं। इस वर्णन में भी विरह की पीडा नहीं, आशंका की पूर्व स्थिति ही झलकती है। नीचे ६६ वें समय से एक छप्पय उद्धृत किया जा रहा है जिसमें वर्षा ऋतु में संयोगिता के विरह का बड़ा सुंदर वर्णन हुआ है—

वही रत्त पावस्स वही मघवान धनुष्षं।
वही चपल चमकेत वही पगपंत निरष्षं॥
वही घटा घनघोर वही वप्पीह मोर सुर।
वही जमी असमान वही ससि निसि वासर॥
वेइ आवास जुग्गिन पुरह वेही सहचर मंडलिय।
संयोगि पर्यंपत कंत विनु, मुहिन कछू लग्गत रलिय॥

(छंद ६४५)

अब जरा इससे पुहकर के पावस वर्णन से तुलना करके देखिए—

दल दर्पक पावक सज्ज कियं। उर व्याकुल वाल विहाल जियं।
उभड़े धन मैगल मत्त मनो। गरजे नभ वाजत वंब मनौ॥
चलि अग्गित पौन पवंकि तहाँ। चपला समसेर झमंकि जहाँ॥
अमरा पतु चाप चढ़ाई चढ्यौ। जसु वंदिय कोकिल कीर पढ्यौ॥
वग पाँतिन सोगति जोर चलै। कपची क्रत धावत सूर भलै॥
विसवासिय मो घर कंत भयौ। परहथ्थ विचाइ विसारि गयौ॥

(युद्ध० १२-१५)

रूपवर्णन

(१) नारीरूप वर्णन से रासो के अनेक पृष्ठ भरे पड़े हैं। नखशिख वर्णन में चंद बेजोड़ थे, इसमें शक नहीं। उदाहरण के लिये इंछिनी का श्रृंगार (१४।४८-६०) तथा नखशिख (१४।१३७-१६२), पृथा का श्रृंगार और नखशिख (२१।६८-९२) और संयोगिता का नखशिख (४७।६०-७३) वर्णन के प्रसंग देखे जा सकते हैं। शशिव्रता का रूपवर्णन प्रसिद्ध है ही।

रासोकार श्रृंगार वर्णन के सिलसिले में द्वादस आभरण और सोडस श्रृंगार का भी वर्णन करते हैं (सं० ४७।४६–५६) । पुहकर ने द्वादस आभरण और षोडस श्रृंगार का वर्णन कल्पलता के प्रसंग में अप्सरा खंड में छंद से ७६-७७ में किया है ।

इन वर्णनों से कवि पुहकर के रंभा और कल्पलता के श्रृंगार, नखशिख, स्नानोत्तर शोभा आदि वर्णनों से तुलना करने पर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ेगा । ये समानताएँ सचेष्ट नहीं है कि बल्कि परंपरा पालन और रूढ़ि निर्वाह की स्वाभाविक देन और चंद के प्रति पुहकर की श्रद्धा की सूचक हैं ।

हंसावती के रूप वर्णन का एक अंश—

उपम्म ईस कुच्चयो । अनंग रीति रच्चयौ ॥
रोमंग तुच्छ राजयं । उपम्मता विराजयं ॥
उरज्ज पत्र काम को । लिखै जोवंत वाम को ॥
कटी अलप्पता ग्रही । मनो कि रिद्धि रंक ही ॥
कि सीम द्वै नृपं रही । तुला कि दंडिका कही ॥
रुलंत छुद्र घंटिका । सषंत सद्द दंडिका ॥
जु जेहरी जराइ की । घुरंत नद्द पाइ की ॥
नितंब अद्ध तुंवियं । प्रवाल रंग पुच्छियं ॥
कि काम रथ्थ चक्कये । चलंत एड़ि वक्कये ॥
(३६।१७४-१७८)

पुहकर का वर्णन—

घनंक घोर घूंघरा । चंलत सोभ नूपुरा ॥
जराइ पाइ जैहरी । विराज लंक केहरी ॥
उरोज छाजि छत्तियाँ । कठोर बोल वत्तियाँ ॥
सुरंग अग सारियाँ । सुमध्य मध्य नारियाँ ॥
(चंपा० २४३-४४)

पुहकर के प्रसिद्ध नखशिख वर्णन में, जिसका विवेचन सौंदर्य चित्रण पर विचार करते समय किया गया है, उरोजों के लिए ईश, कटि की क्षीणता को रंक के वित्त की तरह क्षीण, जराइ जेहरी को काम की सीढ़ी की तरह कहा गया है । यही नहीं यदि रसरतन के रूपवर्णन के प्रसंगों को रासो के रूप और

नखशिख वर्णनों के साथ रखकर विस्तार से विश्लेषण किया जाय तो आश्चर्यजनक रूप से प्रतीकों और उपमानों की समता दिखाई पड़ेगी।

(२) रासो के रूपवर्णन की एक और विशेषता पर ध्यान दीजिए। रासोकार पृथ्वीराज के द्वारा संयोगिता प्राप्ति को समुद्रमंथन से प्राप्त १४ रत्नों का संयोग बताते हैं—

जिहि उद्धि मथ्थए, रतन चौदह उद्धारे।
सोइ रतन संजोग अंग अंगह प्रति पारे॥
रूप रंभ गुन लच्छि वचन अमृत विष लज्जिय।
परिमल सुरतरु अंग संष ग्रीवा सुभ सज्जिय॥
वदन चंद चंचल तुरंग गय सुगति जुव्वन सुरा।
धेनह सु धनंतरि सील मनि भौंह धनुष सज्जौं नरा॥

(६६।२१६)

पुहकर के समुद्रमंथन और चौदह रत्न समुच्चय के विषय में हम पीछे विचार कर चुके हैं। (देखिए पृष्ठ ७६)

रसवर्णन के प्रसंग में रासोकार भी नवरसों का कहीं कहीं एकत्र समन्वित वर्णन करते हैं। उन्होंने बारहवें समय में छंद सं० ३५६-३६० में, २५ वें समय के ३६१ वें छप्पय में पृथ्वीराज द्वारा शशिव्रता हरण में, तथा उसी समय में छंद ५०१ में युद्ध के समय उत्पन्न क्रिया व्यापार में नवरसों की संयुक्त निष्पत्ति दिखाई है। पुहकर के इस प्रकार के उदाहरण हम पीछे रसनिरूपण शीर्षक परिच्छेद में दे चुके हैं।

वस्तुवर्णन—रासो में पट्टनपुर, दिल्ली या योगिनीपुर, गजनी और कन्नौज नगरों का विस्तृत वर्णन है। यमुनातट पर निगमबोध घाट के राजोद्यान में पेड़ों की सूचनिका का एक हिस्सा देखिए—

श्री खंड भंड वासयं। गुलाब फूल रासयं॥
जु चंपकं कदंबयं। षजूरि भूरि अंबयं॥
सु अन्ननास जोरयं। सतूतयं जभीरयं॥
अषोट सेव दामयं। अवाल वेलि सामयं॥

र० र० भू० ११ (११००-६२)

जु श्रीफलं नरंगयं। सवद्द स्वाद होतयं॥
चवंत मोर वायकं। मनो सगीत गायकं॥

अब इसे चंपावती के उपकंठ स्थित राजोपवन से मिलाकर देखें। इसका वर्णन आपको भूमिका में वस्तुवर्णन के अंतर्गत पृष्ठ १०६ पर मिलेगा। गजनी के हाट विद्यापति के जौनपुरवाले और पुहकर के चंपावती के हाटों से कितना मेल रखते हैं—

अगम्म हट्ट अट्टनं सुरंग सुभ्र सोभयं।
ग्रिहं ग्रिहं सुदिष्षियं तुरंग तुंग लोभयं॥

सरोवर और पनघट के वर्णनों के लिये रासो के पट्टनपुर का पनघट (४२।५६-५८) तथा कन्नौज में गंगातट का पनघट (६१।३२३-३७४) अवश्य देखना चाहिए। विवाह का वर्णन इंछिनी विवाह के रूप में १४ वें समय में दिया हुआ है। इन वर्णनों में बारात के आगमन के पूर्व की तैयारी, मंडपनिर्माण, मिलान, अगवानी, द्वारचार, जनवासा, विवाह, पूरी रीतियाँ, मंडन, कन्यादान, दहेज, ज्यौनार, विदाई आदि का विशद चित्रण मिलेगा। बारात देखनेवालियों की अस्थिरता और चंचलता के वर्णन कितने रूढ़ हो गए थे, इन्हें इसे पढ़कर ही समझा जा सकता है। ज्योनार के वर्णन में चंद किसी से कम क्यों रहें—

किते स्वाद स्वादं प्रथीदेव वंछै। तहाँ केवलं वर्नि आवर्त गंछै॥

इसी प्रकार कवि पुहकर भी असंतोषपूर्वक विस्तार के डर से कह उठते हैं—

त्रिपित भये भोजन सब कोई। वर्नत वियौ ग्रंथ इक होई॥

नायिकाभेद—रासोकार ने भी नायिकाभेद पर ध्यान दिया है; किंतु जरा भिन्न ढंग से। उन्हें भी नायिकाओं की किस्में कम आकृष्ट नहीं करतीं। हाँ यह अवश्य है कि वे नायिकाभेद की परवर्ती परिपाटी के अनुसार वर्णन न करके कामशास्त्र के भेदोपभेदों तक ही अपने को सीमित रखते हैं। पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी के लक्षण बताते हैं और उनके शारीरिक और मानसिक रूपों का चित्रण करते हैं। पुहकर अपने युग की सारी उपलब्धि

के साथ इनके ११५२ प्रकारों का जायजा लेते हैं किंतु चरित काव्य में नायिका भेद के वर्णन की इस प्रवृत्ति में भी वे रासोकार का अनुसरण ही कर रहे हैं, इतना तो कहा ही जा सकता है।

छंद—छंदों पर विचार करते हुए हम पहले ही दिखा चुके हैं कि पुहकर चंद और केशवदास की संयुक्त परंपरा की देन हैं। उन्होंने न केवल इन कवियों द्वारा प्रयुक्त छंदों को स्वीकार किया; बल्कि उन्हीं की तरह प्रसंग के भीतर छंद का नाम और कहीं कहीं लक्षण भी बताते चलते हैं। पुहकर द्वारा वर्णित अनेक छंद तो सिर्फ रासो में ही मिल सकते हैं। मध्यकाल में छंद शास्त्र की जटिलता का एक कारण यह भी है कि कवि पूर्वनामों से परिचित छंदों का अपने या अपनी मान्य परंपरा के अनुसार नया नामकरण कर देते हैं। ऐसे छंदों के लक्षण स्वतः निर्धारित करके उनके रूप आदि पर विचार करना ही समीचीन होगा।

रासो और रसरतन की इस साम्यमूलक प्रवृत्ति का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत करने का सिर्फ दो उद्देश्य था। पहला तो यह कि इस संक्षिप्त अध्ययन से भी इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि रासो और रसरतन की रचना की पृष्ठभूमि में समान पद्धतियाँ और प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही हैं। जो लोग रासो को एकदम जाली और परवर्ती मानते हैं उनके लिये रसरतन एक नई दिशा दिखाता है कि वे सोचें कि वर्तमान रासो के अनेक प्रसंग क्या रसरतन से प्रभावित हैं? रसरतन के कुछ हिस्से भी क्या वृहत्तर रासो में प्रक्षिप्त रूप से संमिलित तो नहीं कर लिए गए हैं? ये प्रश्न खासे दिलचस्प शोध के विषय हो सकते हैं। जो लोग रासो को जाली ग्रंथ नहीं मानते उनके लिये भी रसरतन एक बहुत बड़ा सहारा और प्रमाण सिद्ध होता है। रसरतन इस बात की पुष्टि करता है कि वर्तमान रूप में मिलनेवाला रासो भी कम से कम १६७३ विक्रम संवत् के पूर्व का है। उसके अनेक प्रक्षिप्त कहे जानेवाले अंशों की छाप पुहकर के रसरतन काव्य पर दिखाई पड़ती है। पुहकर स्वयं बड़े आदर के साथ चंद को वागेश्वरी का कृपापात्र महाकवि कहते और उसकी अभ्यर्थना करते हैं। इन दोनों पक्ष-विपक्ष के शोधकर्ताओं से भिन्न तटस्थ शोधकों के लिये भी रसरतन एक नई दिशा का संकेत करता है। प्राकृत पैंगलम् में विज्जाहर, जज्जल आदि कवियों से आरंभ होनेवाली पिंगल व्रज की चारण शैली की परंपरा का पुनर्परीक्षण होना चाहिए। प्राकृत पैंगलम् के

स्फुट छंद, रासो, रसरतन, क्वामखाँ रासो और वंशभास्कर जैसे परवर्ती युग के प्रतिनिधि चारण काव्यों को आधार बनाकर इनकी सभी प्रकार के साहित्यिक, भाषागत, शैली और पद्धति संबंधी, लक्षण-और रूढ़ि विषयक पक्षों को संतुलानात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। ताकि इस शैली के पूरे क्रमबद्ध साहित्य का सही और वास्तविक योगदान आँका जा सके।

रसरतन काव्य के महत्त्व के विषय में एक बार पुनः अंतिम रूप से आपका ध्यान आकृष्ट करके मैं यह भूमिका समाप्त करता हूँ। रसरतन सिर्फ चारण शैली के लिये ही नहीं बल्कि प्रेमाख्यानक, सूफी और हिंदू दोनों, रीतिकाल के रीति विषयक साहित्य, तथा मध्यकाल के सामाजिक परिवेश के अध्ययन की अत्यंत उर्वर भूमि है। छंद, अलंकार और लक्षण साहित्य के विकास में उसका योग नकारा नहीं जा सकता।

आचार्य शुक्ल ने रीतिकालीन आचार्यों की परंपरा पर विचार करते हुए लिखा है कि केशव ने काव्यांग निरूपण की उस दशा का परिचय कराया जो भामह और रुद्रट के समय में थी, उस उत्तर दशा का नहीं जो आनंद-वर्धनाचार्य, मम्मट और विश्वनाथ द्वारा विकसित हुई। केशव के बाद तत्काल रीति ग्रंथों की परंपरा चली नहीं। कवि प्रिया के पचास वर्ष के पीछे अखंड परंपरा का आरंभ हुआ। यह परंपरा केशव के दिखाए हुए पुराने आचार्यों (भामह, उद्भट आदि) के मार्ग पर न चल कर परवर्ती आचार्यों के परिष्कृत मार्ग पर चली जिसमें अलंकार और अलंकार्य का भेद हो गया था (हि० सा० इतिहास० पृष्ठ २३३)। आचार्य शुक्ल जी केशव के बाद पचास वर्ष का व्यवधान देखकर १७०० संवत् से चिंतामणि के साथ रीतिकाल की परंपरा का आरंभ मानते हैं। इस व्यवधान समय के ठीक बीच में यानी केशव की मृत्यु के एक साल पहले, १६७३ संवत् में पुहकर ने रसरतन लिखा और इसी के साथ रसवेलि। क्या पुहकर की ये कृतियाँ इस त्रुटित श्रृंखला को जोड़ने का कार्य नहीं कर रही हैं? क्या पुहकर को ही दूसरी परवर्ती आचार्यों की परंपरा (आनंदवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ) का पुरस्कर्ता नहीं कहा जा सकता? अथवा क्या पुहकर में पूर्ववर्ती और परवर्ती दोनों परंपराओं का संमिश्रण दिखाई पड़ता है? ये प्रश्न भी रसरतन और रसवेलि के साथ जुड़े हुए हैं और यह पुहकर का कम महत्वपूर्ण पक्ष नहीं है।

भाषा की दृष्टि से रसरतन उस युग का सर्वाधिक आश्चर्यजनक बहुविध रूपसंपन्न एक समृद्ध निकाय है। मैंने इसके शब्दरूपों और व्याकरणिक तत्त्वों की जो चिटें बनाई हैं, वे करीब १५ हजार पहुँचती हैं। मुझे आशा है कि मैं शीघ्र ही इसकी भाषा पर एक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत कर सकूँगा। इस भूमिका में मैंने यथासंभव इसके सभी पक्षों पर जो यत्किंचित् विचार दिए हैं, वे यदि पुहकर और उसके साहित्य के प्रति लोगों का ध्यानमात्र भी आकृष्ट कर सके, तो बहुत है। मैं इसे ही अपने श्रम की सफलता मानूँगा।

हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी १० अप्रैल १९६२

शिवप्रसाद सिंह

"कल्पित कथा लेकर प्रबंध काव्य रचने की प्रथा पुराने हिंदी कवियों में बहुत कम पाई जाती है। जायसी आदि सूफी शाखा के कवियों ने ही इस प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं, पर उनकी परिपाटी बिल्कुल भारतीय नहीं थी। इस दृष्टि से 'रसरतन' को हिन्दी-साहित्य में एक विशेष स्थान देना चाहिए"।

—आचार्य रामचंद्र शुक्ल

श्री गणेशाय नमः

श्री परमगुरुभे नमः । अथ रसरतन काव्य पौहकर कृत लिष्यते ॥

आदिखंड

(छप्पय)

अगुन रूप निर्गुन निरूप बहुगुन विस्तारन ।
अविनासी अविगति अनादि अव[1] अटक निबारन ॥
घट घट प्रगट प्रसिद्ध[2] गुप्त निरलेष निरंजन ।
तुम त्रिरूप[3] तुम त्रिगुन तुमहि त्रैपुर अनुरंजन ॥
तुमहि आदि तुम अंत हौ तुमहि मध्य मायाकरन ।
यह चरित्र नाथ कहँ लगि कहौं (सो) नारायन[4] असरन सरन ॥ १ ॥

घोष तरुन श्रृंगार मात कहना मुनि पंडित ।
आपु हास रस जुक्त मान मघवा बल षंडित[5] ॥
बाल वैस अदभुत चरित्र बृजवासिनि जान्यौ ।
मेघ वीर वलिभद्र रुद्र सुरपति भय मान्यौ ॥
अति प्रताप वीभत्स्य हुव गौव गोप संतः करन ।
पौहकर प्रताप तिहु पुर प्रगट[6] सो नवरस बस गिरधर सरन ॥ २ ॥

१—ब. अथ, स. अय । २—ब. पृसिध्यि । ३—ब. त्ररूप । ४—ब, स. सुनाराइनी । ५—स, द. खंडित । ६—ब. प्रघट ।

सुष समुद्र, सब जगत भक्त वत्सल प्रतिपालन।
धरै गवरि[1] अरधंग प्रेम विस्तारन कारन॥
भूषन जासु फनिंद्र माल कप्पाल विराजै।
तीन नैन अरि मैन रोरु सुमिरत तिहि[2] भाजै॥
नर नाग देव सब सरन जिहि कवि पौहकर पुनि तिहि सरन।
चित्तय चकोर चिंतय चमी सो रुद्र चरन मंगल करन॥ ३॥

तमी तिमिर अग्यान अंध हिय नैन न सुझिझय।
अच्छर गति रस भेद काव्य गुन अंस न बुझिझय॥
ब्रह्म सुता जाभांन[3] कृपा कुल किरिनि प्रकासी।
अंधकाल हुव दूर जोति जगमध्य प्रभासी[4]॥
पौहकर मुष पौहप[5] जिम वरषि सब महिमंडल मोदलिय।
वानी विसाल गुंजत सरस सु[6] छप्पय छंद प्रगट्ट[7] किय॥ ४॥

(दोहा)

रस वर्नन आरंभियौ छपछंद[8] कहि इहि हेत।
कुसुम काव्य सिर बैठिके अलि परिमल रस लेत॥ ५॥

(छंद सोमक्रांति)

जा कुंदेन्दुतुषारं हारं। जा सभ्रोविस्थाः विस्तारं॥
जा वीनादंडी मंडीयं। सा स्यां पातोयं चंडीयं॥ ६॥
जा गंगा तारंगीषानी। सा स्यां पातोयं ब्रह्मानी॥
जा ब्रह्मा ईसो गोविंदं। जा सूरो देवानं इंदं॥ ७॥[10]
जा वानी वागेसं ईसं। जा बानी आदेषं[11] दीसं॥
जा वीना वानोदा दंडी। सा वानी पादोयं चंडी॥ ८॥
जा देवी आरूढं हंसं। जा देवी विस्वो अवतंसं॥
जा सेवं देवं सर्वानी। सा स्यां पातोयं कल्यानी॥ ९॥

१—स, द. गौरि। २—स, द. तेहि। ३—स, द. जामान। ४—स, द. अभासी। ५—स, द. पुष्प। ६—ब. सो। ७—ब. प्रघट्ट। ८—स. द छपदु। ९—ब. सभ्यापातोयं। १०—स. और द. प्रतियों में छंद ७ में ऊपर नीचे भी अर्धालियाँ बदलकर रखी हुई हैं। ११—स. द. आदेखं।

(दोहा)

सुम्रत बेद अरु व्याकरन करन सेव सो आहि ।
ब्रह्म सुता नाराइनी देत बुद्धि[1] बल ताहि ॥१०॥

(छंद घाटक सारदूल)

बंदे संकर नंद सिध्यिसुषी सिध्यिदं गवरी सुतं ।
बुध्यिदाया सुदाया ईस तनये सर्वस्व दानं वरं[2] ॥
काव्ये मंगल उत्सवे प्रथम तुव नाम उच्चारनं ।
वानी उक्त कुकाव्य[3] छंद निर्विघ्न निर्वाहनं ॥११॥

(छप्पय)

प्रथम सेव अरु व्यासुदेव सुषदेवहँ पायौ ।
वालमीक श्रीहर्ष कालिदासहँ गुन गायौ ॥
माघ माघ दिन जेमि वांन जयदेव सुदंडिय ।
भानदत्त[4] उदयेन चंद वरदाइक चंडिय ॥
ये काव्य सरस विद्या निपुन वाकवानि कंठह धरन ।
कविराज सकल गुन गन तिलक सुकवि[5] पौहकर बंदत चरन ॥१२॥

(दोहा)

कविन सबन कौं सीसि नतु, पौहकर करत प्रनामु ।
जो कीनै करता प्रगट, प्रगट करन अपनामु[6] ॥१३॥
पुहकर सब तैं कवि बड़े, संक करो जन कोइ ।
को जानै करतार कौ, जौ कलि काव्य न होइ ॥१४॥
चतुरानन है आदि कवि, गावत हैं जसु जाहि ।
कविता निश्चै जानियौ, और न भावै ताहि ॥१५॥
ब्रह्म रूप सिरजै जगत, विष्णु रूप प्रतिपाल ।
काम रूप क्रीड़ा करी, रुद्र रूप महा काल[7] ॥१६॥
काम रूप क्रीड़ा करै, ते कलि कथा अनेक ।
मन भोरो थोरी सुमति[8], पौहकर वरनत एक ॥१७॥

१—ब. वुध्य । २—स. द. सर्वज्ञदानिं वरं । ३—कुकाव्यि । ४—स. द मानदत्त । ५—ब. सो कवि । ६—ब. प्रघट प्रवट करन अपुनाम । ७—स. द वृह्मरूप संहार । ८—स. द. मन मोरे थोरी सुमरति ।

गुन गुन मै अच्छर मुकत, गूंथी छंद प्रकार।
कोविद उर श्रृंगार हित, किय कवि पुहकर हार ॥१८॥
वानी वात सनेह दै, गुन गाहकन समीप।
मदन अग्नि उद्दीप करि, किय कवि पुहकर दीप ॥१९॥

(छप्पय)

गुन समुद्र मंथान ग्यान मंथानिय ढुंढिय।
नेतु हेतु गहि हाथ रतन नवरसमथ कढ्ढिय ॥
बागेसुर परसाद प्रगट क्रम क्रम सब दिष्षह।
अलप बुध्यि कह हेत धीर मुहि[1] दोस न दिज्जह ॥
गुरु नाम सुमर पौहकर सुकवि गरूव ग्रंथ आरंभ किय।
रस रचित कथा रसिकनि रुचित रुचिर नाम रसरतन दिय ॥२०॥

(दोहा)

वहि समुद्र चौदा[2] रतन, मथे असुर सुर सैन।
इहि समुद्र नवरस रतन, नाम धरौं कवि तैन ॥२१॥
जह लगि बुध्यि प्रकास किय, तहँ लग वरनन कीन।
कवि पुहकर सुष काव्य रस, सुनत होत मन लीन ॥२२॥
नव रस वसु रस नायिका, नवसत सुषद सिंगार।
सकल कथा क्रम प्रगटिहै[3], मन आकरषन हार ॥२३॥
वानी निरस जो जुक्ति विनु, रहत कहत कवि छंद।
पै न हरे मन रसिक कौ, ज्यौं रजनी विनु इंदु ॥२४॥
पुहकर सकल कवित्त करि, प्रगट अर्थ गुन गूढ़।
उक्ति विवेक बिसेष धरि, गूढ़ करै ते मूढ़ ॥२५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पौहकर विरचितेयं
आदि षंडे प्रथमो अध्यायः ॥ १ ॥

अथ छत्रसिंहासन वर्णन

(दोहा)

छत्र सिंहासन पौहमिपति, धर्म धुरंधर धीर।
नूरदीन आदिल वली, सबल साहि जँहगीर ॥२६॥

१—स. द. मोंहिं। २—स. द. चौदह। ३—ब. प्रघटिहै।

(चौपही)

नूरदीन गाजी सक वंदी । जिहि कै राज कथा रस छंदी[1] ॥
जुग जुग तास बरष धर राजू । तिहि सन कियौ कथा कर साजू ॥२७॥

एक सहस ऊपर पैंतीसा । सन रसूल सों तुरकन दीसा ॥
अग्नि सिंधु रस इंदु प्रमाना । सो विक्रम संवत् ठहराना ॥२८॥

कुल चकत्त चक्कवै सुजाना । जिहि वस हिंदुवान षुरसाना ॥
अति प्रताप वरनन नहि आवै । सहसफनी पुनि अंत न पावै ॥२९॥

(दोहा)

सप्त द्वीप नव षंड मैं, चारि चक्र जिहि आन ।
अदल एक छाया अतल, मानौ तान वितान ॥३०॥

(छप्पय)

तिमिर वंस अवतंस साहि अकबर कुल नंदन ।
जगत गुरू जगपाल जगत नाइक जगवंदन ॥
सहिनसाह आलमपनाह नरनाह धुरंधर ।
तेग वृत्ति दिल्ली नरेश त्रिय चारि जासु घर ॥
अर्धंग अंग पंचम घरनि तरनि तेज महि चक्कवै ।
नर राज मनहुँ पंचम सहित सुपंचह मिलि महि भुग्गवै ॥३१॥

करन वैन वलि दान ग्यांन गोरिक्ख भनिज्जै ।
रूप अंग सौंदुर्ज मैन मूरत्ति गनिज्जै ॥
वाहुबीर पर पीर हरन सव वंधह विक्रम ।
अति अपार नहि पार गरुव गंभीर उदधि सम ॥
कल्य के साहि अकबर सुतन पौहकर परम प्रताप बल ।
कल्पतर छाँह सीतल सघन फरौ पुहमि पर कामफल ॥३२॥

पंच दीह कच नैन वाँह वर जंघ वषानिय ।
वहुर[2] केस कटि अधर उदर सूंछम तुच जानिय ॥
अरुन सप्त द्रग ओंठ तालु नष जिभ्य चरन कर ।
कंध भाल मन पलक ग्रीव नासा उन्नत वर ॥

१—स. द. वन्दी । २—ब. वौहर ।

उर श्रवन पीठ विश्रोति लघु दंति पंति इंद्री सुगनि ।
गंभीर नाभि सुर चित्त मति ये लच्छन वत्तीस भनि ॥३३॥

(दोहा)

अंग अंग लच्छन वसहिं, जे वरनौं वत्तीस ।
दल गर्जन दुर्जन दलन, दलपति पति दिल्लीस ॥३४॥

(छप्पय)

सैत्र भाग मनि भाल लाज लोइनि महँ दिष्षिय ।
क्रोध[1] वसै भुव मध्यि अमृत रसना रस पिष्षिय ॥
वीर वाहु वल वसै विजै द्दग द्रिष्टि विराजै ।
वसै दान कर कमल वचन चातुरि अति राजै ॥
गहि चरन सरन दुरजन वसहिं तन सरूप रतिपति लसहि ।
छत्र पती साहि जहगीर कै सु नारायनि हिरदैं वसहि ॥३५॥

(दोहा)

दल वर्नन कहँ लगि करौं पुहकर अदल अपार ।
प्रियव्रत पृथु सुपुरूरवा[2] विसरि गये तिहि वार ॥३६॥

(छप्पय)

बीस लाष तुष्षार सहस सत्तरि सुंडाहल ।
पंच लाष[3] रथ सुरथ सज्जि विवि कोटि पयहल ॥
तीन लाष निस्सान मेघ भादौ जिमि गज्जहिं[4] ।
अति असंष सेना समूह उडगन गन लज्जहिं ॥
चहुँ ओर अष्ट जोजन कटक संकि भान धसमस धरनि ।
दिग्पाल हलहिं व्याकुल कमठ गगन रैनि मुंदी[5] तरनि[6] ॥३७॥

१—अ. प्रति यहीं से आरंभ होती है, इसके पहले के पत्र त्रुटित हैं ।

२—ब. सुरपुरवा, स. द. सुर पुरवा । ३—स. द. लच्छ । ४—अ. प्रति में इसे छप्पय की दूसरी पंक्ति माना है । ५—अ. मुंदिय । ६—अ. प्रति में इसे छंद संख्या ३८ बताया गया है ।

(दंडक[1])

अंबर के तारे अरु पारथ के बान भारे
सुमन कली जो गनै फूली बनराइ की।
गंगा जू की रेनुका अनगन अनंत अति
कैसे जल बुंद गनै वरषा[2] सुभाइ की॥
अविरल बानी गनै पुहुकर कवित्त[3] कौन
मन के मनोरथ अलोल चित्त चाइ की।
सहस वदन चतुरानन सकै न गनि[4]
फौजें जँहगीर जू की मौजें दरियाइ की॥३८॥

(चौपई)

दुरजन देस रह्यो नहिं कोई। देस पती मिल किंकिर होई॥
उत्तर देस अठारह[5] षानै। ते नृप दंड[6] सदा सिर मानै॥३९॥
पव्वय[7] चूरि करहिं मयदाना। वज्र गहै जनु इंद्र रिसाना॥
पूरब पच्छिम दच्छिन लीनी। चार दिसा हद सागर कीनी॥४०॥
सैल सिकार जो करै पयाना। संकत लंक डरै षुरसाना॥
कंपत मेर धसक्कत ब्याले। नीर उठै षुर[8] तार पताले॥४१॥

(छप्पय)

पय पताल उच्छलिय रैनि अंबर ह्वै[9] हच्चिय।
दिग दिग्गज थरहरिय देषि दिनकर रथ खिच्चिय।
फन फनिन्द फरहरिय सुस्स साइर जल सुच्चिय[10]॥
दंति पंति गज[11] सूर[12] चूर पव्वय पिसान किय।
चढ़ि चलत साहि जहगीर दल लंक देस षलभल परिय॥
आतंक संक जिय जानिकै अरधंग अंक संकर करिय॥४२॥

१—अ. प्रति में इसे सवैया कहा गया है। २—ब. स. द. वरख। ३—ब. स. द. कवि। ४—ब. सकै गनी, स. द. न सकै गनि। ५—ब. अठारा। ६—ब. स. द. निमि दंड। ७—अ. मववा। ८—स. द. खुट। ९—अ. यवर हुय। १०—ब. प्रति में दूसरी और तीसरी पंक्तियाँ मिलकर एक हो गई हैं, एक पंक्ति गायब है। ११—अ. पग। १२—अ. स. द. पूरि।

लंक संक आतंक अलक निसि पलक न लग्गै[1] ।
तज विलास कविलास[2] त्रास अमरावति भग्गै ॥
रौम रौम वपु उठि मसाम[3] पति धाम धरक्कै ।
वदकसान हिंदुवान तुरक षुरसान[4] षरक्कै ॥
करनाट लाट केरल[5] परसि[6] सिँहल देस सकुचत रहै ।
रवनी रसाल[7] सुत पेस करि हिंदुवान चरनन गहै ॥४३॥

(दंडक)

साह जहगीर दल प्रबल पयान कीनै
कंपौ आसमानु लंकि सविता लुकाने हैं ।
पुहुकर कहै जोर नौवति निसान घोर
दिग्गज दिगंत [8]मद मूकि[9] मुरिझाने हैं ॥
टूटि गये गहन सहन सम भूमि भई
लचक्यौ सहस सीस सेस अकुलाने हैं ।
धसके पहार भार प्रगट्यौ पहार जल
डोंगरनि डौंडा[10] चले समद सुषाने हैं ॥४४॥

(दोहा)

दल वरनन वहु विधि कियौ अदल न वरन्यो जाइ ।
गैया नैया छीर सों राषे संग लगाइ ॥४५॥
मूषक अरु मंजारि मिलि संग साहु वसै चोर ।
विक वकरी इक ठौं करी, कोइ करै नहिं जोर ॥४६॥
वीर अभय[11] पंथी चलै, रवि न सतावै ताहि ।
प्रगट्यौ परम पुनीत कलि, जहाँगीर पति साह ॥४७॥
मै न कछू कवि विधि कही साचि कही सब बात ।
सरल सिंह निर्विस उरग[12] साहि तेज विख्यात ॥४८॥

१—अ. लग्गिय । २—ब. निविलास, स. द. विविलास । ३—अ. स. द. ग सांम । ४—अ. दहकंत खरक, ब. हिन्दु तुरक । ५—ब. केरव, स. द. केरनि । ६—ब. थरसि, अ. नयर । ७—अ. वरनीर । ८—ब. स. द. सामद । ९—ब. स. द. सूकि । १०—अ. डौंगा । ११—ब. स. द. वैर भये । १२—ब. स. द. उर साहब ते वजिखात ।

ज्यों पयोधि मौजै करै, अरब परब दिन देइ।
छाड्यौ डंड जगाति कौ, धर्म अंस रस लेइ ॥४६॥

चित्रक षग[1] मृगराज गज, सु[2] सिंचान वहु भाँति।
आम षास दरबार मै, षरे ते पातिनि पाँति ॥२०॥

(दंडक)

विप्र से न वरन करन से न दानी जग[3]
रुद्र से न देवता समुद्र नाही छीर से।
तूल से न कोंवल कमल से न विवि फूल
हीरा से न कठिन अमल नाही नीर से॥
पुहुकर से न तीरथ समीर से न वलिवंत
पुत्र से न दाहक[4] (जु) पीरक न बीर से।
पीछे ही न भये अब आगे ह्वैहैं न सुनै
कहुँ परम पुनीत पति साहि जँहगीर से ॥२१॥

(छप्पय)

जब लग ईस विरंचि लसति लछमी नाराइन।
जब लगि नीर समीर सूर ससि हरि ताराइन॥
जब लगि अचल सुमेर फनिंद फन मेदिनि छाजै[5]।
नूरदीन जहँगीर[6] नाह सिर छत्र विराजै॥
सहस जीभ फनि मनि चवै पुहुकर पढ़त असीस थिर।
छत्रपती साहि अकबर सुतन पातिसाह जँहगीर चिर ॥२२॥

(दोहा)

सुत सुपुत्र निर्मल नवल, सूर षड्ग अरु दान।
उदित हाथ पयोधि ज्यौं,[7] साहिव साहि जहाँन ॥२३॥

१—अ. मृग। २—ब. सोड। ३—ब. स. द. वारन। ४—अ. दाहक। ५—ब. स. द. मेरु सुमेरु फँनिद मेदिनि पर छाजै। ६—अ. नूरदीन गाजी नवल। ७—ब. निधि।

(दंडक)

जैसे भयो गरूव गनेस गौरिनाथ सुत
जैसें ससि सोहियतु सागर सुधीर कै।
पंडव प्रवाल जैसे पारथ प्रताप पूरे
जैसे हनिवंत वलिवंत भौ समीर कै॥
कहै कवि पुहुकर कस्सिप कैं कुल भानु
अचिरजु कौन रघुवंस रघुवीर कै।
अकबर साहि जू के साहि जहाँगीर जैसे
जैसे साहिजादौ साहिजहाँ जँहगीर कै[1] ॥५४॥

(दोहा)

प्रजा पुन्य[2] प्रगट्यौ पुहमि छहु दरसन[3] की लाज।
पेषत पुत्र पयोत्र सुष करौ कोटि जुग राज ॥५५॥

इति श्री रसरतव काव्ये कविपुहकर विरंचितेयं आदि षंडे
छत्र सिंहासन वर्ननं नाम दुतीयौ अध्यायः ॥२॥

अथ कवि कुल वर्णन

(दोहा)

गंग जमुन अंतर उभै, रम्य देस पंचाल।
सोंम नाम तीरथ जहाँ, ता मधि अमर मराल ॥५६॥

(चौपही)

तीरथ गुप्त न जानै कोई। तिहि संजोग कथा कर होई॥
पच्छिम दिस राजम भुवपाला। विगरौ रोग अंग तिहि काला ॥५७॥
बहुत[4] जतनु स्वारथ नहि देषा। धरौ मरनु मन माह विसेषा॥
राज अभार पुत्र कौं आयौ। आपु पंथ कासी चितु लायौ ॥५८॥
कियौ आय तिहि ठाँव मिलाना। जिहि ठाँ अलप सरोवर जाना॥
तृषावंत राजा जव भयौ। आतुर निकट सरोवर गयौ ॥५९॥

१—ब. साहि जँहगीर कै; स. द. जैसे साहजहाँ साह जहाँगीर कै।
२—ब. स. द. जग जान्यो। ३—ब. छहु रसन। ४—ब. वौहत।

परसत ही कर नीर सनेही । गयौ रोग भइ कंचन देही ॥
तव राजा अचरज मन कीनौ । कर मज्जन सरवर चितु दीनौ ॥६०॥
विसमित सकल संग के लोगा । पूरन पुन्य भयौ संजोगा ॥
चित की चिंत रोग भयौ दूरी । सकल आस उर[1] अंतर पूरी ॥६१॥
जव विश्राम नींद निसि कीनौ । सोम्रनाथ सपनंतर दीनौ ॥
तातै सपनौ मन कौ गयौ । नीकैं विधि सचु[2] सौं नृप भयौ ॥६२॥

(दोहा)

काम मोच्छ कौ दान जग, तीरथ पति यह आहि ।
कासी सम यहु ठौर है, अब जनि कासी जाहि ॥६३॥

(चौपही)

प्रगट पुरुष सपनौ दिषरायौ । अरु फल तुरत ततच्छन[3] पायौ ॥
भूमि गाँव तहाँ नगर वसायौ । जनु विरंचि रचि आपु वनायौ ॥६४॥
चार वरन तहाँ बसैं सुधर्मी । पंडित विप्र वेद षटकर्मी ॥
कूप अनूप वाग वहु साजे । प्रजा महल वहु भाँति विराजे ॥६५॥

(दोहा)

चहुँ दिसि पारि वनाइ कै, हरि मंदिर तिहिं ठाउँ ।
नगर मनोरथ थापि कै, नाम धरौ सुइगाउँ ॥६६॥

(चौपही)

असि वल राज आहि कलि माहीं । पुहुमी अटल नृपति कोउ नाहीं ॥
चाहुवान संभरी[4] नरेसा । दलवल जीत लियौ सो देसा ॥६७॥
तिहि कुल कलस छत्र छिति छाजा । भये प्रताप रूद्र वड़ राजा ॥
बहुत देस करि वर कर लीनै । नगर निकट प्रताप पुर कीनै ॥६८॥
परम रम्य सो पुर सुषदाई । सुभ नच्छत्र सौं नींव दिवाई ॥
संम्हर धनी कियौ तहँ राजू । नेगी संग संम्हारहिं काजू ॥६९॥

(दोहा)

देस राज कायस्थ कुल श्रीनिवास श्रीवास ।
तिनि गृह कियौ प्रताप पुर नृप हित हृदै हुलास ॥७०॥

१—ब. वर । २—अ. में निचली अर्धाली नहीं है; स. द. शुचि ।
३—स. द. तुर्त तत्त्छ्ण । ४—अ. संभलिय ।

तासु तनय विवि पुत्र हुव, सुषनिधि आनद कंद ।
धर्मदास निर्मल नवल, मनौ सूर अरु चंद ॥७१॥

षरे जाति षोटे नहीं, तिन मह षोट न होइ ।
थापे श्री रघुनाथ के जानतु हैं सब कोइ ॥७२॥

धर्मदास संतान बहु सुपुरुष सकल वषानि ।
निरभै चंद कुवेर जहां जनु कुवेर कलिदानि ॥७३॥

तासु पुत्र वनसिंह हुव परम पुरुष विष्यात ।
कुल दीपक कलि मे प्रगट जनु समुद्र दधि जात ॥७४॥

चार पुत्र वन सिंह हुव, देवी दुर्ग निरंद ।
केसवदास प्रसिध्य जग, प्रेम करन कलि इंद ॥७५॥

दुर्गदास तन पुत्र विवि, काइथ कुल अवतंस ।
सुजसु साहि दरवार में बेनिदास हरिवंस ॥७६॥

(छप्पय)

अति प्रसिध्य समहूर साहि अकवर दरवारह ।
जसु प्रकास उजियार वार पारह उठि[1] पारह ॥
ब्रह्म भक्त परवारपाल हिरदै हरि ध्यावहिं ।
चित उदार मति धीर जासु गुनियनि गुन गावहिं ॥
कल वेनी दुर्गादास हुव वहु कुटंब संधीर सुव ।
जानत जहान जसु जगत में सु मानहु मदन मयंक भुव ॥७७॥

(दोहा)

वैन तनै परतापमल मोहन महि जसु पूरि ।
एक पुत्र हरिवंस के स्याम सजीवनि मूरि ॥७८॥

बाला पन तै बहुत बिधि जसु लिय मोहन दास ।
पिता सरस सत पुत्र हुव किय परभूमि निवास ॥७९॥

आदि अंत तै आउ भरि विलसौ द्रव्यि[2] अनंत ।
जिहि प्रसाद बहु बिप्र कुल राँक[3] भये धनिवंत ॥८०॥

१—अ. उहि । २—अ. दर्वि, स. द. द्रव्य । ३—ब. रंक ।

(छप्पय)

बहुत काल[1] संतान हेत गौरीपति ध्यायौ।
करि मन वच क्रम सेव देव संकर वरु पायौ॥
सप्त पुत्र उर धरिय विदुष बुधिवंत विनानिय।
तहाँ जेष्ट पुहुकर प्रसिध्यि सरसुति मुष बानिय॥
सुंदर सुबुद्धि राघव रतन मुरली धर संकर सरस।
मकरंद राइ राजत सुभट[2] सकत सिंह पारस परस॥८१॥
वाल केलि रस षेल माँझ वसु वरस[4] वितीती[5]।
पितु प्रताप वहुलाड़ कोड़[6] आँनद मँह वीती॥
नवम वरष जतनाथ[7] थापि पूजा करवाई।
राषि द्वार आषून पिता पारसी[8] पढ़ाई॥
पायौ प्रसाद सरस्वति वचन[9] वहु विलास कंठह धरिय।
भाषा प्रवंध्य उत्ताल गति सो वहु विधान गुन विस्तरिय॥८२॥
प्रथम वृत्ति काइस्थ लिषन लेषन अवगाहन।
विषम करम नृप सेव तुरत आयसु निरवाहन॥
द्वादस विधि अवदान सुनत नवगुन अवराधन।
छंद वंद पिंगल प्रवंध वहु रूप विचारन॥
पारसीय काव्य पुनि सैर विधि नजमन सर अवियात कहिय।
परतिच्छ देवी सारदा भई उर निवास मुष वसि रहिय॥८३॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितैयं आदिषंडे कवि
वंस वर्ननों नाम तृतीयो अध्यायः॥ ३॥

अथ कथा प्रसंग वर्णन

(दोहा)

उभै अंग कीनौ प्रघट पुहुकर अधिपति काम।
विप्रलंभ संभोग तहँ पायौ द्वै विधि नाम॥८४॥
प्रथम वरन सिंगार रस प्रचलित[9] कथा प्रसंग।
सोभित नग[10] अच्छर जटित भूषन अंग अनंग[11]॥८५॥

१—ब. स. द. सकल। २—अ. सरस। ३—स. द. सिंधु। ४—ब. स.। मास वरस। ५—स. द. मास वसु वरस। ६—ब. स. द. खोड़। ७—अ. गनपति। ८—स. द. फारसी। ९—ब. स. द. वह; प्रचलत। १०—ब. नाग। ११—अ. भूषन भूपित अंग।

(चौपही)

पुहकर सुकवि चित्त यह आई। वरन कहौं कछु कथा सुहाई॥
मन दै श्रवन सुनो सुर[1] ग्यानी। इहि विधि कहौ जो[2] प्रेम कहानी॥८६॥
नव रस भेद आहि इहि माहीं। बहुत अर्थ कछु थोरौ नाहीं॥
यह तौ समुद गहिर गंभीरू। लेहु बुध्यि भाजन भरि नीरू॥८७॥
पहिलै दंत कथा हम सुनी। तिहि पर छंद बंद हम गुनी॥
श्रवनन सुनी कथा कुछ[3] थोरी। कछुवक आपु उकति तैं जोरी॥८८॥
कहूँ वीर वीभस्थ वषांना। रूद्र भयानक अद्भुत आना॥
वरनौ उभै ओर की प्रीती। अरु सिंगार विरह की रीती॥८९॥
विप्रलंभु संभोग सिंगारा। वरनौ उभै ओर विस्तारा॥
कहूँ कहूँ करुना रस पावा। कहुँ विचार परमारथ गावा[4]॥९०॥
हास विलास वरन बहु भाँती। सांति सुनै सोई मन साँती॥
है सब कथा अनुक्रम न्यारे। लेहि बूझ मन बूझन हारे॥९१॥
कथा प्रसंग कीन गुन डोरा। नव रस रतन हार हिय जोरा।
सुनहि सुजान काम मनु ल्यावै। जिमि सुख लहै रौंक धन पावै॥९२॥
संजोगी विरही मन भावै। छत्री सुनहि मेच्छि करु लावै॥
जो मन समुझ सुनै वैरागी। तिहि छिन होय विषै रस त्यागी॥९३॥
सुनहु सकल कोविद गुनवंता। देषो बूझि आद अरु अंता॥
कहुँ जुग उकति न जाति वषानी। कहूँ सरल विधि कही कहानी॥९४॥
कहूँ सरस नीरस कहुँ आही। सुनि कर जिनि विसरावौ ताही॥
अगुरी पंच आहि कर माहीं। ते पुनि पंच बराबर नाहीं॥९५॥
छंद एकु वरनौ कवि कोई। अच्छिर केऊ एकठौं होई॥
सोई विचार[5] मन माँह विचारी। भरौ न दूषन लेहु समारी॥९६॥

(दोहा)

दाता ग्याता बुध्यि के वकता कवि बहु भाइ।
पुहकर विनती मान मन विसरौ[6] लेहु बनाइ॥९७॥

१—अ. सुग्यानी। २—अ. वरनौं। ३—ब. स. द. हम। ४—ब. प्रति में इस छंद के पहले ८९ वें छंद की पुनरुक्ति है, इस कारण छंद संख्या गलत हो गई है। ५—ब. स. द. वीर। ६—स. द. विसयो।

मंगल विधि वरनन कियौ ग्रंथ निवाहन चाहि[1] ॥
जो कछु कथा है वरनिबै अब पुनि वरनौं ताहि ॥९८॥

(छप्पय)

आदि स्वप्न अरु चित्र विजै अच्छरि चंपावति ।
वहुर स्वयंवर षंड सूर वरनौं रंभावति ॥
जुध्य षंड विस्तरौं जहाँ दुहुँ दिसि दल सज्जिय ।
भरौ पात्र जोगिनी सारु[2] छत्री कर वज्जिय ॥
आनंद कंद वैराग रह तात मात बहु मोद मन ।
नव षंड प्रगट नव षंड मह सु यह प्रसिध्य नव रसरतन ॥९९॥

(दोहा)

गन नाइक गनपति गुरू ससि नाइक उजियार ।
दिन नाइक रवि जानिये रस नाइक सिंगार ॥१००॥
प्रथम वरन सिंगार रस प्रचलित कथा प्रसंग ।
सोभित नग अच्छिर जटित नूषन भूषित अंग ॥१०१॥
नृप तनया रंभावती सूर पृथीपति पूत ।
वरनौं तिनि कौ प्रेम रस मदन भयौ तहँ दूत ॥१०२॥
प्राची परम पुनीत अति जिहि दिसि उदित सूर ।
उत्तिम चार दिसान मैं पूरब पुन्य अभूर ॥१०३॥

(चौपही)

सोम वंस सोमेसुर राजा । वैरागर अधिपति छिति छाजा ॥
दिसि पूरव प्रतिपालनु करई । धर्म राज कलमष कलि हरई ॥१०४॥
उपजहिं जहाँ अमोलक हीरा । सुंडाहल उपजहिं वल वीरा ॥
उदधि सुता जिहिं देस निवासा । हय गय दल अगनित तिहिं पासा ॥१०५॥
एकहु[4] अंग नृपति नहिं हीना । सुत अभिलाष रहै मन दीना ॥
ताराइन तरुनी वहु दारा । रूप चंद आपु उजियारा ॥१०६॥

१—ब. स. द. ताहि २—अ. मसान । ३—यह दोहा ८५ वें छंद का अविकल पुनर्लेख है । यह सभी प्रतियों में प्राप्त होता है । ४—ब. स. द. एकहिं ।

त्रियनि सहित कासी मह आयौ। बिस्वनाथ चरननि चितु लायौ ॥
चिंतामनि पंडित गुरू कीनौ। तिहि उपदेस मंत्र करि दीनौ ॥१०७॥

(दोहा)

मन बच क्रम करि कामना करौ संभु की सेव।
मन इच्छा सब देहिंगे संपति संचति देव ॥१०८॥

दंपति की सेवा करौ दंपति मिलि बहु जाम।
मुक्ति पदारथ पाइहौ अरथ धरम अरु काम ॥१०९॥

चिंतामनि उपदेस ते संकर सेवन लाग।
कर जोरे विनती करै अस्तुत कर अनुराग[1] ॥११०॥

(छंद तोटक)

त्रिपुरारि त्रिलोचन सूलधरं। करुना करि संकर कामहरं ॥
अर्धंग विराजत संग प्रिया। जनु पुहुकर हार हुलास हिया ॥१११॥

उतमंग सुगंग तरंग लसी। घन मैं जनु दामिन रेष बसी ॥
विधु वाल सुभाल[2] तिलक्क दियं। जनु कंचन हीर जराव कियं ॥११२॥

गल नील हलाहल रेष परी। मनि स्याम मनौ सिव कंठ धरी ॥
उर भूषन माल कपाल कियं। तन सोभित सेत विभूत श्रियं ॥११३॥

मृगछाल सु आसन वास वसै। कर डौरूँ वड़ाक पिनाक लसै ॥
जिहि सेवत गंध्रप देव दिवं। अविनासिय आदि अनादि सिवं ॥११४॥

सनकादिक नारद ध्यान धरैं। चतुरानन वासु अवासु करैं ॥
तुव नासु नमो सिवनाथ[3] हरं। मिलि माँगिय भूपति काम वरं ॥११५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयम् आदि षंडे
सिव अर्चनो नाम चतुर्थो अध्यायः ॥ ४ ॥

(दोहा)

संकर सेव प्रसन्नि करि जाँच्यो सुष संतान।
पट राँग्यनि कमलावती उपज्यौ उर आधान ॥११६॥

१—स. द. प्रतियों में छन्द संख्या १०९ और ११० के दोहे नहीं हैं।
२—ब. स. द. सुवाल। ३—ब. स. द. नवनाथ।

मास मास दस मास क्रम बढी नृपति मन आस।
हिदे कमल प्रफुलित भयौ कीनौ सूर प्रकास ॥११७॥
भादौ पूरव पच्छ में सुभ नछत्र रविवार।
तिथि मावस पावस समै भयौ कुँवर अवतार ॥११८॥

(चौपही)

सोमेसुर पूजी मन आसा। सोम वंश सूरज परगासा ॥
कुहू रैन, अनगन अँधियारी। प्रगटित पौहमि सूर उजियारी ॥११९॥
जननी जन्म सुफल कर जाना। जात कर्म नृप कीन विधाना ॥
सहस धेनु कंचन बहु हीरा। अगनित दर्ब दियौ नृप धीरा ॥१२०॥
पंच शब्द बाजहिं दरबारा। षट दरसन आये तिहि वारा ॥
सब कौ हीर चीर नृप दीनौ। जाचक जगत अजाचक कीनौ[1] ॥१२१॥
बैठे पंडित जोतिष ग्याना। जन्म पत्र फल कहैं प्रमाना ॥
तन रवि बुध धन भवन वषानौ। सहज भवन सनि राहु समानौ[2] ॥१२२॥
बुद्धि भुवन सुर गुरू ठहरायो। चौथे शुक्र उच्च फल पायो ॥
कर्म भवन पृथ्वी सुत देषा। कुल दीपक उनि गन्यो बिसेषा ॥१२३॥

(दोहा)

लाभ भवन दुजराज गृह नवम केत नव जोग।
पंडित गुन फल लेषहीं, भोगी सब रस भोग[3] ॥१२४॥

१—१२१वें छन्द के ब. प्रति के लिपिकार ने एक दोहा संमिलित किया है जो अन्य प्रतियों में प्राप्त नहीं होता। लिपिकार ने 'षट्दरसन' की व्याख्या करने के लिये यह दोहा अपनी ओर से मिला दिया है। या तो यह दोहा लिपिकार वलभद्र कवि का है, या किसी दूसरे का। नीचे दोहा उद्धृत किया जाता है।

"षट् दरसन तिन्ह के नामा :

जोगी जंगम सेवड़ा सन्यासी दरवेस
विप्र अनेकन देस के जिनके तप निस्सेस"

२—ब. स. द. बखानौ। ३—ब. प्रति में लिपिकर्ता ने लिखा है कि 'चौथो स्थान में शुक्र परेउ उच्च को इस्सै स्त्री को विरह होत भयो और स्त्री को परम प्रिय को। ब. प्रति में किसी ने इसी प्रसंग में एक नया पाठ जोड़ रखा है। इस पत्र का कागज, स्याही, लेखनशैली आदि सभी कुछ भिन्न है किंतु

(चौपही)

लगन जोग दिज करहिं विचारा। बहुत उच्च फल आहिं अपारा ॥
चक्रवती पोहमी पति होई। कुल मैं भयौ न ऐसो कोई ॥१२५॥
सुंदर कुँवर[1] होइ गुनवंता। कुल कौ कलस आदि अरु अंता ॥
प्रीत जोग उपजौ इहि माही। सो तौ बनत दुराये नाही ॥१२६॥
तेरह बरस ग्यारहैं मासा[2]। कुँवर होइ त्रिय बिरह उदासा ॥
बहु वियोग संताप सतावै। गुन जन बैद मूरि नहिं पावे ॥१२७॥
बरष तीन लगि रहै वियोगी। कारन भूत होइ पुनि जोगी ॥
चौथी बरष सजीवन पावै। दुष संताप सबै विसरावै ॥१२८॥
विवि ग्रहनी ह्वैहैं वरनारी। चारि पुत्र पहुमी अधिकारी ॥
चार दिसा पति ह्वैहैं राजा। जीतै सत्रु छत्र छिति छाजा ॥१२९॥
कुल मंडन महि[3] मंडल भूपा। मकर ध्वज सम रूप अनूपा ॥
गोरष ग्यान दान वलि मानो। साहसीक विक्रम सम जानौ ॥१३०॥
अर्जुन जिमै सस्त्र अधिकारी। वली भीम भीषम व्रत धारी ॥
विद्या भोज सकल गुन पूरा। ससि जिमि[4] रूप सूर जिमि सूरा ॥१३१॥
पंच बाटि सत वर्ष न आऊ। फल अगम सब लिषौ अगाऊ ॥
कीरत विदित जगत जग जानी। जुग जुग चलै सु जासु[5] कहानी ॥१३२॥

यह पत्र लिपिकार बलभद्र का नहीं प्रतीत होता। इसमें जन्मपत्र और उसका फल इस प्रकार दिया हुआ है।

तन रवि बुध धन भवनहिं जाना
सहज भवन शनि राहु बखाना
चौथे भवन भूमसुत पावा
बुध्य भवन सुरगुरु ठहरावा
कर्म भवन एकाद्वहिं देखा
कुल दीपक सुत गन्यो विशेखा
प्रथम भवन दुजराज ग्रह नवम केत नव जोग
पंडित गन फल लेखहीं भोगी सब रस भोग

१—अ. सूर। २—ब. स. द. बारहे बरस तेरहे मासा। ३—ब. स. द. मंडल महि। ४—ब. स. द. जिस। ५—अ. जुगनि चलै जसु जासु।

इहि विध जन्म पत्र ठहरायौ। षोडस दान[1] नृपति पँह पायौ ॥
करी छुठी छठ्यै दिन राती। नगरी सकल भई रँगराती ॥१३३॥

(चौपही)

घर घर वांधे बंदनवारा। घर घर नाद गीत झनकारा ॥
घर घर तिलक निछावर आई। जननी आनँद उर न समाई ॥१३४॥
रासि नाम दसयै दिन दीन्हा। कुंभ थापि सुर पूजा कीन्हा ॥
गुनी विप्र कर करहिं विचारा। कहूँ रयनि भयौ सूर उजारा ॥१३५॥

(दोहा)

रैन कहूं रवि[2] ऊगवै[3] विमल किरन[4] जग[5] पूर।
कुंभ राशि प्रमानि[6] मन नाम धरौ तिन सूर ॥१३६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहंकर विरंचितेयं आदि षंडे
सूर अवतार वर्ननोनाम पंचमो अध्यायः ॥ ५ ॥

(चौपही)

राषहिं धाइ खिलावन हारी। अतिहित षीर पिवावहिं नारी ॥
बरष दिवस मैं बोलन लागे। चरनन चलै चाह अनुरागे ॥१३७॥
वरष पाँच मध भये कुमारा[6]। राषे नृपति संग प्रतिहारा ॥
धनुही बाँस लाष के बाना। मारै खगनि करै षरिहाना ॥१३८॥
और खेल गिंदुक चौगाना। जीते सब सों चतुर सुजाना ॥
सब लच्छनि ? पितु प्रान अधारा। गनपति पूजि बैठि चटसारा ॥१३९॥

१—ब. प्रति के लिपिकर्ता ने 'षोडश दान' की व्याख्या इस प्रकार की है। सोरा दान के नाम। गोदान। कन्यादान। सुवर्णदान। चाँदी दान। मूँगा दान। मोतीदान। हीरादान। छत्रदान। विद्यादान। मकानदान। गजदान। अश्वदान। रथदान। भूमिदान। भोजन दान। वस्त्र दान। ये सोरा दान हुये।

२—ब. स. द. जो। ३—ब. स. द. उग्गवै। ४—ब. स. द. करन ५—ब. स. द. जगत। ६—स. द. चलन।

विद्या सकल सिखावन लागे । बहु गुरु एक शिष्य अनुरागे[1] ॥
प्रथम वेद व्याकरन वषानौ । जोतिष वैदक छन्द प्रमानौ ॥१४०॥
अरु संगीत सास्त्र गुन पावा । यह षट अंग वेद ठहरावा ॥
अस्त्र सस्त्र विद्या सिखराई । नाट वंत पुनि विद्या पाई ॥१४१॥
विद्या अधिक रसायन जानी । वीर वीरविद्या परमानी ॥
मल्ल जुद्ध की विद्या लीन्ही । माया जुद्ध पहैं चित दीन्ही ॥१४२॥
तेरह विद्या सीष न थोरी । भई न्याउ लीन्ही चित चोरी ॥
चौदह विद्या सीष सुजाना । द्वादस वरष कनक जिमि बांना ॥१४३॥
तेरह वरष संधि जब आई । क्रम क्रम छूट चली लरकाई ॥
बाढ़न लग्यौ[2] रूप तरुनाई । लसी अंग मनमथ की झाँई ॥१४४॥
नैन वैन मैनहिं अनुरागे । रूप अनूप विलोकन लागे ॥
श्रवनन लोभ रागु रस ताना । चरचा काब्यि सुनत सुष माना ॥१४५॥[3]

(दोहा)

गुन आगर नागर नवल मनमथ रूप कुमार ॥
जग जुवती जन मन हरन सुंदर सूर उदार[4] ॥१४६॥
इहि विधि[5] रूप विलोकि कै जौवन को अधिकार ॥
जन्म पत्र फल जान कै बैठे भूप विचार ॥१४७॥

(चौपही)

कहे नृपति मंत्रिन सो बाता । पंडित वैन सुमिरि[6] विख्याता ॥
त्रिय वियोग इहि लग्न जनावा । चौदह वरष मध्य ठहरावा ॥१४८॥

१—ब. स. द. में पहले की दो चौपाइयों का पाठ इस प्रकार है—
बरस पांच मध भये सुजाना । धनुही वांस लाष के वाना ॥
करहिं कुवर जबहीं संधाना । मारहि षगनि करहि षरिहाना ॥१३८॥
वरष अष्ट मह जबहिं सुहाये । कलस थाप गनपति पुजवाये ॥
पाटी वरतन चंदन गारो । ओं नमः सिद्ध उच्चारो ॥१३९॥

२—ब. स. द. लग्यौ वान । ३—अ. प्रति की छंद संख्या ठीक मालूम होती है। अन्य प्रतियों में १४५वाँ छंद अपूर्ण है। ४—अ. उदित सूर कुमार । ५—ब. स. द. जब इहि । ६—ब. सबै ।

यह जु बैस मनमथ पैसारा। देहु कुँवर कौ राज अभारा॥
दलबल भार भूम कौ भारू। होहि मगन मन राज कुमारू॥१४६॥
सषा संग सब रहहु सुजाना। सुभट वीर सेवक परधाना॥
राषहु राज काम मन लावै। हय गय धनुष वान बहरावै[1]॥१५०॥
गीत नाद चाँचरि[2] चितु लावहु। काव्य कथा कहि काल गमावहु॥
बात सरस कवि[3] कहै सब[4] कोई। इकि सिंगार रस वरजित सोई[5]॥१५१॥
प्रेम[6] कथा जनि वरनौं कोई। सुनैं कुँवर विरह रति होई॥
बरषै तीन कुसल सो जाहीं। होहि सह दस वरसनि माहीं॥१५२॥
इहि विध मंत्र सबन सिषरावहु। त्रिय तरुनी जिनि नैन दिषावहु॥
नवल नारि नहि रूप वखानहु। वरष तीन यह मत परमानहु॥१५३॥

(दोहा)

इहि विधि मंत्र विचारि कै[7] कीनौ सुदिन प्रमान।
तिथि दसमी आश्वनि समै, विजै नाम कल्यान॥१५४॥
गुन गंभीर मंत्री विमल तिलक सौज करि साज।
वेद सुविधि अविषेक करि थपे सूर भुव राज॥१५५॥
जै मंगल मंगल सभै वेद वेद[8] धुनि होइ।
चारन[9] बंदी[10] विप्र गन कर मंडहि सबु कोइ॥१५६॥
मन प्रमोद सब नारि नर वैर वधू बिकरार।
दुजन दहन सज्जन सुषद उदित सूर कुमार॥१५७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं आदि षंडे
तिलकअभिषेक वरनन नाम षष्टमो अध्यायः॥ ६ ॥

(दोहा)

सोम वंस वरनन कियौ सूर सिंह अवतार॥
विजै पाल वरनन करौ तब कछु प्रेम प्रकार॥१५८॥

१—ब. स. द. वौरायै। २—ब. स. द. चरचा। ३—ब. स. द. छवि। ४—ब. स. द. जो। ५—ब. स. द. जिहिरस प्रेम उपज नहिं होई। ६—अ. प्रति में यह विशेष अर्धाली प्राप्त होती है। ७—ब. स. द. प्रमान कर। ८—अ. भेद। ९—ब. स. द. वारन। १०—ब. स. द. वंधी।

(चौपही)

चंपावति नगरी सुर मोहै । महि जराव[1] नग[2] नागर सोहै ॥
विजैपाल राजा गुन नागर । राज वलय कीनौ जिहि सागर ॥१५६॥
असपति गजपति नृपति सुजाना । दलपति दल अगनित अतिदाना[3] ॥
दान षड्ग भुव मंड भुवाला । ब्रह्मनीक धर्मिक नरपाला ॥१६०॥
चक्रवती चतुरंग सुजाना । सप्त द्वीप पहुँमी जिहि आना ॥
घर घर आनद मंगल होई । दुषी दीन देषहु नहि कोई ॥१६१॥
दिसि दच्छिन गुज्जरधर देसा । अषिल पुहमि पति भूप नरेसा ॥
दया धर्म तिहि ठाँ बहु भाँती । परम रम्य पथिकन मन साँती ॥१६२॥
नृप दृढ़ धर्म महाजन लोगा । कामिनि कुसल सकल रस भोगा ॥
अति सरूप गुन नागर नारी । वारिधि निकट रतन अधिकारी ॥१६३॥

(दोहा)

एक अधिक त्रिय एक विधि, जो विधि रची विचार ॥
नवल रूप जोवन सहित, मनौ मुदित सुरनार ॥१६४॥
कलप बृच्छ नृप त्रियनि मिलि, जिसि तरु लता विराज ॥
पुहुकर पश्चाताप यह, विनु फल तरु किहि काज ॥१६५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयाम् आदि षंडे विजैपाल राज्य वरनन नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(दोहा)

निपट षेद नरपति मनहि व्यापहि संतत हेत ।
जब जंगम उपदेस दिय तबहिं भयौ चित चेत ॥१६६॥

(छंद पद्धरी)

इक दिवस राजाधिराज । बैठे मलीन संतान काज ॥
आयौ जो सिद्ध इक तैन काल । आदरिय बहुत नृपति जैपाल ॥१६७॥

१—ब. स, द. महिषराज । २—ब. स. द. नर । ३—अ. प्रति यहाँ से त्रुटित है । बीच के कई पन्ने गायब हैं ।

करि अर्घ आदि आतीथ भाव । कर जोर दीन हो विनव चाव ॥
उदयापि[1] राज सुहि दयौ देव । देसादि भूप सब करहिं सेव ॥१६८॥
हय हैम हीर वारन विसाल । सत इक्क सरस जुवती रसाल ॥
किहि पाप नहीं संतत प्रकास । इहि हेत रहतु मो मन उदास ॥१६९॥
करु सुहि अनाथ पै कृपा नाथ । के चलौं जोग अवराधि साथ ॥
बोलियो सिद्ध चित सावधानु । सुन विजैपाल राजा सुजानु ॥१७०॥
जो लिषो भाल विधना विचार । सो मिटै नहीं कोइ मरौ हार ॥
जौ साजि जोग तजि चलौ भौनु । तौ करहिं प्रजा प्रतिपालु कौनु ॥१७१॥
इकु होहिं कुँवरि कन्या परंत । करु चंडि सेव तजि सकल तंत ॥
उपदेसि सिद्ध आसनहिं जाइ । नृप धरहिं उरह ब्रह्मत्र[2] पाइ ॥१७२॥
मन वचन कर्म आराधि ताहि[3] । नर नागदेव पूजंत जाहि ॥
षट मास इक्क दिन रैन भाइ । तिहुं लोक माइ दुर्गे मनाइ ॥१७३॥

(छप्पय)

तनु सिंगारि सिंगार वीर महिसासुर[4] गंजनि ।
दया दीन करुनानि दुक्ख दालिद्रहिं भंजनि ॥
सषि विलास तहँ हास रुद्र काली कलिहंकरि ।
रुधिर पान वीभस्त सिंह आरूढ़ भयंकरि ॥
कन्या कुमारि त्रिभुवन जननि यह अद्भुत रस पिष्षियै ।
नव रस प्रतिच्छ चंडी चरन सांत संत तहँ दिष्षियै ॥१७४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयाम आदि षंडे
सिध्य दरसन वर्ननो नाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

(दोहा)

पट राग्यनि प्रिय वल्लभा, पति मन मोहन बाम ।
रूप सील गुन लच्छिमी, पहुँपावति[5] तिहि नाम ॥१७५॥
पहुपावत पहुंपावती, ललिता लता रसाल ।
भँवर रूप संभोग किय, विजैपाल तिहि काल ॥१७६॥

१—ब. अदयापि । २—ब. सिंधु, ३—ब. बृम्हंत्र । ४—ब. महिसुर ।
५—स. द. पुष्पवती ।

सीप स्वाति जनु बुंद परि, नृप जोषिता विराज।
धरति गर्भ चंडी कृपा, राज अंस वर[1] राज ॥१७७॥
दिन दिन दुति दूनी बढ़ी, नित नित नौतम[2] प्रीति।
प्रकृति सुभाव क्रम क्रम प्रघट, सुतवन मास अतीति ॥१७८॥
रितु वसंत राका सो तिथि, सुभग मास वैशाष।
घरि भुवपति कन्या जनम, श्वाति नषत सित पाष ॥१७९॥
सुनि नृप अति मन मुदित ह्वै, वहु विधि दै अतिदान।
हय गय हाटक हीर दै, राषिय मंगन मान ॥१८०॥
तिहि छिन तनया मुष निरष, उपज्यौ मन आनंद।
बदन जोति जनु दीप दुति, प्रगटित पूरन चंद ॥१८१॥

(चौपही)

पुर पंडित भूपाल बुलाये। लगन विचार करन सब आये॥
कहहिं होइँ बड़ भागिन रानी। जुगनि चलै जग मद्धि कहानी ॥१८२॥
भानु आदि नवग्रह सुषदाई। पिता मातु अरु कुटम सुहाई॥
इहि विधि पंडित करहिं बखाना। विद्यावान भविष्य निदाना ॥१८३॥

(दोहा)

दस अतीत एकादसी होंहि अवर्ष समान।
तन पीड़ा मन मूंढता, रहहिं जतन कर प्रान ॥१८४॥
जबहि चतुर्दस वरष वर, वाला करिहि प्रवेस।
तब कुटंब चिंता मिटहि, निश्चित होंहिं नरेस ॥१८५॥

(चौपही)

इहि विधि पंडित करहिं विचारा। विद्या कोविद गनक अपारा॥
नृप दिय दानु कियौ सनमाना। रासि नाम सो करहिं प्रवाना ॥१८६॥
रूप जोति छवि तिहि छिन बाढ़ी। मथि समुद्र रंभा जनु काढ़ी॥
नैन तूल रंभा सम राषी। तुला रासि रंभावत भाषी ॥१८७॥
राषहि धाइ धरहिं मन धीरू। अति मन मोद पिवावहिं षीरू॥
क्रम क्रम बैस वितीतन लागे। तात मातु मन आनद पागे ॥१८८॥

१—स. द. उर। २—स. द. नूतन।

(दोहा)

लाड गोड बहु विध किये रही न एकौ आरि ।
आबल्लभ सुत तैं अधिक सुष उपजावनि हारि ॥१८९॥
पंच वरष वर वैस किय षेलत सषियन साथ ।
दस दासी सत कन्यका धाइ रहै मन हाथ ॥१९०॥
षष्ट वरष क्रीड़ा जुगत सषी भाइ बहु संग ।
ज्यौ ऊषह सरसी लगति सोभित सुंदर अंग ॥१९१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचिते आदि षंडे रंभा
जन्म वर्ननो नाम नवमो अध्यायः ॥ ९ ॥

अथ वैससंधि वर्णन

(छंद पद्धरी)

जब दसम वरष प्रवेस । तब अतन जतन प्रदेस ॥
पुतरनि जो षेलत वाल । अति चरन चंचल ष्याल ॥१९२॥
तन वसन लागत धूरि । निरषंत नैननि पूरि ॥
विगलत्त अंचल चीर । तिहि धरति नाहिन धीर ॥१९३॥
सब प्रकृति उलटि अचान । फिर अंग मनमथ आन ॥
यह वैस निरषत नैन । थकि मुषह पुहुकर वैन ॥१९४॥

(चौपही)

निस पुतरी सेज्या पौढ़ाई । देषि प्रात उठि रही लजाई ॥
चलत न धाइ षेल अनुरागी । बसन धूरि उठि झारन लागी ॥१९५॥
निरषि नैन पुनि दृष्टि छिपावै । बार बार उठि अचंल लावै ॥
छूटे बार बधावति बाला । उहि विधि चित्त न आवत ष्याला ॥१९६॥
उलट अचानक प्रीत पुरानी । वदन जोति सोभा अधिकानी ॥
रँग अनँग दुति अंग जनाई । चरन चपलता नैननि आई ॥१९७॥

(दोहा)

सैसवताई जतन तनु प्रघट तरुनता होति ।
दुतिहि देषि पाँनूस ज्यौं पुहुकर मनमथ जोति ॥१९८॥

(दंडक)

लसै बय संधि आछी अमल अनूप अंग
अंबर उदित इंद्र कैसो छंद देषिये।
पुहुकर कहै दुति बरनी न जात मोपै
जोई कवि कहै छवि ताही तें बिलेषिये ॥
लेषि न परति सिसुताई तरुनाई तन
कौन घटि कौन बढ़ि कौन भाँति लेषिये।
सोभा धाम छाँह ज्यौं, सुनैनी कैसे नैन ज्यौं
कुरंग कैसे नैन ज्यौं दुरंग वैस देषिये ॥१९९॥

(दोहा)

तन लज्या मुष मधुरता लोचन लोल बिसाल।
देषत जोवन अंकुरित रीझत रसिक रसाल ॥२००॥

(चौपही)

भौह चक्र पच्छिम अनियारे। मद षंजन जनु बाँन सँवारे ॥
श्रवन सींव लोचन रतनारे। पद्‌म पत्र पर भँवर विचारे ॥२०१॥
कुंडिल किरनि कपोलन झाँई। छवि कवि पै कछु वरन न जाई ॥
मुत्तियगन देषत मन मोहै। जनु नछत्र ससि पारस सोहै ॥२०२॥
मंद हास दसनन छवि देषी। सुधा सींचि दारौं दुति लेषी ॥
नासा निकट अधर मधु राषे। चाहत कीर बिंब फल चाषे ॥२०३॥
जुग उरोज कछु दई दिषाई। उपमा इक मेरे मन आई ॥
कमल कली सोभा सुखदाई। जोवन सर झीने पट झाई ॥२०४॥
उदर छामि कटि जान न जोई। श्रोनि भार भंगुर अति होई ॥
मंद मराल गही गति बाला। कहँ लगि कहौं विनोद रसाला ॥२०५॥

(दोहा)

पुहुकर अधरन अरुनता, किहि गुन भई अँचान।
जग जीतन कौ मदन पै, लिये पैज किरपान ॥२०६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं आदि षंडे जीवन
वैस संधि वर्ननो नाम दसमों अध्यायः ॥१०॥

—०—

स्वप्नखंड

मनमथ रति संवाद वर्णन

(दोहा)

एक समै सुष सेज मैं रति राजति पति संग।
त्रिभुवन मै किहि विधि कहौं कोटि रूप अँग अंग ॥ १ ॥

(चौपही)

रति पूछै सुन त्रिभुवन नाथा। सुर नर नाग तिहारे हाथा ॥
तीन लोक व्यापक नर नारी। मुनि समाधि अवलोकत टारी ॥ २ ॥
प्रेम फंद जग मध्य पसारौ। परौ आइ सो फिरि न सहारौ ॥
पूछौ बात कहौ सत स्वामी। पंचवान कर त्रिभुवन गामी ॥ ३ ॥
देव लोक सुंदर नरनारी। नाग लोक पुनि नाग कुमारी ॥
सुरपुर कहौ कौन मन मान्यौ। कौन नारि नर सुंदर जान्यौ ॥ ४ ॥
जिहि सर और न दूजौ कोई। को त्रिय जो कलि महँ इक होई ॥
गुन अरु रूप दुहूँ विधि आगर। को अस नारि कौन अस नागर ॥ ५ ॥

(दोहा)

सुन मनसिज धन कौ वचन, उत्तर दिय मुसक्याइ।
बहु रतनन बसुधा फरी, कियौ विवेक न जाइ ॥ ६ ॥
चारु पुरी चंपावती, विजैपाल तहँ भूप।
तासु सुता रंभावती, निजु सेवहिं तिह रूप ॥ ७ ॥
गुन नागरि आगरि नवल, वहि सम और न कोइ।
नाग बधू नहि अंगना, देवगँना नहिं होइ ॥ ८ ॥
नरन मध्यि नरसिंह कुल, कुल सारंग सुजान।
कम सम रूप अगाधि बल, ताकौ करौं वषान ॥ ९ ॥
बैरागर अधिपति नृपति, सोमेसुर तिहि नाम।
सूर सैन तिहि सुत कुँवर, मनहु प्रवट धर काम ॥१०॥

(छंद प्रयंगम)

सुनि सुंदर पति बैन पुलकित रोम हुव ।
ते जुग दंपति होहिं, परौं पिय पाँय तुव ॥
जो वह नारि कुमारि, विवाहै और नर ।
तौ जन मत दुष मिटै, नहीं नहिं तास घर ॥११॥

(छंद तोटक)

सुनि सैन जे बैन बधू उच्चरै। जुग नागर जोर विचार परै ॥
सत जोजन अंतर अछ जहाँ । किहि भाँतिनि हौहिं विवाह तहाँ ॥१२॥
जहँ नाम न ठाँम न ग्राम गनै । तहँ क्यौ करि प्रीत विवाह बनै ॥
मन एक अनूप उपाइ धरौं । दुहुँ के मन प्रेम प्रकास करौं ॥१३॥
जहँ लोगन लाज रमाइ रहै। विरहानल बाढ़त देह दहै ॥
जिहिं रोगहिं सूरि न मंत्र लगै । दिन ही दिन दूनिय काम जगै ॥१४॥

अथ बिंब दर्शन वर्णन

(दोहा)

काम कहै सुनु सुंदरी, दरसन तीन प्रकार ।
स्वप्न चित्र परतिच्छ प्रिय, प्रगट प्रेम विस्तार ॥१५॥
हौं चलिहों चंपावती, सूर सैनि धरि भेष ।
सपनांतर रंभा उरहँ, करन विरह उपदेस ॥१६॥
तुम वैरागर जाइ कै, स्वप्न सूर कहँ देहु ।
तन रंभावति रूप धरि, बढ़ै परसपर नेह ॥१७॥
कंत कहौ सो भानि रति, तिहि छिन तिहि पुर जाइ ।
काम कुँवर कौ स्वप्न करि, आई प्रेमु बढ़ाइ ॥१८॥
मदन चल्यौ चंपापती, चंपकु चापु चढ़ाइ ।
पंचबान ते सान दै, लीन्है कर पैनाइ ॥१९॥

(दोहा)

मोहन सोहन उनमदन अरु उच्चाटन लीन ।
मारन सर पंचम लियौ बल अबला पर कीन ॥२०॥
चारु चंद अरु चाँदनी, चंदन चर्चित अंग ।
नृपतनया रंभावती, जीतन चल्यौ अनंग ॥२१॥

उभे जाम जामिन गई, नगर पहूँची वाट।
बन बेली वीथी निरषि, पुर हाटक जुत हाट ॥२२॥
राज महल सब देष के, दिष्षिय कुँवरि अवास।
रुक्म रुचित राजत जहाँ, विलसत मदन विलास ॥२३॥

(छंद पद्धरी)

रतिनाथ देषि तहाँ धवल धाम। मनि मुक्ति जटित नैननि विराम ॥
नवसत कलानि मिलि लसत चंद। जिहि छंद समत पद्धरी छंद ॥२४॥
सीतल सुगंध जिहि मंद वाउ। अति चारु चित्त जिहि निरष चाउ ॥
जहँ वकुल वेल चंपक गुलाब। मालती जाइ केतकी आब ॥२५॥
गुंजार करत भृंगार भीर। विधु बदनि नारि सब कुँवरि तीर ॥
उज्जल सुतल्ल जामिनीय सेत। तहँ लसत बाल सुष सयन हेत ॥२६॥
चहुंओर[1] धाइ सहचरनि[2] संग। सौहंत सकल श्रृंगार अंग ॥
मद मदन सुत्त निद्रा अपार। जानहिं न द्वार पालक्क वार ॥२७॥
बैठियौ सूर धरि रूप सेज। जनु कोटि सूर इक सूर तेज ॥
निजु काम कहौं किहि विधि बनाइ। छवि अंग अंग बरनी न जाइ ॥२८॥
प्रथमहि सो बांन उच्चाट मारि। उचटी सु नींद रंभा कुमारि ॥
निरषंत नैन इक नर अनूप। जनु सूर तेज अरु काम रूप ॥२९॥
हरि हरित नैन अरु प्रान तासु। करि रोम रोम कंद्रप विगासु ॥
नृप सुता देषि मूरत्ति मैन। उहि अमिय रूप भरि लिये नैन ॥३०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वप्न षंडे मदन
विनोद वर्ननो नाम प्रथमो अध्यायः ॥१॥

(दोहा)

देषि रूप उर धारि करि, मनु निछियावर वारि।
तृपित न मानत नैन जुग, रंभा राजकुमारि ॥३१॥

(छंद मोतीदाम)

किरीट धरं सिर सज्जित हीर। त्रिया मन मोहन हेम सरीर ॥
मृगमद भाल तिलक्क बनाइ। कही वह ओप न मो पहँ जाइ ॥३२॥

१—ब. वोर। २—ब. चचरनि।

रहे फिरि घूँघर कुंतल वार। जँजीर मनौ मन वंधनवार ॥
लसै श्रुति सुंदर कुंडल लोल। अभासत है विवि चारु कपोल ॥३३॥
सरोज दल्ल दुति सोभित नैन। गिरा जनु मेघ मनोहर वैन ॥
भुजा जनु नाग विराजत वाम। उर सोभित मोतिय दाम ॥३४॥
अनूपम आनन भौंह कमान। मनौ वरुनी मन मोहन बान ॥
मृगपति लंक सुबच्छ विसाल। निरष्षत नैन विमोहिय बाल ॥३५॥

(दोहा)

चाहति पूछौ नाम गुन, राज कुँवरि तजि कान।
तिहि छिन हनि मनमथ्थ विय, मोहन सर संधान ॥३६॥
वैन थके अरु गति थकी, लोचन थके विसाल।
मोही मोहन बान ही, त्रिभुवन मोहन बाल ॥३७॥

(सोरठा)

दस घटिका तिहि तीर। छवि निरषत मनमथ रह्यौ ॥
अवला करी अधीर। अंतर अंतर ध्यान हुव ॥३८॥

(दोहा)

उदमादक जो बान विय, ते पुनि त्रिय तन लाइ।
विरह जलधि मै डारि कै, मदन चल्यौ पछिताइ ॥३९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वप्न षंडे मदन
चंपावती प्रवेसनो नाम दुतीयो अध्यायः ।।२।।

(दोहा)

सेष निसा अचिरज सहित, वितई राज कुमारि।
संग सषी जानै नहीं, को गयो चेटकु डारि ॥४०॥

(चौपही)

भयौ प्रात रवि किरनि प्रकासी। विहसि बदन पदमिनि आभासी ॥
देव द्वारि संष धुनि बाजी। पुलकित चक्र वाक करि साजी ॥४१॥
सषी सकल निद्रा तजि जागी। देषत कुँवरि विचारन लागी ॥
निपट निसा किहि गुन उठि बैसी। मुष मलीन किहि कारन ऐसी ॥४२॥

समिट सबै तिहिं पारस आई । निरष नैन संका भरमाई ॥
पीत बरन लोचन थिर तारे । रति नाइक जनु चित्र सँवारे ॥४३॥

(दोहा)

रंभा पुतरी चित्र की, रची विरंचि विचारि ।
सो गुन सत्य प्रवाँन हुव, रहि आपुनपौ हारि ॥४४॥

(छप्पय)

अचल तार अध नैन वाम कर चित्तु चिहुट्यौ ।
प्रात ओस कन बुंद पदम दल अग्रह छुट्यौ ॥
मलिन नलिन मुष जोति पल्लन लागत पल सथ्थहिं ।
अति उरोज पर लसै नैंक नहिं टारति हथ्थहिं ॥
विधना विचित्र सम चित्र किय पुतरी चित्र समान किय ।
बुल्लहि न बैन उत्तरु[1] चवै सषिन संक इमि उप्पजिय ॥४५॥

(सोरठा)

नीर निकट लै आइ । बदन पषारहिं सहचरी ॥
पै[2] मन उपजै भाइ । विरह बेल सींची मनौ ॥४६॥

(चौपही)

सुनतहिं धाइ सषी सब आई । देषत ही ठग मूरि सि षाई ॥
राज कुँवरि अरु सुठि सुकुमारी । बोलै नहीं बली बिस[3] मारी ॥४७॥
रूप गरुव मनमथ अति भारी । क्यौं जुग भार सम्हारै नारी ॥
कर गहि वहुरि सेज पौढ़ाई । तपनि अंग उपजी अधिकाई ॥४८॥
तब सब मिलि करि करहिं विचारा। आजु सकल संसार असारा[4] ॥
कौन व्याधि सो परत न जानी । कहौ कहा जो पूछहि रानी ॥४९॥

(सवैया)

एक कहै वाय एक सोचति उपाइ अंग,
एक कहै भयौ जुरु जूड़ीयो जनाई है ।
एक कहै भूत भय संषिनी की झंका भई
एक कहै लौनी अति काहू डीठि लाई है ॥

१—स. द. उत उच्चवै । २—स. द. ये । ३—ब. वस । ४—ब. अगारा ।

एक कहै आजु लाल चूनरी पहिरि साँझ
गई फूलवारी माँझ तहाँ भरमाई है।
एक कहै यौजगी है एक कहै छली काहू
एक कहै काहू करतूति करवाई है ॥५०॥
एक चलै धाई एकै परै मुरझाइ धर
एकै कहै हाइ हाइ कौन कहाँ आई है।
एकै गहै पाइ एकै बदन बलाइ लेइ
हाहा इत हेरि नेक कौने डरवाई है ॥
उठि अकुलाइ एकै बैठहि अरस्याइ फेरि
कछु ना बसाइ विधि कैसी धौं बनाई है।
रंभा रंभा नाम एक रसना लगाइ रही
एक सषी नैन के प्रवाह जल न्हाई है ॥५१॥

(सोरठा)

पुहुकर प्रबल सनेह राज. कुँवर मन भावती।
तापर अचिरज एह एक विरह सब विरहिनी ॥५२॥

(चौपही)

इक सषी वारि फेरि जल पीवहि। कहहि कुँवरि इहि कारन जीवहि ॥
इक सषी फेरि तोरि अनु डारहि। मोर पच्छ इक कर गहि झारहि ॥५३॥
बोलहि विप्र निमंत्रिनि नारी। विषम व्याधि तै उबरहि बारी ॥
तिहु छिनु दान करन इक लागी। राज कुँवरि के हित अनुरागी ॥५४॥
इक बोलहि ब्रत बिना अहारा। कहहि करौ करुना करतारा ॥
राई नौन उतारहिं बाला। नौनी मूरति निरषि रसाला ॥५५॥

(दोहा)

इक त्रिय अरपति आपु अपु, चित न रह्यौ कछु चेत।
सवन विसारौ सहजपन, रंभावति के हेत ॥५६॥
दिनकर सौ कर जोर कै, अंजुल बाधहिं पूर।
व्याकुलता हरु बेगही, व्याध व्यथा हर सूर ॥५७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वप्न षंडे विरह उतपत्ति वर्ननो नाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

(सोरठा)

बानी भई अकास । पेद निवारहु सहचरी ॥
सकल करहु मन आस । सूर विथाहर होंहिगौ ॥८८॥

(दोहा)

सुनि अकास बानी श्रवन, भयौ सबन मन धीर ।
आरंभे विधिबत करन, सूर हरेगौ पीर ॥८९॥

(चौपही)

बानी भेद कछु और जनायौ । देवत सबन बचन सुष लायौ ॥
कहै सषी सब नगर प्रजारा । एक नगर सब किधौ सँसारा ॥९०॥
प्रलै अग्नि यह आजहिं आई । राज कुमारि कहाँ है माई ॥
कहै सषी यह अग्नि न होई । तोहि रोग उपज्यौ तन कोई ॥९१॥
करहि न कह्यौ सषिन कौ प्यारी । निसि वासर विहरौ फुलवारी ॥
कहाँ पीर किहि ठाँ भरमानी । कहै बिना कछु परत न जानी ॥९२॥
चित जिन भर्म करहि सुकुवारी । अब आवति ढिग माइ तुम्हारी ॥
मन जिन सोच भरम नहि कीजै । समुझि सहेलिन उत्तरु दीजै ॥९३॥

(सोरठा)

लै अति उच्च उसास । जरत जीभ बतियाँ कहै ॥
मो जीवनि की आस । तजौ सषी जन सर्वथा ॥९४॥

फिर बोली बिलषाइ । दुसह तपन तन उप्पजिय ॥
सीतल करहु उपाइ । सीतल होहि कदाचि तनु ॥९५॥

(चौपही)

यह कहि बहुरि फेरि मुरझानी । जनु विषधर लहरैं अधिकानी ॥
सषी गई पहुँपावति पासा । कहहि कुँवर कछु आजु उदासा ॥९६॥
परति न जान कौन तन पीरा । चित अग्यान अरु बिकल सरीरा ॥
सुन तन माइ धाइ करि आई । देषत ही गति मति बिसराई ॥९७॥
नैन प्रवाह बह्यौ धर भारी । प्रेम हैम सींची सुकुमारी ॥
पूछ्यौ सषिन कही कछु बानी । चकृत चहूँ दिस चितवै रानी ॥९८॥

(दोहा)

सब सहचरि मिलि उच्चरैं, प्रातहिं बैठी जागि ।
करु न डुलै बैननि चवै, नैन रहे टक लागि ॥६९॥

अबहिं एक बतिया कही, विषम तपनि तन होइ ।
जिहि तैं सीतलता गहै, जतन विचारो सोइ ॥७०॥

अरु अकास बानी भई, करौ सूर की सेव ।
गहर पहर नहिं कीजिये, व्याधि निवारहिं देव ॥७१॥

(चौपही)

तिहि छिन बिप्र अनेग बुलाये । मंत्र मित्र आरंभ कराये ॥
करहिं जाप दुज कुल के देवा । बहु विधि करहिं सूर की सेवा ॥७२॥

अग्नि होम सब करहिं अपारा । ब्रह्म भोज अरु दान अचारा ॥
निसु दिनु एक चित्त सब करहीं । राजकुमारि आउ-हित चहहीं ॥७३॥

(दोहा)

सषी सबै रवि ब्रत करैं, राज बधू के संग ।
निपट विकल रंभावती, तपन बढ़ै दिन अंग ॥७४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुंकर विरचितेयं स्वप्न षंडे आकास
बानी बर्ननो नाम चतुर्थो अध्यायः ॥४॥

(चौपही)

सुनि भुव पति मन भयो उदासा । बैद बोलि पठये तिहि पासा ॥
रोग ग्यान सब करहिं विचारा । बहुत ग्रंथ मथ विविधि अपारा ॥७५॥

ग्रंथ गुंथ मति सबनि बिचारी । षनन परी नारी षन न्यारी ॥
विषम व्याधि सो परति न जानी । देषत जलज बंधु कुम्हिल्यानी ॥७६॥

तब पूछी पौढ़ा सहचारी । है बोली कछु राजकुमारी ॥
कहै ताप तन अधिक बतावै । कैसहुं सीतल होन न आवै ॥७७॥

छिरकि उसीर नीर लै आनी । औषधि और कुमकुमा सानी ॥
मूरि बताइ बैद घर आये । अंग लेप के जतन कराये ॥७८॥

सीतल सकल उपाइ विचारे। तीनि अग्नि के मेटनि हारे॥
किसलय कमल विनोल मगाये। मिलि चंदन घनसार घसाये॥७९॥
कहहि उसीर बिजन कर लीजौ। सीत सुगंध बाउ तहँ कीजो॥
मूल उसीर करहु गृह छाया। चंदन लेप करहु सब काया॥८०॥
भानु किरन अवरोध बनावहु। विजन वायु तजि और न लावहु॥
रैन सेज अंगन ग्रह लीजौ। चंद किरिनि सों भीनहिं दीजौ॥८१॥

(दोहा)

बैद बिदा करि सब सषी, लागी करन उपाइ।
तपनि अंग नेक न घटे, पल पल प्रति अधिकाइ॥८२॥

(चौपही)

दल सरोज जबहीं ढिग आनै। लेप करत सब सूष उड़ानै॥
तन चंदन छिरकत इमि जर्यो। जनु जल तल तवा पर पर्यो॥८३॥
पल न परै कल बल न सम्हारै। धुनै सीस अरु कर पद झारै॥
सीत समीर लगत अकुलानी। नीर के हेत अग्नि अधिकानी॥८४॥

(दंडक)

चंदन चिनगी घनसार मानौ सारधार।
विमल कँवल कल कल न परत है॥
सीर सौं उसीर लागै कुंकुमा करौत ऐसे।
पवनु दवनु मानौ देषत डरत है॥
तीर ऐसो नीर तरवारि सौं तुसार तन।
नेजा ऐसी सेज मानौ जीवन हरत है॥
फूलन तैं सूल होंहिं दाहन दुकूल अंग।
घरी घरी घटै मानौ वरी सी भरत है॥८५॥

(कुंडलिया)

रोग कफ्फ पित बात कै बैद करत हैं दूरि।
पुहुकर बेदनि बिरह की जाहि न ओषद भूरि॥

जाहि न औषद भूरि पूरि महि मंडल छाजै ।
धन्वंतरि पचि रह्यौ एक उपचारु न आवै ॥
जौ विधि होहिं कृपाल करहिं प्रीतम संजोगहिं ।
वैद न पावहि पीर हरै कफ बातक रोगहिं ॥८६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वप्न षंडे वैद उच्चरन वर्ननंनो नाम पंचमो अध्याय ॥५॥

(सोरठा)

एक मास इहि भाँति । बिरह रोग अवगाह अति ॥
कैसहुँ तनहिं न साँति । नृप तनया पल पल विकल ॥८७॥

(दोहा[1])

सषी सकल अचरज करहिं कौन रोग यह आहि ।
को समर्थ कलि बैद है औषद बूझहि ताहि ॥८८॥

(चौपही)

राज कुँवरि संग सत सहचारी । मुग्ध मध्य प्रौढ़ा वर नारी ॥
तिन मह एक विजछिछनि बामा । मद गति मदन मुदित तिहि नामा॥८९॥
प्रौढ़ा प्रीति बहुत कै जानै । रसिक प्रेम रस कुलि बषानै ॥
जिनु प्रीतम कौं तनु मनु दीनौ । चितवत चोरि चतुर चितु लीनौ ॥९०॥
जो प्रिय मदन भुवंगम षाई । पिय मुष मध्यि सजीवनि पाई ॥
जानै रोगु मूरि पुनि जानै । विरह दलनि अबला पहिचानै ॥९१॥

(दोहा)

तिनि सषियनि सौं यौं कह्यौ, मै पायौ यह रोगु ।
अबला के तन अतुल बल, विषम सुविरह वियोगु ॥९२॥
ये सब क्रम तिहि प्रेम के, जाहि न लागत मूरि ।
षिन तातौ षिनु सीयरौ, षिन नियरौ षिनु दूरि ॥९३॥
सकल त्रियनि उत्तरु दियौ, बोलौ वचन विचारि ।
प्रेमु न जानै नेमु कहँ, यह अबला सुकुमारि ॥९४॥

१—लिपिकर्ता का निर्देशः—
अथ रंभावती को विरह मदन मुदिता प्रगट करौ ।

जिहि न मित्रु नैनन लष्यौ, महल रहै दिनु रैनु ।
अति कोमल नृप कन्यका, नर अदिष्ट मृग नैनु ॥९५॥
क्यौं आनौ मुष वत्तरी, सषी सुनौ जौ और ।
पल न एक पारस तज्यौ, रस पायौ किहि ठौर ॥९६॥

(छप्पय)

सुनिय सषी मुष वचन मदन मुदिता इमि वुल्लिय ।
कहति आलि तुम बाल प्रेम रस तुलहि न तुल्लिय ॥
त्रिभुवन पति रति नाथ षेल बहु विधि करि षिल्लहि ।
एक स्वप्न संचरहि एक अच्छरि लै मिल्लहि ॥
इक प्रतिच्छ प्रीतम करहि जे न चिन्त चित अनुसरहिं ।
ये दूत नैन विधि मैन के मिलत परसपर मन हरहिं ॥९७॥

(दोहा)

नैन नैन ठग एक हैं, जबहिं जुरत इक साथ ।
पुहुकर बेचत चोर चित, प्रेम नृपति के हाथ ॥९८॥

(चौपही)

जिहि तन प्रगट प्रेम तन कीनौ । सो तनु अजर अमर कर दीनौ ॥
तिहिं तनु जोगु भोगु नहि भावै । तिहि तन सदन सुरति नहिं आवै ॥९९॥
तिहि तन सिरजनहार न जान्यौ । एक प्रान वल्लभ पहिचान्यौ ।
सो तनु और नीर नहि पीवै । सुधा स्वाति बिनु नैकु न जीवै ॥१००॥
विषै ततु सत्रु तिहि तनु त्याग्यौ । केवल प्रेम प्रीत रस पाग्यौ ।
कठिन पंथु जिहि अंतु न पावौ । बहु विधि विविध बहुत विधि गायौ॥१०१॥

(दोहा)

षड्गु धार मारग जहां, गंग जमुन दुहुँ ओर ।
प्रेम पंथ अति अगमु है, निबहत हैं नर थोर ॥१०२॥
पुहुकर सागर प्रेम को, निपट गहिर गंभीर ।
इहि समुद्र जो नर परै, बहुरि न लागहिं तीर ॥१०३॥

(छंद प्रयंगम)

जो तिहि व्यापहि रोग उपाइ सु कीजियै ।
जौ तनु छीजहि जाइ कहा तब लिजिबै ॥

एक प्रतिच्छ प्रतिच्छ सही करि जानिये।
जौ निरषौ इहि अंग सही यह मानिये ॥१०४॥
सत्य कहै गुन अष्ट वषानत वेदहूं।
ते सब प्रीत प्रवानि कहै रस भेदहूं॥
सुंदरि अंग अनंग सबै दिषराइ हौं।
क्यौं बिनु व्याधि निदानहि मूरि बताइहौं ॥१०५॥

(दोहा)

स्वेद थंभ रोमांच है, व्यापत अरु सुर भंग।
अस्रुपात वैबर्नता, प्रलै अष्ट गुन संग ॥१०६॥
ते सब तन रंभा प्रगट, सषि निरषहु तुम नैन।
बारि बूँद मृग द्रग ढरे, कहति भंग सुर बैन ॥१०७॥
हस्थ चरन थकि चित्र जिमि, श्वेद उरज तट रूप।
पुलकित बपु कंपत अधर, विवरत वदन अनूप ॥१०८॥
प्रलै अंस अति मूरछा, देषौ सकल बिचारि।
सुनत मदन मुदिता बचन, चकृत भईं सब नारि ॥१०९॥

(छंद प्रवानिक)

चकृत चित्त नागरी। जि रूप रेख आगरी॥
सुनै प्रमान[1] वत्तियाँ। भई बिहाल अत्तियाँ ॥११०॥
रही न एक चातुरी। गई अपार आतुरी॥
गहे सुपाइ तासु के। विचित्र बैन जासु के ॥१११॥
कहै उपाइ किज्जियै। जिवाइ बाल लिज्जियै॥
जु तात मात लाड़िली। विसेषि प्रान चाडिली ॥११२॥
तुही सुधा सु पीवनी। तुही समूर जीवनी॥
तुही जु वैद धीर है। लषै जु गुप्त पीर है ॥११३॥
बिचार एक ठानहूं। जु जंतु भेद जानहूं॥
जो ठामु नाम जानियै। हँकार ताहि आनियै ॥११४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वप्न षंडे सषी उन्माद वर्ननो नाम षष्टमो अध्यायः ॥६॥

१—व. वृवान।

(दोहा)

मदन मुदित इमि उच्चरै, निमष्ठत जौ तुम संग।
हौं पूछौं इहि बारता, जिहि विधि प्रगट अनंग ॥११५॥
सकल सषी एकंत ह्वै, बैठीं करि कछु आस।
तनु जिमि त्रनु डारौ कहूं, मनु मुदिता के पास ॥११६॥

(चौपही)

भई एकंत सकल सहचारी। मुदिता प्रेम कथा विस्तारी॥
कहति कथा बिनु उत्तर बामा। रसिक श्रवन अरु मन अभिरामा ॥११७॥
दमयंती नल प्रीति कहानी। भाषति सरस मधुर मुष बानी॥
बहुत अनंद प्रेम गुन गावै। एक एक अच्छर समुझावै ॥११८॥
माधव काम की कीर्ति बषानी। जिहि सुनि मन विलरावै रानी॥
ऊषा कथा जबै अनुसारी। तब चितई भर नैन कुमारी ॥११९॥
बातहिं करत निआदरु कीनौ। पूछै सषी स्वप्न किहि दीनौ॥
यह सुनि नैन सलज्ज दुराये। मुदिता नैन नीर भरि आये ॥१२०॥

(दोहा)

ऊषा अनुरुध की कथा, गाई प्रीति प्रकार।
जौ अब कवि फिरि उच्चरै, तौ बाढ़ै विस्तार ॥१२१॥
कही रुचिर अति बत्तरी, सब रति रुचिर विहाइ।
मृगनैनी ज्यौं मृग गही, प्रेम फंद उरझाइ ॥१२२॥

(छंद गीतिका)

उरझाइ संदनि प्रेम फंदनि रूप रंभा आगरी।
जिय मानि विरह बिहाल ब्याकुल मदन मुदिता नागरी॥
पर पीर जानि अधीर ह्वै अति नीर नैननि आवहीं।
मन भेद जतनि जोर जुगतनि जुगति करि समुझावहीं ॥१२३॥
बहु दीन वचन बिचारि भाषति चरन गहि कर बूझही।
राजस्य दाननि दंड भेदनि सफल एक न सूझही॥
मृद कुंवरि नवला नवल जोवन बचन भेद न जानही।
अति सजल सुंदरि जलज मुष करि छिदौ पीर न मानही ॥१२४॥

मनमथ्थ त्रास उदास भरि चक्कृत चहूं दिसि चाहई।
जिमि रंक वित्त दुराइ चित्तहिं लाज लोभ निवाहई॥
धरि हृदय पंकज प्रेम भृग हित बांधि संपुट जामिनी।
मनुहारि करि मनहारि मुदिता कहत बैननि कामनी[1] ॥१२५॥

(दोहा)

पुहुकर चरि उपाइ हठ, पूरब करे प्रमान।
सामादिक जे कहत हैं, तिनि मँह उत्तम दान ॥१२६॥

(चौपही)

कहत जो बेद उपाइ प्रवाना। तिन मह सुगम वषानत दाना।
मुदिता करत विचार प्रवीना। रंभा कौन दान आधीना ॥१२७॥
कंचन हीर चीर वहुं अंगा। सारस कीर मयूर विहंगा॥
अभरन विविध अनेग अपारा। ते न लेत कर काम विकारा[2] ॥१२८॥
बहुत चित्र पुतरी वहु पासा। चिंतन करत अति चित्त उदासा॥
कौन उपाइ भेद मन माने। कौन भाति लोभहिं उर आने ॥१२९॥

(दोहा)

मुदिता सोचति सहज ही, इम उपज्यौ मन ग्यानु।
विरह अग्नि इहि दहति है, देन कहौं जिय दानु ॥१३०॥
हय हाटक मनि मुक्ति गज, दानु सबनि पै होइ।
मरन समै जिय दान कौ, दैन जोग नहि कोइ ॥१३१॥
यह उपाइ ठहराइ मन, मुदिता बूझति बैन।
सत्य मानि रंभावती, कालौ अटकै नैन ॥१३२॥

(दंडक)

हाइ हाइ हाहा री हठीली आली हेरि इति
तजति हैं प्रान बैन काननि करति है।
बाट परी बोलिहै कै लाज ही मै जैहै गड़ि
विरह की आगि जल निकट जरति है॥
आन कै मिलाऊँ तोहि मन कौ हरनहार
मोहन मधुप जाकी येती (जु) अरति है।
बाल कहि बीर तेरी पीर कौ जतनु करौं
मोही तू पाय[3] प्यारी काहे कौ मरति है ॥१३३॥

१—स. द. वैनन कामिनी २—ब. विचारा। ३—ब. में कोई शब्द नहीं हैं।

(चौपही)

मुदिता कहै सुनौ सषि प्यारी। सषियनि मैं तूं अधिक पियारी ॥
वे ही काज सरत मुरझ्यारी। जरति अगिनि ढिग सरवर पानी ॥१३४॥
निकट बैद नहि बूझति मूरी। नाग डसी नहि गारुड दूरी ॥
वृष दिनकर दिन मरत पियासी। भर कर धरौं सुधा वट पासी ॥१३५॥
मैं अबला बहु मरत जिवाई। देषन जहँ लगि नैननि पाई ॥
तुव तन पीर सुनन जौ पाऊँ। तिहिं छन हरौं निमष नहिं लाऊँ ॥१३६॥

(सोरठा)

बहु बिधि सर्जहि उपाइ। मदन मुदित चित चातुरी ॥
सुंदर चित्त लुभाइ। छलबल अंतर भेद लिय ॥१३७॥
भरि उसास गंभीर। राजकुँवरि इमि उच्चरै ॥
मुदिता मो मन पीर। क्यौं तोंपै मेटी मिटै ॥१३८॥

(दोहा)

कहा कहौ किहि विधि कहौं, जो कहिबे की होइ ।
सषि हौं पुनि जानति नहीं, क्यौं करि जानै कोइ ॥१३९॥

(चौपही)

राका रैनि अर्ध उजियारी। सोवत ही तुम सब सहचारी ॥
तसकर एकु अचानकु आयौ। द्वारपाल पुनि जान न पायौ ॥१४०॥
अचिरजु एक सुनहि जो भारी। मुकुट भाल वपु कुंडल धारी ॥
छबि समुद्र ज्यौं चित्त चलाऊँ। निपट अथाह थाह नहिं पाऊँ ॥१४१॥
सषि तसकर वह जन मन होई। नहि तस कर बस करि लवि सोई ॥
सषि अभरन अरु मौलिक अंगा। केवलु मनु हरि लै गयौ संगा ॥१४२॥
रसना करन नैन हरि लीनै। गुनहि छिड़ाइ पंगु सब कीनै ॥
बिहुति हसनि दसनि छवि देषी। सो मम हृदय आनि अवरेषी ॥१४३॥
मूरति मैन नैन अनियारे। प्रान काढि लै गयौ हमारे ॥
और न नासु कह्यो विसवासी। कौनु आइ किहि ठाँ कर वासी ॥१४४॥

(दोहा)

मुष तै बैनु न उच्चरौ, नैन नैन सौं जोरि ।
तपनि तेज दिष राइ कै, चित्त गयौ लै चोरि ॥१४५॥

सषी बहुर जान्यौ नही, कहां गयौ किहि ठौर ।
अब जीवनु तुहि हाथ है, हौं नहि जानत और ॥१४६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वप्न षंडे सषी
विग्याँत वर्नन नाम सप्तमो अध्यायः ॥७॥

अथ दस अवस्था वर्णन

(दोहा)

मदन मुदित विरदंतु[1] सुनि, उत्तरु उमगि न दीन ।
नृप तनया सुकमारिता, विरह बहुरि बसु कीन ॥१४७॥

(छप्पय)

अर्थ चंद्र अकास बान लुम्भियह हिमाकर ।
उभय अग्र विवि धाइ अंग लागति विरहिन वर ॥
विषय दुसह अरु कठिन गूढ़[2] पुनि ? मंत्रु न मानहि ।
द्वै गुन पंच अवस्थ सुदेस प्राचीन वषानहिं ॥
अभिलाष आदि पुहुकर सुकवि, एक एक वरननु कियौ ।
अवलंबु एक पचि सज्जियौ, सुविधि विचारि विरहिन हियौ ॥१४८॥

(दोहा)

अर्द्ध चंद्र सर सत्य है, मै जान्यौ सति भाउ ।
समरथ्य हाथ पूरब लग्यौ, हर सिर मंडिय घाउ ॥१४९॥
बहुत कहत रजनीसु है, तिलक रच्यौ किरपाल ।
राका पूरब होत है, तब क्यौं रहत सिवभाल ॥१५०॥

१—स. द. वृतान्त। २—ब. स. द. काठेग गढ़ मंत्र।

(छप्पय)

प्रथम उपजि अभिलाष बहुरि चिंता सुमिरनु गनि ।
गुनत गुनिथ गुनु कथन दुसह उदवेग जासु भनि ॥
तापर प्रगटि प्रलाप और उन्माद वषानहिं ।
बिसन व्याधि वपु बढ़ै जगत जड़ता जिय जानहिं ॥
कवि कहत निधन दसमी दसा जबहिं होत मन आनि बस ।
पुहुकर प्रकास मन मथ्थ के सुविप्रलंभु सिंगार रस ॥१५१॥

(दोहा)

विप्रलंभु जिमि मूल है, क्रम क्रम विस्थर साष ।
दस अवस्थ कवि कहत है, तहां प्रथम अभिलाष ॥१५२॥

अथ अभिलाष

तोटकछंद

अवलाष बषानत धीर हियं । जहँ पूरन प्रेम प्रकास कियं ॥
गहिरे परि रूप समुद्र जलं । चित्त आवतु फैननि तेन थलं ॥१५३॥
मनु प्रानपती अनुचार करै । तनु पूरनु आयु अवद्धि भरै ॥
अति लज्जति सुंदर काम वसं । चित चाहति चाहन रूप रसं ॥१५४॥
तिहि भावतु भौनु न संग सषी । जिहि नैन निरंतर प्रीत वसी ॥
विधि वंधि वषगंन[1] यौ चलियौ । नट के कर ज्यों करमत्तु लियौ ॥१५५॥

(दोहा)

सदा रहतु मन चित्त मै, मन तै पंडित[2] वित्त ।
ताहि कहति अवलाष कवि, इत उत चलहि न चित्त ॥१५६॥
नृप तनया रंभावती, कोमल अति सुकुमारि ।
विरह जान अभिलाष मन, सकति न अंग सम्हारि ॥१५७॥

अथ चिंता

मिलन होत चिंतनु करहि, जतन विचारहि बाल ॥
सो अवस्थ चिंता कहत, कोविद काव्य रसाल ॥१५८॥
नहि निरषतु नैननि सजनु, सकति न विरह निवाहि ॥
विरहिन चित चिंता करहि, क्यौं करि देषौं ताहि ॥१५९॥

१—स. द. वषग्गुनियो । २—ब. स. द. पंडित ।

(चौपही)

चित चिंता चितवै सुकुमारी। किहि विध मिलै प्रान अधिकारी।
फिरि देषौं वह मूरति मैना। सुधा सरोवर सीचौं नैना ॥१६०॥
विधि विवेक बल बहुत सम्हारे। अतन दाह बहु जतन बिचारे।
आवति नहीं चेत चतुराई। इक अबला अरु विरह सताई ॥१६१॥
मार सुमार मार सर कीनी। छुधा त्रिषा निंद्रा हरि लीनी।
बहु विध जतनु विचारत बाला। मदन बान उर लगे विसाला ॥१६२॥
नैन मुदित मिसु करि पुनि सोवै। देषहि नहीं बहुरि पुनि रोवै।
इहि विध सेज वहै वह धामा। सुकल रैनि अरु वे नहि स्यामा ॥१६३॥

(दोहा)

पहुकर विरह वियोग बस, विवस वियाकुल बाल ॥
चिंता दुतिय विवस्त[1] मैं, वहै विरह बेहाल ॥१६४॥

अथ स्मृति[2]

(दोहा)

निस वासर विसरै नहीं, लोभु लग्यौ जिहि जाहि।
प्रान पती सुमिरतु सदा, स्रुम्रित कहति कवि ताहि ॥१६५॥
रूप रासि मन भावतौ, सुदिन चढ्यौ चितु आइ।
दंतु महावत चित्तु ज्यौं, क्यौ सहि उतरि न जाइ ॥१६६॥
नृप कन्या सुकुमारिका, देषौ दरस अनूप ॥
धरौ हिदै निधि रंक ज्यौं, फिरि फिरि सुमरहि रूप ॥१६७॥

(छंद कंठ भूषन)

सुंदर रूप अनूप सम्हारै। रैनि दिना नहि ताहि बिसारै।
अंतर भेद कहै नहि काहूं। लाजन बात जनावै ताहूं ॥१६८॥
नैननि देषति मूरति आनै। रोचकि बात सुनहि नहि कानै।
दीरघ दुक्ख बहै बर बाला। ब्याकुल काम वियोग बिहाला ॥१६९॥
षोडस द्वादस भूषन लाये। पौढ़न पान सबै विसराये।
कंठ अभूषन कै वह नामा। यौं सुमरै सुष प्रीतम स्यामा ॥१७०॥

१—द्वितीय अवस्था। २—मूलपाठ में सभी प्रतियों में स्रुमिता लिखा है।

अथ गुण कथन

बल्लभ सुमिरि गुनानं, बाल मुत्ति गुंथि उरमाला।
सो गुनु कृत्ति वषानं, धीरं कवि वेद अवस्था ॥१७१॥

(दोहा)

सुहृद संग गुनु विसतरै, प्रीतम प्रीत प्रवीन।
सो अवस्थ गुन कीरतनु, कोविद कहत कवीन ॥१७२॥
मुदिता सौ रंभावती, कहति सुनहि सषि बैन।
इहि विधि रूप सरूप मै, कहूं न देष्यौ नैन ॥१७३॥
सषि निरष्यौ मै नैन भरि, रूप राषि अंग अंग।
वरनन करत न आवही, बुद्धि भई गति पंग ॥१७४॥

(छंद संषधारा)

भइ बुद्धि पंगा। लष्यो सोम अंगा ॥
अपारं अनूपं। मनौ रासि रूपं ॥१७५॥
सुरज्जं सुनैनं। गिरा मेव बैनं ॥
धरै मुक्ति हारं। किरीटं कुमारं ॥१७६॥
लसै कंबु ग्रीवा। मनौ सोम सींवा ॥
सरूपं सुजानं। हरै नैन प्रानं ॥१७७॥
बसै चित्त माहीं। टरै नेक नाहीं ॥
कहा कृत्ति गाऊँ। जु पारै न पाऊँ ॥१७८॥

(दोहा)

इहि विधि गुन कीरति ररै, व्याकुल विरह कुमार।
सब अवस्त क्रम क्रम प्रगट, पुहुकर कहत विचारि ॥१७९॥

अथ उद्वेग

(दोहा)

बिरह विकल तन मैं परै, दाहन दुषद अनेग।
गेह विषै विष सम लगै, सो अवस्थ उद्वेग ॥१८०॥

(छंद पद्धरी)

विरहिनिय विकल उद्वेग संग। अति विथति वान जे हति अनंग ॥
आभरन दुसह इमि लगत अंग। जनु डसत छुधित विषधर भुअंग ॥१८१॥

उद्दित सुइंदु अरु संगतार । जनु वरसि पहुमि अंगार धार ॥
लागत कठोर कर कमल फूल । विष तुल्य परसि दाहन दुकूल ॥१८२॥

पिक्खत बसंत भय होत छीन । मनमथ्थ राज दल साज कीन ॥
मालती मत्त अरु मलय वास । सीतल सुगंध सब सूल तास ॥१८३॥

इक दिवस दीर्घ अरु दुसह रैनि । इहि सहति नहिन सारंग नैनि ॥
इक ब्रम्ह दिवस सत ब्रह्म आउ । इक ब्रह्मदिवस अरु इंद्र वाउ ॥१८४॥

(दोहा)

पुहुकर जब वासर बढ़ै, तब रजनी घटि जात ।
यह अद्भुत गति पेषियै, दिनौ बढ़ै अरु रात ॥१८५॥

(चौपही)

दिवस दीर्घ अरु जामिन भारी । नहिन सम्हारि सकत सुकुमारी ।
दिन दिन जरति अगिनि की झारा । अग्नि रूप देषहि संसारा ॥१८६॥

तनु यह कीन कमल दल नैनी । मदन अग्नि दाहति पिक बैनी ।
अनिल सहाइ करै तहँ जाई । सांस गंभीर देहिं परजाई ॥१८७॥

और सनेह परिहिं तहँ आई । तिहि विनु घरी घरी अधिकाई ।
काया भस्म करै इहि आसा । उड़ि करि जाइ प्रान पति पासा ॥१८८॥

अथ प्रलाप

(दोहा)

विरह दुषित वर विरहिनी, व्यापहिं उर संताप ।
अति विलाप विलषित रहै, सो कवि कहत प्रलाप ॥१८९॥

(चौपही)

रंभावती अति करति प्रलापू । विधि बहु कौन पाप संतापू ॥
हौं अबला कोमल सुकुमारी । सो सठ मदन पंच सर मारी ॥१९०॥

(दोहा)

प्रीतम पै उड़ि जान कौ, जार करौं तनु षेह ।
पुहुकर विधि नहि सहि सकै, भीजै लोचन मेह ॥१९१॥

(चौपही)

तापर सूर कहावत पापी। त्रिय वध सदा करत संतापी ।।
उदित मंद अति चंद अकासा। तिहि यह तपति लई तिहि पासा ।।१६२।।
द्वै मधि देव एक नहि करई। देहि न प्रान प्रान नहि हरई ।।
अति दुष मरन मनावति बाला। मदन बान उर लगे बिसाला ।।१६३।।
मुदिता सौं इमि कहति कुमारी। मो मन पीर सुनहि जो प्यारी ।।
किहि विधि कहौं कहत नहि आवै। यह दुष छोड़ि मरनु मुहिं भावै ।।१६४।।
अति निरदय सुर नर मुनि कोई। तृपित भयौ मम जीवन षोई ।।
पावति नहीं ठासु जहँ जाऊँ। जानति नही नासु जिहि गाऊँ ।।१६५।।
हौं अबला अनाथ अति दीना। सो विधि करी विरह आधीना ।।
मगन भई दुष सागर माहीं। तिहि सर नाव न केवट नाहीं ।।१६६।।

(दोहा)

बूड़त विरह समुद्र मैं, काढन को समरथ्थ।
जौ करतार कृपा करैं, पियहिं गहावै हथ्थ ।।१६७।।
तन अंगार भौ त्रिय तनहिं, करहि दीनता छीन।
घरी घरी घट तै घटै, विरह रोग करि हीन ।।१६८।।

(छप्पय)

सुर अवस्थ उन्माद व्याधि इमि जान वषानहिं।
प्रेम पाउ उनमत्त जंतु जग मग्ग वषानहिं ।।
वचन भुल्लि पुनि कहइ प्रान प्रानेसुर सथ्थहिं।
धीर चित्त नहि धरहि बुद्धि नहि आवहि हथ्थहि ।।
अति कठिन पीर जिय जानि करि कवि पुहुकर इमि उच्चरहि।
कि होइ जिवनु साजन सहित कि प्रीत फंद कोई जिन परहि ।।१६९।।

प्रीत फंद परयौ जदिन लोभ अरु लाज विछुट्टिय।
लोभ लाज छुट्टियौ संक लंका जिमि टुट्टिय ।।
संक लंक जिमि टुट्टि कान गुरजन सब भुल्लिय।
भुल्लि कान गुर ग्यान चित्त इत उत नहि डुल्लिय ।।
इत उत न चित्त पुहुकर डुलै देह गेह नेहा भर्यौ।
भरि गयौ देह नेहा सकल जदिन प्रीति फंदह पर्यौ ।।२००।।

(सवैया)

काम रस माती उन्माती सी बिहाल बाल
प्रेम के समुद्र माझ मगन परी है जू ॥
भूली सी फिरति ज्यौं कुरंगिनी कुरंग नैनी
मानौ सर पंच नैनी जीवनि हरी है जू ॥
अंजनु बनायौ भाल, चंदन सौं आँजे द्दग
सकल सिंगार विपरीत को करी है जू ॥
बीरी लावै कान नहिं ग्यान न सयान कछू
बारूनी के पान ज्यौं विधान बिसरी है जू ॥२०१॥

(दोहा)

पुहुकर जब मनमथ्थ पथ, पूरति सूरति मित्तु ।
तिहि छिन सब तन अतन ह्वै, औरन आवतु चित्तु ॥२०२॥

गुन हित ज्यौं इंद्री सकल, प्रान तजे पुनि जीव ।
तिहि अवस्थ उन्माद मै, प्रान तजे नहि जीव ॥२०३॥

व्याधि वर्णन

मदन अग्नि अति उपजि कै, विरह जरन तन होइ ।
बहुरि रोगु वपु विस्थरै, व्याधि कहतु सब कोइ ॥२०४॥

जिहि न मूरि औषद लगै, जाहि तंतु नहि मंतु ।
पिय पऊष पावै नही, व्याध कहत इमि जंतु ॥२०५॥

विरह विथा रंभावती, प्रान पती मनु लीन ।
दुषित देषि दिन दिन दुसह, होति छिनहिं छिन छीन ॥२०६॥

(चौपही)

छिन छिन छीन होति कटि छीनी । एकहिं बेर विरह बस कीनी ॥
जुर संताप मोह निस्वासा । संभ्रम सदा कास उस्वासा ॥२०७॥

असित पच्छि विधि जो निसि होई । घट सुत उदै नीर जिमि होई ॥
सूर प्रकास वोस कन जैसे । विरह बान मनमथ हैं ऐसे ॥२०८॥

प्रीत बदन ताली दल आंमा । पूरब बरन कहै कवि कांमा ॥
तन तरुता इहि भाँति जनाई । मानौ निकट अतनता आई ॥२०९॥

(दोहा)

विरह व्याधि मैं विरहनी, व्याकुल विरह विहाल ।
पंच बांन विहवल भई, पुहुकर अबला बाल ।।२१०।।

अथ जड़ता

(दोहा)

गुनहिं छोड़ि गति पंगु ह्वै रहै चित्र सम देह ।
तासौं कवि जड़ता कहैं नव अवस्थ नव नेह ।।२११।।
नृप कन्या सुकुमारिका विरह भई जड़ येमि ।
निसि वासर विसरै नहीं चित्र लिषी विधि जेमि ।।२१२।।

(चौपही)

नैन तार उवरै नहि काऊ । मनौ गये पिय पास अगाऊ ।।
बैन बोल रसना नहि आवै । घ्रान भाव नासिका बतावै ।।२१३।।
श्रवनन सुनै बोल सहचारी । परस कठोर सहै सुकमारी ।।
मृतक तुल्य जीवनि इमि देषी । मनहु नृजीव विरह बस लेषी ।।२१४।।
मित्र नाम पुलकित ह्वै आयो । जीवन भाव तहाँ कवि पायो ।।
यौं परजंक पौढ़ि छबि पाई । पुत्री चित्रु सेज बनवाई ।।२१५।।

(दोहा)

महा मोह अरु मूरछा, देषत सषी निरास ।
पुहुकर जीवनि जानही, एक साँस की आस ।।२१६।।
नव अवस्थ बरनन कियौ, पुहुंकर कवि मति जोइ ।
दुस्सह दस्म अवस्थ है, सो साजन नहि होइ ।।२१७।।
सो मुँहि कहत न आवहीं, राषतु हौं कहि गोइ ।
ताहि कहत रसना जरै, मत वरनौ कवि कोइ ।।२१८।।

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वप्न षंडे नव अवस्थ वर्ननो नाम अष्टमो अध्यायः ॥८॥

अथ मदन मुदिता विरह प्रगट करौ तस्य वरनन

(छप्पय)

नव अवस्थ परतिच्छ पिक्खि मुदिता मलीन मन ।
चित्त मंत्त उपजंत बहुरि देषत कंप्पौ तन ।।

सहचरि सबै बिचार कहहिं कारन का किज्जै।
जो सु दई पुनि लेहिं प्रान पलटै करि दिज्जै॥
अब नहिन आस जीवनि कुँवरि किहि संग रमहि अभागिनिय।
विरदंतु सकल बिनवहि जहाँ पुहुँपावति पटरागनिय॥२१९॥

(दोहा)

अभिनासी की आस करि, चित्त न आनति और।
विजयपाल महिषी जहाँ, सकल गईं तिहिँ ठौर॥२२०॥
मुष मलीन लोचन सजल, भरि भरि लेहिं उसास।
करि प्रनाम ठाढ़ी भईं, पुष्पावति के पास॥२२१॥

(चौपही)

मुदिता कहै सुनौ नृप रानी। कहत न आवै अकथ कहानी॥
रंभावति वेदनि अधिकारी। छिनकु न घटति दिनहुँ दिन बाढ़ी॥२२२॥
हम तुम सौं सब कहत सकाहीं। पै अब बनतु दुराये नाहीं॥
वेदनि विरह विषम अति पीरा। पंच वान कर दहहिं सरीरा॥२२३॥
नहि जानति किहि धौं मनु लीनौ। स्वप्न दरस परगट जिहि दीनौ॥
और न नामु कह्यौ विसवासी। कौनु कुमार कहाँ कर वासी॥२२४॥
कै गंधर्प किधौं कोऊ देवा। कै दानव प्रानन कौ लेवा॥
चौदह भुवन जाहि गमु होई। जो यह जतनु करै कछु कोई॥२२५॥
नव अवस्थ अंग अधिकानी। दसम अवस्थ आय नियरानी॥
हम सब मरैं कुँवर संग लागैं। यहै प्रवाँनु करैं तुम आगैं॥२२६॥

(दोहा)

यह कहि सब सहचर चलीं, वरषि नैन जलधार।
संग लागि पहुँपावती, निपट विकल विकरार॥२२७॥
देषि सुता विह्वल भई, धरनि परी मुरझाइ।
उदित वचन आवै नहीं, विधि सौं कहाँ वसाइ॥२२८॥
जे अर्थी द्विज द्रव्य के, तिनहिं दियौ बहु दान।
नैन सलिल सुर सर थपी, करवायौ अस्नान॥२२९॥
कर जोरे विनती करै, सीसु नाइ धरि ख्याल।
अब अवस्थ करुना करैं, ये प्रभु दीन दयाल॥२३०॥

तिहि छिन फिर लोचन पुले, सबन भई मन आस ।
अति आतुर पहुँपावती, गई नृपति के पास ॥२३१॥
नहि लज्जित वेदनि कहति, सूझतु नहीं उपाइ ।
हृदै एक निस्चै करौ, श्रीवर करैं सहाइ ॥२३२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वप्न षंडे मातु चिंता वर्ननो नाम नवमो अध्यायः ॥६॥

(दोहा)

दिनकर देव प्रसिद्ध हैं, अगम निगम जग नाम ।
जे नर तुव सेवा करहिं, तिनहि देत मनकाम ॥२३३॥

(छंद भुजंग प्रयात)

नमो देव देवं दिवानाथ सूरं । महा तेज सोभं तिहूं लोक रूपं ॥
उदै जासु दीसं प्रदीसं प्रकासं । हियौ कोकसोकं तमं जासु नासं ॥२३४॥
उदै जासु जागंत सिद्धं विहानं । करैं विप्र आरंभ अस्नान दानं ॥
छुटै बंध बंधानु गोवत्स पावैं । पसू पच्छ पंच्छी सबै भच्छ पावैं ॥२३५॥
सुचै अग्नि होत्रा करैं होम जागं । भनैंवेद आधीन विद्या करागं ॥
करैं नेम पूजा रचैं देव सेवा । जबै सूर ऊगंत देवाधि देवा ॥२३६॥
सजै उद्दमी उद्दिमी सिद्धि साजं । मिले मंत्रि जे राजकाजं समाजं ॥
प्रफुल्लिन्त वारिज्ज सोहंत हासं । भये मीन मृग यान प्राची प्रकासं ॥२३७॥
कृपा सागरं दुष्य नासं कृपालं । सदा कामदं देव दीनं दयालं ॥
जिते जंतु प्रानी किये ध्यानु ध्यावैं । सदा काम धर्मार्थ मोक्षादि पावैं ॥२३८॥

(दोहा)

इहि विध सविता सेइ कै, सो जाँचति कुँवरि निरोगु ।
पुहुकर मिटै न तदपि दुष, विना किये संभोगु ॥२३९॥
जदिप अंतर अधिक है, दुसह विरह वियोग ।
जतन जतन दिनकर कृपा, ह्वैहैं विधि संजोग ॥२४०॥

अथ दुतीय स्वप्न वर्णन

(दोहा)

वरष दिवस पूरन भयौ, सुरति करी रति नाथ ।
जौ सुध्यान धरि देषहीं, तौ अति दुषित अनाथ ॥२४१॥

नव अवस्थ व्यापित भई, दसमी रहि नियराय ।
तव चित चोर विचार किय, साचहुँ मत मरिजाय ॥२४२॥
तब मन करुना कर चलौ, बहुरि धरौ वह रूप ।
वहै हाल सब सर्वरीं, वहै सिंगार अनूप ॥२४३॥
द्वारपाल अरु सहचरी, ते सब रहे निदाइ ।
जौन अर्ध निसि डहडही, दरस दियौ फिरि आइ ॥२४४॥

(छंद तोटक)

बहुरै फिरि आइ दरस्य दियं । जिहि को चितु चाहत चोरि लियं ॥
तन चंदन सोभित हार हियं । कृत कुंडिल सीस किरीट श्रियं ॥२४५॥
दल पंकज नैन धनुक्क भ्रुवं । बरुनी जनु सायक संग हुवं ॥
छबि उप्पम आनन आन गही । वरनै कवि इंदु प्रवींन सही ॥२४६॥
भुज दीरघ वत्त विसाल लसै । जुवती जनु लोचन माँह वसै ॥
मन मोहन सोहन अंग सबै । चितयौ भरि नैन कुवाँरि तबै ॥२४७॥
निच्छावरि लै सरवस्स कियं । मृत के जनु जीवन फेरि दियं ॥
तन सीस फिरी फिरि पाइ गहै । मृदु बैननि राज कुमारि कहै ॥२४८॥
चित प्रान पती मन मैं न धरौ । तिरिया वध कारन कौन करौ ॥
जबतै तुम प्रेम प्रकास करौ । मुहि पौढ़न पान सबै विसरौ ॥२४९॥
दुष सागर एक वरक्ख रमं । वितियौ मुहि ब्रह्म वरक्ख जिमं ॥
तुम देव किधौ तुम दानव हौ । किधौं गंध्रप यच्छ कै मानव हौ ॥२५०॥
नहिं जानति ना मन ठाम कहूं । अटक्यौ मनु नेक अलंवतहूँ ॥
मुहि दीन गनौं ढिग ईस हिये । विरदंतु कृपा करि कै कहिये ॥२५१॥

(दोहा)

अति आरत विनती करौं, बहुरि रहौं गहि पाइ ।
मन मोहन चित चोर सो, तव बोलौ मुसक्याइ ॥२५२॥
विधु वदनी वर विरहनी, रतिदुति राज कुमारि ।
सत्य बहुत दुष्षित भई, विरह वेलि विस्थारि ॥२५३॥

(छंद पद्धरी)

विस्थार विरह वल्ली समूल । किमि सहति सत्ति यह दुषह सूल ॥
यह जानि मुहिन नाहिनै चित्त । अवरेष चिंत मूरत्ति भित ॥२५४॥

विधि वंध्य प्रगट गावत पुरान । संसार सकल पुनि वर्तमान ॥
नहि एक ओर निर्वाह प्रीत । दुहु ओर होइ तौ प्रेम रीत ॥२५५॥
पाहन पषान जे करहिं सेव । परसन्न हौंहि मन चाहि देव ॥
जिहि लाग सहति संतापु एत । सो रहहि सुषित कहु कवन हेत ॥२५६॥
जद्दपि वियोगु सब अति अनाथ । दुष दुसह दहन त्रैलोक नाथ ॥
करु जनु वियोगु वस मनु निरास । जिय जानु सत्य संजोग आस ॥२५७॥
पूछहि विचार गुन नाम पच्छ । नहि असुर देव गंधर्व जच्छ ॥
मानवह जन्म करि किय प्रकास । रवि किरनि छाँह महि लोक बास ॥२५८॥

(दोहा)

अमृत वचन श्रवननि सुने, नागरि चतुर सुजान ।
परम प्रेम प्रमुदित भई, मनो दिये नव प्रान ॥२५९॥

(चौपही)

मुदित रोम पुलकित ह्वै आये । मानौ प्रान मृतक फिरि पाये ॥
दुष संताप अंत इमि कीनौ । षट रस असन छुधित कहँ दीनौ ॥२६०॥
मानौ तृषावंत जल पायौ । प्रेम घाइ जनु ओषद लायौ ॥
एक एक अच्छर सुष दीनौ । मानौ राज तिहूँ पुर कीनौ ॥२६१॥
अति रसाल चितवनि मुसक्यौंही । देषत नैन तृपित नहिं हौंही ॥
रंग अरु रूप रची सुकुवाँरी । अंग अंग ऊपर बलिहारी ॥२६२॥
तिहिं छिन जन्म सुफल करिजानौ । प्रान नाथ देषत सुषु मानौ ॥
बहुरि कहै का करौं वधाई । जनु मनु करौं निछावरि माई ॥२६३॥

(दोहा)

हाहा अब जनु वीछुरौ, कहति रहति गहि पाइ ।
विरह अवधि विधि निर्मई, कौनु सकै घटवाइ ॥२६४॥
इहि अंतर हग नीदि महि, फिरि बैठी उठि जागि ।
निकट ताहि पेष्यौ नहीं, विरह अग्नि तन लागि ॥२६५॥

(कवित्त)

विरहानल मैं जड़ ह्वै जुवती
निसि पौढि पलंक पलक लगायौ ।
प्रभु पेषत प्रेम प्रसन्नि भये
सपनै पिय प्रान पती दिषरायौ ॥

अति आँनद चाहि प्रमुक्ति प्रिया
अरु चाहति लाल हिँये उर लायौ।
तेही समै द्दग नीद नठी
उबरीं अँखिया असुवाँ भरि आयौ ॥२६६॥

(छंद प्रियंगसु)

नैनन नीद निवट्टिय पिष्षिय प्रान पिय।
अस्सुनि नीर पमुक्कि गंभीर उसाँस लिय ॥
अंगहि अनूप सरूप विचारि जिय।
जागी है कारन कौन परेषौ चित्त किय ॥२६७॥

प्रात कलिंद प्रकास सषी उठि देषहीँ।
बैठी है राजकुमारि प्रजंक सुपेषहीँ॥
लोचन लोल विसाल विलोकनि राजहीँ।
प्रान पती पिय ध्यान किये छवि छाजहीँ ॥२६८॥

सोभित नैन कुलाहल सुंदरि सोहई।
अभरन अंग सम्हारि सहेलिनि मोहई॥
लच्छिन सुद्ध प्रकृति पुरातन पेषहीं।
मावसि जेमि पलट्टि दुती दुति लेषहीं ॥२६९॥

देषि प्रसन्न सषी सब सोच विचारहीँ।
कालि रही तुछ आयु सांस आधारहीँ॥
आजु भयौ चित चेत सम्हार दुकूल तनु।
राजति आनन कांति कला नव चंद जनु ॥२७०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वप्न षंडे दुतीय स्वप्न वरविनोद वर्ननोनाम दसमो अध्यायः ॥१०॥

(दोहा)

सषी सकल प्रमुदा प्रमुष, मुदित न अंग समाइ।
मृतक भई जीवनि निरष, मनु वलिहार कराइ ॥२७१॥

(चौपही)

निकट आइ मुदिता बलि जाई। प्रमुदित मनौ रंक निधि पाई॥
कहति सुनुहिँ प्रानन की प्यारी। इहि दिन छिन ऊपर बलिहारी ॥२७२॥

नहि जीवन तुहि अंग जनायौ । अब चितु चेत कौन विधि आयौ ॥
कै कहुँ मूर सजीवँनि पाई । कै अब तरी फेरि कलिआई ॥२७३॥
कै तुहि मिल्यौ धनंतर कोई । कै निरष्यौ सपनंतर सोई ॥
कहति सुनहिं सषि दुसह सँघाती । मन मोहन निरष्यौ मैं राती ॥२७४॥
वहै रूप वैसी छवि देष्यौ । मानहुँ सूरति मैन विषेष्यौ ॥
अरु वचनन चातुर चितु लीनौ । मानौ श्रवन सुधा पुट दीनौ ॥२७५॥
प्रेम जुग्त उच्चरि इक बाता । हौं तुव नेह निपट करि राता ॥
विधि वंधातु करौ चित आसा । होहि संजोग रहौं तुव पासा ॥२७६॥
मैं पूछौं तुम नर कै देवा । विनही नाम करौं जौ सेवा ।
मानव जन्म कह्यौ हम आहीं । बसहि पास महिमंडल माही ॥२७७॥
इहि अंतर दृग नींद नसानी । पुनि जागति सब रैनि विहानी ॥
अब जौ जतनु करौ कछु जाई । तौ तुम गहरु करौ कत माई ॥२७८॥

(दोहा)

यह सुनि मुदिता अंग छ्वै, वचनु कह्यौ मुसिक्याइ ।
सप्त द्वीप नव षंड मैं, अव नहि मो पर जाइ ॥२७९॥
गुरु अरु देव प्रसाद तैं, इती बुद्धि बल मोहिं ।
महिमंडल मैं प्रान पति, आनि मिलाउँ तोहिं ॥२८०॥
उमगि उठीं सब सहचरी, पहुँपावती के पास ।
मन प्रमुदित प्रमुदा प्रमुष मुष मंडित मृदु हास ॥२८१॥
अति आनंद वचननि कहै, सकल रहीं गहि पाइ ।
चेतु भयौ रंभावती, स्वामिनि देषौ आइ ॥२८२॥
मदन मुदित इमि उच्चरै, सत्य भयौ चितु चेत ।
सपनंतर कोइ नर लषौ, दुक्ख सह्यौ जिहि हेत ॥२८३॥
और सुगम मानव जनम, वसत जू भूतल माँहि ।
जौ अव जतन न होंहिगौ, तौ फिरि जीवनु नाँहिं ॥२८४॥
मुष मुदिता मृदु वचन सुनि, राज वधू सचुपाइ ।
दुहिता दरसन कारनै, चली चपल गति धाइ ॥२८५॥

(छंद पद्धरी)

सुनि मुदित मुष मृदु बोल । उठ चली कामिन लोल ॥
चष चषी राज कुमारि । तनु प्रान करि बलिहारि ॥२८६॥

तिन जीव जीवनि देषि। कृत कृत्ति जीवन लेषि॥
ससि द्वैज आनन जोति। जनु मुक्ति मावसि होति॥२८७॥

उर अंग अति बल छीन। अहि वेलि जल जनु हीन॥
तब निरषि जननी बाल। करि सजल नैन विसाल॥२८८॥

उठि आदरिय तिहिं काल। इमि कहत वैन रसाल॥
सुहि चित्त आयहु चेतु। सुनि मातु तुव मन हेतु॥२८९॥

तब जननि लिय उर लाय। मुख निरष लेति बलाय॥
भुज भरति वारंवार। बह धरनि चलि पय धार॥२९०॥

(दोहा)

असन पान जतनहि करौ, सषियन आइसु दीन।
आपुन मुदिता संग लै, गवनु धाम कहँ कीन॥२९१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वप्न षंडे सषी
प्रमोद बर्ननो नाम एकादसमो अध्यायः॥११॥

———

चित्र खंड

(दोहा)

कहति वचनु एकांत ह्वै, साजहु वेगि उपाइ।
बुधि विवेक बल चातुरी, सो नरु देव बताइ ॥ १ ॥

तब मुदिता इमि उच्चरै, मो मन एक उपाइ।
तौ इहि विधि सों कर चढ़ै, जो तुम करौ सहाइ ॥ २ ॥

चित्रकार दिसि दिसि भ्रमहिं, ते अति चित्र अनूप।
राज कुँवर राजानि के, लिषहिं नाम अरु रूप ॥ ३ ॥

ते सब रंभा देषि करि, जाहि कहै यह आहि।
सुता स्वयंबरु ठाठि कै, बहुरि बुलावहु ताहि ॥ ४ ॥

पहुँपावति परवीन अति, वचनु मानि मनु लीन।
चित्रकार पठवन निमित, जतनु ततच्छन कीन ॥ ५ ॥

अथ पहुँपावति रानी सुमतिसागर मंत्री कौ बोलि, दिसदिसा देस देसांत चित्रकार पठवत निमंत्त आग्या देत भई तस्य वर्नन

(दोहा)

विजयपाल परधान प्रिय, जिनि बुधि बहु घर लीन।
नाम सुमति सागर सगुन, बोलि विचार सो कीन ॥ ६ ॥

(चौपही)

सुनत सुमति सागर उठि धायौ। स्वामिन द्वार आनि सिर नायौ ॥
नृप गृहनी पुनि निकट बुलायौ। अंतर पट अंतर बैठायौ ॥ ७ ॥

तब मुदिता कहँ आयस दीनौ। कहौ वृतांत जोर विधि कीनौ ॥
मुदिता कहति कहन नहि आवै। मति यह भेदु नृपति सुनि पावै ॥ ८ ॥

रंभावति कोमल सुकुमारी। अति लजति सजति नहि वारी ॥
अकसमात मनमथ सर मारी। अब लै विरह जलधि मैं डारी ॥ ९ ॥

(दोहा)

वहै मंत्र मंत्री करयौ, जो मत मुदिता दीन।
चित्रकार पठवन निमित, जतन परसपर कीन ॥१०॥
उभै स्वप्न विरदंतु सुनि, मदन मुदित वरवाल।
इहि विधि साजौ वारता, जिहि न सुनहिं भुवपाल ॥११॥
पहुँपावति इमि उच्चरै, यहै सुता यह पूत।
इहि बुधि वचनु विचारियौ, जेहि न लेइ जमदूत ॥१२॥

इति श्रीरसरतन काव्ये कवि पुहकर विरंचितैयं चित्रषंडे सुमति सागर कौ अग्यानवर्ननो नाम प्रथमो अध्याय ॥१॥

अथ बुधि विचित्र आदि द्वैसप्त सत चित्रकारपयान वर्णन

(दोहा)

नृप गृहनी आइसु दियौ, लियौ बंदि परधान।
चित्रकार दिसि दिसि चले, ऊषा उठत बिहान ॥१३॥
बुधि विचित्र इमि आदि द्वै, नृप सेवक सत सात।
सुमति सुआग्याँ पाइ कै, सकल चले परभात ॥१४॥
वचन सुमति सागर कहै, जे नर नृपति सरूप।
दिसि दिसि पुर पुर पेष करि, लिषौ नाम अरु रूप ॥१५॥
भरथ षंड सागर जिते, जिते देस पुर ग्राम।
जे पिष्यौ सुंदर सुघर, लिष्यौ रूप अरु नाम ॥१६॥

(चौपही)

चल्यौ विचित्र बुद्धि सब आगै। जे सत सप्त रहे सँग लागे ॥
अगम अगोचर जानन हारे। दिसि दिसि चले ते न्यारे न्यारे ॥१७॥
प्रथम सिद्धि गनपति सिरु नायौ। पुनि द्विज मंगल वैनु सुनायौ ॥
बहुरि सगुन सब भये अगाऊ। मनं उत्साह उठ्यौ अति चाऊ ॥१८॥
दिसि दिसि भ्रमहिँ भ्रमर जिमिवासी। फुले फूल जिमि लेहिं सुवासी ॥
जो नर सुंदर लषैँ विचारी। तिहिँ को लिषैँ नाम अनुहारी ॥१९॥

देषिहि॰ भूपति राज कुमारा। देषहि॰ तरुन रूप अधिकारा॥
चरचहिं चित महँ चतुर सुजाना। तरुन रूप जानहिं॰ उन्माना॥२०॥
मदन मनोहर देषहि॰ जोई। चित विचारि अवरेषहि॰ सोई॥
मन कौ भेद न काहूं देही॰। सब रस रूप भँमर जिमि लेही॰॥२१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चित्र षंडे चित्रकार पयान वर्ननो नाम दुतियो अध्यायः॥२॥

अथ सूर सैन कौ विरह वर्णन

(सोरठा)

पुहुकर प्रीति प्रकास। विरले जानत जगत में॥
को यह जाननहार। जो जानै त्रनु ज्यौं॰ जगत॥२२॥

(सोरठा दोहा)

चित्र आस रंभा रही, इत तन तलफइ॰ सूर।
रोम रोम छुति भिदि लगे, कामबान अति पूर॥२३॥

(छंद भुजंगप्रयात)

हनै बांन कंमान कै काम क्रूरं। भिदे अंग सोमेस कोमार सूरं॥
महा मोह उन्माद उच्चाट मारं। लग्यौ सोक बानं सुषं अंत कारं॥२४॥
गई नैन निंद्रा भयौ अंग छीनं। तलफ्फै ललफ्फै विना नीर मीनं॥
न जानै निसा द्यौस भानै न चन्दा। सँहारै न अंगै परौ प्रेम फदा॥२५॥
न लोभं न माया न चिंता न चैनं। न सुद्धं न बुद्धं न विद्या न वैनं॥
न चालं न ख्यालं न षानं न पानं। न चेतं न हेतं न अस्नान दानं॥२६॥
न नृत्यं न गीतं न वादित्र वादं। न आषेट आरंग स्वारंग स्वादं॥
न धामं न धीरं न हासं न बासं। भुजंगी जिमै लेहि उस्वास श्वासं॥२७॥
विसुद्धं विलग्नं विमूलं बियोगी। भयौ पीत रंगी मनौ अंग रोगी॥
विसारे सबै चार आचार चित्ता। करै जीय ध्यानं हिये एक मित्ता॥२८॥

(छप्पय)

जदिन रैनि मृगनैनि नारि सपनन्तर पिष्षिय।
रूप रास मन पास मदन मुदिता मुख दिष्षिय॥
विरह वृच्छ उपज्यौ समूल अभिलाष नैन मन।
सुमति साषि विस्थरिय मोह संताप छाहगन॥

आल बाल आलंब वहु वनै न सलिल सींच्यौ अमल।
प्रति जाम जाम लग्यौ वढ़न सुफल्यौ तटक वियोग फल ॥२६॥

(दोहा)

मैन घरनि पति मंत्रु करि, धरि रंभावति रूप।
सूर सैन कौ स्वप्न मह, दीनौ दरस अनूप ॥३०॥
दंपति कारन ठाठ कर, मन दंपति संजोग।
एक समै अरु एक निसि, द्वै उर धरे वियोग ॥३१॥

(चौपही)

होत प्रात उग्गित जो[1] प्रकासा। सूर कुँवर तब उठ्यौ उदासा ॥
निपट अधीर धीर नहि गहई। सर्वसु गये रंकु जिमि रहई ॥३२॥
ज्यौं बिन नीर मीन दुष पावै। ज्यौं व्याकुल चित चैन न आवै ॥
उच्चरत विप्र वेद धुनि बानी। अरु वंदी जनु कहत कहानी ॥३३॥
गुनि जन नृत्य गान कहँ आये। वाहन हय हाथी पषराये ॥
संष तूर बाजहिं निस्साना। सुभट सभा सब जुरै विहाँना ॥३४॥
नैक नैक कोर भरि चाहै। एक उसांस सांस निर्वाहै।
नवल नारि मनमथ अभिलाषै। यौं मन भेद वचन नहि भाषै ॥३५॥
चक्रित सकल परसपर चाहैं। उदधि गभीर बुद्धि करि थाहैं ॥
अकसमात अचिरज अधिकानौ। अंतर भेद परत नहि जान्यौ ॥३६॥

(दोहा)

जे कुमार जानत प्रकृति, सदा रहत जे संग।
मनबरती सम मित्र, सम एक चित्त इक अंग ॥३७॥
सब लोगन आइसु दियौ, उठते सैन विचारि।
सकल उलट गृह कौं चले, सीस नवाइ जुहारि ॥३८॥
तब पूछौ विरदंतु मलु, कारन कौन मलीन।
कै जुवती कोउ चित चढ़ी, प्रगटत नेह नवीन ॥३९॥
राज कुँवरि इमि उच्चरै, भरि उसाँस गंभीर।
हौं किहि विधि करि कहि सकौं, चित्त धरतु नहिं धीर ॥४०॥

१—स. द. में यह शब्द नहीं है।

बहुरि रैन कब होयगी, नैनन देषौं ताहि।
सपनंतर कोइ तिय लषी, नहिं जानतु कौ आहि ॥४१॥

(चौपही)

तिहि छिन विरह छाइ तन आयौ। सुष संताप सबै बिसरायौ ॥
काया नगर विरह भयौ राजा। विसरे सकल राज गृह काजा ॥४२॥
सुमरि सुमरि वह सुंदरताई। नैननि नीर होत अधिकाई ॥
छिनकु अचेत चेत फिरि होई। भावंता मिलवै नहिं कोई ॥४३॥
फिरि फिरि सुरति सम्हारे ताही। मन बच क्रम करि चाहत जाही ॥
व्याकुल काम वान सर मारौ। येमि षेलि जनु सर्वसु हारौ ॥४४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चित्र षंडे सूरसैन कौ विरह वर्ननोनाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

अथ रघुबीर आदि राजपुत्र मंत्री निकट वार्ता, सूरसैन कुँवर सौं उपदेश करत भये तस्य वर्नन

(दोहा)

इहि विधि व्याकुलता निरष, कहत राइ रघुवीर।
सपनंतर के सुष दुषहिं, चित्त न आनत धीर ॥४५॥
तुम चौदह विद्या निपुन, नागर चतुर सुजान।
सपन चरित मिथ्या सकल, ताहि लगावत प्रान ॥४६॥
जीवन के जतनहिं करौ, तजि उपदेस अजान।
राज कुँवर उत्तरु दियौ, वस मेरे नहिं प्रान ॥४७॥
नित्य अनित्य जु जोग मत, जानन को समरथ्थ।
सुप्नतुल्य संसार सुष, सदा रहत नहिं सथ्थ ॥४८॥
जौ चित बहु संसार सुष, स्वप्न दरस पुनि नित्य।
जानत हौं अनुरुध कथा, किहि विध कहत अनित्य ॥४९॥

(सोरठा)

व्याकुल विरह सरीर। निपट विकल नहि कल परै ॥
लागे मन मथ तीर। सजन सजीवन नहिं तहाँ ॥५०॥

(चौपही)

राज कुँवर बहुतैं समुझावहिं । प्रेम घाव जनु औषद लावहिं ॥
बिरह व्याधसौं हेतु न करहीं । मित्र नही जो पीर न हरहीं ॥५१॥
छिन छिन छीन होहिं तन पीरा । निपट अधीर धरतु नहि धीरा ॥
बसी प्रान मधि प्रान पियारी । कौनहिं भाँति होहि नहि न्यारी ॥५२॥
बिरह निसान काया पुर बाजा । मन भयौ प्रजा बिरह भयौ राजा ॥
राजपुत्र बहु भाँति बिचारहिं । कहहि कवन विधि चित्त उतारहिं ॥५३॥
मत्त गरुर गजराज मँगाये । आइस सुनत साजि सब ल्याये ॥
कहहिं राज गज कौतिक कीजै । औसरु अजब देषि रस लीजै ॥५४॥
कही कौन तुम बात बिचारी । गजु देषैं भूलहिं वर नारी ॥
गज निरषै मनु मैं न भुलाऊँ । कै मरिहौं कै गज गति पाऊँ ॥५५॥
वहुरि अलप इक बेझौ कीनौ । चाप चड़ाइ कुँवर कर दीनौ ॥
कहहि धनुक धर बान चलावहु । एक एक हय होड़ लगावहु ॥५६॥
ग्यान गनत तहँ पौरिषु हारे । जो जीतहिं सो पहिलै मारे ॥
हस्यौ कुँवरु तुम बात न जानी । हौर मरौ तुम कहौ कहानी ॥५७॥
जा के पाइन गईं बिवाईं । सो कहँ जानै पीर पराई ॥
भृगुटी चाँप वसै मन माही । और चाँपु मन आवतु नाहीं ॥५८॥
वहुरि हिरन मन हरन मँगाये । डोरि लगाइ लरावन ल्याये ॥
कहहिं राज मृग कौतिक कीजै । कछुवक वचनि मान करि लीजै ॥५९॥

(सोरठा)

भरि भरि लेहि उसाँस । सजल नैन बैननि विकल ॥
बोलत वचन उदास । बिसरे हास विलास सब ॥६०॥
पुहकर डाह वियोग । प्रान बिरह बस होहिं जब ॥
का समझावहिं लोग । अग्नि न थिर पारौ रहै ॥६१॥

(चौपही)

सूर कहहिं तुम सुनहु कुमारा । ये सन तुच्छ तजौ व्यौहारा ॥
ये मन मोहन मोहि न भावै । ये मृग नैनि नैन नहि आवै ॥६२॥
जौ कछु होहिं त करौ पुकारा । नातर यह संसार असारा ॥
यह कहि काम अग्नि तन बाढ़ी । बिरह बेलि तरवर तन चाढ़ी ॥६३॥

लेहि उँसाँस नैन भरि जोवै। षन इक चित्त लागि मग टोवै।
अंतर विथा लषत नहि कोई। षन इक तपत मूरछा होई ॥६४॥
चिंता पीर न बिसरै ताही। विरह विथा नहि जाति निबाही॥
असन पान परधान बुलाये। कछुव वचन उन्माद जनाये॥६५॥
षनहि वियोग उदेग सँतापू। बार बार मुष करहिं प्रलापू॥
विरह बिथा सागर अति गाहा। अवधि आस लग तट रहे जाहा[1] ॥६६॥

(दोहा)

समुझि समुझि गुन झुरढवै, रही न चित्त सम्हारि।
षन अचेत षन चेतई, विरह विथा विकरारि ॥६७॥
भरि उसाँसि वचनन कहै, सजल नैन कुस देह।
भूष प्यास निंदा तजै, विरही लच्छन येह ॥६८॥

(सोरठा)

पुहुँकर अर्जुन बान। अरब षरब इक प्रति चलहि॥
ते नहि गनत सुजान। जे घाइल द्रग कोरके ॥६९॥

(चौपही)

चकृत भये सब राज कुमारा। कहहिं कौन कीजै उपचारा॥
कैसेहु चंद हाथ नहि आवै। स्वप्न बात कोउ किहि विधि पावै॥७०॥
यह समझत समझायौ नाही। पाहन लीक परी मन माही॥
जाइ राज कँह बात सुनाई[2]। विवस भये अब कछु न बसाई ॥७१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुंकर विरंचितेयं चित्र षंडे
हित उपदेस वर्ननो नाम चतुर्थो अध्यायः ॥४॥

(दोहा)

सुनत नृपति चित चिंत हुव, सुत सनेह चित लीन।
बोले धीर अधीर ह्वै, निपट भये आधीन ॥७२॥

(सोरठा)

पुहुकर पुत्र सनेह। परम प्रबल जानत जगत॥
साजी दूजी देह। प्रांन पिता विधि वसन कौ ॥७३॥

१—स. द. में यह निचली अर्धाली नहीं है। २—स. द. जनाई।

(चौपही)

पुत्र पावँ जौ काँटौ लागै । जाइ पिता के नैननि जागै ॥
जिहि दिन पुत्र नैकु दुष पावै । सो दिन पितहिं मरन सम आवै ॥७४॥
जौ कोई कहै अमर कलि होंही । अमर पूतु करि दीजै मोंही ॥
सुत दुष देषि मरन मन चाहै । इक रस नेह सदा निर्वाहै ॥७५॥

(दोहा)

सकल लोक जग भुग्गवै, होहि जगत पति ईस ।
मात पिता मन वाच क्रम, बढ़ि कहँ देहिं असीस ॥७६॥
पिता राज अरु जोवनु, अरु मन रंजनि नारि ।
पुहुकर धनकर पूरना, जीवन के फल चारि ॥७७॥

(चौपही)

पंडित सब सौमेस बुलायो । सूर सैन समुझावन आयो ॥
वहु गुनवंत गुनी बहु ग्याँनी । वेद पुरान कहैं सुष बानी ॥७८॥
पठहिं कोक व्याकरन बषानहिं । सुम्रति न्याइ निरनै[1] पहिचानहिं ॥
काव्य कथा बहु भाँति सुनावहिं । बहुत जत्न करि चित्त रमावहिं ॥७९॥
बोलै नहीं सरब गुन ग्याँनी । पूरन प्रीत हृदै अधिकानी ॥
साजि साजि गुनिजन वहु आये । करहिं गान संगीत सुहाये ॥८०॥

(दोहा)

चितन करै नहि चित्तवै, वदनु रह्यौ कुम्हल्याइ ।
नैन नीर भरि आवहीं, लेहिं उँसास अवाइ ॥८१॥

(सोरठा)

पढ़ै चतुर्दस भाइ । विद्या अरु गुन चातुरी ।
प्रेम ठगोरी षाइ । नर भूल्यौ इक पलक मैं ॥८२॥

(चौपही)

दिन न वच्यौ निसि आइ जनाई । काल राति विरही कँह आई ॥
कुमुदिनि प्रमुदि उदित भौ चंदा । चक्रवाक विछुरत दुह दंदा[3] ॥८३॥
कुँवर अंग उद्वेग जनायौ । विरह वियोग छाइ तन आयौ ॥
सीत सुगंध समीर न भावै । पुहुपहार परसत दुष पावै ॥८४॥

१—व. में नहीं है । २—स. द. निर्णय । ३—व्र दंगा ।

अग्नि कुंड किधौं चंद अगासा । प्रलै अग्नि कीनौ परगासा ॥
ताप जु ताके है संतापा । अति ब्याकुल मुष करै प्रलापा ॥८५॥
कहै वधिक विप्र पूछौं तोही । किहि गुन विरह सतावतु मोहीं ॥
उपज्यौ उदधि गरल के संगा । वस्यौ अग्नि ढिग सिवा अनंगा ॥८६॥

(सोरठा)

चिनगी चुनहिं चकोर । तऊ छुधित वहु दिसि भ्रमहिं ॥
अग्नि अंग विधु जोर । जा देषै मानैं तृपति ॥८७॥

(दोहा)

पुहुकर ससि मैं स्यामता, कोविद कहत मृगंकु ।
विरही विधि प्रति निसि जरैं, तिहि तैं प्रगट कलंकु ॥८८॥

(सोरठा)

रजनी भई अनंत । दुषदायक निवटति[1] नहीं ॥
नहि पावति निसि अंत । उदित विकल वचननि कहै ॥८९॥

(दंडक)

काल ही काया काल राति कैसी छाया मानौ,
जम जू की जाया जोग माया सों वषानी है ।
पायौ नही ओर छोर भोर भय दाइ परी,
जुग ही ते जाम बढ़े येती अधिकानी है ।
कीधौं रैनि रूप दिसि प्राचित पिसाची आइ,
कीधौं कलियानी कलि क्रोध कै रिसानी है ।
जागै जग जोगिनी वियोगिनी कै भोगिनी,
वियोगिनी के पहुकर निसि उनमानि अति[2] मानी है ॥९०॥

(सोरठा)

पुहुकर उदित मयंक । निसि पूरन षोडस कला ॥
मो मन उपजी संक । मनौ मदन कर चक्र लिय ॥९१॥
बढ्यौ विरह अनुराग । अति ब्याकुल निसु दिन रहै ॥
किये सकल सुष त्याग । चतुर नार चित मैं चढ़ी ॥९२॥

१—स. द. निगटति । २—ब. स. द. प्रतियों में 'ऐसी' पाठ है ।

(दोहा)

अतन जतन बहु विधि किये, रचे अनेक उपाइ ।
विरह विथा बढ़तै बढ़ी, मिटै न मनमथ घाइ ॥९३॥

(चौपही)

इहि विधि कुँवर विकल[1] बेहाला । प्रान प्रिया चाहै तिहि काला ॥
दिन दुष भर लै निस पहुचावै । निसि निघटै न कैसिहूं आवै ॥९४॥
निरस नैन गीला ?[2] ह्वै आवै । अंग ताप करि ताहि सुषावै ॥
व्याकुल विरह रहै वैरागी । छुधा तृषा निद्रा सुष त्यागी ॥९५॥

(दोहा)

एक वरस इहि विध भयौ, अरु ऊपर षट मास ।
सूर सैनि दुष पूर में, सजन मिलन की आस ॥९६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चित्र षंडे राज संदेह वरनन नाम पंचमो अध्यायः ॥५॥

अथ बुध बिचित्र चित्रकार कै वैरागर गमन वर्णनं

(दोहा)

बुध विचित्र तब चित्रु करि, मूरति सकल कुमार ।
गयौ देस वैरागरहिं, जहाँ हीर अधिकार ॥९७॥

(चौपही)

देस जु सुषि रम्य सुषदाई । नेम देकर्म धर्म अधिकाई ॥
सौम दिष्ठि सौमेसुर राजा । अरि गज सीस सिंह जिमि गाजा ॥९८॥
चारि वर्न सव कर्म चलाहीं । वेद विचार तजहिं कोइ नाहीं ॥
सुस्मृत वेद जे पढ़हिं पढ़ावहिं । करहिं जग्यँ अरु होम करावहिं ॥९९॥
चारौ वेद सफल अध्यावहिं । गुन अर्थिन विद्या सिषरावहिं ॥
छह रितु छ रस दान दिन देही । जो जजमान देंहि सो लैंही ॥१००॥

(दोहा)

षड्ग वृत्ति छत्री लियै, और विप्र की सेव ।
सदा पंच कृत आभरन, पूजहिं नर हरि देव ॥१०१॥

१—ब. में यह शब्द छूटा है। २—ब. स. द. तीनों में लीला दिया है।

(चौपही)

बरन बैस बासहिं धनवंता। करहिं विविध व्यौपार अनंता ॥
अर्थी होहि द्रव्य तिहि देहीं। बहुरि मूल बिनु मागे लेहीं ॥१०२॥
परम हेत गोपालनु करहीं। सदा हृदै गोपालहिं धरहीं ॥
कृष पुनि करहिं देषि धुनि हर्षहिं। जिनके भाग मेघ सुत्र वर्षहिं ॥१०३॥

(दोहा)

सेवकु अति दुल्लभु जहाँ, घर घर धन उन्माद।
तऊ सूद्र सेवा करहिं, गहैं वेद मरजाद ॥१०४॥

(सोरठा)

चारि बरन आचार, बिधि छत्री षट कर्म जहं।
बेद सुबैसु बिचार, एक सूद्र सेवा करैं ॥१०५॥

(छंद प्रियंगम्)

आनंद पूरन देस विचित्र प्रवेस किय।
न्याइ लिये नृप नीति निरषि हर्षित हिय ॥
दंड सुचामर छत्र लोभ जसु लेषि लिय।
लोचन लोल कटाच्छ कुटिलता देषि तिय ॥१०६॥

मत्त गयंद गरूर निसानन मारहीं।
मत्सर सो चटसार निलिप्य विचारहीं ॥
उन्नत और कठोर उरोज सुभावहीं।
कामिनि कंचुकि बांधि सलज्ज दुरावहीं ॥१०७॥

पट्टन परम अनूप मनौ विधि सज्जियौ।
कर सरबर अमरावति सुर पति लज्जियौ ॥
बहु विध उपवन सघन फूल फल सौं लसैं।
कुंजहिं कोक कपोत जे कोकिल बन बसैं ॥१०८॥

सुंदरि नीर भरंति सरोवर सोहईं।
विथकि रहै पसु पंच्छि पथिक मनु मोहईं ॥
सोभित हाटक हाट जटित मनि हीर के।
विच विच झलकत पूर स्वाति के नीर के ॥१०९॥

धाम मनौ सुरधाम किधौ सुर लोक से।
संपत सुर संजोग हरत मन सोक से॥
राजत राज अवास प्रकासत दीप है।
मानौ सरबर करत जू सूर समीप है॥११०॥

(दोहा)

जबहिं नगर परवेस किय, विधि विचित्र बुधवंत।
सगुन सगुन सुभ बोलियौ, उपज्यौ हरष अनंत॥१११॥
धर्म राज पुर देषि कै, बाढ्यौ हृदय हुलास।
देवदत्त द्विज के सदन, सुषहित कियौ निवास॥११२॥
निरषि जग्यँ साला सुषद, हरि मंदिर निजु धाम।
गृह अंगन तुलसी लसै, कपिल धेनु जनु काम॥११३॥
बालक करैं जु बेद धुनि, घर धरमी जनु जीय।
नेम अतिथि आदर जहां, आइ उतारौ लीय॥११४॥

(चौपही)

दुजबर देषि बहुत सुष पायौ। मारग कौं श्रम सब बिसरायौ॥
करि भोजनु बैठे इक साथा। कहै विचित्र सुनौ जगनाथा॥११५॥
कितिक भूमि सौमेसुर राजू। मंत्री कौन चलावै काजू॥
कितनै पुत्र राज गृह रानी। तिन मह कौन राज अधिकानी॥११६॥
तुम पुन कौन वृत्ति चित धरहू। किहि विध काल छेप दिन करहू॥
बोल्यौ देवदत्त मुष बानी। अगिनित भूमि परति नहि जानी॥११७॥
दल अगनित अगनित भंडारा। राज प्रसाद हमहिं निस्तारा॥
प्रात जाइ करि देव पुजावहिं। नित्य दान लै मंदिर आवहिं॥११८॥
षोडस दान देहि नर नाहा। दिन प्रति जग्यँ सुधा अरु स्वाहा॥
एकु जु पुत्र राज गृह माहीं। सूर सैन करि बोलत ताहीं॥११९॥
अति पंडित चतुरानन जानौ। रूपवंत मकरध्धुज मानौ॥
दानु देत बलि बेनु लजावै। सूर इकौ बिय सूर कहावै[1]॥१२०॥
दस अरु चारि निपुन वह विद्या। जिहि की सभा भोज की निंदा॥
पै कछु अकसमात भई पीरा। पंचबान करि दहति सरीरा॥१२१॥

१—स. द. में यह अर्धाली नहीं है।

एक बरस षट मास वितीते । राज कुँवर कह दुष महं वीते ॥
अब कुस भयौ वचन मुष थाक्यौ । मानौ नूत पीत फल पाक्यौ ॥१२२॥
बहुत जतनु सौमिस कराये । दिसि दिसि गुनियनि वैद बुलाये ॥
तऊ न लग्यौ एक उपचारा । दिन दिन अगनि विरह की झारा ॥१२३॥
चरित एक सपनंतर देष्यौ । इतौ रूप नहिं नैन विसेष्यौ ॥
सोई नारि चढ़ी चित माँही । अवरेषी चित उतरत नाहीं ॥१२४॥
मन[1] गुनि जन नहि वेदनि पावैं । आनि कौन कौ रूप दिखावैं ॥
नाम ठाम नहि जानत ताहीं । कै अच्छरि[2] के मानवि आही ॥१२५॥

(दोहा)

कै नागिनि कै राच्छसी, काम रूपिनी आहि ।
किधौ कहूं हैं मानवी, कोउ न जानतु ताहि ॥१२६॥

सुरति करी सुनि नाम को, गुन विचित्र चित धीर ।
जो अकास वानी भई, सूर हरहिंगौ पीर ॥१२७॥

(चौपही)

बुधि विचित्र मन माहिं विचारी । याही विधि है राजकुमारी ॥
डेढ़ बरष ताहूं पुनि वीत्यौ । स्वप्न सुभाइ अतन तब जीत्यौ ॥१२८॥
पैठत नगर सगुन सुभ बोले । आनँद सदन पाट विधि पोले ॥
बोल्यौ तबहिं सुनौ दुज देवा । हौ यह करौं राज की सेवा ॥१२९॥
वैद विचित्र नामु है मेरौ । गुनी चरक अरु सुश्रुत केरौ ॥
तुम नृप आगै जाइ जनावहु । आयसु माँगि लैन मुहि आवहु ॥१३०॥
देषौं विरह विथा उहि गाता । पूछौं जाइ स्वप्न की बाता ॥
मिटहिं जु विथा कुँवर अनुरागहिं । करता राम जतन सुहिं लागहिं ॥१३१॥

(दोहा)

सुनत विप्र आनँद भये, गयौ नृपति के पास ।
विलष वदन बैठ्यौ जहाँ, सुत दुष निपट उदास ॥१३२॥
दै दच्छिन कर आसिका, अरु तुलसी वंदाइ ।
तब दोऊ कर जोरके, विनती करहिं बनाइ ॥१३३॥

१—स. द. गनि । २—स. द. अप्सरि ।

(चौपही)

कहै सुनौ नरपति नर नाहा। वैद एकु आयौ पुर माहा ॥
अति गुनियनि गुनिवंत कहावै। कहै राजु जो मोंहिं बुलावै ॥१२४॥
मेटौं विथा कुँवर तन केरी। विनती जाइ करौ यह मेरी ॥
आयसु दियौ बुलावहु ताही। पंडित वैद कहत तुम ताही ॥१२५॥
देवदत्त तव राज पठायौ। बुध विचित्र कहँ करि गहि ल्यायौ ॥
आइ राज सनमुष सिर नायौ। तब वैठक कहँ आइसु पायौ ॥१२६॥

(दोहा)

कुसल पूछि आदर कियौ, वहुरि दियौ द्विज संग।
कुँवर धाम कहँ लै चल्यौ, उदित जहाँ अनंग ॥१२७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चित्र षंडे बुधि विचित्र गृह प्रवेस वर्ननो नाम षष्टमो अध्यायः ॥ ६ ॥

(दोहा)

जाइ तहाँ बैठी सभा, देषे वहु गुनवंत ॥
नव अवस्थ व्यापित कुँवर, वेदनि विरह अनंत ॥१२८॥

(छंद पद्धरी)

सिर नाइ सनमुष जाइ[1]। तब लषतु अंग सुभाइ ॥
नहिं सुरति अरु सुख संग। परिपूर अंग अनंग ॥१२९॥
मन मलिन मिटि अह्लाद। उद्वेग अरु उन्माद ॥
चितवै न षोलै नैन। डोलै न बोलै बैन ॥१४०॥
तप तनहिं व्याकुल होइ। जानै न वेदनि कोइ ॥
हरि नाम लिय सुविचित्र। रसना सुकीन्ह पवित्र ॥१४१॥
मन मध्य वेद मनाइ। जब करत जतन उपाइ ॥
बैठे हते गुनवंत। ते करै सकल इकंत ॥१४२॥

१—ब. में यह छंद इस प्रकार है—
सिर नाइ सन्मुख संग। परिपूर अंग अनंग ॥
सिर नाइ सन्मुख जाइ। तब लखत अंग सुभाइ ॥

बोल्यौ सुनौ जग सूर । यह नेह जुग जग पूर ॥
जिहि विरह व्याकुल गात । तुम कहौ अपनी बात ॥१४३॥
किहि कामिनी बस कीन । कब आप सपनौ दीन ॥
हौं वेद आयौ राज । यह विथा मेटन काज ॥१४४॥

(दोहा)

काम कुँवर यह वचन सुनि, चितयौ नैन उघार ।
बुधि विचित्र लोचन कमल, देषि भयौ बलिहार ॥१४५॥

(चौपही)

कहै कुँवर सुन वैद गुसाँई । मै बहु ओषद मूरि जो षांई ॥
पावत नहिं संजीवनि मूरी । जातै होइ बिथा यह दूरी ॥१४६॥
वेदन आन आन उपचारा । औरहिं भाँति लोक व्यवहारा ॥
कहँ वह प्रिया प्रान की प्यारी । विरह विथा की मेटन हारी ॥१४७॥
वचन प्रमान होहिं तौ मानौ । तुम जानौ तौ जो हौं जानौ ॥
मै देषी सपनंतर नारी । जोबन रूप गुनहिं अधिकारी ॥१४८॥
तिहि कौ रूप वरन नहिं आवै । चतुरानन पुनि अंत न पावै ॥
जानौ नहीं कौन है सोई । किहि ठाँ रहै कहै नहि कोई ॥१४९॥
मै तुम सौं सब कही जु[1] आगै । रहे प्रान जिहि लालच लागे[2] ॥१५०॥

(दोहा)

पुहुकर सूरति मित्र की, नैननि रही समाइ ।
निसु दिन पुतरिनु मैं बसै, कैसहु उतरि न जाइ ॥१५१॥
बुध विचित्र इमि उच्चरै, सुनि हो राज कुमार ।
स्वप्न चित्र परतिच्छ है, दरसन तीन प्रकार ॥१५२॥
जो कोई सूरति लिषै, सो तुम निरषी नैनि ।
कहौ ताह पहिचानिहौ, ससि वदनी मृग नैनि ॥१५३॥
कहै सूर सुन सर्व गुन, क्यौं न परष्यौं ताहि ।
निसि वासर पल पल निमिष, चित्त रहै लगि जाहि ॥१५४॥

१—ब. जो सब कहि आगे । २—ब. स. द. तीनों प्रतियों में यह चौपाई ऐसे ही अपूर्ण है ।

(चौपही)

जित देषौं तित मूरति सोई। नैननि और न देषौं कोई ॥
रहै प्रान मधि प्रान पियारी। सोवत जागत होइ न न्यारी ॥१५५॥
निसु दिन रहै नैन के आगै। जीवनु रहै आस उहि लागै ॥
बह धन धाम वही धन मेरौ। लालच लागि रह्यौ जिहि केरौ ॥१५६॥
वाकी प्रीत लाग दुष देष्यौं। जीवन जन्म सुफल करि लेष्यौं।
वाके नेह लाग अनुरागा। सब सुष करि मानत वैरागा ॥१५७॥

(सोरठा)

चाहत है चित जाहि। मनसा वाचा कर्मना ॥
क्यौं नरु विसरै ताहि। जल थल वह मूरति लषै ॥१५८॥

(सवैया)

तुही मेरौ धनु ध्यान तेरौई करत दिन
तुही मेरे प्रान प्रान तोंही मैं वसतु हैं।
तुही मेरे चैनु चैनु चरचा चलावै कौनु
तुहीं मेरे नैन नैन तोंही कौं चहतु हैं।
पुहुकर कहै तुही तुही दिन रैनु कहौं
तेरी धुनि सुनिबे कौं श्रवन दहतु हैं।
तुही मेरी प्यारी होति न ह्वै ते न्यारी
परम अयानै लोग विछुरौ कहतु हैं ॥१५९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चित्र षंडे
सूर संवाद वर्ननो नाम सप्तमो अध्यायः ॥ ७ ॥

(दोहा)

बुधि विचित्र परवान मन, अँग अँग सुरति सम्हारि।
कर कागद लै लेषनी, लिषन लग्यौ सुकमारि ॥१६०॥

(सोरठा)

सारद कौ सिर नाइ, बुध विचित्र इम उच्चरै।
विसरौ देहु वताइ, जगत जनन वागेसुरी ॥१६१॥

(छंद गीत मालती)

चित्र बुद्धि विचित्र चित्रै रूप रंभा आगरी।
अति गौर चंपक वरन कनकहिं दीप दुति की नागरी॥
सुकुमारि कुँवरि किसोर कोंवल नागवल्ली सी लिषी।
तहँ ललित लटकत चारु चोटी देषि तिहि धावत सिषी॥१६२॥

परवीन पूरन चंद बदनी वंक जुग भृकुटी लसैं।
छुटि अलक लटकि कपोल पर जनु कमल अलि अवली वसैं॥
मृग मीन षंजन नैन अंजन चित्त रंजन सोहई।
विषधार वान विलोल वरुनी देषि मनमथ मोहई॥१६३॥

मृद हास मंडित अधर विद्रुम दसन दुति जनु हीर को।
रद ? बीच दाड़िम मुक्त झलकत चिंचु नासा कीर को॥
तहँ कनक मनि मय करन कुंडल चिबुक चवन विराजहीं।
मनि मंड कंठ मयूर ग्रीवाँ हार हियँ छवि छाजहीं॥१६४॥

वर बाल वाहु मृनाल सी कर कंज कोमल सोहई।
रँग अरुन करतल हरत जिहिं देषि मुनि मन मोहई॥
मनि मुद्रिका वनि अंगुली कर किसल कोंवल अत्तियाँ।
तहँ दिपत नष जनु दीप हैं मनौ रंभ दंपति बत्तियाँ॥१६५॥

अति कठिन उठत उरोज उन्नत मनहुँ संभु स्वयंभु हैं।
कटि छीन केहरि भृङ्ग लज्जति जंघ रंभा षंभु हैं॥
पद पद्म पद्मिनि रूप सेवति कुनित नूपुर सज्जियौ।
जहँ जटित मरकत नील मनि कर भँवर वालक लज्जियौ॥१६६॥

(दोहा)

इहि विध मूरति चित्र किय, अष्ट सषी लिष साथ।
मानहु विय विधना रची, दँई कुवर के हाथ॥१६७॥
बुधि विचित्र इमि उच्चरै, सुनौ सर्व गुन जान।
इन षट नव मूरति मै, लेहु प्रिया पहिचान॥१६८॥

(चौपही)

कुँवर चित्र देषत सुष पायौ। मानहु प्रान म्रतक तन आयौ॥
किधौ रंक निधि गई हिराई। सो अब आन अचानक पाई॥१६९॥

नैक करै नहिं मूरति न्यारी । कहै अहै चित चोरन हारी ॥
कबहुँक लाइ हृदै सैं राषै । कबहुँक प्रान प्रान कर भाषै ॥१७०॥
कबहुँक नैन पलक पर लावै । आनन उदधि पार नहिं पावै ॥
कबहुँक धरि राषै द्दग आगै । देषत नैन पलक नहिं लागै ॥१७१॥
रूप रंग देषत अनुराग्यौ । बुध विचित्र के पायन लाग्यौ ॥
कहै विचित्र चित्रु नहि कीनौ । भोजन छरस छुधित कहँ दीनौ ॥१७२॥
कै पयूष रस प्यासहिं पायौ । विरह घाइ तैं ओषदि लायौ ॥
कै तुहि कहत धनंतर ताही । कै तू दई[1] विधाता आही ॥१७३॥
कै तुम धौं[2] विक्रम सक बंदी[3] । कै पर दुष काटन सनषंदी ॥
तनु अरु प्रान नहीं बस मेरे । ना तरु करतुँ निछावरि तेरै ॥१७४॥
और न कछु तुम लाइक[4] आही । जो कछु पेस करौं चित चाही ॥
यह धन धाम सबै तुम लेहू । जानौ ताहि मया करि देहू ॥१७५॥

(दोहा)

फिरि फिरि अंकौ भरि रहै, बहुरि रहै गहि पाँइ[5] ।
बुध विचित्र यह दीनता, देषत अति हरषाइ[6] ॥१७६॥
तब पूछी फिरि वारता, सुनि विचित्र बल जाऊँ ।
यह मूरति किहि मित्र की, कहाँ नाव किहि ठाऊँ ॥१७७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं चित्र षंडे बुध विचित्र
चित्र करन बर्ननो नाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

(चौपही)

जौ तुम कृपा करी इहि भाती । इतनी करौ यहै मन साँती ॥
नाम ठाम गुन कहि समुझावहु । मृतक जिवाइ पंथ दिषरावहु ॥१७८॥
बुधि विचित्र उभौ उठि भयौ । सीस नाय चरनन लै गयौ ॥
कहै राज अविचल यह राजू । हौं यह करौ तुम्हारौ काजू ॥१७९॥
बुधि विचित्र नामु है मेरौ । सेवक विजैपाल नृप केरौ ॥
करौ चित्र अरु नृपहि रिझाऊं । राज प्रसाद बहुत सुष पाऊँ ॥१८०॥

१—स. द. दैव । २—स. द. हौ । ३—ब. वंधी । ४—स. द. लायक ।
५—स. द. पाँय । ६—स. द. हरषाय ।

अरु सत सह्ल आहि नृप केरे । ते सब सिष्य रहैं गृह मेरे ।।
विजै पाल सुरदीपति जानहिं । उदधि पार तिहि कृत्ति[1] वषानहिं ।।१८१।।
चंपावति नगरी पति आही । बहुत भूप सेवत हैं ताही ।।
पुत्र न होइ राज मन हीना । ताते रहै सदा दुष दीना ।।१८२।।
जंगमु एक अचानक आयौ । चंडी मंत्रु आन सम्हरायौ ।।
मुदित भँई सेवत निर्बानी । मन इच्छा तब आइ तुलानी ।।१८३।।
कन्या जन्म भयौ उजियारा । पट रागिंयनी गर्भ औतारा ।।
आनद पूर अंग भुवपाला । अगनित द्रव्य दियौ तिहि काला ।।१८४।।
रासि नाम रंभावति राखौ । दैव जानि कछु दुसहर भाष्यौ ।।
तीन वरष सामान्य बताये । ते तब नृपति मनहिं नहिं आये ।।१८५।।

(दोहा)

ललित लाड अरु चाडिली, सब घर प्रान अधार ।
अंध लकुट मनौ रंक निधि, मनि[2] भुजंग उजियार ।।१८६।।
देवहुती मनु संभु कै, पय सागर के श्रीय ।
किधौं दक्ष गृह रोहनी, मनौ जनक की धीय ।।१८७।।
सुषित भई दस वर्ष लगि, करत बाल कल केलि ।
मनौ रूप तरु मंजरी, किधौं कनक की बेलि ।।१८८।।
जब एकादस वर्ष मै, जोबन अंकुर कीन ।
भयौ सुविप्रनि कौ कह्यौ, विषम रोग तन छीन ।।१८९।।
सपनै नरु सुंदर लख्यौ, अर्द्ध रयनि ससि जोति ।
संग सषी जानै नहीं, किहि बिधि विरहनि होति ।।१९०।।
मुग्ध वैस लज्जावती, कछू न जानै पीर ।
विषम व्याधि बढते बढ़ी, अवला निपट अधीर ।।१९१।।
चकृत भई सब सहचरी, आरत आतुर अत्ति ।
सबनि हृदै मरबौ धरौ, विवस बिसारी मत्ति ।।१९२।।
तब अकास वानी भई, सषि जनि होहिं अधीर ।
सावधान जतनहिं करौ, सूर हरहिंगौ पीर ।।१९३।।

१—ब. कृति । २—स. द. मनु

रवि सेवा बहुतै करी, अरु जप हौंम अनेक।
वैद गुनी रचि पचि थके, जतन न लागहिं एक ॥१९४॥

मदन मुदित इमि उच्चरै, प्रौढ़ा सब रस जानि।
तिन वसु अंग सुभाय लषि, प्रेम प्रकिति पहिचान ॥१९५॥

बहुत भाँत कर चातुरी, सुनी स्वप्न की बात।
नाम ठाम जान्यौ नही, कनक वरन दुति गात ॥१९६॥

मुष तै वैनु न उच्चरै, नैन नैन सौं जोरि।
तरनि तेज दिषाराइकै, चित्त गयौ लै चोरि ॥१९७॥

(चौपही)

तब मुदिता सुनि अकथ कहानी। चक्रत चित्त अचिरज अधिकानी ॥
रंभा बहुरि विरह वस भई। पंचवान घाइल ह्वै गई ॥१९८॥
दस अवस्थ प्रगटित उहि अंगा। मरनु आइ नियरानौ संगा ॥
सबनि आस तज जीवनि केरी। आसा एक राम तन हेरी ॥१९९॥
दया करी तब दीन दयाला। घट मधि प्रान रह्यौ तिहि काला ॥
ताहि रैनि स्वप्न विय देष्यौ। वहै चित्र चित्तहु अवरेष्यौ ॥२००॥
उहि विधि सेज बहै उजियारी। उनि नैननि वह जोति निहारी ॥
तब गहि रही चरन जुग वाके। लागे नैन वान उर ताके ॥२०१॥
अति आधीन भई अनुरागी। नाम ठाम गुन पूछन लागी ॥
भूतल वास कह्यौ नर नामा। अरु हिय हेत जनायौ भामा ॥२०२॥
तबहीं प्रात चेत चित आयौ। मदन मुदित कहँ स्वप्न सुनायौ ॥
मुदिता मुदित कहै मुष वानी। जहां हती पँहुपावति रानी ॥२०३॥
तब हम भूप चित्र सब बोले। स्वामिन आइसु पाइ हम डोले ॥
दिसि दिसि भूप चित्र सब ल्यावहिं। तृगुन नाम समुझि करि आवहिं ॥२०४॥
देस देस कहँ गये चितेरे। चाहत फिरत लिषत बहु तेरे ॥
विजै पाल पुनि जानत नाहीं। कौनु रोगु दुहिता मन माहीं ॥२०५॥
अरु पुनि चित्रकार नहीं जानत। आइसु मानि वचन परमानत ॥
मैं जब सूर नाम सुनि पायौ। तब दुज संग वैद हुव आयौ ॥२०६॥
स्वप्न सुभाइ विरह जिय जान्यौ। तब निश्चै करि मनि पतियानौ ॥
पैठत नगर सगुन सुभ पायौ। मनहिं चाव चित भयौ सवायौ ॥२०७॥

(दोहा)

अरु सुंदरता देषि करि, मदन न पूजहिं रूप ।
कह्यौ तुमहिं परवान जिय, सर्व अंग लष भूप ॥२०८॥
राजा रंभा पदमिनी, सिंघल हूँ नहिं होइ ।
अब बिधना पर मांगिये, अविचल जोरी सोइ ॥२०९॥
सोई मूरति चित्र करि, चाहत हो तुम जाहि[1] ।
अब तुम मूरति चित्र करि, लै दिखराऊँ ताहि ॥२१०॥
राजन आइसु दीजिये, प्रात करौं उठ गौन ।
अनिल विरह की जामिनि, दीपक दियौ न भौन ॥२११॥

(चौपही)

अब सेवक कौ अग्याँ कीजै । एकु वचन मुहि मागे दीजै ॥
यह रस भेद कह्यौ जनि काहू । तुमही पुत्र राज के आहू ॥२१२॥
वह अबला कोमल सुकमारी । जौं कोउ सुनै चढ़ै उहि गारी ॥
जानत नहीं जो अब लग कोई । इक मुष परै सहस मुष होई ॥२१३॥
विजै पाल भूपति सुर ग्याँनी । तपत तेज मानौ वृषभानी ॥
जो यह भेदु नैकु सुन पावै । तौ √तनया लै गंग बहावै ॥२१४॥
हौं बरजौ पहुपावति रानी । पै तुव प्रीत हृदै अधिकानी ॥
तातै सकल कही तुव आगै । रहे प्रान जिहिं लालच लागै ॥२१५॥

(दोहा)

यहै वचन मुहिं दीजिये, सौंह दिवावत राज ।
ना तर इहि रस रास मै, विरह होइ वेकाज ॥२१६॥
सुनी सकल सुभ वारता, सहित मूल अरु साष ।
सूर सैन के मन बढ़यौ, फिरि नौतम अभिलाष ॥२१७॥
चतुर चित्त चातुर भयौ, विधि सौं कछु न वसाइ ।
काम अग्नि मन उप्पजै, मन ही माँझ समाइ ॥२१८॥

(चौपही)

कहै पंथ जो मागे पाऊँ । प्यासे नैन रूप अथवाऊँ ॥
सुनि विचित्र विनती यह मेरी । किहि विध विदा करौं अब तेरी ॥२१९॥

१—ब. प्रति में यह दोहा इस प्रकार है—
सोई मूरति चित्र करि, लिख दिखराऊँ ताहि ।
अब तुम मूरति उरवसी, चाहत हौं चित जाहि ॥

यह तौ प्रीत रीत जग नाहीं । छाड़ि जाउ मुहिं मारग माहीं ॥
यह न होइ केवट परिपाटी । नाउ चढ़ाइ देइ गुन काटी ॥२२०॥
मोही संग लेहु जिय दाता । देषौं जाइ जाहि रंग राता ॥
तोहि चलै तै पल न रहाऊँ । ऐसौ मित्र कहाँ पुनि पाऊँ ॥२२१॥
जो तुम बाहँ गही है मेरी । करौ लाज कर टेके केरी ॥
सिष्य मनुस्य जिते कलि माहीं । बाहँ गहे की लाज कराहीं ॥२२२॥

(दोहा)

बुधि विचित्र इम उच्चरै, सुनि हो राजकुमार ।
धीर धरौ अब देषिहौ, जीवन प्रान अधार ॥२२३॥
जगत रीति जानत सबै, और राज गृह चाल ।
सुता स्वयंबर ठाठिहैं, विजयपाल तिहिं काल ॥२२४॥
तब तुमही पगु धारियौ, लै चातुर दल संग ॥
अवसिमेव तोहीं वरै, कीनौ जतनु अनंग ॥२२५॥
यहै मंत्र मंत्री कियौ, यहै हमारै चित्त ।
लोक लाज पुनि थिर रहै, मिलहिं चित्त अरु मित्त[1] ॥२२६॥

(चौपही)

कह्यौ विचित्र मानि सो लीनौ । तब आरंभ विदा कौ कीनौ ॥
वाचा बंध भयौ दुहुँ सेती । काहूं आगै कहै न एती ॥२२७॥
तब विचित्र कर कागद लीनौ । नष सिष चित्र कुँवर कौ कीनौ ॥
समुझि सकल वै सुंदरताई । अँग अँग ओप अनूप बनाई ॥२२८॥
रूप अनूप मदन तै बाढ्यौ । सो लेखनी अग्र करि काढ्यौ ॥
लिष कर चित्र कुँवर कर दीनौ । अपुन कुँवर देषन कौं लीनौ ॥२२९॥
अपनौ रूप चित्र मह देष्यौ । नहि विसेष जनु दर्पन देष्यौ ॥
बहुरि विदा जब माँगनि लाग्यौ । उठ्यौ कुँवर प्रीत अनुराग्यौ ॥२३०॥

(दोहा)

अमित भये हौं पंथ मै, आजु वसौं इहिं ठाउँ ।
इक पत्री हौं देउ लिष सुमर सजन कौं नाउँ ॥२३१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चित्र षंडे प्रेम कथा वर्ननो नाम नममो अध्यायः ॥१०॥[2]

१—यहाँ से अ० प्रति फिर चालू होती है ।
२—अ. प्रति में इसे 'कुँवर चित्र कथा अवरेखनो नाम' अध्याय कहा है ।

(चौपही)

बुधि विचित्र निकट बैठारौ। देव दत्त द्विज कुँवर हकारौ ॥
भूपति कौं सुष जाइ सुनावहु[1]। बेद जतन गुन कहि समुझावहु[2] ॥२३२॥
यह तौ वियौ धनंतर आही। संजीवनु तरु कहियतु जाही ॥
मूरि एक आवत मुहि दई। देषत अंग[3] विथा मिटि गई ॥२३३॥
सकल सुरति आई जिय मेरै। अब यह व्याधि न आवइ नेरै ॥
बहुरि कुमार मित्र हँकराये[4]। बिहँसत नैननि नैन मिलाये ॥२३४॥
देषहिं कमल वदन परगासा। सूर उदै जनु कियौ विगासा ॥
आनद मुदित भये सब लोगा। छाँड़े सकल उदेग[5] वियोगा ॥२३५॥
तबहिं कुँवर मंदिर महँ आये। मातु पिता आनन मन भाये ॥
राजा देषि परम सुष पायौ। मानौ जीव फेरि घट आयौ ॥२३६॥
मानि सूर नवतिन अवतारा। लाग्यौ देन सकल भंडारा ॥
हय गय मनि हाटक बहु दये। अर्थी अर्थ पाइ करि लये ॥२३७॥
घर घर तिलकु निछावर आई। जननी आनँद उर न समाई ॥

(दोहा)

घर घर थापे दीजिये, घर घर वंदनवार[6]।
घर घर अनद बँधावनै, घर घर मंगलचार[7] ॥२३८॥

(चौपही)

भेरी मृदँग वजहिं नीसाना। संगी सुभट देहिं बहु दाना ॥
गुनि जन नृत्य गीत बहु करहीं। अप देषि गर्व मन हरहीं ॥२३६॥
तिहि छिन तुरत तुरंग मँगायौ। रुचिर मनौ रवि रथ तैं आयौ ॥
सेत बरन उपमा अति बाढ्यौ। मनौ छीर सागर मथि काढ्यौ[8] ॥२४०॥
उच्च ग्रीव विवि करन सुहाये। तीषे तरल तुरंग मँगाये ॥
उपमा और कहै नहि कोई। इंद्र धनुष दुतिया ससि होई ॥२४१॥

१—ब. सुनायौ। २—ब. समुझायौ। ३—ब. स. द. अंध। ४—ब. हाँकारे। ५—ब. स. द. छाँड़ि सकल उदयोग। ६—ब. वंदनचार, स. द. मंगलचार। ७—ब. स. द. वंदनवार। ८—अ. स. द. में दोनों पंक्तियों का यही क्रम है।

चंचल चपल कहत नहि आवै । दामिन को घन सरवर पावै ॥
पवन पाइ मन[1] वेगम मोला । मानौ तरनि किरनि हिंडोला ॥२४२॥

(दोहा)

करि पलान कंचन मई, लाल हीर मनि लाग ।
मनि मुकता गन झूमका, ललित लगाई बाग ॥२४३॥
निकस्यौ हय[2] आरूढ़ ह्वै, नगर लोग सुष दैन ।
चमर छत्र सिर सोहई, संग सुभट बहु सैन ॥२४४॥
नैन बान भृगुटी धनुष, चारु हास हथियार ।
मानौ मनमथ चढ़ि चल्यौ, षेलन जुवति सिकार[3] ॥२४५॥
नर नारी नागर नगर, देषत अति आनंद ॥
मनहुं सरद[4] घन माँझ तै, प्रगटत पूरन चंद ॥२४६॥

(छंद मोतीदाम)

प्रकासित चंद विलोकहिं वाम । मनौ सरपंच लिये कर काम ॥
चढ़ै इक सुंदरि जाइ[5] अवास । विलोकनि आननि मंडित हास ॥२४७॥
चलै इक सुंदरि छाँड़ि सिंगार । गिरै मुकता गन टूटत हार ॥
उठै इक लोचन अंजन देत । अघाइ न रूप सुधा रस लेत ॥२४८॥
रहै इक नागर नैन निहार । करै चितवित्त तहाँ बलिहार ॥
विथक्कि रहै इक अंचल डार । टरै घट सीस चितैयनि हारि[6] ॥२४९॥
घरग्घर वंधिय वंदन बार । छिरक्किय नीर सो हाट[7] बजार ॥
पटंबर पाटन मंडित हाट । बनावहिं चित्र विचित्र सुबाट ॥२५०॥
भनैं जस[8] बंदिय मागध सूत । मनौ पठये अमरावति दूत ॥
करै निछियावरि नागर लोग । बढ़ै बहु मोद मिटै सब सोग ॥२५१॥
करैं कलि केलि कलोल कुमार । लहै न तहाँ सुष सागर पार ॥
सबै सम एक वहिक्रम मित्र । लिये ढिग साथहिं चित्र विचित्र ॥२५२॥

१—अ. स. द. मनो । २—ब.द. हय । ३—स. द. प्रतियाँ यहीं समात हो जाती हैं । आगे के पत्र नहीं हैं । ४—ब. सदन । ५—ब. आइ । ६—ब. करै चित वित्त तहाँ वलिहार । ७—अ. पंथ । ८—ब. दिवि ।

(दोहा)

नगर लोग पुलकित सकल, दरसु दियौ चिरकाल ।
मन वच क्रम दै आसिका, पुत्र वंत भुवपाल ॥२५३॥

(चौपही)

नगर देषि फिरि मंदिर आयौ । बुध विचित्र कहँ साथहिं ल्यायौ ॥
षट रस भोजन विविध जिमाये । अरु निसि बोलि निकट वैठाये ॥२५४॥
कहत कहावत प्रेम कहानी । जागत ही सब रैन विहानी ॥
फिरि फिरि गुन रंभावति बूझै । दूजौ और न कोऊ सूझै ॥२५५॥
सुनत रसाल वात सचुपावै । सोचि सकुचि[1] अरु फेरि कहावै ॥
रह्यौ सुप्रान प्रिया पहँ जाई । प्रगटी प्रिया प्रान महँ आई ॥२५६॥

(दोहा)

वहै नाम रसना जपै, श्रवन सुनै वह नाम ।
वहै नाम हिरदै वसै, और नाम नहिं काम ॥२५७॥
सो चित्रहिं करही धरै, लोचन चाहत जाहि ।
करि हारिल की लाकरी, निमष तजहिं नहिं ताहि ॥२५८॥

इति श्री रसरतन काव्ये कविपुहुकर विरंचितेयं चित्र षंडे कुसल कौतूहल वर्ननो[2] नाम दसमो अध्यायः ॥ १० ॥

॥ इति चित्र खण्ड ॥

———

१—अ. समुझि । २—अ. नगर आगवन वर्नन ।

विजयपाल खंड

(दोहा)

तीन दिवस राष्यौ तहाँ, बुधि विचित्र बुधि[1] वंत ।
सौम सूर कीनी विदा, दीन्हौ द्रव्य अनंत ॥ १ ॥
चित्तहु चिंता जिनि करौ, मति मन होहु उदास ।
बुधि विचित्र अनु गमनहीं, आवत चरनन पास ॥ २ ॥
सावधान संदेस लिय, गहे कुँवर के पाइ ।
मुदित वचन मारग धरौ, चल्यौ पंथ चितु लाइ ॥ ३ ॥

(चौपही)

चल्यौ विचित्र सगुन सुभ पाये । चार माल तिहि मारग लाये ॥
पंथी पंथ[2] अंत जब[3] पायौ । चंपावति नगरी महँ आयौ ॥४॥
चित्रकार दिसि दिसि सब आये । नाम रूप अवरेष सुल्याये ॥
लै मुदिता कुवरिंहि दिषरावै । निरषि नैन पुनि दूरि डरावै ॥५॥
इहि अंतर वह आइ तुलान्यौ । दुहि दिस प्रेम प्रगट जिंहि जान्यौ॥
चल्यौ सुमति सागर पहँ जाई । सकल बात कहि ताहि सुनाई[4] ॥६॥
तब दोउ राजदुवारिहिं आये । मंदिर महँ परदार पठाये ॥
मदन मुदित कहँ लियौ बुलाई । सकल बात कहि तिहि समुझाई ॥७॥

(दोहा)

प्रथम नाम गुन विस्तरौ, दियौ चित्र कर ताहि ।
लै कुँवरिहिं दरसाइयौ, दरसन भावत जाहि[5] ॥८॥

(चौपही)

निरष चित्र जनु मूरति मैना । विरह दाह तैं निकसे नैना ॥
आनन अमिय सरोवर पेष्यौ । जीवनु जनम सुफल करि लेष्यौ ॥९॥

१—ब. वलिवंत । २—अ. पंथ पथ । ३—अ. आयौ । ४—ब. सूर कथा सब कहि समुझाई । ५—अ. प्रति में इस दोहे के स्थान पर निम्नलिखित दोहा दिया हुआ है । यही दोहा आगे २२वीं संख्या में भी है ।

नाम ठाम गुन विस्तरौ, दियौ पत्र सन्देस ।
अरु पठई कर मुद्रिका, मंडित नाम नरेश ॥

प्रान नाथ पेषत पहिचान्यौ। मानौ रतन जौहरी जान्यौ॥
पुलकित पलक लगत दृग नाहीं। अँचवत रूप न नैन अघाहीं॥१०॥
फिरि फिरि सुंदरि ताहि निहारै। चारु चित्र कर तैं नहिं टारै॥
सकल[1] अंग चित्रहिं अनुरागै। जनु जुग नैन चित्र सम लागै॥११॥
बार बार मुदितहिं दिषरावै। अंग[2] अंग माधुरी बतावै॥
सषि यहु रूप डीठि जौ परई। कौन नारि मन धीरज धरई॥१२॥
इहि विधि नैन एक टक लाये। मनहु कनक जट हीर[3] लगाये॥१३॥

(दोहा)

बहु विनोद बहु मोद मन, बहु धन प्रान अधार।
वहै नैन अंजन कियौ, वहै कियौ हिय हार[4]॥१४॥

(चौपही)

देषि रूप मुदिता बलि जाई। थकित मनौ ठग मूरी षाई[5]॥
फिर जब सुरति सम्हारी अंगा। लागे[6] जुगल नैन बहि गंगा॥१५॥
मुदिता कहै सुनहु सुकुमारी। विषम नेह निर्बाहन हारी॥
प्रीतम प्रीत सुनहिं जौ काना। रसना एक न जाइ बषाना॥१६॥
बुधि विचित्र जो कही हम सेती। हौ मुष बरन न जानतु एती।
बैरागरु अधपति इकु आही। कहत राव सौमेसुर ताही॥१७॥
सूरसेन तिहि पुत्र कुमारा। मानौ विय अनुरुघ अवतारा॥
रूप रासि मनमथहिं विसेष्यौ। सो तुम स्वप्न चित्र सम लेष्यौ॥१८॥
उहि पुनि स्वप्न भयौ तिहि काला। जब तू विरह भई बेहाला॥
उहि दिन वहै रैन उजियारी। निरषि नैन रंभावति हारी॥१९॥
जबहिं विचित्र गयौ उहि गाऊँ[7]। सुन्यौ श्रवन रंभावति नाऊँ॥
उभै बरष तब आइ वितीते[8]। राज कुँवर कहँ दुष महँ बीते॥२०॥
अरु तुव चित्र चित्रि दिषरायौ। तबहिं प्रान घट अंतर आयौ॥
जीवन सुफल मानि मन लीनौ। वहै चित्र दृग दर्पन कीनौ॥२१॥

१—ब. रोम रोम की सिपत बतावै। २—ब. रोम रोम की सिपत बतावै। ३—ब. जरि हीर। ४—अ. आहार। ५—ब. बनाई। ६—ब. लोचल। ७—अ. प्रति में अर्धालियों का क्रम बदला हुआ है। ८—अ. अतीत।

(दोहा)

अब आवतु मन[1] भावतौ, दियौ पत्र संदेस ।
अरु पठई कर मुद्रिका, मंडित[2] नाम नरेस ॥२२॥
राज कुँवरि मन प्रेम कर, पतिया छतिया लाइ ।
सजल नैन वाचिन सकै, तऊ न वाचीं जाइ ॥२३॥
कंठ गहग्गह रोम तन, नीर रहे दृग पूरि ।
मानौ लोचन पंथ कर, करै उदहि दुष दूरि ॥२४॥
हीर जटित कर मुंदरी, लै सुंदरी सुजान ।
सूर नाम चित चाहि करि, किये निछावर प्रान ॥२५॥

(सोरठा)

पंत्री बाँच कुमारि । लिषी लाल कोमल करन ॥
प्रान किये बलिहारि । अरु चित चाव चवग्गुनौ[3] ॥२६॥
मिटे सकल दुष दंद । सुनत सजन[4] मुष वत्तियाँ ॥
उपज्यौ अति आनंद । मिलन मनोरथ मन वढ्यो ॥२७॥

(चौपही)

मुदिता मुदित अंग नहिं[5] माई । पुहपावति पहँ आतुर आई ॥
कहै करौ आनंद बधाई । मैं रंभावति मरत जिवाई ॥२८॥
बुधि विचित्र चित्र करि ल्यायौ । सो कुमारि देषत मन भायौ ॥
वह पुनि भयौ विरह वेहाला । गयौ विचित्र जियौ तिहि काला ॥२९॥
सूरसैन सोमेसुर पूता । वैरागर अधिपति मन धूता ॥
दुहु तन प्रेम पूरि कर[6] आयौ । कछु विधि ऐसो[7] ठाटु वनायौ ॥३०॥
जहाँ महल[8] पहुपावति माता । धनु अरु धर्म रही दोइ वाता ॥३१॥

(दोहा)

जो अकास वानी भई, सूर विथा हर होइ ।
स्वामिन सो वह सूर है, भेदु न जानतु कोइ ॥३२॥

१—ब. अव आवत तुमन । २—ब. पंडित । ३—ब. प्रति में दूसरे और चौथे चरण परस्पर परिवर्तित हैं । ४—ब. सकल । ५—ब. आनही । ६—ब. तव । ७—ब. औरइ । ८—अ. जहँ कमला ।

बुधि विचित्र यह उच्चरी, आवै कुँवर उताल ।
अति आतुर नहि सहि सकै, विरह ज्वाल बेहाल ॥३३॥
स्वामिन निश्चै आइहै, सूर अलप दिन माँहि ।
सुता स्वयंबर ठाठियै, गहिर काम कौ नाहि ॥३४॥
दिसि दिसि भूप हँकारियै,[1] सहित सकल संघात ।
ना तर आगम सूर कौ, प्रगट होइ यह बात ॥३५॥
विजयपाल नृप तेजमय, हम जिय अधिक डराहिं ।
दासी प्यासी हेत की, भुव वाकी मरि जाहिं ॥३६॥
मानि वचन पहुंपावती, जो मुदिता कह दीन ।
मुदित मनोहर हंस गति, गवन कंत पहँ कीन ॥३७॥
सकल कला करि कोविदा, पौढ़ विजच्छन बाम ।
नव सत साज सिंगार तब, चली सेज सुष धाम ॥३८॥
हाव भाव करि चातुरी, नष सिष पियहिं रिझाइ ।
विषय केलि वस करि लियौ, बोलत बैन बनाइ ॥३९॥
राजन आँनद[2] मानियौ, गयौ सुता तन रोग ।
बहुत जतन नीकी भई, मिट्यौ दंदु[3] अरु सोग ॥४०॥
अब इतनो विनती यहै, मानि लेहु भुवपाल ।
सुता स्वयंवर कीजियै, आतुर बेगि उताल ॥४१॥
ब्याह जोग रंभावती, वरष त्रयोदस माहिं ।
तातै बेगि विवाहिजै, कासु ढील कौ नाहिं ॥४२॥

(चौपही)

विजैपाल सुनि कर यह बाता । कहइ सुनौ रंभावति माता ॥
अवसिमेव यह कारज करहूँ । ह्वै गहरु नहि पल कौ धरहूँ ॥४३॥
यह विधि उनही जुगति[4] वितीती। कलि जुग नहीं सुयंवर रीती ॥
मेरे नैन प्रान रंभावति । सुत तै अधिक मोहिं जिय भावति ॥४४॥
औरन पुत्र आहि गृह तेरै । यहइ सुता यहै सुत मेरै ॥
देहि ताहि जो रहै हमारे । कौन सिद्धि बहु भूप हँकारे ॥४५॥
देस देस नृप सेवत मौंही । राज कुमार दिषैहौं तोही ॥
कुल अरु रूप गुननि बर जानहु । ताहि समुझि करि बर परमानहु[5] ॥४६॥

१—ब. सुता स्वयंवर ठाठियै । २—ब. आयस । ३—ब. दंभ । ४—ब. ऊनहि जुगनि । ५—अ. पहिचानहु ।

कहै वचन पुहुपावति रानी। राजन तुम यह बात न जानी॥
सेवहि तुमहि देहु जौ ताही। कहै सुता सेवक कौ व्याही॥४७॥

(दोहा)

एक छत्र तुम चक्कवै, कीरति सागर पार।
सुता स्वयंवरु कीजियै, ह्वैहैं धर्म[1] अपार॥४८॥
मन इच्छा जाकौ वरै, सुनियै राजधिराज।
सो क्यौं दियें न लेहिगौ, चंपावति कौ राज॥४९॥
सील बढ़ै कीरत रहै, दुहिता दुषी न होय।
उत्तम व्याह स्वयंवर, भेद न जानहिं कोय॥५०॥

(सोरठा)

त्रिया वचन वर आनि, विजैपाल पृथ्वी सुर।
लियौ वचन वर मानि[2], मंत्री सुमति हकारियौ[3]॥५१॥

इति श्री रसरतन काव्ये पुहुकर विरचितेयं निमंत्रण आज्ञा वर्णनो
नाम प्रथमो अध्यायः॥ १ ॥

(छप्पय)

विजैपाल भुवपाल सुमति सागर हंकारौ।
सुता सुयंवर काज साज लगि मंत्र उचारौ[4]॥
सामग्री सब करहु बहुत जिय लोभ निवारहु।
देस देस के राजन नेवति करि वेगि हकारहु॥
नृप देस देस पति बोलियहु पत्र निमंत्रनु हथ्थ[5] दिय।
सुनि वचन मानि परवानि जिय सो सुभ नछत्र आरंभ किय॥५२॥

(दोहा)

देस देस अनुचर चले, वरनि न आवै नाम[6]।
कछुक बुद्धि अनुमानिकै, पुहुकर कहत सुनाम[7]॥५३॥

(छंद वथूह)

कासी कौसल कारनाट[8] कनवज्ज कलिंजर।
काम रूप कैकय कलिंग केदार कछंधर॥

१—अ. अर्थ। २—अ. मंत्र लियो करिमान। ३—यहाँ ब. प्रति के लिपिकार ने लिखा है; अथ राजा विजौ वाल देस देसान्न कौ नेवर्त्ते देत भये तस्य वर्नन। ४—अ. विचारौ। ५—ब. यंत्री मंत्री साथ। ६—अ. सो मुख वरनि न जाइ। ७—अ. वनाइ। ८—ब. झारनाट।

कौमुदिडस कष्टवार केरलपुर कंगर।
गोडंवान[1] गोवल्ल गुंड गोपाचल गुज्जर ॥२४॥
विंध्या नैरि विदेह सुम्भि धारन पुर वग्गर।
मल्लिवार मालवा मगध मरहट्ठ मजेवर ॥
वंग देस वैराट वीर वदरी वैरागर।
वंविहार वारार देस वगुलान वहेदर[2] ॥२५॥
मारवार मेवार मत्स मेवांत[3] मनोहर।
चित्रकूट चंदेरि चीर[4] चंद्रागिरि नरवर[5]।
मध्य देश मधुपुरी मद्र मासु मान सर[6]।
अंग अवधि उज्जैनि अवनि आसेरह अग्गर ॥२६॥
इंद्रप्रस्थ अजमेरि अंत्रवेली[7] विनोद कर।
सोरठ सागरोपसीथ द्वारा मति नागर[8] ॥
रोहतास रनथंभ रंग राजह तिलंग वर[9]।
पंच आइ पंचाल लहमि पाटन पुर पुहकर[10] ॥२७॥

(दोहा)

पति पत लगि मंत्री सुमति, साजे साज अपार।
आखंडल षड पेषियौ, विजैपाल दरबार ॥२८॥

इति श्री रसरतनकाव्ये पुहकर विरचितेयं निमंत्रण वर्णन
नामो द्वितियो अध्यायः ॥२॥

अथ मदन मुदिता आदि दै अष्ट सहचरी रंभा कौ गुन चातुरी सिषावती हैं तस्य बर्नन।

(दोहा)

कुँवरि संग बहु सहचरी, रूप रंग गुन रासि।
किधौं अष्ट ये नाइका, सकल सिद्धि जनु दासि ॥२६॥

१—ब. कुँडवान। २—ब. प्रति में यह छंद नहीं है। ३—ब. मेवार। ४—अ. चाउ। ५—ब. नयसर। ६—ब. प्रति में यह पंक्ति नहीं है। ७—ब. अंतवेली। ८—ब. में यह पंक्ति नहीं है। ६—राग रंज हित लंगर। १०—अ. प्रति में देश वर्णन के बाद स्वयंवर सामग्री संकलन आदि के विषय में कुछ छंद दिए हुए हैं जो ब. प्रति में नहीं हैं।

बहु दिस पत्रि निमंत्र दिय, वरनि न आवत नाम।
सावधान सज्जित करो, सामग्री वसु धाम ॥

अथ सषिन के नामा

(दोहा)

मुदिता उदिता सुंदरी, गुनमंजरी सुबाम।
कोककला अरु कोकिला, अंबा बिंबा नाम ॥६०॥
ते सब गुन सिषरावहीं, चित्त चाहि गुन चाहि।
न्यारे न्यारे भेद कहि, चतुरता वहु भाहि ॥६१॥

(छंद पैड़ी)

रंभावती सौं जबही गुनवंत सहेली।
वाला बोलनि कानु दै अवला अलबेली ॥
पीहरि द्वै दिनि पाहुनी जनि होहिं गहेली।
अंत चलैगी सासुरै सुनि नारि नवेली ॥६२॥

फुलवारी मधि मालती कलिका जग जोई।
विहँस तिहिं अवलोकियौ माली कर सोई ॥
जो फलु लाग्यौ तरबरै लगि रह्यो न कोई।
त्यौं त्यों हँसति सलौनी ये नहि नैहर होई ॥६३॥

अब लग रही अजानियाँ अब होहिं सचेती।
काम परैगौ गीरीयै उहि नाइक सेती ॥
पाछे फिरि पछिताहुगी करि चित्त अगेती।
समुझि कला गुन चातुरी जग जानहिं जेती ॥६४॥

छंदपद्धरिया—

वसु जाम करै सब सज्ज साज। मंत्री सुमति पति सुपति काज ॥
पकवान पान बहु अन्न पूट। भंडार भरिय वहु विधि अखूट ॥
पट पाट रचित्र एकत्र कीन। दछिन य वसन गुज्जरिय लीन ॥
उपजहिं वस्त्र सित पूर्व देस। ते लये सकल आई नरेस ॥
वहु रतन नील मनि लाल संग। मुत्तिय अमोल सित सार रंग ॥
मानक मरकत अरु पुष्पराग। ... ... ॥
यहाँ से अ. प्रति त्रुटित है।

परम विजच्छन कंतु है कहि लोग सुनावैं ।
जाके गुन गंभीर कौ कोई पार न पावै ॥
संग सषिन मै षेलिबौ कछू काम न आवैं ।
सो गुन सीषि पियारिये ज्यो पियहिं रिझावै ॥६५॥

(सोरठा)

यौं समुझावहिं नारि । यही सीष सब जगत मैं ।
पढ़ुकर अर्थ विचार । राज कुँवर मन भावती ॥६६॥

(दोहा)

मदन मुदित इमि उच्चरे, सत्त कहँ वर नारि ।
सकल कला गुन आगरी, अँग अँग सुरति सम्हारि ॥६७॥
बाला बाल कुरंग दग, जद्दिप गुन आगार ।
रवँनी रवँन रिझाइबौ, निपट कठिन व्यौहार ॥६८॥
मोहन जोहन वसन ये, मिथ्या सबनि अनित्य ।
प्रीतम प्रकित परिष्यबो, यहै मंत्र धर चित्त ॥६९॥

(चौपही)

मुदिता आदि सकल सहचारी । इक इक अधिक गुननि वर वारी ।
रंभावति कौ गुनु सिषरावहिं । इहि विध वासर बिहँसि गवाँवहिं ॥७०॥
जे गुन गरुव त्रिया मनु मौंहैं । जे अबला गुन त्रिभुवन सोहैं ॥
ते गुन सकल सिषावहिं बाला । परम सुजान प्रवीन रसाला ॥७१॥
प्रथम सिषावहिं सुर गुरु पूजा । सील सुभाव सिषावहिं दूजा ॥
दढ़ कर[1] लाज सिषावहि नारी । सुरति समै परिहरिये प्यारी ॥७२॥
मन वच क्रम कीजे पति सेवा । पति तै औरु वियौ नहि देवा ॥
जौ निश्चै पतिवृत्त मन धरहीं । सो तिरिया भव सागर तरहीं ॥७३॥

(दोहा)

पति तीरथ पति नैम व्रत, पति हरि मूरति आहि ।
पति पूजा इक चित करहि, सुर पूजत फिरि ताहि ॥७४॥
सदा मुदित मन मैं रहै, पिय के संग अनंग ।
पति हित प्रकृति हिल मिल चलै, प्रीतम के रस रंग ॥७५॥

१—ब. डिढ़कर ।

सीष सिषै मुदिता कहै, सुनियै राज कुमारि।
तोहिं बुद्धि विधना दई, कौन सिषावनि हारि ॥७६॥

(चौपही)

रूप उदित उचरै सुनि बारी। रूप सरूप पियहिं मन प्यारी॥
जद्दिप रूप विधाता देई। तऊ सम्हारि त्रिया तनु लेई ॥७७॥

रूप उदित उज्जलता होई। रहै कुचाल जाइ सब षोई॥
प्रात उठै पिय दरसन कीजै। छिनक चित्त चरननि तन दीजै ॥७८॥

प्रति दिन मज्जन करि सुकुँवारी। अधिक ओप उपजहिं रुचिकारी॥
तन सोभित सिंगार बनावहु। विधि विधि अंग सुगंध लगावहु ॥७९॥

मुष तमोर अरु अंजनु नैना। मानौ एक रूप की सैना॥
दिन दिन सोभ अधिक तन बढ़ै। मानौ इंदु कला नव चढ़ै ॥८०॥

बहुरौ बैन कहै सुंदरी। सुंदरि सुनहिं बात रस करी॥
हौं तुम आगै कहौं बनाई। कौन कहावति सुंदरताई ॥८१॥

सुंदर वदन होहिं बहु नारी। त्रिरलि पीय मन रंजन हारी॥
सुंदर सो जु मनोहर होई। बिन गुन पिय मन रहै न कोई ॥८२॥

(दोहा)

हाउ भाउ करि चातुरी, चितवनि अरु मुसक्यानि।
अलप मानु करि मानिवी, करहिं पियहिं वस आनि ॥८३॥

पुहुकर दीरघ नैन वहु, अंजनु देहि बनाइ।
पति जिहि कै रस वस भयो, चितवनि मोल विकाइ ॥८४॥

(चौपही)

गुन[1] मंजरी कहै सुनि प्यारी। गुन गाहक गुन जाननि हारी॥
गुन तैं गरुव पुरिष अरु नारी। विनु गुन यौ ससि वनि अँधिआरी[2] ॥८५॥

विनु गुन कूप वारि नहि देई। विनु गुन हार हियै नहिं लेई॥
विनु गुन नाउ नीर महँ डोलै। विन गुन तुला कनक नहि तौलै ॥८६॥

१—अ. प्रति में यह चौपही ८२ वें नंबर के दोहे के ऊपर दी हुई है।
२—ब. विनु गुन ससि यौ विनु अधिकारी।

विनु गुन धनुष वान नहिं लागै[1]। विनु गुन रूप कौन अनुरागै ॥
रंभा वचन सुनत अनुरागी। सषिन संग गुन सीषनि लागी ॥८७॥
काव्य संस्कृत प्राकृत जानौ। अरु वहु रूपक छंद वषानौ ॥
सीषति नागरि चतुर सुजाना। जो कछु भेद संगीत वषाना ॥८८॥
वीना ताल मृदंग वजावहिं। विविध भाँति वहु सुरनि[2] सुनावहिं ॥
गान तान सुर ग्राम विचारे। सीषति नागरि विविध[3] अषारे ॥८९॥
करत सुगंध साज[4] छवि वाढ़ै। चोवा मेद[5] पुहुंप षस काढ़ै ॥
पान चूरि वीरी कर करै। ता मधि चित्र विविध विधि धरै ॥९०॥
पुहुप हार नाना विधि गूँदै। मंदिर सजे मधुप महि मूदै ॥९१॥

(दोहा)

रूप करन मंडल लिषे, अरु, गुन सकल अपार।
पहुकर मुष वरनि न सकै, होत ग्रंथ विस्तार ॥९२॥

(चौपही)

कोकिल कंठ कहै कोकिला। सुनि सुंदरि ससि नव सत कला ॥
कलि मह वचन गरुव विधि कीनौ। विष अमृत वचननि मह दीनौ ॥९३॥
निर्गुन सर्गुन वचन तै जान्यौ। निगम अगम वचननि पहिचानौं[6] ॥
तीरथ जग्य वचन करि मान्यौ। स्मृति पुरान वचन पुनि जान्यौ ॥९४॥
अस्तुत वचन देव वसि होई। पिय प्यारी त्रिय वचनन जोई ॥[7]
वचनन सत्रुहिं मित्रहि मंडै। बुरे वचन सुत तातहिं छंडै ॥९५॥
वसी करन रसना रसवानी। और सजल सब कहहिं कहानी ॥
मधुर वचन मधुरे सुर बोलहिं। मृदु विंहसत घूंघट पट षोलहिं ॥९६॥
पिय मन भावन वचन सुनावहु। अनभावन रसना जिन लावहु ॥
मुष तै वचन मधुर सुनि सोई। विनु वस करन आपु बस होई ॥९७॥

(दोहा)

पहुकर मृदु मुसक्यानि मिलि, और मधुर मुष बोल।
वह मोहन यह वसिकरन, कलि मँह यहै अमोल ॥९८॥

१—ब. विनु गुन वान धनुक नहिं लागै २—ब. बाँसुरी ३—अ. सरस
४—ब. सरस ५—अ. माद ६—ब. यह वचन परिमाना। ७—ब. होई।

(चौपही)

कोक कला जनु पून्यौ कला। कोक रीति रस जानै भला।
कहै वचनु मोहै सुनि प्यारी। सकल भेद रस जानन हारी ॥९९॥
जिहि गुन होहि प्रिया पिय प्यारी। सो गुन प्रगट कहति नहिं नारी ॥
तूँ अबला अरु जोवन वारी। नाइक संग भीत जिय भारी ॥१००॥
बरनौ तदिप कोक रस वाता। आइ होहि नाइक संवाता ॥
इहि विधि सुरति केलि कर करहू। पल पल प्रीतम चितवित हरहू ॥१०१॥
प्रति दिन मदन वास फिरि वसै। नर नारी के अँग अँग लसै ॥
पदम अंगुष्ट आदि उपजाही। ससि के संग सीस लगि जाही ॥१०२॥
दच्छिन अंग पुरिष के बढ़ै। बायै अंग त्रिया कै चढ़ै ॥
कृष्ण पक्ष दूजै अंग आवै। मावसि उतरि तहीं ठहरावै ॥१०३॥
तिथि विचारि करि यह जिय जानौ। मदनवास निश्चै पहिचानौ ॥
पुरिष परस उहि अंग कराई। सुरति सँतोष होइ अधिकाई ॥१०४॥
नारि अग उहि अंगन लावै। त्यौं त्यौं अधिक पुरिष मन भावै ॥
अरु आलिंगन भेद सिषाये। बहुत भांति जे कवि रस[1] गाये ॥१०५॥

(दोहा)

बहुत भेद बरननि कियौ, चारि बीस अरु चारि ॥
पुहुँकर प्रगट न कहि सकै, लैहैं रसिक विचारि ॥१०६॥
कोकिल कल अरु कोक कल, कला कंठ कलराउ ॥
कूका कुहुकुनि कुहुक है,[2] क्रम क्रम कहसि सुभाउ ॥१०७॥

(चौपही)

अंबुज नैन वैन कहँ[3] अंबा। रहै बेलि तरवर आलंबा ॥
विनु तर वेलि न हो[4] जग माहीं। विनु पुरुषहि त्रिय सोभित नाहीं ॥१०८॥
अब प्रकृति अंबा जिमि ढरै। सो तिरिया पिय कौ मनु हरै[5] ॥
जिहि रँग रँगति जो रँग वरवारी। जिहि रस पुरिष तिही रसनारी ॥१०९॥
प्रीतम प्रकृति प्रगट पहिचानै। नव प्रभु कै नित ही नित मानै ॥
जेही प्रकृति कंत सुष पावै। ताही प्रकृति आपु मनु लावै ॥११०॥

१—अ. वर २—ब. कूक कुहुंकनि कुहकुहै ३—ब. कहि ४—अ. नहीं
५—अ. वस करै।

(दोहा)

बारि[1] बरन बाला गहै, रहै पियहिं चितु लाइ ॥
जिहि रस मिलि नाइकु ढरै, तिहि रस लेइ ढराइ ॥१११॥
गुन रूपहिं नहिं राँचहीं, जग जानत जग रीति ॥
पिय प्यारी कै परसपर, प्रकृति मिलै तौ प्रीति ॥११२॥

(चौपही)

कहै चंद्रबिंबा सुनि प्यारी । नव छवि सरद[2] रैन उजियारी ॥
पिय मन प्रिया रिझावन हारी । तामसु तन तैं देहि निकारी ॥११३॥
सीतल प्रकृति चंद जिमि होई । उत्तिम नारि कहै सब कोई ॥
चंद्र वदन बहु गीत बषानहिं । उपमा कहत कौन गुन जानहिं ॥११४॥
अलक तिलक भुव नैननि होई । ससि सम त्रिया कहै सब कोई ॥
अमृत वचन तैं श्रवहिं सुजाना । तातै ससि मुख बरनत जाना ॥११५॥
ससि की प्रकृति होहि जौ वारी । सो पिय मन अनुरंजनि हारी ॥
षट रितु सीत उश्न अधिकाई । ससि तौ सरद[3] रहै सुषदाई ॥११६॥
ता सम राहु ग्रहन जब मंडै[4] । तउ मयंक अमृत नहिं छंडै[5] ॥
विषधर माल रहै उतसंगा । वसत वतास[6] हुतासन संगा ॥११७॥
तामस नाउ तहाँ नहि गहै । सदा सिवहिं सुष दाइकु रहै ॥
ससि की प्रकित गहौ वरवारी । जातै होहु पियहिं मन प्यारी ॥११८॥
अवगुन सकल गुननि बर जानहु । अप्रिय वचन अम्रित करि मानहु ॥
पति वचनहिं जो जैसौ मानहिं । ताकौं विधि तैसो फल आनहिं ॥११९॥
स्वाति बूंद मुकता फल होई । अहि मुष विष उपजै जल सोई ॥
नाइक सौं जो करै प्रभुताई । लेहि त्रिया मन माँझ समाई ॥१२०॥
विहँसति वदन रोसु नहि धरै । तौ तिहि छिनु पिय कौ मनु हरै ॥१२१॥

(सवैया)

अप्रिय बचन प्रियतम करि मानि लीजै ।
नित ही नवीनौ नेह नेह पै निवाहनौ ॥
कहै कवि पुहुकर औगुन गुननि गारे ।
प्यारे कौं छवीलो मुष चौप करि चाहनौ ॥

१—ब. चारि २—अ. दरसु ३—अ. सदा ४—ब. तचम सुत जौ ग्रहन जब पंडौ ५—ब. बुरे वचन सुत तातहिं छंदै । ६—अ. वसै त वास ।

रसहू तै रोस भारी गारी सो परम प्यारी।
कलह कठोर काम अंगनि कै दाहनौ ॥
लीजिये ढराइ संग भीजिये अमृत रस।
कीजिये जौ प्रीति तौ न दीजिये उराहनौ ॥१२२॥
औगुन है गुन जाके रोस रिस कोटि ताकै।
कियौ है विधाता करतूति काम कल मैं ॥
दीपक की ज्वाल कौ पतंगई पै पावै भेद।
मधुकर जानै कैसे कंटक कमल मैं ॥
मधु तै मधुर गारी ऐसी पिय प्रीति प्यारी।
पुहुकर प्रगट पऊष हालाहल मैं ॥
प्रीतम पियारौ देहि मेरे सिर तर वारि।
हौहुँ सिर पाइँ तर वारि देहुँ पल मैं[1] ॥१२३॥

(दोहा)

मानस मै पुनि मानिनी, रोस न आनौ चित्त।
सहज मानु करि मानिबौ, पिय मन मोहन मित्त ॥१२४॥

(सोरठा)

चातुरता कौ अंग। आकर्षन मनमथ्य को।
मान तहां रस रंग[2]। रोस तहां रस[3] भंग है ॥१२५॥

(चौपही)

इहि विधि सषी सिषावैं बातैं। मोहन बस्य करन की घातैं ॥
करहिं केलि कल कला कलोलैं। वचन चातुरी विधि विधि वोलैं ॥१२६॥
करहिं मनोरथ मनमथ माती। उक्ति उठावै अन बन भाँती ॥
आँनद मगन रहै वसु जामा। रूप सुधा रस विहँसै[4] स्यामा ॥१२७॥
आनन इंदु कमल दल नैनी। हंस गमनि अरु कोकिल बैनी ॥
तनु अंगी डोलै अलबेली। लहलहाइ जनु जोबन बेली ॥१२८॥
सरस रूप गुन चातुरताई। मानौ इंद्र सभा[5] तै आई ॥
करहि बिलास हास हिरनाछी। चितवित हरहिं दसन दुति आछी॥१२९॥

१—ब. हौ हँस पाइत तरवारि। २—अ. भंग। ३—अ. मन।
४—अ. सी सब। ५—सभा कला।

(दोहा)

पहुकर जौ बरननु करै, कथा चलत रह जाइ।
बात ओर निरबाहनौ, तातै कछु न बसाइ ॥१२०॥

अथ राजा विजैपाल दच्छिन दिसा विजैकरि बिजै नगर बसाइवे को आग्या देत भये तस्य वर्नन ॥

(छप्पय)

एक समै भूपाल बिजै मंदिर मह विठ्यौ[1]।
तिमग तेज तन तपै पाकसासन सम दिठ्यौ ॥
सकल पुहंमि पति सभा मध्यि मकरध्वज मोहै।
तुला भानु जनु इंदु संग ताराइन सोहै ॥
उद्दित प्रताप पहुँकर सुकवि बहुत सूर सेवा करहिं।
अरि सहि सहय निपुर लुटहिं ? सु सरन गहै सो उव्वरहिं ॥१२१॥

(छंद प्रयंगम्)

कनक दंड सुभ[2] छत्र विराजत सीस पर।
मनहु प्रदीप प्रताप सदा रवि चक्रतर ॥
पारस भूप सिंहासन मध्य विराजहिं।
देव सभा जनु सहित सची पति लाजहिं[3] ॥१२२॥

देस[4] देस के पति भूप दुवारिहिं आवहिं।
मानहिं जीवन सफल जबै सिर नावहिं ॥
एक घरे परदारहिं भेंट पठावहीं।
आइसु जोवहिं वार जुहार न पावहीं ॥१२३॥

(चौपही)

सभा मध्य बैठ्यौ भुवपालू[5]। कंप्यौ सहस सीस पातालू ॥
इक दिसि दुरद घरे सिंगारे। महा काय घूमहिं मत वारे ॥१२४॥

१—अ. वयठ्यो। २—अ. सित। ३—अ. राजइ। ४—यह छंद ब. प्रति में नहीं दिया गया है। ५—अ. नरपालू।

इक दिसि तेज ताम हय फेरहिं । चपल नैन प्रमदा जनु हेरहिं ॥
इक दिसि सारथि रथनि समारे । इक दिसि पेलहिं मल्ल अपारे ॥१३५॥
इक दिष मृग इक दिस मृग नैनी । रहहिं हजार दासि सुष दैनी ॥
विभौ देषि आपु सुष पायौ । आइ सुमति सागर सिर नायौ ॥१३६॥
सुभ सुषदाइक वचन सुनायौ । पत्र जुध्य विजई कर आयौ ॥
और भेंट वहु भाँत पठाई । विविधि रिसाल राज कहँ आई ॥१३७॥
दच्छिन दिसा जीत सब लीनी । आन फेरि अपनै वस कीनी ॥
पहुंमि पाल सब सेवक कीनै । अभय दान सरनागत दीनै ॥१३८॥
सुनत राज सुषदायक वैना । अमल कमल सम विंहसे नैना ॥
अति आनंदकंद सुनि बाता । प्रफुलित वृद्धमान भौ गाता ॥१३९॥
तिहि छिन पंच सब्द मिलि वाजे । मनहु मेघ भरि भादौ गाजै ॥
साठि सहस बाजहिं निस्साना । बहुत सोर सुनियै नहिं काना ॥१४०॥

(दोहा)

विजैपाल मंदिर विजय विजय, वचन सुनि कान ।
वदन विराजत विजय श्री, बाजै विजय निसान ॥१४१॥
बोलि सुमति सागर लियौ, आइस दिय भुवपाल ।
दिसि दच्छिन हौ देषिहौं, विजै करौ तिहिकाल ॥१४२॥
सीस नाइ बोले वचन, मंत्री मत्त गंभीर ।
लंकेस्वर पुनि थर हरै,[1] वसै उदधि मह तीर[2] ॥१४३॥
जौ कछु काजु[3] करतव्य है, सो कीजियै नरेस ।
जग्यँ अनंतर देखिहौ, पूरन दच्छिन देस ॥१४४॥
सुता स्वयंवर सौज मैं, सिद्धि करे सब काज ।
दिसि दिसि नृपति[4] निमंत्रिय, ते आये इहि साज ॥१४५॥

(चौपही)

कहै नृसंक सुनौ नर नाहा । जीवन अलप होत जग माहा ॥
सदा पहुंमि पति रहै न कोई । केवल नाम अमर कलि होई ॥१४६॥
आसमुद्र धरनी तुम लीनी । करि वर बल अपनै बस कीनी ॥
दच्छिन दिस इक नगर वसावहु । विजय नगर तिहि नाम धरावहु[5] ॥१४७॥

१—ब. थर रहै । २—अ. जु वसहि उदधि उहि तीर । ३—ब. काव्य ।
४—ब. मंत्रिन । ५—ब. ठीक ठौर ठहराइ जु आवहु ।

अति सुंदर रमनीय[1] वनावहु । चाहि जाहि सुरपुर[2] लजियावहु[3] ॥
जब लगि चंद सूर धर[4] पानी । तब लगि चलैं कवित्त कहानी ॥१४८॥
विजैपाल राजा इसु भयौ । दच्छिन देस जीत सब लयौ ॥
सूरज वंस सूर भयौ सोई । इहि विधि बात कहैं सब कोई ॥१४९॥

(दोहा)

सुनि राजा सुषु पाइ अति[5], मान्यौ वचन प्रवानि ॥
बुधि विचित्र कहँ बोलियौ, जान सकल गुन षानि ॥१५०॥
करि प्रसाद दारिद्र हरि, आइस दिय भूपाल ॥
नगर रचौ दिसि दच्छिनहिं, बुधि विधि वेगि उताल ॥१५१॥
जबहि स्वयंवर सीध रे, हौं आऊँ उहि देस ॥
नगर देषि जौ रीझिहौं, करौं सहस ग्रामेस ॥१५२॥
चित्रकार सुत धार[6] सब, अरु सुत हार सुनार ॥
बुधि विचित्र के साथ दिय, गुनियनि गुनी अपार ॥१५३॥
तोस कोट भंडार दिय, चारु चोप चित चाइ ॥
सुमति अनुज सँग पाठयौ, करि प्रधान पहिराइ ॥१५४॥
करि प्रनाम सब जन चले, पहुचे दच्छिन देस ॥
विजै नगर सज्जन लगे, आयसु मान नरेस ॥१५५॥

(छंद प्रयंगम्)

इत नृप आयसु मान विजैपुर सज्जियौ ॥
जा पुर कौ चित चाहि सुरप्पत लज्जियौ ॥
इत द्दग चित्र अनूपम पेष तरज्जियौ ॥
कीनौ सूर पयान सुठाम कवज्जियौ ॥१५६॥

इति रसरतने काव्ये पुहकर विरंचितेयं विजयपाल षंडे नगर बसावनो नाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

(दोहा)

जब विचित्र फिरि घर चल्यौ सूरहिं चित्र दिषाइ ॥
दिन दिन प्रति अभलाषु बड़[7], छिन भर रह्यौ न जाइ ॥१५७॥
विरह बिकल आतुर भयौ, तजी कानि[8] अरु लाज ॥
मंत्री वेगि बुलाइयौ, जु करै राज के काज ॥१५८॥

१—ब. रव नीर । २—ब. सुरपति । ३—अ. सरि लावहु । ४—अ. सुर पर । ५—ब. परमानि मन । ६—अ. यार । ७—ब. बड़, । ८—ब. कान ।

अथ सूर सैन स्वयंबर सुनि कै चलै तस्य वर्णन

(चौपही)

सौमेसुर मंत्री सुग्यौंना[1]। गुन गंभीर नामु सब जाना[2] ॥
सूर कुँवर सोइ बोलि पठायौ। आइस सुनत तत[3] छन आयौ ॥१५६॥
कहै सूर मंत्री सौं बाता। चंपावति नगरी विष्याता ॥
विजैपाल राजा तहँ आही। कहहि बहुत पृथवी पति ताही ॥१६०॥
तिहिं घर सुता स्वयंबर होई। देषन जोग कहै सब कोई ॥
मुहिं अग्या दल सहित दिवावहु। तुम राजा सौं कहि समुझावहु ॥१६१॥
अरु तुम आगे कहाँ दुराऊँ। रोग सूरि तिहि ठावहिं पाऊँ ॥
तुम सुबुद्धि सब भेदहिं जानौ। थोरौ कह्यौ बहुत कै मानौ ॥१६२॥

(दोहा)

गुन गंभीर यह बचन सुन समुझि सकल विरतंतु[4] ॥
अति उताल तिहि ठाँ गयौ, जहँ वैरागर कंतु ॥१६३॥
सीस नाइ बोल्यौ वचन, मंत्री मति अधिकार ॥
सूर विथा विधना हरी, जानौ नव अवतार[5] ॥१६४॥
वैद विचित्र जो आइयौ, तिहि कर दीनौ चित्र ॥
सो कुमार लोचन कमल, परष्यौ मोहन मित्र ॥१६५॥
तबहिं सुरति आई सकल, पेष्यौ चित्र अनूप।
नष सिष निरष्यौ नैन भरि, मिल्यौ स्वप्न कौ रूप ॥१६६॥

(चौपही)

विजैपाल चंपावति राजा। तिहि घर सुता स्वयंबर साजा ॥
जो तनया गुन रूपनि सोहै। श्रुतानुराग विश्व मन मोहै ॥१६७॥
स्वप्न सुभाइ सूर मन लीनौ। उभै बरष विरहानल दीनौ ॥
सोई कन्या पितु सदन कुमारी। व्याह जोग अब सुनियतु वारी ॥१६८॥
दिसि दिसि भूप स्वयंबर आँवहि। पानिगहन कारन मनु लावहिं ॥
वाकी प्रीत कुँवर अनुराग्यौ। सब तजि जाइ उहाँ मनु लाग्यौ ॥१६९॥
सूर विजै कौ आइसु कीजै। अरु दलु अषिल संग करि दीजै ॥
जाहि विवाह ताहि लै आवहिं। होहिं निरोग भोग सुष पावहिं ॥१७०॥

१—ब. सुरग्याना। २—ब. नाम गुन गाना। ३—ब. मान सुनत।
४—ब. विरदंतु। ५—अ. जनु हुव नव अवतार।

(दोहा)

राजन आयस दीजिये, और विवो नहिं मंतु।
मंत्रि बचन सुनि बोलियौ, वैरागर कौ कंतु ॥१७१॥
स्रवन सुनी पिष्षी नहीं, चंपावति है दूरि।
तहँ क्यौं पठऊँ कुँवर कँहु, प्रान सजीवन मूरि ॥१७२॥
पलक वोट पल कौं भये, ललकि प्रान अकुलाइ।
क्यौ वरसनि बिछुरनि सहौं, निमष वरष वरजाइ ॥१७३॥
गुन गंभीर इहि उच्चरे, सुनिये राज विराज।
हम जो कहैं यह वारता, कुँवर हेत के काज ॥१७४॥
विरहा ज्वर के जतन कौ, और न वोषद मूरि।
अवसिमेव कीजिय विदा, जद्दिप है अति दूरि ॥१७५॥
सोमेसुर इम उच्चरे, सुनि मंत्री गंभीर।
तोहि संग पठाइहौं, जो रहै अहो निसि तीर ॥१७६॥
तूं गंभीर अति धीर मति, चलहिं कुँवर के साथ।
सावधान निसि दिन रहै, प्रान देत तुहिं हाथ ॥१७७॥
जाइ सकल दल साज करि, और अषिल भंडार।
पर पहुमी परवेस है, कीजौ कीर्ति अपार ॥१७८॥
सुनि आइस परवानि सिर, वाढ्यौ हदै हुलास।
सामग्री साजी करन, गयौ कुँवर के पास ॥१७९॥
सूर सकल वोले सुभट, तिनि कौं आइस दीन।
गय हय हाटक हीर पट, पेषि पेषि सँग लीन ॥१८०॥
कनक जुगनि दिन मंडियौ, तदिन समय सुभ जोग।
तिथि सुवार नक्षत्र मिलि, करन पँच संजोग[1] ॥१८१॥
असित पच्छि तिथि पंचमी, पुष्य नषत गुरुवार।
पुन्य मास वैसाष मै, कीनौ विजय विचार ॥१८२॥

(चौपही)

प्रथम कुवर जननी पँह आयौ। आवत सीस चरन लै लायौ ॥
बिछुरन ताप मात कुम्हलानी। भींजे वसन नैन के पानी ॥१८३॥

१—ब. प्रति में यह दोहा नहीं है।

कंठ लाय गहवर हिय[1] रोवै। जनु सुत वदन अच्छ जल धोवै ॥
वच्छ बिछोह धेनु जिमि रंभै। व्याकुल अस्रु पात नहिं थंभै ॥१८४॥
राम चलत कौसिल्या जैसे। घुमि घुमि धरनि परतियन ऐसे ॥
अँषियाँ रँहट कुंभ जिमि चाही। भरि भरि आवैं ढरि ढरि जाँही ॥१८५॥
सावन घटा नैन बरषावैं। गद गद गिरा वचन नहि आवैं ॥
बिनवहिं सषी सुनहु नृपरानी। कहहु मधुर धुनि मंगल वानी ॥१८६॥
जुगतु न होई[2] रुदन इहि काला। आवहिं कुँवर बिवाहि उताला।
यह दुष भूल सकल तब जैहै। कालहिं पुत्र वधू घर ऐहै ॥१८७॥
यह सुनि मंगल गान गवायो। दधि रोचन भरि थार मँगायो ॥
नाल केलि फल रूपै भरे। दरसनीक[3] मुकताहल धरे ॥१८८॥
बेद बिदुष दुज तहाँ बुलाये। कलस थापि गनपति पुजवाये ॥
करि प्रनाम माता सौं आये। तिलक सहित दुज दरसन पाये ॥१८९॥
दै आसिका जननि इमि कहै। जगरच्छक तुव रच्छक रहै ॥
कातर वयन दीन इम भाषै। चहु दिसि चक्रपानि तुहिं राषै ॥१९०॥
मारग माँझ मुकुंद सहाई। सब जो सहाय रहै सुषदाई ॥
बहुर वयन व्याकुल कल बोलै। वात वस्य वारिज जिमि डोलै ॥१९१॥

(दोहा)

इहि विधि कै कीनौ विदा, दै असीस बहु भाइ।
पलक वोट सुत होत ही, धरनि परी मुरझाइ ॥१९२॥
पुहुंकर बिछुरन कठिन है, जग जनि बिछुरहिं कोइ।
भावतही बिछुरन भयो, मिलन दुहेलौ होइ ॥१९३॥
मंगलीक वाचा पढ़ैं, बहुत विप्रगन साथ[4]।
गुन गंभीर तँह लै चलै, जहँ वैरागर नाथ ॥१९४॥
करि प्रनाम परसे चरन, भुवपति आँग्या पाइ।
गज चढ़ि मारग पगु धरयौ, चले निसान वजाइ ॥१९५॥

(छंद भुजंग प्रयात)

तहाँ सूर पयान निस्सान बाजे। मनौ मेघ भादौं महा नाद गाजे ॥
वजे दुंदुभी ढोल भेरी मृदंगा। सुनै सोर पाताल मध्ये भुजंगा ॥१९६॥

१—ब. वर हिय गह। २—ब. नहिन जो। ३—अ. दरसनीय। ४—अ. प्रति में दोहे की पंक्तियाँ परस्पर परिवर्तित हैं।

बजै बाँसुरी संष सहनाइ तूरं । भये सब्द दिग्पाल के कर्न पूरं ॥
भई पंच हज्जार दुंदभी धुकारं । उठै नीर पाताल चलि वारपारं ॥१९७॥
सुनै सोर इंदौर तैं इंद्र लज्यौ । जहाँ सैन चतुरंग गंभीर सज्यौ ॥
चले मत्त मैंमत्त घूमंत मत्ता । मनौ बद्दला स्याम आयै चलंता ॥१९८॥
बनी बग्गरी रूप राजंत दंता । मनौ बग्ग आषाढ पाँते उडंता ॥
लसै पीत लालै सुढालै ढलक्कैं । मनौ चंचला चौंध छाया झलक्कैं ॥१९९॥
गिरी श्रृंग के कुंभ सिंदूर मंडे । घटा अभ्र पाँतै मनौ मारतंडे ॥
वहहिं जोर छंछाल ते मद नीरं । लगे गंड गुंजार तैं भौर भीरं ॥२००॥
किये कंडुली कुंड सुंडाहलीयं । लसै चौर मरि जो श्रृंगार कीयं ॥
लसै गात गंभीर जंजीर जेरैं । मनौ सेव छूटे प्रलै काल केरैं ॥२०१॥
चलत्ते[1] चवी पाँइ बेरी घरक्कैं । बजै घूँघुरु घोर घंटा ठनंक्कैं ॥
बनी किंकिनी लंक लागी घलंक्कैं । मनौ पावसी रैनि झिल्ली झनक्कैं॥२०२॥
पलानैं तहां तेज ताजी तुरंगा । परे उच्च उच्छाल मानौ कुरंगा ॥
कयाहे सुलालं दुरंगा सुरंगा । घरे स्वेत पीतं तथा सावरंगा ॥२०३॥
इराकी अरब्बी तुरक्की दवच्छी[2]। ममोला अमोला लिये मोल लच्छी॥
बजै धाव[3] धावैं लसै पूंछ अच्छी । मनौ उड्डुहीं वाइ बैठे[4] सुपच्छी ॥२०४॥
उभै कर्न ऊचे[5] महा उच्च ग्रीवा । मनौ उच्च उच्चैश्रवा सोभ सीवाँ ॥
भयौ मान हीना न छूटै न भग्गौ । लग्यौ आइ पायौ न पायौ न लग्गौ॥२०५॥
जरे जीन मानिक्क सोहंत मोती । लगे संग डोलैं मनौ इंद्र गोती ॥
विसालच्छ लोलच्छ सोहैं अमोलं । परै पीह नैनानि सौं होड बोलं ॥२०६॥
स्वयं रूप अरु तेज देषे जु गावै । अहिबेलि ज्यौं लोह लग्गाम चावै॥
कनै उट्टके वज्त्र रेसंम्म फुंदा[6] । नटावंत विद्या धरा बुंद बुंदा ॥२०७॥
चढ़ै सूर वंसी महा सूरवीरं । उलंघै मनौ चंपि वाराधि नीरं ॥
सबै षड्ग धारी चितै चित्त सोहै । मनौ चित्त औरेषि पेषंत सोहै ॥२०८॥

(दोहा)

इहि दिनु सुदिन पयान किय, दुज वर पढ़हिं असीस ।
चंपावति कौ चढ़ि चल्यौ, वैरागर कौ ईस ॥२०९॥

इति रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं विजयपाल षंडे
सूरसेन पयान वर्णनो नाम चतुर्थो अध्यायः ॥ ४ ॥

१—यह छन्द अ प्रति में नहीं दिया हुआ है । २—ब. अरब्की बब्की तुरकी यकच्छी । ३—अ. जवै धाय । ४—अ. वेगै । ५—ब. ऊभै । ६—अ. करै पट के जंम रेसम फुंद ।

(छंद पद्धरी)

चढ़ि चल्यौ सुदिन वैरागरेस । सोभायमान मानौ सुरेस ॥
राजत मुकट सिर जटित हीर । जनु गान करै वंदीन भीर ॥२१०॥
सित असित अरुन लोचन विलाल । सोहंत कंठ मुत्तीय माल ॥
तहँ लसत श्रवन कुंडल विलोल । झलकंति आइ आभा कपोल ॥२११॥
मृगमद सुमंडि तहँ तिलक भाल । बलिहार करहिं मनु नगरबाल॥
अधरानि राग तंम्बोल भीज । जनु कमल मध्य दाड़िम्म बीज ॥२१२॥
मुसक्याति पिष्षि मृदु मंदु हास । चंचला चमकि जनु इंद्र पास ॥
आरूढ दंत छबि परम पूर । घन लिषिरि मनहुँ उद्योत सूर[1] ॥२१३॥
अनगनित सथ्थ अनुचर अनूप । सुर संग मनौ सुरलोक भूप ॥
दुति कनक दंड तहँ विजन बाल । जनु कल्प वृच्छ[2] कर आलबाल॥२१४॥
दल अषिल संग दलपत्ति येम । भारथ्थ सैनि पारथ्थ जेम ॥
रथ अयुत इक्क[3] युग अयुत नाग । हय इक्क लष्ष मारुत्त[4] लाग॥२१५॥
विवि लच्छि लीन धालुक्य संग । बानी अचूक मानौ अनंग ॥
तह पंच सहस बाजहिं निसान । अति बहुत सोर सुनियै न कान ॥२१६॥
कवि कहै केमि[5] कविता बनाइ । नहि नैन जीभ जो वरनि जाइ ॥२१७॥

(छप्पय)

सेस सीस लचि[6] भार डिढय डाढार करक्किय ।
विकसि कमल सकुचंत कोक कुल वधु वपू धरक्किय[7] ॥
जँह थल तँह जल प्रगटि धूरि थल पूरि जलधि तँह ।
कमल कसकि धस मसकि धसकि पव्वय पताल कहँ ॥
पायान सूर पुहुकर सुकवि संक भानु[8] हय वागलिय ।
हर हसित भूत नच्चहि सुगम सुजुग्गनि पान सो पंत्र किय ॥२१८॥

(दोहा)

सूर पयान प्रभातहीं, कीनौ सूर चलान ।
सुरसरि तट इक जोजनहिं, कीनौ जाइ मिलान ॥२१९॥

१—ब. उद्वेग पूर २—ब. कै कमल वृच्छ । ३—अ. रथ लक्ख अयुत ४—ब. भारत्त । ५—ब, कोक । ६—अ. चलि । ७—ब. में यह पंक्ति इस प्रकार है—कमठ द्वार लग्गिहि किवार मेदिनि सो भरक्किय । ८—अ. वान ।

पावन परम पवित्र अति, विमल वारि अघहारि।
हर सिरमाला मालती, परसे चरन मुरारि ॥२२०॥

(छंद तोटक)

चरनोदिक चारु तिविक्रमयं। पुनि मध्य कमंडल मध्य ठयं।
धसि धार तहाँ सिव सीस बसी। घन मैं जनु जोति नक्षत्र लसी ॥२२१॥
जननी जग जन्हु सुनंदिनि जू। सनकादिक नारद वंदिनि जू।
तिहुँ लोकहिं तारन तीरथ जू। भुव लोक सुभाग भगीरथ जू ॥२२२॥
दरसैं सत जन्मनि पाप हरे। परसैं पद पद्म पवित्र करे।
पद पद्म पराग विलोल मनं। रस रंगित भृंग रिषीस गनं ॥२२३॥
अषिया गुन निर्गुन जोहन की। सिढ़ियाँ सुर लोक अरोहन की।
नर मज्जन जो तुवँ नीर करे। सचुपाइ सदा जल सीस धरे ॥२२४॥

(सवैया)

पेष्यौ मै आचिर्ज[1] एकु मंज्जनु करै जु नित्त[2] ?
चाहै तनु धोयौ तुम धूरि लपटावती।
सुनो भय हारी भारी भीतनि अभय कारी,
भुजग लगाइ कंठ काहै डरपावती ॥
पुहुकर कहै सुनौ भावावती[3] भागीरथी,
येती कृपा कीनी करपत्र हौ धरावती।
भगति कौ हेतु ऐसो वरन्यौ न जातु मोपै,
भीजै उत्संग गंग संग लगि आवती ॥२२५॥

(दोहा)

करि प्रनाम दरसन परसि, वेद सुविध अस्नान।
देव चरन जप हौम जुत, दीनै षोडस दान ॥२२६॥
पट कुट विमल वितान तनि, मंदाकिनि के तीर।
सबु तजि मारग मनु लग्यौ, आतुर अतन[4] सरीर ॥२२७॥
पुनि रवि प्रात पयान किय, राज पुत्र बहु संग।
असपति नरपति गजपती, दलपति दल चतुरंग ॥२२८॥

१—अ. अचञ्जु। २—ब. में यह शब्द छूटा है। ३—ब. भवती।
४—अ. असन।

(चौपही)

दल चतुरंग संग अनुभंगा । बरन बरन सोभित बहु रंगा ॥
पटकुट अरुन अवनि गह तूले । जनु पलास रितुपति रितु फूले ॥२२६॥
दिन प्रति करै प्रभात पयाना । जुग जोजन पर होहिं मिलाना ॥
पेषी नैन जो सुनी कहानी । अगिलिहि कीच पाछिलिहि पानी[1] ॥२३०॥
गिरिबर गंजि बिपिनि बहु गाहे । सरवर सरित अथाहनि थाहे ॥
इहि विधि क्रम क्रम काल अतीते । एक मास कछु ऊपर बीते ॥२३१॥
चलत चलत बाहत बहु देसा । गढ़[2] चंद्रागिरि[3] कियौ प्रवेसा ॥
वहै छाड़ि जब कियौ पयाना । मान सरोवर भयौ मिलाना ॥२३२॥

(दोहा)

जेठ मास सित पच्छिमी, तिथि दसमी दस जोग ।
सूर सरोवर तीर पर, भयौ उभै संजोग[4] ॥२३३॥
एक मास मारग चले, सह्यौ सीत अरु घाम ।
सरवर सोहलु पेषि कै, भयौ मनहिं विश्राम ॥२३४॥

(छप्पय)

जेठ मास सिति पच्छ जु तिथ दसमी दिन मानहि ।
बिती पात गर करन जोग आनंद वषानहिं ॥
नखत हस्त बुधवार चंद्र कन्या वृष भानँहि[5] ।
कहत ताहि दसहरा हरत दस पाप पुरानहि[6] ॥
सुर सरीय मानि अस्नान करि वेद भेद बहु विधि करिय ।
जिय जानि सूर सरवर सुभग सुकरि मिलान तद्दिन रहिय ॥२३५॥

(छंद गुनदीपक)

तहँ मानसरोवर सोहनं । सुर नाग मनुज नर मोहनं ॥
सजि पारि चारिहु ओरई । मन मुक्ति मरकत जोरई ॥२३६॥
रँग अरुन बरनहिं मोहई । सित नील पीतति सोहई ॥
तिहिं तीर चहुदिसि काननं । चित चाह किय चतुराननं ॥२३७॥

१—अ. पछिलिहिं कीच आगलिहि पानी । २—ब. गड़ । ३—ब. चंद्रागिन । ४—अ. प्रति में यह पंक्ति इस प्रकार है—सूर सत्र रथी रथह भयौ उदै संयोग । ५—ब. में यह पंक्ति नहीं है । ६—अ. में इसके स्थान पर यह पंक्ति है—परौ वार शुभ चंद जिसम तरस ग्रंथ बषानहिं ।

द्रुम साल ताल तमालनं । तहँ करत षग वन पालनं ।।
जल मगन सनकुज ? पत्तनं । जिहिं मध्यि मधुकुर छत्तनं ।।२३८।।
कलगुंज गुंजत राजहीं । जनु मान गंध्रप गाजहीं[1] ।।
तिहिं मध्यि मंदिर राजहीं । सुर लोक भुव जिमि छाजहीं ।।२३९।।
तहं मंडि कलस[2] कुतूहलं । ससि किरिन तै अति उज्जलं ।।
उत्तंग जोति विराजही । रवि रेष पेषत लाजही ।।२४०।।
कवि कहत वरनन संकुचै । किमि जीभ लोचन मैं सुचै ।।
जिहिं भाँति नैननि भावही । तिहि क्रम न वरनन आवही ।।२४१।।

(दोहा)

राज कुँवर मंदिर रच्यौ, मिरगावति के काज ।
सो लोचन गोचर कियौ, सूर कथा के साज ।।२४२।।
और कटक चहु ओर परि, हय गय सैनि अपार ।
सेज रची मधि मंदिरहि, सुषहित राजकुमार ।।२४३।।
प्रात नृजल एकादसी, पुहुकर परम पुनीत ।
देस काल सब समुझि करि, रह्यौ तहाँ अरि जीत ।।२४४।।

(श्लोक)

अस्ति जदपि सर्वत्र नीर नीरज मंडितं ।
रमते न मरालस्य मानसं विना[3] ।।२४५।।

(चौपही)

जब एकादस निर्जल होई । उहि सरवर आवहिं सब कोई ।।
नर नारी गावहिं सब घाटा । अमर लोग आवहिं अघ वाटा ।।२४६।।
सुर नर मुनि गंध्रप सब आवहिं । चर्म दिष्टि नर दरस न पावहिं ।।
साठि घरी अरु आठौ जामा । सरवर छिन न होहि विश्रामा ।।२४७।।

इति श्री पौहकर विरचितेयं विजयपाल खंडे मानसरोवर आवास वर्ननो नाम पंचमो अध्यायः

(इति विजयपाल खंड)

१—अ. गावहीं । २—अ. सकल । ३—ब. में यह श्लोक नहीं है, लगता है अलग से जोड़ा गया है ।

अप्सरा खंड

(चौपही)

ब्रह्म महूरति रिष सब आये[1] । अरु चढ़ि देव बिवाँननि धाये ।।
मज्जन कियौ बहुरि नर नारी । अति सरूप देषत रुचिकारी ।। १ ।।
इहि विधि वासर अवधि ढरानी[2] । दिनकर दुरौ निसा नियरानी ।।
सकुचे कमल कियौ अलि वासा । तरवर पच्छिनि लियौ निवासा ।। २ ।।
उदित इंदु कुमुदिनि हरषानी । कामिनि काम कला अधिकानी ।।
सति वंत कुँवर तद्दिन व्रत धारो । रुचिर सेज पौढ़े उजियारी ।। ३ ।।
दुतिय जाम निवटत निसि धाई । अच्छरि मान सरोवर आई ।।
करि मज्जन कुंमकुम तन माजे । पहिर चीर अंजनु द्रग साजे ।। ४ ।।
भूषन विविध विभूषित[3] भामिनि । अवनि आइ दमकीं जनु दामिनि ।।
देषत रुचिर रैनि उजियारी । मनमथ मोद मिली सुर नारी ।। ५ ।।
रंभा कहै सुनौ उरवसी । सरवर छबि देषौ घर वसी ।।
माथे चंद पगनि परछाहीं । यह सोभा अमरावति नाहीं ।। ६ ।।
तैसिय उदै इंदु उजियारी । तैसिय वन सोभा रुचिकारी ।।
तैसेइ मान सरोवर राजै । तिहि पुर मनौ एक छबि छाजै ।। ७ ।।
निर्मल नील गगन मनु मोहै । इतहि नील काननु अति सोहै ।।
सरवर नील नील मनि झाई । तरवर तीर बिंब सुष दाई ।। ८ ।।
उडुगन उदित कहैं सुषकारी । जनु विधना ज्यौं नारि सुधारी ।।
नूतन पत्र पत्रावलि जानौ । ओदनु आनि परोसौ मानौ ।। ९ ।।
तैसेई सेत फूल बन फूले । मालति बेलि कुंद अति भूले ।।
काम फौज अवनी पर साजी । हरषिति हँसति मिलीं बनराजी[4] ।।१०।।

१—किसी भी प्रति में यहाँसे अप्सरा खंड आरंभ होने की सूचना नहीं मिलती । ब. प्रति में यहाँ से छंद संख्या फिर १ संख्या से शुरू होती है । इसी से अनुमान होता है कि यहाँसे कोई नया खंड होगा । ब. प्रति में किसी ने यहाँसे अप्सरा खंड शुरू होता है, ऐसा संकेत पेंसिल से लिखा है ।
२—अ. दुरानी । ३—ब. विभूषन । ४—ब. बाजी ।

(दोहा)

तैसिय सरवर कुमुदिनी, फूल रही इहि[1] भाइ।
मनौ काच को थार मै, मुकता[2] धरे बनाइ ॥११॥

(सवैया)

सोई सोभा गगन अवनि पुनि सोई सोभा
तैसिये पताल सोभा एक उनहारि है।
पुहुकर कहै कछू बरनी न जाति मो पै
मेरे मन आई सोई कही मै विचारि है।
मान सर तीर तरु फूले हैं अनेक फूल
ताकौ प्रतिबिंब रहौ भुजा सी पसारि है
नागलोक माझ अध ऊरध अमर लोक
तीनो लोक मानौ तीनि नैन त्रिपुरारि है ॥१२॥

(चौपही)

रंभा वचन मान सब चलीं। बन विहार खेलहिं मिलि अली ॥
कमल तोर कर कमलनि लीनै। ते कर कमल खिलौना कीनै ॥१३॥
भृंग मत्त गुंजन मधि राजैं। बालनि हाथ झुनझुना बाजैं ॥
कहहिं चलौ मंदिर महँ जाहीं। देषहि कहाँ चरित तिहि माही ॥१४॥
सकल सषी मंदिर महँ आई। निरषै नैन अचिरजु अधिकाई ॥
देषहिं सेज अनूपम डासी[3]। विविधि बसन उज्जल अति वासी[4] ॥१५॥
तिहि पर रूपप रासि इक सोहै[5]। जो त्रिय चित्त रूप संमोहै[6] ॥
मोही रूप सकल सहचारी। मनमथ बान लगे तन भारी ॥१६॥
मन तै मदन अग्नि उपजाई। सो फिर मनही माझ समाई ॥
तब सब मिलि कर करहिं विचारा। कहाह कौन मन मोहन हारा ॥१७॥
जौ इहि विधि सोवत चित्त चोरै। जागत अवसि त्रिया मन भोरै ॥१८॥

(दोहा)

कै रवि इंद कै चंद है, कै कुबेर[7] कै काम।
कै कुमार[8] कै नृपति नल, पुहुकर दृग अभिराम ॥१९॥

१—ब. फुल। २—अ. मुत्ती। ३—ब. सुगंधन वासी। ४—अ. डासी।
५—अ. सोवै। ६—अ. संमोवै। ७—ब. कुमार। ८—द. कुबेर।

(चौपही)

जब निश्चै चित्त महँ यह[1] आई । मानव देव रूप अधिकाई ॥
कहहि सषी सब सुनौ सहेली । अलि मन कही तजौ यह बेली ॥२०॥
जो मानव तन चित्त चलावहु । तौ अमरावति ठाँव न पावहु ॥
जानौ कलपलता की बातैं । गुन अरु रूप कहाँ घटि कातैं ॥२१॥
जोबन रूप इंदु उजियारी । मन वच क्रम सुरपतिहिं पियारी ॥
नैन कोर नर तन कर हेरी । नैक न कानि करी तिही केरी ॥२२॥
पूरव प्रीत न चित्त विचारी । दै सराप भुव लोकहिं डारी ॥
भरता कह्यौ होहिं नर तेरौ । सुष अरु भोग अनुग्रह मेरौ ॥२३॥

(दोहा)

मंजुघोष इम उच्चरै, हौं हिय अधिक डराउँ ।
आषंडल अति क्रोध है, वेगि तजौ यह ठाउँ ॥२४॥

(चौपही)

कहै घृताची सुनौ सयानी । यह वर क्यौं न देहु उहु वानी ॥
हम जु इंद्र की आँग्या पाई । सकल देषि वर देहिं वताई ॥२५॥
अबही कलपलता लै आवहु । करि विवाह बहु मंगल गावहु ॥
वहै सषी प्रानन की प्यारी । जो वरु मिलै होइ सुष भारी ॥२६॥
दैव योग यह आनि मिलावहु । रतन हीर कंचन पर लावहु ॥
औरौ मंत्र करौ सहचारी । उज्जल आइ इंदु उजियारी ॥२७॥
सुनत वचन सब सषियनि मानौ । कलपलता कौ वर परवान्यौ ॥
कहै चलौ पलु गहरु न लावहु । कलपलता इहि ठाँ लै आवहु ॥२८॥

(दोहा)

तवच्चरै इमि उरवसी, कहौ अयानी वात ।
यह नरपति दलपति बली, संग अषिल संघात ॥२९॥

(चौपही)

जौ विवाह इमि मनहिं न आवै । तौ करता किहिं भाति बनावै ॥
हम अबला यह अति बलराजा । बिनु सिधि भये जतनु किहि काजा ॥३०॥
जौ निहिच्चै तुम यहै विचारी । एक सुमति यह सुनौ हमारी ॥
सेज समेत लेउ इहि साथा । तौ फिरि होहि हमारे हाथा ॥३१॥

१—ब. गति ।

ब्रह्म कुंड महँ जाइ उड़ानी। जिहि ठाँ कलपलता है रानी ॥
करहिं विवाह रयनि रस मानी। वहुरि फेरि अमरावति जानी ॥३२॥
मै यह मंत्र करौं चित चाही। इहि विधि छाँड़ सकै नहि ताही ॥
अवसिमेव वसि होहि हमारे। दल जोजन सत रहै निनारे ॥३३॥
और भोग सुष उहि ठाँ आही। पूजहि सकल सिद्धि चित चाही ॥
यह सुनि मंत्र सवनि सिल थाप्यौ। सेज लेत हिय नेकु न कांप्यौ ॥३४॥

(दोहा)

सब अनुचर सरवर तजे सोवत राजकुमार।
लै अकास मारग चलीं, मानौ करैं विहार ॥३५॥

(छंद)

चली मिलि अप्छर सेज उड़ाइ। मनौ भुव ऊपर छुटी हवाइ[1] ॥
लगी पलिका पग चारिहु ओर। भरी अनुराग महामद जोर ॥३६॥
कहै यह सोभ कवित्त बनाइ। मनौ रथ इंदु नछत्र सहाइ।
सवै तरुनी मृग लोचन नारि। सवै प्रिय प्रेम बढ़ावन हारि ॥३७॥
लसै लटकैं जनु दामिनि रेष। किधौं सब सूर किरन्नि विसेष।
चली मिलि आँनद उच्च उताल। लिये जनु संग सहश्रम साल ॥३८॥
लगी इमि अप्छरी सेज उडात। मनौ फिरै अंबर चक्र इलात।
सवै सुष रासि गईं सषि पास। कहै इमि अप्छरि पुहुकर दास ॥३९॥

(दोहा)

त्रितिय जाम निसि अंत मैं, सुंदरि गईं अवास।
मुदित मंडि परजंक प्रिय, कलपलता के पास ॥४०॥

(चौपही)

उरवसि आदि कहै सहचारी[2]। लेहि जगाइ कलप प्रिय वारी ॥
करज मोरि पग पालक प्यारी। सकल भेद रस जाननि हारी ॥४१॥
सुष सेज्या सोवत तैं जागी। सहचरि सबै देषि अनुरागी ॥
आदर बहुत कियौ तिहि काला। बोलत मधुर बैन वर बाला ॥४२॥
आसन अरघ करे मनु हारी। जल सीतल भरि कंचन थारी ॥
पान सुगंध फूल बहु आनै। बरनन हेत कहाँ कवि जानै ॥४३॥

१—अ. ऊरघ। २—अ. सुखारी।

(दोहा)

इहि विध बहु आदर कियौ, सषियनि आगम जानि ।
सकल कथा आनंद मय, पुहुकर कहत बषानि ।।४४।।

(सोरठा)

जौ फिरि देषहि बाम । बाम नैन दिस बाम तन ।
दुतिय सेज तिहि धाम । तापर मूरति मैन की ।।४५।।

(चौपही)

पूछी सषी सेज तन हेरी । सषि यह सेज आइ किहि केरी ।।
कौन पुरिष यह मूरति मैना । कहौ सत्य मुष मंडल बैना ।।४६।।
उरवसी और घृताची कहै । सुंदरि यह सुष जुग जुग रहै ।।
भुवपति सप्त दीप धर केरौ । तै दुलहिनि यह दूलह तेरौ ।।४७।।
हम सब सुरपति आइस दीनौ । तादिन तैं चित चिंतनु कीनौ ।।
देषहि सकल फिरहिं महि मंडल । अग्या दई हमहिं आषंडल ।।४८।।
पायौ मान सरोवर राजा । सो उड़ाइ आन्यौ तुव काजा ।।
निरषि नैन यह सुंदरताई । देषत बनै बरनि नहि जाई ।।४९।।

(दोहा)

ज्यौ रति अरु मन मथ्थ, जू दमयंतिय नल जेमि ।
कलपलता दुलहिनि रची, दूलह भुवपति येमि ।।५०।।

(चौपही)

भई मुदित पुलकित अति अंगा । नीचे नैन किये भुव भंगा ।।
कछु लजात कछु आँनद भरी । निरषि न सकति संक जिय मरी[1] ।।५१।।
गुरजन मान सषी सुर नारी । सकुचति सुनति विवाह कुमारी[2] ।।
छाड़ हास रस भई उदासा । संकति सकुच और भय त्रासा ।।५२।।
मानव जान निपट थरहरै । प्रथम समागम अति भय डरै ।।
तब समझावहिं सकल सहेली । मधुकर आइ मिल्यौ रस बेली ।।५३।।
सकुच छाँड़ि कर आँनद प्यारी । नवल नेह रस पावन हारी ।।
हमहिं वेग अब आइस दीजै । आपुन रैन रंग रसु पीजै ।।५४।।

१—ब. निरषित सवति । २—ब. सकुचति सकति व्याह वर वारी ।

(दोहा)

कलपलता इमि उच्चरे, जो तुम कियौ विचार ।
हौं अब किहि विधि कहि सकौं, थापि रह्यौ करतार ॥५५॥
सहचरि अग्याँ पाइ करि, बैठी सब सुरनारि ।
प्रानप्रिया परवीन अति, प्रीति बढ़ावनिहारि ॥५६॥
विधि गंधर्व विवाह रचि, कियौ त्रियनि आरंभ ।
मुदित मोद मंडफ रच्यौ, थापि मनोहर थंभ ॥५७॥
तहाँ सनेह सनेह धरि, दुलहिन लेहि सवाँरि ।
मिलि करि मंगल मंगली, चतुर चढ़ावन हारि ॥५८॥
प्रेम गाँठि कलि करि दई, कंकनु बाँध्यौ हाथ ।
पानिग्रहन उचित ठयौ, मदन सो प्रोहित साथ ॥५९॥
सब अच्छरि इमि उच्चरै,[1] कलपलता सौं बात ।
निपट अंतु निसि आइयौ, होत पहर मैं प्रात ॥६०॥
तुम मानौ रस रंग रति, हम अब जाहिं अकास ।
कालि साँगि आइसु बहुरि, आवहिंगी तुव पास ॥६१॥

(चौपही)

कहहि सखी तुतु प्रान पियारी । जोरी मिली जोगु बर नारी ॥
डर जनि करौ करौ जनि लज्जा । प्रथम समागम बालक लज्जा ॥६२॥
यह कह चलीं रूप की रासी । बोली कलपलता की दासी ॥
कहहि करौ अँग अंग सिंगारा । रचहु सेज नव नेह पियारा ॥६३॥

(दोहा)

यह कहि सब अच्छरि चलीं, कलपलता समुझाइ ।
प्रान नाथ पति पाइ करि, आनँद उर न समाइ ॥६४॥
रूप निहारौ नैन भरि, सोवति[1] सेज सुभाइ ।
कामबान बिहबल भई, निरखि निरखि बलि जाइ ॥६५॥
नवल नेह अभिलाष बढ़ि, मिलन मनोहर जीव ।
हसति लसति लज्जित ललित, हरषति हुलसति हीव ॥६६॥

१—व. सोभित ।

(चौपही)

सहचरि कहै सुनौ रति रानी। रही अलप निसि जाति विहानी ॥
रचि अब सेज सिंगार बनावहु। काम केलि करि पियहिं रिझावहु ॥६७॥
कलपलता तब करति सिंगारू। जिहि बिधि नवल वधू व्यौहारू ॥
उबटि अरगजा कुमकुम अंगा। सज्जनु कियौ सषिनि मिलि संगा ॥६८॥
चारु चीर चूनरी चुनाई[1]। सहचरी चतुर आनि पहिराई ॥
चुपरि फुलेल कंचुकी झीनी। बहुत सुगंध कुमकुमा भीनी ॥६९॥
चंदन षौरि सकल तन कीनी। जनु पदमिनि प्रभुताई लीनी ॥
चपल नैन जुग अंजनु दीनौ। षंजन भाउ जीत करि लीनौ ॥७०॥
मृग मद तिलक भाल मधि राजे। सोभा सिद्धि[2] कहत कवि लाजे ॥
रतन जटित ताटंक सुहाये। जनु जुग भान कमल ढिग आये[3] ॥७१॥
डुलत नाक इमि वेसरि मोती। अँचवत अधर अमृत रस गोती ॥
चिहुरि स्याम अलकावलि सोहै। देषि रूप मकरध्वज मोहै ॥७२॥
धरै कंठ मनि सोहत माला। प्रान प्रिया परवीन रसाला ॥
कर कंकन कंचन के साजे। रुचिर रवारे अद्‌भुत राजे ॥७३॥
छबि सौ छुद्र घंटिका राजै। पहुँप माल उर ऊपर राजै ॥
नूपुर चरन चलत कल रुँजहि। जलज जाल अलि सावक गुंजहि ॥७४॥
अधर सुरंग भरे मुष बीरा। विहँसत वदनु दिपहिं जनु हीरा ॥
सरस सकल गुन चातुरताई। सषियनि सोरह साज बनाई ॥७५॥

(छप्पय)

प्रथम सुमज्जन चारु चीर कंचुकि हिय सोहै।
अंजनु तिलक जु भाल करन कुंडल मन मोहै ॥
वनि वेसरि बेनी रसाल मनि कंठ विराजै।
छुद्र घंटिका वनी हार मौतिन के छाजै[4] ॥
नूपुर नवीन पुहकर सुकवि मुष तमोल चातुरिय भनि ॥
कवि कहत ग्रंथमति जानि कै सु ये षोडष श्रृंगार गनि ॥७६॥

१—ब. बनाई। २—ब. सिंध। ३—ब. सुष अये। ४—अ. प्रति में यह पंक्ति इस प्रकार है।

कर कंकन किंकिनी पदुम माल उर राजै।

सीस फूल तारंक कंठ भूषन मनि मंडित।
पहुँपहार उर मुक्तमाल अप्छरि छबि षंडित॥
कर कंकन अंगसृद केस[1] कय्यूर वाहु वनि।
छुद्र घंटि कटि डोरि चरन नूपुर अप्पय धुनि॥
सिंगार सरस सोरह सहज सुष सुहाग पिय मन हरन।
नव रंग संग पुहुकर सुकवि सोभित द्वादस आभरन॥७७॥

(कवित्त)

साँचे सी ढारी भरि भाइके उतारी किधौं
चित्र मैं सँवारी विविधि विधि विचार है।
जोवन की बारी काम चंदु की उज्यारी जोत
षरी सुकुवाँरी मानौ पान के सी डार है॥
रूप रुचिकारी अरु तैसयो गुनन भारी
अचकि लचकि चलै जोवन के भार है॥
पुहुकर कहै पूरे पुन्य परवीन प्यारी
प्रीतम प्यारे कौं बनाई करतार है॥७८॥

(दोहा)

कनक वरन सुंदरि वदन, कमल नयन कटि छीन।
बरुन वान भ्रुव भंग जनु, मदन चाँप करि लीन॥७९॥

(छंद प्रयंगम)

सुंदर सोहित संग सषी सुष दाइका।
वासक सेज सँवारि सषी नव नाइका॥
रंग भरी अति रंग सुरंग विराजहीं।
भांतिनि भांतिनि आन सबै सुष छाजहीं॥८०॥
सुंदर हैं सब अंग सु काहि सराहियै।
और कहाँ उपमा कहौं अच्छरि आहियै॥
बैठी है सेज समीप सुहागिलि भामिनी।
पुहुकर मैन विनोद मनौ अभिरामिनी॥८१॥

१—अ. अंग समुद्र रुचित।

(चौपही)

बैठी सेज निकट नव नागर। रति सम रूप सील गुन आगर ॥
सषी सकल उभी उहिं आगै। अभरन अंग बनावै वागै ? ॥८२॥
इक कर पान कपूर सुवाला। मृगमद महँकि रही चहुँपासा ॥
कनक कचोरा चंदन भरे। बहुत बनाइ कुमकुमा धरे ॥८३॥
चोवा मेद जिवादिहि लीनौ। केसरि मिलै अरगजा[1] कीनौ ॥
चंपक बेल गुलाबनि हार। फूल सेज वह रची अपार ॥८४॥
मलियागिरी धूप[2] सुपराती। चहुँ दिसि बरै अगर की बाती ॥
इक सषि वाल विजन कर लीनै। एकै चित्र अभरन तन कीनै[3] ॥८५॥
रुचिर[4] धाम देषत मन भायौ। मनहुँ वियौ सुर लोक बनायौ।
चतुर नारि इमि कहै सुभाई। प्रान नाथ अब लेहि जगाई ॥८६॥
अति आनंद भई अनुरागी। सहचरि पाइ पलोटन लागी ॥
जाग्यौ सूर तबहिं[5] तिन[6] पासा। मानौ सूर कियौ परगासा ॥८७॥
कजपलता तब आरति[7] साजी। कनक थार मुकता मिलि राजी ॥
मानिक हीर परल छबि छाई। सप्त द्वीप तहँ धरे बनाई ॥८८॥
लेकर ललित आरती आई। सहचरि संग निपट छबि छाई[8] ॥
करति आरती प्रान पियारी। मानौ चंद सरद उजियारी ॥८९॥
सखी सकल बहु मंगल गावहिं। दंपति रुचिर विवाह सुनावहिं ॥
निरषत रूप सिंधु अति पूरा। चकित चंद थिथकित भौ सूरा ॥९०॥
निरखि रूप तनु सुंदरताई। भँवर वासु रस रह्यौ लुभाई ॥
दिपहि दीप कर आरति आगै। लषै मलीन बदन[9] दुति भागै ॥९१॥

(सोरठा)

अंबर चंद निहारि। बहुरि विलोकत दीपदुत[10] ॥
चितवत चित्त विचारि। उभै न पूजहिं बदन छबि ॥९२॥

(चौपही)

राज कुँवर मन माहिं विचारै। पलक लगै नहिं रूप निहारै ॥
तब निश्चै जिय मैं यह जानी। मिली मोहिं रंभावति रानी ॥९३॥

१—ब. सुरगजा २—ब. दीप ३—ब. एकैचित्त अभरन दीनै ४—ब. रुधिर ५—अ. कुँवर सूर तिन पास ६—ब. कहि ७—अ. आगत ८—अ. सुखदाई। ९—ब. मदन। १०—अ. तन

दुतिय स्वप्न करि देषत सोई। बहुरि कहै यह स्वप्न न होई॥
दरस प्रतिच्छ देषि सुषदाई। चाहत लियौ कंठ लिपटाई॥९४॥

(दोहा)

पुहुकर जो मन मैं बसै, नैन बिलोकै ताहि।
मूरति पूज पषान की, ध्यान धरत कर जाहि॥९५॥
काम कुँवर बस काम के, कामिन कर गहि लीन॥
चतुर चारु चुंबन उरज, आलिंगन पुन दीन[1]॥९६॥

(चौपही)

चतुर चारु जोबन भरि दोऊ। सरवर रूप न पूजै कोऊ॥
दोऊ काम[2] कला परवीना। दोऊ नष सिष नेह नवीना॥९७॥
दोऊ सेज एक[3] छबि छाजै। एक रासि जनु रबि ससि राजै॥
उतहि कुवर मन मथ मतवारौ। बिबिध भाउ[4] रस बिलसन हारौ॥९८॥
इतहिं नवल नव वधू पियारी। तुलनि पौढ़ अरु[5] जोवन वारी॥
करहिं कलोल काम कर क्रीड़ा। क्रम क्रम तजहि मदन वस[6] व्रीड़ा॥९९॥
प्रथम सुरति पिय चातुर ताई। उलहिं प्रान पति आतुरताई[7]॥
ललित लाज भय कामिनि सोहै[8]। चितवत चतुर चातुरी मोहै॥१००॥

(दोहा)

प्रथम सुरति अति प्रीय है, पहुकर सरस बिलास।
कामी के चित आतुरी, कामिनि के मन त्रास॥१०१॥

(छंद तोटकी)

मन कामिनि त्रास प्रकास लसै। जुग लोचन भीतर लाज बसै॥
उनमीलत अच्छ[9] विराज इमं। रवि उग्गत वारिज हास जिमं॥१०२॥
जुग मूल उरोजनि आड दियै। कर पल्लव नीवी निरोध कियै॥
जुग जंघनु बंधनु बाँध रही। कर सौं कर आरत रूपगही॥१०३॥
हिय कंपत साँस उसास भरै। मृग अच्छ कटाच्छन चोट करै।
रति केलि विलोकत बाल लजै। नव नूपुर की झनकार बजै॥१०४

१—अ. चतुर चारु चुंबन वदन उरजा लिंगनु दीन। २—अ. कोक

३—ब. सरस ४—ब. भई ५—ब. जनु ६—ब. सब ७—ब. अति अतुराई
८—ब. लोचन मह सोहै ९—ब. अंध।

छिन मैं जब प्रीति प्रतीति भई । छल कै बल कै उरलाइ लेई ।।
दोई आँनद आँनद अंक भरै । रुचि सौं अधरामृत पान करैं ।।१०५।।

अवलोकन चुंबन हास रसं । रति रीति करंति बिलास वसं ।।
कटि छीन पयोधर प्रान प्रिया । हरषै हित सौंह लसंत हिया ।।१०६।।

महकै जनु मध्यि सुगंध रची । कुहकै जनु कोकिल केलि सची ।।
परसै जनु पारस प्रीत जिमं । दरसै सुष चंद चकोर इमं ।।१०७।।

(दोहा)

सिथलित सिर अलकावली, सिथलित जंघ दुकूल ।।
मैटि लाज मरजाद तन, बढ़ी परसपर फूल ।।१०८।।

(सवैया)

उरज उतंग अरु उद्दित अनंग अंग
सोभी पिय संग रति रंग के विहार की ।
कुंडिल कपोल सोभा जगमगै जु दीप जोति
पहुकर प्रीत परिरंभन प्रकार की ।।
सिथिलित सुदेस केस भाल श्रम सीकरनि[1]
तैसियै उर लसति छबि मौतिनि के हार की ।
रोम रोम देति सुष सुष न्यारे न्यारे भेद[2]
धुनि रसनानकार रसना झनकार की ।।१०९।।

(दोहा)

पुहुकर सर जस वोस कन,[3] ढिगहिं चलत विव[4] चंद ।
अहिपतिनी तहिं पर लसत, पति पावत मकरद ।।११०।।

दोऊ जोवन जोर मैं, मदन महा मद अंध ।
पुहुकर प्रेम प्रकास तैं, छूटे सकुचे वंध ।।१११।।

जुरत सुरत संग्राम मै, पहुकर उभै[5] अजीत ।
हारे हारि न मानहीं, केलि रची विपरीत ।।११२।।

१—ब. रंभा कासीकरति । २—ब. न्यारे न्यारे वेद । ३—ब. सरज सवास करि ४—ब. विच । ५—ब. अजै ।

(छंद तोटक)

विपरीति रची रति केलि कला । घन ऊपर ज्यौ चमकै चपला ॥
बिथुरी लट आनन रूप रसै । रजनी तम वे[1] रजनीसु लसै ॥११३॥
कवरी छुटि फूल परत्ति इमं । निसि स्याम नच्छत्र गिरंति जिमं ॥
मुकता गन छूटति टूटि परै । जनु फूलझरी[2] छुटि फूल झरै ॥११४॥
श्रम सीकर लहास सुषं[3] हरषै । द्विजात सुधा कर[4] से वरषै ॥
कुच ऊपर मुत्तिय हार चलं । सिर संकर गंग प्रवाह ढलं ॥११५॥
चमकै चल कुंडिल केस मिलै । थहरै रजनीकरु राहु गिलै ॥
कट किंकिनि कंकन भेद बजै । तरुनी[5] तिहिं ऊपर नृत्य सजै ॥११६॥
रसना रस चुंवन चौज करै । तिहि तालनि मैं झपताल परै ॥
अधरामृत पानि सुदंत लगै । हय ताजनु ज्यौ मनमथ्थ जगै ॥११७॥
अति लालचु लोभ सु आतुरता । अरु तेतिस वैनु सुचातुरता[6] ॥
उडुपत्ति कला जिमि रूप चढ़ै । पल ही पल प्रेम हुलासु बढ़ै ॥११८॥

(दोहा)

दंपति जोबन जोर ते,[7] भिरति सुरति - संग्राम ।
हारे हार न मानहीं, संग सहायक काम ॥११९॥
पुहुकर नाइक मैन मय, पाइ प्रथम नवनारि ।
सुख लूटत[8] निधि रंक ज्यौ[9] देषौ रसिक विचारि ॥१२०॥

(सवैया)

गाढ़ौ गढ़ु लाज लै ढहाइ डारी कोट वोट
नीबी पट षोलि रस जीति करि लीने है ।
छाती नष रेष, छत दसन अधर हँसि ।
किधौ मधुपान सुष प्राननि कौ दीने है ।
लूट्यौ लंकु लंका जैसे संकु तजि अंकु भरि
पुहुकर कहै अंग अंग वसि कीने है ।
काम की अलोल कोक कलाकी कलोल करि ।
सुरति समूह सुषरंग रस भीने है ॥१२१॥

१—अ. में । २—ब. फूल झरै । ३—ब. श्रीकर हुलास लसै । ४—ब. सुधा फन । ५—ब. वरुनी । ६—ब. में यह अर्धाली नहीं है । ७—ब. जोर तितै करति । ८—ब. लूट्यौ । ९—ब. निधिरंक ।

(दोहा)

इत नागर नव जोबना, नव अनंग नव नेह।
मनमथ मन रथ[1] सारथी, सुरति जुद्ध नहि छेह ।।१२२।।

(सवैया)

मन के सुरथ चढ़ि सारथी अनंग संग,
भृगुटी धनुक[2] धरे वरुनी के बान जू।
अंचल धुजा सौं सोहै कंचुकि जिरह जेबि।
सुभट कटाछ सेज[3] समर मैदान जू।।
रति सौं रुचिर रूप रैनि रति जुद्ध कियौ[4]।
कंकन किंकिनि[5] बाजै विजै के निसान जू।।
पुहुकर तीखे नख[6] घाइ सनमुष लागे।
मुरी न मयंक मुषी सुरति सुजान जू।।१२३।।

(दोहा)

पहुकर रस भरि रीझि करि, आनँद भरे अपार।
त्रिपिति भये करि केलि रुचि, मदन जुद्ध तिहिं वार।।१२४।।

(चौपही)

सुषरति सुरति सुरति जब आई। सूर सिव मानी चतुराई।।
राज कुँवर मन माझ विचारी। यह न होइ रंभा उनहारी।।१२५।।
रंभा नवल वैस वर बाला। यह परगल्भ प्रवीन रसाला।।
कोक भेद प्रगटै नहि बारी। जद्यपि सषी सिषावन हारी।।१२६।।
कहि गुन ढीठि आहि पिक बैनी। नृप तनया मृग सावक नैनी।।
फिरि जिय धरी वूधि धौ देषौ। मंदिर चित्र चित्र अवरेषौ।।१२७।।
यह निश्चै उर अंतर आयौ। विधि विधान कछु और बनायौ।।
पूंछहि काम कुँवर हँसि वैना। आज रूप रस भीजे नैना।।१२८।।

(सोरठा)

हौं नहि जानत तोहिं। मन जानत जो हरि लियौ।
कहि समझावौ मोहिं। मोहि रुचौ तुव रूप रस।।१२९।।

१—ब. ममनरथ मनमथ। २—अ. धनुष। ३—ब. वात। ४—ब. दुति देखियत ५—ब. कौ कीनौ। ६—ब. तीनख।

(दोहा)

भूप सुता किधौं अप्छरी[1], रति डोलति संग दासि ।
इंद्रानी किधौं सुर सुता, नाग सुता सुखरासि[2] ॥१२०॥

(चौपही)

कलपलता तब उत्तर दीनौ । दसननि तडित उजेरौ कीनौ ॥
विधि संजोग कह्यौ नहिं जाई । दैव कह्यौ विव विधि या पाई ॥१२१॥
रही उमै वरष वन वासी । अब हौं भई तिहारी[3] दासी ॥
अप्छरि आव रहौं अमरावति । मन वच देवराइ[4] मन भावति ॥१२२॥
इक दिन सुरपति सभा सँवारी । करि सिंगार हौं तहाँ हँकारी ॥
आई और सखी तिहिं ठाँऊँ । उरवसि आदि कहत जग नाऊँ ॥१२३॥
मोही कलपलता करि जानहिं[5] । सुरपति सभा मनोहर मानहिं[6] ॥
भयौ रास रस रंग अपारौ । आनन दीप दिये उजियारौ ॥१२४॥
बहु विधि नृत्य करन हौं लागी । गावहि सखी[7] सकल अनुरागी ॥
तिहि छिन तहाँ नृपति नल आयौ । प्रथम बार मैं दरसनु पायौ ॥१२५॥
निर्मल चित्त पाप नहिं सेरै । चंचल नैन रहै नहि धेरै ॥
भूल्यौ तान मान मिरदंगा । सुरपति क्रोध कियौ मन[8] भंगा ॥१२६॥
दई सराप लोचु[9] नहिं कीनौ । पहुँचि वास कौ आइसु दीनौ ॥
हौ अबला व्याकुल बिलखानी । सींजे बसन नैन के पानी ॥१२७॥
तब कछु दया करी मनमाहीं । कह्यौ बैन[10] पलटै अब नाहीं ।
भरता कह्यौ होहिं नर तेरौ । सुष अरु भोग अनुग्रह मेरौ ॥१२८॥
पति पैहै पृथ्वी पति राजा । सोधैं तहाँ सखी तुव काजा ॥
ते सब सखी प्रीत अनुरागी । आवहिं बार बीच हित लागी ॥१२९॥

(दोहा)

सेज सहित ल्याई तुम्हैं, मनमथ मूरति जानि ।
पति पायौ तन प्रानपति, दियौ विधाता वानि ॥१४०॥
बलिहारी इहि रूप की, करौं निछावरि जीउ ।
हौं दासी इहि चरन की, क्यौं करि कहौं के पीउ ॥१४१॥

१—अ. सुरसुता नागसुता सुखरास । २—अ. अछरी रति जो । ३—अ. तुम्हारी । ४—अ. रही । ५—ब. जानौं ६—ब. मनोरथ मानौं । ७—ब. सर्प । ८—अ. चितु ९—ब. क्रोध १०—ब. बोल ।

(चौपही)

कहहु[1] नाथ अपनी अब बाता। किहि कुल वंस पिता अरु माता ॥
कहा नाउ किहि पुर[2] पति राजा। हते मान सरवर किहि काजा ॥१४२॥
कुँवर कह्यौ विरदंतु बनाई। वैरागर अधिपति अधिकाई ॥
दुहु दिसि प्रीति रीति[3] अधिकानी। सलिता चढ़त वढ़त नहिं जानी ॥१४३॥
दोऊ तरुन मदन मदमत्ता। पिय वस त्रिया त्रिया वस कंता ॥
इहि विध भोग जोग गहि जामिनि। सकुचित उठी सेज तज कामिनि ॥१४४॥
आइस मांग सषी सब आई। आली हँसि[4] सुष देषन धाँई ॥
पूछहि आइ सुनहि सषि प्यारी। इमृत पानि रस पीवन हारी ॥१४५॥
अचिरज आइ एक हम देष्यो। प्रगट प्रेम नहि दुरत बिसेष्यौ ॥१४६॥

(सवैया)

मंग धँसि[5] भई गंग जमुना प्रवाह भंग
गंगाधर चारु चंद्र सेषर बनाये हैं।
वैनी गई छूटि वैनी नैन अैन पेषियतु
पुहुकर कहै रंग तीनौ[6] कहा पाये हैं ॥
भये परभात जलजात जु लजात अब[7]
कहति न बात गात अंचल छपाये हैं[8]।
प्रगटत प्रान पति झलकत अंग अंग[9]
जदपि सयानी उर अंतर दुराये हैं[10] ॥१४७॥

(दोहा)

सषि निरषहि आनंद मय, अंग अंग अधिकार।
व्याल वधू दुति इंदु पर, सिथिल सुतन सिंगार ॥१४८॥

(चौपही)

सषि आदर कारन उठि नारी। डौलति चली मनौ मतवारी ॥
षंडित अधर बदन कुम्हलानी। विहँसत नैन कहत मुष वानी ॥१४९॥

१—ब. कहु जो २—ब. कुल ३—ब. अधिक ४—अ. अलि विवाहु ५—ब. माग ६—ब. त्यों तीनौ। ७—ब. अब कहियत। ८—ब. जो वात गात अंचल छपाये हैं। ९— ब. प्रघटत प्रानपति झलल अंग अंग। १०—ब. उर अंचल छिपाये हैं।

कंचुक दरकि करकि करचूरी। अधर लाग भयौ कज्जल दूरी॥
पीक की लीक कपोलनि पेषी। उपमा वरनि न जाइ विसेषी॥१५०॥
अलक झलक मुष पावति सोभा। भ्रमर पंक्ति जनु पंकज लोभा॥
नख छत रेष उरज पर लागी। चंद्र चूड़ सोभित बड़ भागी॥१५१॥

(दोहा)

रति अंकित संकित वधू, सकुचित सकुच सुभाइ॥
सुरति सोभ सुख देषि करि, कहइ सषी बलि जाइ॥१५२॥
कहहु कंत की चातुरी, और सुरति संग्राम।
क्यों कर वितयौ प्रेम रस, जामिनि के जुग[1] जाम॥१५३॥

(चौपही)

कलपलता करि नीचे नैना। मृदु मुसक्याइ कहत मुष वैना॥
कहाँ उरहनौ देउँ सहेली। छाड़ि जाउ इहि भाँति अकेली॥१५४॥
हौं अबला बहु अति बल राजा। विना सहाय जुद्ध किहि काजा॥
रति पति अति करि कीन सहाऊ। भिरत सुरति तब चित भौ चाऊ॥१५५॥
यहु चित चोर याहि तुम ल्याई। लोक लाज सब दई वहाई[2]॥
तन मन धूत दुरावन हारा। लूटन लाग्यौ मदन भँडारा॥१५६॥
तब तजि डरु मैं करी ढिठाई। सुरति जुध्य कहँ सनमुष आई॥
आइधु कर नष दंत सम्हारे। करि गज उरज अग्र मतवारे॥१५७॥
सकल कला करि कोविद मंता। जोबन चढ्यौ मदन मैमंता॥१५८॥
कौन कौन गुन करौं बड़ाई। रसना एक बरनि नहिं जाई॥
तऊ सषी इतनी हम कीनी। सुरति जुद्ध कहँ पीठि न दीनी॥१५९॥

(दोहा)

सषी सकल लज्या गई, और गई कुलकाँनि।
विवस जानि इहि सूर तै, सूर छिड़ाई आनि॥१६०॥
यह लज्जा सुनि सहचरी, ता छिन रही न अंग।
अब किहि विधि करि कहि सकौं, जु फिरि आई तुम संग॥१६१॥

(चौपही)

सकल कला सुनि रैनि विहानी। कलपलता अति सुभट बषानी॥
सुरति जुध्य की करी सम्हारा। किहि अंग जीत्यौ किहि अँग हारा॥१६२॥

१—ब. कौ। २—दिन्हि निसराइ।

जीत अंग सनमुष ठहरावै । तिनहि रीझ कर बगसे वावै ॥
उर पहिराइ कंचुकी झीनी । मुक्तमलाल उरजन कहँ दीनी ॥१६३॥
कटि किंकिनि कंकन कर साजे । नूपुर चरनन अधिक बिराजै ॥
नव दुकूल जंघन पहिराये । सोभित अंगद बाँह सुहाये ॥१६४॥
अधर सुधर कहँ बगसे बीरा । दसनन नाम भयौ विधि[1] हीरा ॥
तिलक जड़ाइ भाल मधि सोहै । देषत जाइ देव मनु मोहै ॥१६५॥

(दोहा)

पुहुकर निसि सनमुष रहे, तिनि अंग सजे सिंगार ।
बिछुरि चले तजि संग तै, तिहि गुन बाँधे बार ॥१६६॥
नवछत केसरि सौं भरे, बेसर धरहि बनाइ ॥
पहुकर यह छवि प्रात की, मोपर बरनि न जाइ ॥१६७॥

(छप्पय)

सुरति रैनि रस रंग भीजि भामिनि तनु भूषित ।
चपल नैन अलस्यात मनौ इंदीवर ईषत ॥
सषि सिंगार सब करहिं बहुरि सुष सेज बनावहिं ।
मदन अग्नि अंकुरित मुक्ख सूरत्ति[2] बढ़ावहिं ॥
प्रमुदा प्रवीन पुहुकर सुकवि सकल कला कोविद कुसल ।
बिलसंत बहुत रस हास वर सु उदित अंग मनमथ्थ बल ॥१६८॥

(चौपही)

निकट आइ पिय प्रान पियारी । सजल जलद दुति लोचन न्यारी ॥
मधि घूँघट आनन इम सोहै[3] । चितवत चारु चकोरन मोहै[4] ॥१६९॥
कहत वचन मुसक्यात सकानी । आई सकल सुषनि मैं सानी ॥
किहिं बिधि कौन करौ मनुहारी । कहहु नाथ अब दासि तुम्हारी ॥१७०॥
सुनत सूर सुष दाइक बैना । अमल कमल जिमि बिहँसे नैना ॥
नष सिष रौम रौम सुष पायौ । जनु वसंत पिक बैन सुनायौ ॥१७१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचिते अच्छरि षंडे
सुरतांत सोभा वर्ननो नाम प्रथमो अध्याय ॥१॥

अथ नृत्य नाटक वर्णन ।

१—ब. अधिक धरौ विधि । २—अ. मुदित मुख सुरति । ३—अ. सोभा ॥
४—अ. लोभा । ५—ब. करि ।

(दोहा)

कान्ह कुँवर आनंद मैं, रोम रोम सचुपाइ।
रूप रंग जोवन सगुन, निरखि निरखि बलि जाइ ॥१७२॥

(चौपही)

कहै कुँवर सुन प्रान पियारी। प्रीतम मनु अनुरंजनि हारी॥
कनक सुगंध गीत गुन गायौ। हरि प्रलाद मैं प्रगटै पायौ ॥१७३॥
जप तप व्रत[1] जिहि कारन धरई। पवन अहन इक आसन रहई॥
सुर अपछरि घरनी जौ होई। इहि सुख जोग नहीं नर कोई ॥१७४॥
मागै मोहि एकु बर दीजै। तनु अरु मनु धनु सर्वसु लीजै॥
प्रथम करौ अप्छरि मनुहारी। गृह आईबै सवी तुम्हारी ॥१७५॥
जौ वै[1] तुम्है सखी करि जानै। मोही सहज सवा करि मानै॥
देहिं दरब यह कहि समझावहु। अप्छरि नृत्य हमहिं दिषरावहु ॥१७६॥
जौ तुम ब्याह कियौ जग जोई। नृत्य गीत विनु ब्याह न होई॥
हा हा करौं पाइ परि भावौं। उमगे नैन कौन विधि राषौं ॥१७७॥

(दोहा)

वे गुरजन तुव हेत करि, मानहिं प्रीत सुभाउ।
जौ तुहि जानहि दासु करि, अप्छरि नृत्य दिषाउ ॥१७८॥
कलपलता सुनि पिय बचनु, गई सषिन के पास।
प्रगट्यौ मन नौतम निपट, सोभित सहज हुलास ॥१७९॥

(चौपही)

आगम सदन जानि सुरनारी। विविध विधानु करति मनुहारी॥
अष्ट सिध्यि ऊभीं उहि आगे। मन अभिलाष रहै जिहि लागे ॥१८०॥
कंचन रचित षचित नग लाला। रच्यौ मनो सुर लोक रसाला॥
फूल सुगंध पान परधाना। अनगन भाँति[2] न जाहिं बषाना ॥१८१॥
वासर सखी सबै मिलि षेली। भई आज मनमथ की चेली॥
जब अकास शशि रैनि प्रकासी। विकसित कुमुदिन मनौ विगासी ॥१८२॥
हँसति लसति लच्छिता लजौहीं[3]। हरति प्रान चितवनि तिरछौहीं॥
करि प्रनाम सषियन सौं भाषै। अंतर कपट चित्त नहिं राषै ॥१८३॥

१—ब. इनि। २—ब. आनमाननि। ३—ब. लच्छिता जोती।

जौ वरु दियौ मोहि सषि प्यारी। तुम गुरजनि हौं दासि तुम्हारी ॥
मन मन क्यौ न करौं बलिहारी। करौ मुदित मरजाद हमारी ॥१८४॥
बैरागर अधपति यह राजा। मंगल विना व्याह किहि काजा ॥
जौ तुम कियौ व्याह जग जोई। नृत्य गीत विनु व्याह न होई ॥१८५॥
जौ सषि मोहिं सषी करि जानौ। उहि पुनि सहज सषा करि मानौ ॥
है कुमार कोविद सग्याना। सकल कला संगीत सुजाना ॥१८६॥

(दोहा)

तुम दरसन कारन निपट, मन वच क्रम अकुलात।
ज्यौं दिनकर के दरस कौ, लोचन हैं जल जात[1] ॥१८७॥
मो सहचरि कौं पति भयौ, अब न रह्यौ कछु भेद।
जुगतु नहीं लज्जा तहाँ, कहत लोक अरु वेद ॥१८८॥
मधुर वचन सुन मेनका, कहै घृताची बोलि।
कलपलता पति पेषिये, घूँघट के[2] पट षोलि ॥१८९॥
सत्य कहति वे भामिनी, उरवसि कहौ विचार।
जुगत नही लज्जा तहाँ, जहाँ भई सषि नारि[3] ॥१९०॥
विधि गंधर्व विवाह किय, सो निभई सब रीति।
पंच शब्द मंगल सहित, हौंहि परसपर प्रीति ॥१९१॥

(सोरठा)

जब मान्यौ यह बैन। सुर अच्छरि सषि हेत करि।
कलपलता चित चैन। अरु नव नेह प्रकास हुव ॥१९२॥

(चौपही)

आई उलटि पिया पहँ प्यारी। मुदित उदित मुसक्यात सुनारी ॥
सुनहु प्रानपति मोहनहारे। वचन द्वैक अब सुनौ हमारे ॥१९३॥
विधि करतूत कही नहिं जाई[4]। घर घरनी जो भई तुम्ह आई[5] ॥
ये अप्छरि सुरपतिहिं पियारी। आद अंत सब जानन हारी ॥१९४॥
मो मन हेत तजहिं सब[6] लाजा। लघु विचार सहचरि पति काजा ॥
देषत उनहिं धरौ मन धीरा। करौ आपु वस चित्त गँभीरा ॥१९५॥

१—ब. जलजात। २—ब. पट। ३—ब. दास। ४—ब. न जाइ बखानी। ५—ब. हौं भई तुम्हारी। ६—अ. तुम।

जो मन होहिं काम बस स्वामी । तौ आनहिं वे अंतरजामी ॥
अग्याँ देउ बोलि लै आऊँ । अप्छरि नृत्य आनि दिषराऊँ ॥१६६॥

(दोहा)

मधुर वचन सुन प्रान पति, अति आनंद अपार ।
रोम रोम अभिलाष बढ़ि, मन हुलास अधिकार ॥१६७॥
कहत वचन आनंद मैं, सुन नव नागर वाम ।
तैं बस कीने देव मुनि, क्यौ न होहिं बस काम ॥१६८॥

(चौपही)

मै जब चित्त चरन तुव दीनौं । नैन जो प्रान निछावरि कीनौं ॥
भूलिहु और नार नहिं भावै । सपने केहूं सुरति न आवै ॥१६९॥
अब सहचरि निहचंत बुलावहु । नृत्य गीत करि मंगल गावहु ॥
बहुविधि चित्रित सभा सँवारी । कलपलता रस रंजन हारी ॥२००॥

(दोहा)

मैनकादि अप्छरि सकल, सुषित आइ सुषधाम ।
हिय हुलास मन मोद जनु, पुहुकर दग अभिराम ॥२०१॥
कुवर निरषि नष सिष सरस, सोभा सुषद सिंगार ।
रूप नग्र तसकर मनौ, अंग न रही सम्हार ॥२०२॥
करि प्रनाम नत सीस मन, गुरजन मानि विचारि ।
देव भाव जिय जानि करि, चाहति चाहन हारि ॥२०३॥

(छंद तोटक)

सुषधाम सषी सब आनि बसीं । घन मै जनु दामिनि रेष धसीं ॥
अँग अंगनी अंग सुरंग रसीं । रितु आगम इंद्र वधू सरसीं ॥२०४॥
कमलद्दल लो चन चंद्र मुषी । गज गौनि मरालति वाल सुषी ॥
सुर अप्छरि ते पुरहूत प्रिया । नव वैस उठंत उरोज हिया ॥२०५॥
कबरी सिर स्याम बनाइ गुही । मिलि मुत्तिय चंदन माल[1] छुही ॥
घँसि कुंकुम घौरि जो भाल रची । जिय मध्य विराजन आइ सची ॥२०६॥
मकराकृत कुंडिल हीर जरे । जुग भान मनौ अहँकार भरे ॥
नव मुत्तिय वेसरि यौं लटकै । मनु देषत देवनि कौ अटकै ॥२०७॥

१ — ब. हार ।

मुष सुंदर मध्य तमोल भरे। जु विराजित कंचन मोल जरे ॥
रसना कटि छीन नवीन बजै। नव नूपुर नादि विवादि सजै ॥२०८॥
पहिरीं कसि कंचुकि हार[1] हियं। नव नागर नृत्य विचार कियं ॥
घन[2] तंतु सुकिन्नर वीन बजै। सुरवीन रवाब उपंग सजै ॥२०९॥
मुरजा[3] धुनि झंझ मृदंग तहां। सुर मंदिर ताल विलास[4] जहाँ ॥
रंग भूमि सुरंग बनाइ रची। धरनी जनु कंचन हीर षची ॥२१०॥
करि मंगल गाइनु गान ठयौ। सुर साधि सुराग अलाप लयौ ॥
षटराग अलापहिं संग त्रिया। गुन संगति अंकित इंद्र प्रिया ॥२११॥
पौहुप अंजुल पातर हथ्थ लई। उवटी मुष संगित गत्त नई ॥
तत्थेई तत्थेई सुतथ्थरियं। तत थुंगत थुंगतियं ॥२१२॥
घ्रिडितं क्रिटितं क्रिटितं क्रिटिथा। गृड़ता थियता थियता थियथा ॥
थिरडा थियतं क्रितत तकियं। झिक्किक्ट झिक्किक्ट झंझकियं ॥२१३॥
थिपि थिथि किथि किथि के उवटैं। तनु तोरत तार सितार लटैं[5] ॥
कटि किंकनि नूपुर हथ्थ बलैं। सुषही गति तोटक छंद चलैं ॥२१४॥
उरसै विरपै तिरपै हुरसैं। अमरी रस भंग नही सुरसैं ॥
लग लागत लाग सुडाग फिरैं। अलकै छुटकै तिजु भुंम्मि परैं ॥२१५॥
गति यौ धर मान नवीन ठवैं। रसना रस नाइक ताल चवैं ॥
पसु पच्छि जे पेषत मौनु गरी। तिनि के जल[6] पानि सुध्यौ[7] विसरी ॥२१६॥
ससि कौ रथ चाहत[8] भूलि रह्यौ। सरिता जल फेरि उलट्टि बह्यौ ॥
द्रुम पल्लव अंकुर और भये। किसलै दल रौम प्रगट्ट नये ॥२१७॥
सुर गंध्रप चित्र समान रहै। कवि पुहुकर पै नहि जात कहै ॥२१८॥

(दोहा)

इहि विधि अप्छरि नृत्य, करि बैठीं सहचरि तीर।
राज कुँवर सुंदर निरष, पुलकित मुदित सरीर ॥२१९॥

(कुंडरिया)

वैन विहसि रंभा कहै, सुनियै राज कुमार।
बैराग अधिपति नृपति, कलपलता भरतार ॥

१—ब. चाह। २—अ. इनु। ३—ब. मुरझा। ४—ब. विसाल। ५—ब. ताक तितै रनिताल। ६—ब. कज्जल। ७—अ. सुधौ। ८—ब. सोहत।

कलपलता भरतार भई मन वच क्रम दासी।
देव जोग अति प्रबल हुती अमरावति वासी[1] ॥
तिहि कारन तुव रूप त्रिषिति कीनौ हम नैना[2]।
सषि हित प्रीति विचारि कहति रंभावति बैना ॥२२०॥

(चौपही)

हम सुर ईसु अवग्यॉं[3] कीनी। नृत्य कला दिषरावन लीनी ॥
एकु भाँति कछु अंतर नाही। तुम नाइक हम अप्छरि आही ॥२२१॥
हमहिं वेगि अब आयसु दीजे। आपुन सकल भोग सुष कीजे ॥
मागहि एकु प्रसाद तुम्हारौ। इहि समयै यह काज हमारौ ॥२२२॥
तुम प्रताप पहुमी पति राजा। हम अप्छरि मंगल धुन काजा ॥
कलपलता है दासि तुम्हारी। किहि विधि कहहिं आहि घर नारी ॥२२३॥
इंद्रहिं छाड़ि तुमहिं मनु लायौ। सुरपति तजि नरपति पति पायौ ॥
प्रेम प्रीति करि प्रियहिं रमावहु। पिय त्रिय तन जनि चित्त चलावहु ॥२२४॥

(दोहा)

राज कुँवर पुलकित मुदित, अति प्रवीन मनु लीन।
रोम रोम रस भींजि करि, रीझि भयौ आधीन ॥२२५॥
कहत बचन आनंद सौं, सुनौ सु गुरजन बाल।
प्रान निछावरि करत हौं, और न कछु इहि काल ॥२२६॥
मेरे तीरथ जँग्य ब्रत, जप तप तीरथ नारि।
तिहि तो किहि विधि पलटिहौं, बोलो वचन विचारि[4] ॥२२७॥

(सवैया)

वेनी कौ दरस कुच संभु कौ परस जहाँ
माधुरी सौ अधर पयूष रस पीजियै।
आनद मगन हूजै मिटै दुष दाइ सब
कलपलता सी उर लाइ जब लीजियै ॥

१—ब. दासी, २—ब. मन मैना ३—ब. जु अग्यॉं। ४—अ. प्रति में यह दोहा नहीं है।

पुहुकर विलोकै सुष पायो है अमर पदु
लगै न पलक प्यारी चाहि चित दीजियै ।
भैटियै सुकत हार कंचुकी सुकत भई
ऐसी प्रमदा कौ तजि कौन तपु कीजियै ॥२२८॥

(दोहा)

सूर वचन सुनि अप्छरी, नवतम प्रीति विचारि ।
मन वच क्रम सचुपाई करि, चलीं धाम सुरनारि ॥२२९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुंकर विरंचितेयं अप्छरि षंडे
नृत्य नाटक वर्ननो नाम दुतियो अध्यायः ॥२॥

अथ मानमोचन बरननं

(चौपही)

उत सुर लोक चलीं सुरनारी । इत सुंदरि सुष सेज समारी ॥
गृह अंगन उज्जल सित अंगा । मानौ छीर समुद्र तरंगा ॥२३०॥
सकल कला पूरन ससि जोती । मानौ धरनि बिछाये मोती ॥
काम केलि करि काम कुमारा । निद्रा मगन भये तिहिं वारा ॥२३१॥
कलपलता पति रूप अघानी । अति आसक्ति न सोवहिं रानी ॥
निरषति नष सिष सुंदरताई । अभरन भेद कहत नहिं जाई ॥२३२॥

(दोहा)

रतन जरित उर उरवसी, चाह तिहाँ सुरनारि ॥
ता मधि चित्र अनूप लषि, चकृत चित्त विचारि ॥२३३॥
निरषि नवल नव नागरी, नृप कन्या सुकुँवारि ॥
पदमिनि चित्रिनि चाहि करि, रीझि रही मनु हारि ॥२३४॥
फेरि चित्रु राष्यौ तहाँ, रहै जहाँ दिन रैनि ॥
कछू रोस जिय मैं धरौ, ससि वदनी मृग नैनि ॥२३५॥
जागत ताहि घरीक मैं, लागत उरज सुभाइ ॥
षैचि लेहिं उहि आपु त्यौं, ज्यौं मानिनि के दाइ ॥२३६॥
वचन व्यंग बतियाँ कहै, सुनियै राज कुमार ॥
मो परसत दुष पाइहौ, रहै जु प्रान अधार ॥२३७॥

वह कोमल सुकवाँरिका, ये अति कठिन उरोज ॥
ताते परस न बूझिये, तुम जानत पन भोज ॥२३८॥
उर मंदिर मैं स्वच्छ अति, साजिति है धन येमि ॥
पुहुकर झलकत नीर लौ, काम करौती जेमि ॥२३९॥
हमहीं क्यौं न सुनाइये, चाहत हौ चित जाहि ॥
आपु रहे समचित्र ह्वै[1] चित्रु बतावत[2] ताहि ॥२४०॥

(चौपही)

कहै कुँवर सुन प्रान पियारी। अप्छरि आइ भई नर नारी ॥
चाहत नीर अभी जौ पावै। तौ जलु काजु बहुरि किहि आवै ॥२४१॥
सुर अप्छरि घरनी जौ होई। करिहै कहा आन धन कोई ॥
चंपावति नगरी पति राजा। तिहि घर सुता सुयंबर काजा ॥२४२॥
अवरेष्यौ सो चित्र चितेरौ। कछुक चित्त आयौ तब मेरौ ॥
मै चितवत चिंता मनि पाई। रौंकहि विधना दई बड़ाई ॥२४३॥
मेरे नैन प्रान धन धामा। जीवनि तुहीं सुफल सुष स्यामा ॥
सो सुष भयौ सकल मन भायौ। इंद्रलोक फल पहुंमी पायौ ॥२४४॥

(दोहा)

मानिनि मान न कीजिये, करि करि टेढ़ी भौंह ॥
उरज ईस के सीस पर, धरत हाथ करि सौंह ॥२४५॥

(चौपही)

छूट्यौ मान वचन चतुराई। कुच महेस की सौंह दिवाई ॥
दंपति दरस परस सुषदाई। नित नित प्रीत भई अधिकाई ॥२४६॥
दिन दिन बढ़ै माव दिन ऐसे। पावस मास सलित जल जैसे ॥
जे कोई भोग तिहूँ पुर माही। पूजहिं सकल सिद्धि चित चाहीं ॥२४७॥
जीवन जोर उभै मद मंता। पिय वस त्रिया त्रिया बस कंता ॥२४८॥

इति श्री रसरतन काव्यै कवि पुहुकर विरंचिते अप्छरि षंडे मान-
मोचन वर्ननो नाम तृतीयो अध्याव[3] ॥ ३ ॥

१—ब. लौं २—अ. लिखावत। ३—अ. नवमो अध्याय।

चंपावती खंड

(दोहा)

नृप तनया रंभावती, बसै कुँवर के चित्त ॥
बहि लोचन की डार ज्यौं, हियै षरक्कै नित्त ॥ १ ॥

(चौपही)

पायौ वास सघन घन माहीं । निपट अधीन भयौ मनमाहीं ॥
पितु गृह तज्यौ प्रिया हित काजा । सो विधि उलटि कियौ कछु काजा॥ २ ॥
संगी पंथि छाँड़ि भयो गौना । परौ भूलि मानौ मृग छौना ॥
चित चिंता बहुतै अधिकानी । बिसरी सकल कला सुषसानी ॥ ३ ॥
प्रगट न करत कहत कछु वैना । जिय दुष नहीं जनावत नैना[1] ॥
दिसि अरु विदिस न जानै कोई । मन मै कहै कहा अब होई ॥ ४ ॥
इक दिन सिद्ध वृंद महँ जाई । चंपावति की बात चलाई ॥
केतिक दूरि आइ किहि ठाँऊ । किहि दिसि आइ कौन वह गाँऊ ॥ ५ ॥
करि के दरस सिद्धि बन वासी । अतन न आवहिं जाइ प्रकासी ॥
तिन मै एक आहि बहु काली । दिव्य देह मानौ सिरमाली ॥ ६ ॥
फिरौ बहुत तीरथ धर धारा । देषी मेदिनि अषिल अपारा ॥
तिनि विनयौ विरदंतु बनाई । चंपावति अति दूरि बताई ॥ ७ ॥
गुज्जर नगर उदधि के तीरा । अचवहिं कूप सरोवर नीरा ॥
नगर अनूप रम्य सुषदाई । मनौ अवनि अमरावति आई ॥ ८ ॥
विजैपाल राजा तहँ आही । चक्रवती करि बोलत ताँही ॥
मारग अगम आहि अति भारी । गति मति छोड़ि होहि तहँ न्यारी ॥ ९ ॥
धरतु न चित्त विकट धर धीरा । गिरवर विपिनि सरित गंभीरा ॥
कुँवर समुझि यह सकल बषाना । मनहिं तेज पुरषारथ आना ॥१०॥
पूछी मानसरोवर बाता । सत जोजन ऊपर नव साता ॥
वह पुनि पंथ विकट बन माहीं । देव भूमि नर मारग नाहीं ॥११॥

१—व. वैनां ।

(दोहा)

राज कुँवर सिर सोच करि, बाँध्यौ मन अहँकार ॥
सकल छाड़ सिव सरन लिय, मेटौ और विचार ॥१२॥

(चौपही)

जोग जुगति मन माँह विचारी। नाम अधार करी आधारी ॥
कर त्रिसूल अरु चक्र सुहावा। गहवरि गोरिष गुरू मनावा ॥१३॥
सुंदर बहुत अवनि मृग छाला। उर रुद्राछ गुंथि जयमाला ॥
जटा जूट वैराग भुलाना। कासमीर मुद्रा करि काना ॥१४॥
भसम चढ़ाइ पहिरि तन कंथा। वीना हाथ प्रेम कौ पंथा ॥
सेल्ही सीस मेषला[1] काँधे। रुद्र चरन निश्चै मन साँधे ॥१५॥
चल्यौ निकसि चंपावति देसू। विषम[2] भूमि कीनौ परवेसू ॥
माता पिता ग्रह तज्यौ जू काजू। तज्यौ देस वैरागर राजू ॥१६॥
छोड़ी कलपलता सी नारी। अष्ट सिद्ध की पुजवन हारी ॥
संग लियौ न सँघाती कोई। करुनानाथ[3] सहाइक होई ॥१७॥
कर वीना वैराग अलापै। बन परवत देषत नहि काँपै ॥
गावत राग सिंगार वियोगा। सोभित अंग अनूपम जोगा ॥१८॥
सुन मोहत सुर मुनि[4] अरु नागा। जिहिं रे सुना सोई मग लागा ॥
चले व्याल चढ़ि आये काँधे। चले कुरंग संग विनु बांधे ॥१९॥
चले चकोर वदन विधु सोभा। चले भृंग तन-बासुहिं लोभा ॥२०॥

(दोहा)

पुहुकुर प्रीतम प्रेम रस, छाड़्यौ सुष अरु गेह।
बनवासी सब सँग चले, प्रगटत परम सनेह ॥२१॥

(चौपही)

गिरिवर चढ़त बिपिन अवगाहत। षार तार सरिता जल थाहत ॥
निसु दिनु ध्यान करहिं मन मिंता। उहि बिनु और न दूजी चिंता ॥२२॥
बन अंधियार न सूझै भाना। विपिन गहन नहिं जाइ बषाना ॥
निसि वासर मगु अगम न जानै। कठिन पंथ जिय सोचु न आनै ॥२३॥

१—ब. बाँधे। १—ब. कठिन। २—ब. करुनाथ। ३—अ. नर।
४—अ. संग (पथहिँ)।

सिंघ सिदूर उरग बिग हाथी । कूजित बिपिन बियौ नहिं साथी ॥
बीना चित्र लिये बैरागी । मगन वियोग सकल सुष त्यागी ॥२४॥

(दोहा)

सागर तरत चढ़त गिरि, चढ़ि अकास धँसि[२] लेइ ।
भावंता के प्रेम रस, प्रान पलक महँ देइ ॥२५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावती षंडे
जोग वियोग वर्ननो नाम प्रथमो अध्यायः ॥१॥

अथ कलपलता कौ विरहु बरननं ।

(दोहा)

कलपलता जिय जानि के, प्रान नाथ पति[३] गौन ।
चित्र लिषी पुतरी मनौ, अचिकि रही सुष मौन ॥२६॥
सीरी लेत उसास अति, पीरी परी कपोल ।
अध षंडित बीरी रही, नीरी आऊ अडोल ॥२७॥

(चौपही)

सुनतहिं प्रान नाथ पति गौना । अहि अभरन विष भये बिछौना ॥
चलौ प्रान प्रानेसुर संगा । व्याकुल विरह अग्नि भौ अंगा ॥२८॥
झरत नैन झर[४] सावन जानौ । पिय पिय रटति पपीहा मानौ ॥
तलफति तलफ अनाथ अकेली । दिन दूभर अरु रैनि दुहेली ॥२९॥
बिलष बदन व्याकुल कल डोलै । कातर बचन दीन मन बोलै[५] ॥
कहैं देव यह कौन विचारी । विरह व्याधि जलधि मँह डारी ॥३०॥
निर्गुन निठुर नाह निरमोही । कौन चूकि जिय जान बिछोही ॥
अप्छरि सक्ति हरी सुर राजा । नातर फिरति पहुमि तुव काजा ॥३१॥
पहिली सक्ति कहाँ अब पाऊँ । निसि बासर करतार मनाऊँ ॥
करुना नाथ कृपा फल पायौ । इनि नैननि तुव दरस दिषायौ ॥३२॥
रजनी भई चरन लिपटाती । सेवा करत संग लगि जाती ॥
जानी मैं न कपट की प्रीती । भई पतंग दीप की रीती ॥३३॥

१—ब. सबै । २—अ. यस । ३—अ. कौ । ४—अ. घन । ५—अ. में यह चरण नहीं है ।

जरहि पतंग दीप[1] की झारा। दीपक हूं नहि करहि सम्हारा॥
मरै मीन छिनु मै विनु पानी। नीर पीर तिहिं की नहि जानी॥३४॥
अति हिय कठिन कंत विसवासी। हौं तौ हती चरनु तुव दासी॥
किहि कारन मनु कियौ उदासी। मरति प्यास दरसन की प्यासी॥३५॥
जौ तुहि और नारि मन भाई। हमहीं क्यौं न लियौ सँग लाई॥
जब ताईं जीवन जग जीजै। निरमोही सौं मोह न कीजै॥३६॥

(सोरठा)

पुहुकर अश्वनि मेह। परछाहीं की छाँहिरी॥
निरमोही कौ नेह। तीनौ तुरत पलट्टियौ॥३७॥

(चौपही)

तब समझावहि सकल सहेली। बहुत विरह जनि होहु दुहेली॥
विधना रची सोई पै होई। जिनि बिछोह किय मिलवै सोई[1]॥३८॥
बिछुरि मिलनु जग मै जब होई। तिहिं सम सुषद और[2] नहि कोई॥
अकसमात जो रचै वियोगू। सोऊ फेरि करै संजोगू॥३९॥
नल दमयंती मिली जो आई। माधव काम कंदला पाई॥
मधुकर संग मालती मेला। करै नाथ तौ निपट सुहेला॥४०॥

(दोहा)

सुनि सुनि गुननि विसूरवै, झुरहिं चित्त विकरार।
विषधर विरह डसी मनौ, व्याकुल अँग न सम्हार॥४१॥
पहुंकर प्रिय गुन फूल ? ज्यौं, लगि उर भये दुसाल।
निकसत प्रान निकासतै, तिहिं दुष व्याकुल बाल॥४२॥

(सोरठा)

व्याकुल बाल विदेह। सदन सेज भावै नहीं।
झरत नैन ज्यौं मेह। बिछुरे वल्लभ भावते॥४३॥

(छंद)

प्रान पती वल्लभ विछुरं तहँ प्रान प्रियान कियं।
थकि धीरज ह्वै वस कामिनि जावन सौंह दियं॥

१—अ. विरह। २—यहाँ से अ. प्रति पूर्णतः विखण्डित है। आगे का पाठ केवल ब. प्रति पर आधारित है।

दिन दिन दीन छीन कटि सुंदरि भरि साँस उसाँस लियं ।
दल दर्पक जोर ओर नहि पावति अति भयभर दरकि हियं ॥४४॥
विरहागिनि अंग बढ़ी बुध व्याकुल पिय बिनु यह नहि धीर धरं।
तन चंदन फूल दुकूल न भावत सूल भये कुच मूल जरं ॥
पिय दरसन हीन दीन अबला अति बल काम कमान उरं ।
परम विकल कैहूं न परति कल मुरछि परी परजंक परं ॥४५॥

(दोहा)

अति व्याकुल वर विरहनी, हनी सु मनमथ तीर ।
विरह विथा पावै नहीं, परी पयोधि गँभीर ॥४६॥

(चौपही)

सहचर कहै सुनौ नृप रानी । पति किँहि लुब्ध भयो कछु जानी ॥
विकल बैन बोले सुर नारी । है बैरिनि अति दूरि हमारी ॥४७॥
कहति कहूँ चंपावति देसा । विजैपाल तहँ भूप नरेसा ॥
तिहि घर सुता रूप रति रानी । जो जुवती जग माँह वषानी ॥४८॥
तासु चित्र पेष्यौ पिय पेसा । जानतु चल्यौ जानि उहि देसा ॥
बहु विहँ सौंह करी हम सेती । ते अब कहौ कहाँ लगि केती ॥४९॥
मो मन झूठे बैन भुलायौ । आपुन जाइ उहाँ मनु लायौ ॥
कुसम कनैर कपट तन भेसी । लै चित चोर गयौ परदेसी ॥५०॥

(दोहा)

पहुकर मित्र विदेसिया, लै जु गयौ चित चोरि ।
पाहन लीक ललाट की, काहि लगाऊँ षोरि ॥५१॥

(चौपही)

सुन सहचरि समुझावैं ताही । यह तौ बात सुगम अति आहीं ॥
कै लिष हम संदेस पठैहै । अप्छरि बोलि इहाँ लै ऐहै ॥५२॥
उहि विधि फेरि ताहि लैं आवहिं । सौति विरह कहँ फेरि बढ़ावहिं ॥
एतौ दुष अरु सोचु न कीजै । सोचनु अंग प्रान तनु छीजै ॥५३॥
ऐसहिं रोइ रोइ मरि जैहै । तौ पिय दरस कौन विधि पैहै ॥
एतौ दुष्ष न कोजे प्यारी । प्रान पतो मनुरंजन हारी ॥५४॥

(दोहा)

कलपलता इमि उच्चरै, भरि भरि साँस गँभीर।
पल पल जात जुग जुग मनौ, धरौं कौन विधि धीर ॥५५॥

(चौपही)

कहै विलष मुष सुनौ सहेली। निसि वासर क्यौं भरौं अकेली ॥
मदन रूप देष्यौ जिहि नैना। तिहि दग होहिं कौन विधि चैना ॥५६॥
जिनि कर करी कंत की सेवा। तिन कर कौन पूजिहौं देवा ॥
जिहि मुष कही सजन सौं बाता। तिहि कहँ और कौन सुषदाता ॥५७॥
करि उपाव सहचरी सयानी। पिय रस माँझ पियारी सानी ॥
सूर चित्र सुंदरि अवरेष्यौ। कछुक भेद उहि रूप विसेष्यौ ॥५८॥
लिषिकरि दियौ सुंदरी आगे। कह्यौ नैन राषौ इहि लागे ॥
पंजर घालि कीर लै आई। इहि मिलि नाम जपौ दिन साईं ॥५९॥
सकल बात सुंदर मन भाई। सषि जानौ तुम पीर पराई ॥६०॥
देषै चित्रु पढ़ावै कीरू। सींचहि बाग नैन के नीरू ॥
विद्यासैनि सुत्रा गुन जाना। वानी भेद सुबुध्यि सुजाना ॥६१॥
छिन छिन बुध्यि करै परगासा। मानौ सापवती सुत व्यासा ॥
सुंदरि विरह सबै बिसरावै। काव्य कथा कहि काल गवावै ॥६२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं चंपावति षंडे कलपलता कौ विरह वर्ननो नाम दुतियो अध्यायः ॥

अथ सैन्या संदेह वर्नन

(दोहा)

कीर पढ़ावहि सुंदरी, कंत कियौ उठि गौनु।
मान सरोवर सैन सबु, निसि वीतति भयौ भौनु ॥६३॥

(चौपही)

होत प्रात उग्गित जग भाना। वाजे विजय गँभीर निसाना ॥
सावधान सुभट ह्वै आये। हय हाथी वाहन पषराये ॥६४॥
गुन गंभीर राइ रघुवीरू। चले जुहारि कुँवर के तीरू ॥
देषे जाइ सुमंदिर माँही। सूर अलोप सेज पुनि नाहीं ॥६५॥

(दोहा)

पुहकर मन संदेह अति, नाहिंन मैटहि कोइ ।
निस दिन दीपक भौन तैं, कौन गयौ लै गोइ ॥६६॥

(चौपही)

उज्जल सेज अनूपम डासी । बहुविध कुसम सुगंधनि बासी ॥
पौढ़त पलंग लगी नहिं बारा । ना वह सेज न पौढ़न हारा ॥६७॥
जागहि द्वारपाल सब द्वारे । पौरिक पाट लगाये तारे ॥
आयौ कौन चोर वर वीरा । देषत सबनि लयौ हरि हीरा ॥६८॥
सैन वही वेही हय हाथी । वेही सकल संग के साथी ॥
वेही पंच आहिं दल माही । वेही जन वह दलपति नाही ॥६९॥
रवि विनु लगै भवन जिमि सूना । ज्यौं विनु अंक निफल सब दूना ॥
जैसे दल डोलहिं विनु राजा । त्यौं बरात विनु वर किहि काजा ॥७०॥
जैसे सिद्ध मठी महँ होई । तप बल सेव करहिं सब कोई ॥
सिष साषा सब होहिं वियोगी । सूनी मठी गयौ रमि जोगी ॥७१॥

(दोहा)

पुहुकर यह परतिच्छ है, जात न जानै कोइ ।
हंस चलै उड़ि अनत ही, सरवर सूनौ होइ ॥७२॥

(चौपही)

रोवत सकल सुभट विलषानै । मनौ षाइ ठक मूरि भुलानै ॥
ढूढहिं वन उपवन द्रुम बागा । अति अनुराग बढ्यौ वैरागा ॥७३॥
ढूढहिं चहुँ दिसि सरवर तीरा । ढूढ़हिं पैठि सरोवर नीरा ॥
बल्ली लता कुंज वन जोवहिं । कर मीड़हिं सिर धुनि धुनि रोवहिं ॥७४॥
चकृत सकल परत नहिं जानी । दिव्य दिष्टि कौ देषहिं ग्यानी ॥
कहिहै कहा सोम नृप आगै । जब ऐहै सुत हित अनुरागै ॥७५॥
अब तौं हाथ रह्यौ पछितायौ । जतनु कौन जब रतनु गँवायौ ॥
गुन गंभीर कहै मुष बाता । पूरव कथा सुमरि विष्याता ॥७६॥
मो मन आवहि एक विचारा । साचु झूठ जानहिं करतारा ॥
दुहुँ दिसि देषहिं विरह वियोगू । अप्छरि तहां करै संजोगू ॥७७॥
चित्ररेख अनुरुध कौ ल्याई । जब उषा मनमथ्थ सताई ॥
मधु मालती सौं कुँवर मिलावा । सो कविता गुन गाननि गावा ॥७८॥

सिज्या पुनि मंदिर मैं नाही। तातै साचु भयौ मन माहीँ॥
जब एकादसी निर्जला होई। इहि सरवर आवहिँ सब कोई॥७६॥

(दोहा)

चलौ सकल चंपावती, जन रे करौ मन चिंत।
यह संजोग विरंचि रचि, सत्त मिलहिँ जुग मिंत॥८०॥
जौ तिहि ठाउँ न पाइबी, नहिन होहि संजोग।
तौ ढूँढ़न कौ जगत मैं, सकल धरहिंगे जोग॥८१॥
गुन गंभीर मुष बैन सुनि, भई सबन मन आस।
सत्य वचन जिय जानि कै, चले कुंवर के पास॥८२॥
तप न सीत जानै नही, चले अगम मग दूरि।
चंपावति पूछत चले, जहाँ सजीवनि मूर॥८३॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावति षंडे
सैन्या संदेह वर्ननो नाम तृतीयो अध्यायः॥३॥

(छप्पय)

सूर सैनि तन विरह जोग द्वासह तन साध्यौ।
राज पाट गृह छोड़ि गुरू गौरिष अवराध्यौ॥
गुंड गहन पाहन पहार सरिता सर थाहत।
सिंघ वाघ गैयर गरुव गैंडा अवगाहत॥
मनिधर भुजंग मनियार मग नहिँ न भानु सूझत नयन।
कर चक्रपानि संगी सुभट और पंथ भूल्यौ सयन॥८४॥

(चौपही)

सूझहिँ नही सूर उजियारा। कठिन पंथ मानौ असिधारा॥
गाजहि सिंह नाग फुंकारहिं। मैगल मत्त विरष उष्षारहिँ॥८५॥
निसु दिन चलै पंथ मन लाये। पारवती पति ईस मनाये॥
अति दुष सहत तपनि अरु सीता। होइ न स्याम रैनि भय भीता॥८६॥
सनमुष सिंह छुधित जो धावहिँ। तिहि छन चक्र चोष मुष पावहिँ॥
सुंडाहल धावहिँ वलि वंडा। मारै चक्र करै दो षंडा॥८७॥
चलत चलत अंतर वन आयौ। किरिनि भानु दरसन दिषरायौ॥
देषी हरित भूमि दुषदाई। जनु विरंचि रचि रम्य बनाई॥८८॥

राजपंथ देषौ विस्थारू । कछुव चित्त तब करौ विचारू ॥
कछ्वुक और जाहिं जौ नीरा । झलकत महल कनक नग हीरा ॥८९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहु बिरिचिते चंपावती षंडे
नगर दरसनो नाम चतुर्थोध्यायः ॥४॥

(सोरठा)

नागर चतुर सुजान । नगर भाव देष्यौ तहाँ ॥
मन जान्यौ उन्मान । चित्त हरन चँपावती ॥९०॥

(चौपही)

कछुवक भूमि नाक जौं जाई । सुवन बाग दीनी दिषराई ॥
उपवन सुंदर सुषद अनूपा । गुन गाहक सोभित सब कूपा ॥९१॥
माली मुदित विजच्छिनु भारी । चलहिं रहट सींचहि वनवारी ॥
बैठो जाइ कुँवर इक ठाँऊ । पूछन हेत नग्र कर नाऊँ ॥९२॥
निरषि नैन देषहिं जौ बारी । कौतिक मगन भयौ अति भारी ॥
रहट फेरि गुन घरी बनाई । वांधी एक डोरि सब लाई ॥९३॥
सकल चपल पलु धीरु न गहई । षन इक अध षन ऊरध रहई ॥
सीधी एक एक विपरीती । एक भरी इक आवहिं रीती ॥९४॥
उहि गुन डोर वँध्यौ जल आवै । तिहि जल तै विस्थार बढ़ावै ॥
बाढ़हि विरष फरहि अरु फूलहिं । जिहिं रस वास भ्रमर रस भूलहिं ॥९५॥
अरुन स्याम सित पीत सुहाये । हरित नील गुन गीतनि गाये ॥
जो फलफूल मनोहर होई । द्रुमहि विछोह लेहि हरि सोई ॥९६॥
कुवँर चरित्र सबै यह देष्यौ । बहु विधि अर्थ हिये महँ लेष्यौ ॥
माली हतौ संग मिलि ताही । पूछौ कवन नगर यह आई ॥९७॥
कही देव नगरी चंपावति । मानो अवनि रची अमरावति ॥
विजैपाल चित्रांगद पूता । मानौ राज करै पुरहूता ॥९८॥

(दोहा)

सुनत वचन चंपावतो, चिंता गई हिराइ ।
मानौ पाई रंक निधि, यह सुष कह्यौ न जाइ ॥९९॥

(छंद मोतीदाम)

सुनौ पुरमित्र वढ्यौ अनुराग। विलोकित नैन मनोहर वाग ॥
रह्यौ सुष संपति आनद झेलि। घनै फल फुलहिं लसै द्रुम बेलि ॥१००॥
सदा फर दाड़िम सोभित अंब। वनै बर पीपर नीब कदंब ॥
महा रँग नारँग निब्बू संग। लता जनु अमृत सींचि लवंग ॥१०१॥
जमीरी गलग्गल श्रीफल सेव। फरे कदली फल चाषहिं देव ॥
षजूरिनि षारक ताल तमाल। सुधा सम द्राष अनूप रसाल ॥१०२॥
चमेलिय चंपक बेल गुलाब। वंधूप सरुपित सोभित लाल ॥
बनी बरबौर सिरी तहँ जाइ। रहे मिलि पंकज भौंर लुभाइ ॥१०३॥
करै धुनि पंछिय कोकिल कीर। पढ़ै जनु बानिय बेद सुधीर ॥
दुहूँ दिसि बाग सुदेषत सूर। भयौ मन मोद सो आनद पूर ॥१०४॥

(चौपही)

सुकल भस्म राजति अति अंगा। चंदन षौर किधौं जल गंगा ॥
अरुन अधर दसनावलि सोहै। देषि रूप कामिनि मन मोहै ॥१०५॥
लैकर बीन बजावहिं गौरी। मृग माला सिर आवहिं दौरी ॥
संग भुजंग अंग लिपटानै। अति हित रंग सुगंध लुभानै ॥१०६॥
अरुन असित सित नैन विसाला। धरे कंध सुंदर मृगछाला ॥
प्रिया अजान जान सुरग्याना। प्रिया विरह वैराग भुलाना ॥१०७॥

(दोहा)

षग मृग संग भुजंग लै, आयौ सरवर तीर।
पार बनी तहँ चारि दिसि, जटित कनक मन हीर ॥१०८॥

(छंद मोतीदाम)

लियै मृग पच्छिय संग भुजंग। लसौ जनु संकर जीति अनंग ॥
गयौ जहँ सूर सरोवर तीर। भरै जह गागरि नागरि नीर ॥१०९॥
बनी जहँ पारि जटी नग हीर। प्रफुल्लित पंकज भौरनि भीर ॥
वहै तहँ सीतल मंद समीर। करै जल मज्जन पंडित धीर ॥११०॥
पढ़ै दुज बृंदनि ब्रह्म समान। करै सुर अर्चन तर्पन दान ॥
जहा तप सिध्य करै तप होंम। करै जल पानि मनो सुर सोम ॥१११॥

महाजल जूथ घने जल जंतु। मनौ पय सागर नाहिन अंतु॥
तरब्बक सारस हंस चकोर। चकवा चकई जहँ सारस मोर॥११२॥

तहाँ तरु चंदन चारिहु ओर। करै उनमत्त तै कोकिल सोर॥
हलै जल धार सु मारत जोर। उठै जनु सागर षीर हिंलोर॥११३॥

लसै तरुनी सिर गागरि नीर। मनौ रस नार तरंगिनि तीर॥
फिरै जहँ गुंजत भौंर समीप। मनौ सुरलोक कै सिंघल दीप॥११४॥

जटे मनि मानिक कुंडिल लोल। झलक्कत सोभित चारु कपोल॥
छुटी अलकैँ झलकैँ सुष येमि। चढ़ै अलि मालि जलज्झहिँ जेमि॥११५॥

सितासित चंचल नैन विसाल। किथे पट लज्जित घूँघट बाल॥
उरोजनि उन्नति केहरि लंक। मनोहर बैन विलोकनि बंक॥११६॥

चलै गज गामिनि मंद मराल। ठमंकति पाइनि पाइर माल॥
झनंकिति झुंझुनु रुंझुनु जोर। बजै रव किंकिनि नूपुर सोर॥११७॥

विराजत आनन घूँघट ओट। करैं तकि वान कटाच्छनि चोट॥
सषी सब सामि मिली मुसिक्याइ। अली रति अंकनि देइ बनाइ॥११८॥

गहै इक पाननि वीरिय दंत। अली इक रूप सराहति कंत॥
त्रिया इक नैननु अंजनु देइ। करै घट ओट भरी भरि लेइ॥११९॥

हसैँ हरषैँ वरषैँ सुषनीर। चलैँ भरि एक घड़ी इक तीर॥
गुहौ इक हार सुधारति मोति। निहारति आनन दर्प्पन जोति॥१२०॥

विलोकत सूर सुनैननि वाम। लवौ सुख सूर मिट्यौ सुषदाम॥
रह्यौ इकही टक नैननि हारि। विलोकत रूप अनूप विचारि॥१२१॥

(दोहा)

कुँवर निरषि नव नागरी, सुंदरि सरवर तीर॥
प्रीति त्रिया वर आनि कै, अतिचित भयौ अधीर॥१२२॥

(चौपही)

तान विधान लिये कर वीना। सुनि मृग मीन भये आधीना॥
चकृत चित्त सकल नर नारी। अचिरचु देषि अनूपम भारी॥१२३॥

एक अनंग कहै यह आही। कहै एक अलकापत ताही॥
कहै इंद्र आषंडल कोई। सिव संकर विनु और न होई॥१२४॥

छंद कामिनीमोहन

देषि सोभा रही रीझि प्यारी प्रिया। मग्ग भूलै चलै चित्त हारै त्रिया।
संग छाँडै मृगी जेमि भूली फिरैं। हार टूटै हियै भूमि मोती गिरैं ॥१२५॥
छूटि वैनी गई वार बंधै नहीं। नेह लाग्यौ नयौ मैन अग्नी दही ॥
प्रान दीनै जहाँ बीन बानी सुनी। पानु कीनै मनौ माधुरी वारुनी ॥१२६॥
जीय जंपै नहीं विस्वुरी वत्तियाँ। नैन आँसू चलै दाह दें छत्तियाँ ॥
रित्तु पावस्स ज्यौ नीर नदी बहै[1]। प्रीति पूरी हियै कावि कित्ती कहै ॥१२७॥
एक जानै नही छीन है अंचरा। भौन रीती चली सीस मंजै घरा ॥
एक टक्कै रही अंषिया जोहनं। रूप देषौ जहाँ कामिनी मोहनं ॥१२८॥

(सोरठा)

कामिनि सरवर तीर। रूप जो अद्भुत पेषि कै ॥
तन अति चली अधीर। चित विसरे विपरीत गति ॥१२९॥

(चौपही)

आइस मोहन राग बजायौ। नगर नारि चित चाहि चुरायौ ॥
मदन रूप अरु गान सुजाना। किहि त्रिय चिर धीरज ठहराना ॥१३०॥
प्रति भव घरनि सुंदरी आई। अति अधीन गति मति बिसराई ॥
इक रीती घट ल्याई भोरी। इक त्रिय सीस गागरे फोरी ॥१३१॥
अंजनु दियै एक ही नैना। भूली एक कछू कह वैना ॥
पति ग्रह त्रिया जिमावन लागीं। तन मन लीन अतन अनुरागीं ॥१३२॥
विसरैं चित्त न पेषहिं थारी। भोजनु दियौ भूमि मैं डारी ॥
इक त्रिय पान षवावत नाहाँ। सुंदर रूप वस्यौ मन माहाँ ॥१३३॥
जतन जतन करि बीरी कीनी। सो तजि सुष्ष चुनौती दीनी ॥
दीपकु एक उदीपन आई। दिया छोड़ि आँगुरी जराई ॥१३४॥
मोहीं सकल रूप की सारी। या गति देषि देहिं पति गारी ॥
संकित त्रिया कहै सुष बाता। कंपहि मनौ कदलि दल गाता ॥१३५॥
सुनौ वचन प्रानेश्वर नाहाँ। एक उद्वेग भयौ पुर माहाँ ॥
जोगी एक कहूँ तै आयौ। तिहिं कछु राग उचाट बजायौ ॥१३६॥
सो पुन सुनि मोहै सुरनारी। जिहिरे सुनी तहिं गत्ति विसारी ॥
चाहत चित्तु रहौ जो हाथा। षग मृग उरग आहिं उहि साथा ॥१३७॥

१—भरै।

(सोरठा)

बनसी बीन बजाइ । जुवति मीन मन हरि लियौ ॥
प्रेम ठगोरी लाइ । विवस भये नर नारियाँ ॥१३८॥

(चौपही)

नगरी सकल विवस रस भोई । घर घर वैर करहिं सब कोई ॥
जोगी एक कहूँ तैं आयौ । तिनि जुवतिनि कौं चित्तु चुरायौ ॥१३९॥
अति प्रवीन करवीन बजायौ । मानौ सीस ठगौरी नायौ ॥
राज मँदिर संचरि यह बाता । इकु जोगी अरु रूप विधाता ॥१४०॥

(दोहा)

नगर लोग नरनारि सब, विवस भये उहि रूप ।
एक कहै कोई देव है, एक कहै कोई भूप ॥१४१॥

(चौपही)

गावहिं राग सिंगार वियोगा । पूछत तबै नगर के लोगा ॥
है कोई ठाउँ रम्य सुषदाई । जोगी जती रमहि तहँ जाई ॥१४२॥
उत्तर दियौ हरष मन माहीं । नगर माँझ सिव मंदिर आहीं ॥
परम रम्य मंदिर सुषदाई । जाहि चाहि दुष जाइ भुलाई ॥१४३॥
बाग मध्य सो अस्थलु आही । राज महल पुनि नियरे ताही ॥
सुनत सूर वीना कर लीनौ । नगर मध्य तन आगम कीनौ ॥१४४॥

(दोहा)

कनक कोट देष्यौ तहाँ, पौरिनि जरत जराव ।
चंपावति चित चाहि करि, भयौ चवग्गुनु चाव ॥१४५॥

(छंद मोतीदाम)

भयौ चित चाव चवग्गुनु चाव । निरष्षत नैन निहार जराव ॥
चहूँ दिस कोट सुकंचन दीस । बनै नग लाल कंगूरनि सीस ॥१४६॥
चल्यौ नगरी महँ आनद पूर । अनूपम रूप मनौ ससि सूर ॥
विलोकित भीर हजार वजार । घरग्घर तोरिनि पौर पगार ॥१४७॥
पटंबर मंडित सोभित हाट । रच्यौ जनु देव सुरप्पति बाट ॥
कहूँ नग मोतिय बेचत लाल । करै तहँ लच्छिन मोल दलाल ॥१४८॥

कहूँ गढ़ैं कंचनु चारु सुनार । कहूँ नट नाटिक कौतिक हार ॥
कहूँ पट पाट बनैं जरतार । कहूँ हय फेरत हैं असवार ॥१४९॥
कहूँ गुहैं मालिनि चौसर हार । कहूँ तिसवारत हैं हथियार ॥
कहूँ वरई वर फेरत पान । कहूँ गुनी गाइनि साजत गान ॥१५०॥
कहूँ पढ़ै पंडित वेद पुरान । कहूँ नर तानत बान कमान ॥
कहूँ गनिका गन रूप निधान । कहूँ मुनि ईस करैं तप ध्यान ॥१५१॥
चल्यौ नगरी सब देषत सूर । कहूँ मृग मद्द सुगंध कपूर ॥
रहै इक नागरि नैन निहार । चलै इक पाट गवाष उघार ॥१५२॥
रहैं रस रीझि सबै मन हार । करैं तन प्रान तहाँ बलिहार ॥
चल्यौ सबु देषत सुंदर देस । गयौ तहँ देवल देव महेस ॥१५३॥

(दोहा)

देवल देव महेस के, गयौ चरन चित लाइ ।
पुहुकर परम उतंग अति, सोभा वरनि न जाइ ॥१५४॥

(छंद)

देषि देवल्ल उतंग भारी । सिवसनकाधि सेवाधिकारी ॥
कनक मयं मंडि रत्न हीरं । कलस द्युति सूर मिलि किरनि नीरं ॥१५५॥
थंभ सौपन्न मुत्ती झलक्कै । देषि गंधर्व मुनि देव थक्कै ॥
उच्च उत्तंग सोभा न आवै । सिषिरि कैलास उपमान पावै ॥१५६॥
नमंडियौ नाद गंधार सोहै । हरत षल पाप जब नैन जोहै ॥
सिद्धि वहु वृंद बैठे तहाँई । एक आसंन्न टरि काल जाई ॥१५७॥
तौन संमाधि तन ध्यान कीनै । एक सिवचरन तन चित्त दीनै ॥
धन्य सो नगर अरु नगर वासी । सदा सेवत विस्सेषि कासी ॥१५८॥

(दोहा)

धन्य नगर वासी सबै, जे सेवहिं चित लाइ ।
पारबती पति ईस कौं, दरस कियौ तहँ जाइ ॥१५९॥

(छंद नाराच)

कपाल माल व्याल ग्रीव चंद्रभाल सोहनं ।
त्रिलोकनाथ कालनाथ विस्वनाथ मोहनं ॥
कृपाल नाथ कालनाथ भूतनाथ नथ्थये ।
पिनाकपान सूलपान नंदि जासु सथ्थये ॥१६०॥

अनंग भंग राग रंग संग जासु सुंदरी।
मसान भूमि सैनि साज गूढ़ कंदरा दरी॥
गिरीस ईस[1] त्रंबकेस व्योम केस रुद्रये।
विभूति अंग चंद्रचूड़ कासमीर रुद्रये॥१६१॥
तरंग गंग उत्तमंग गौर अंग सोभये।
हरत्तदेव नारदादि संग जासु लोभये॥
अर्थ धर्म्म काम मोच्छ दानि रीझि संगही।
नमो नमो नमो मृडानि कंत कंत रंग ही॥१६२॥

(दोहा)

देव देव दरसनु कियौ, रह्यौ चरन चितु लाइ।
सिध्य सकल सिवधाम के, देषि उठे भरराइ॥१६३॥

(चौपही)

सोभित सुक्ल भस्म अति अंगा। चंदन षौरि किधौं जल गंगा॥
सोभित सरस उरग सिर माला। बीना कंध धरै मृगछाला॥१६४॥
अरुन अधर जुग नैन सुहाये। रहै मोहिं जिनि देषन आये॥
देषत चकृत रह्यौ सब कोई। सिव संकर बिनु और न होई॥१६५॥
कहै एक कोई भुवपति आही। कहैं एक अलकापति ताही॥
येक कहैं कोई गंध्रप देवा। जोरै हाथ करैं सब सेवा॥१६६॥
लिय अतीत कर बीन रसाला। आई धाइ सुनत मृग माला॥
रहै विवस गति छाँड़ि विहंगा। रहै रीझि रस रास भुजंगा॥१६७॥
सब नगरी सर पंच सताई। घर घर बात यहै चलि आई॥
जोगी एकु कहूँ तैं आयौ। सकल नारि नर चित्तु चुरायौ॥१६८॥
मोहन रूप आइ निर्बानी। सुर नर जच्छ परहि नहिं जानी॥
जोई सुनै सोई उठि धावै। देषि रूप गति मति बिसरावै॥१६९॥

(सोरठा)

मोहन मंत्र के जोग। आकर्षन वीना लियै॥
विवस भये सब लोग। मनौ परी सिर मोहनी॥१७०॥
तन मन सर्वस वारि। प्रान करै अनुचर तहीं॥
विथक रहै नरनारि। मगन भईं वह रूप लषि॥१७१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुँकर विरंचितेयं चंपावति षंडे सिवदर्सन वर्ननो नाम पंचमो अध्यायः॥ ५॥

१—ईस के बाद 'सीस' अतिरिक्त दिया हुआ है।

(चौपही)

लग्न द्वैस सब नियरे आये । दिसि दिसि भुवपति मंत्रिनि ल्याये ॥
दल चतुरंग संग सब आवहिं । बिनु पावस घनस्याम दिषावहिं ॥१७२॥
मदन मुदित पूछहिं नित बाता । कौनु नृपति आवहिं विष्याता ॥
वल्लभ अवधि अषंड विचारे । सुंदरि धाइ चढ़ै चौवारे ॥१७३॥
दिसि दिसि देस प्रगटि दल आवहिं । बहुत निसान मृदंग बजावहिं ॥
दासी आइ जौ पूछहिं सोई । वैरागर पति कहै न कोई ॥१७४॥

(दोहा)

नृप कन्या उतकंठिता, वीतत अवधि विचारि ॥
प्रान नाथ पेषै नहीं, रही अपुनुपौ हारि ॥१७५॥
राज महल मंगल बहुत, सुदिन सुयंवर मानि ॥
विरह विथिति रंभावती, अवधि अतीती जानि ॥१७६॥

(चौपही)

वहुरिहु विरह अंग अधिकान्यौ । कारन कवन परतु नहिं जान्यौ ॥
जीवनु रहै अवधि गहि आसा । चात्रिक स्वाति आस ज्यौं प्यासा ॥१७७॥
बीत न अवधि कौन विधि जीवै । चात्रिकु और नीर नहि पीवै ॥
कुवरि अंग उद्वेग जनायौ । रोगु वियोगु छाइ तन आयौ ॥१७८॥
बहुरौ प्रगट भई तन चिंता । निसि दिनु ध्यान करै मन मिंता ॥
जप तप नेम करै इहिं लागै । सो पति प्रान देषियतु आगै ॥१७९॥
दिन दस रहे लगन मैं आई । छिन छिन विरह अंग अधिकाई ॥
अति दुष दरद जरद मुष झांई । मनु सनेह तन हरद चढ़ाई ॥१८०॥

(गाथा)

दुसह अग्नि अनंगौ । सहियै सहित आस आबंधीयं ॥
अवधि गता छिन भंगो । जीवो अर्थं मरन वै सेस ॥१८१॥

(दोहा)

मदन मुदित इमि उच्चरै, कुवँरि धरहि मन धीर ॥
गगन देव बानी भई, सूर हरैगौ पीर ॥१८२॥
दीरघ विरह विदेस पिय, पहुकर अवध अतीति ॥
काम प्रबल अबला महल, विषम अंग अति प्रीति ॥१८३॥

कहति वचन अति सुंदरी, जदिप टरै बहु काल ॥
विधि विधानु टरिहै नहीं, आवै सूर उताल ॥१८४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावति षंडे अवधि उतकंठिता नाम षष्टमो अध्यायः ॥ ६ ॥

(चौपही)

इतहिं विरह व्याकुल रंभावति । उतहिं सूर निरषहिं चंपावति ॥
संकर ईस चरन चितु लावहिं । विरह वियोगु उचाट बजावहिं ॥१८५॥
देषै देस देस पति राजा । आवहिं सकल सुयंवर काजा ॥
अति प्रताप पहुमी पति सोई । तिनहूं बात न पूछै कोई ॥१८६॥
हय गय गैयर पट बहु हीरा । ल्यावहिं भुवपति मंत्रिन वीरा ॥
विजैपाल चक्कवै नरिंदू । सोभित मनौ नषत मधि चंदू ॥१८७॥
कुवंर देषि यह चिंता भई । हमरी बात कैसे पहुँचई ॥
भुवपति भूप पार नहिं पावैं । हम अतीथ किहिं लेषै आवैं ॥१८८॥
गयौ बहुरि सरवर के तीरा । अमल कमल सोभित जहँ नीरा ॥
विरह वियोग बजावै बीना । तन मन लीन भये परवीना ॥१८९॥
बहुरि जीव बनवासी आये । सुनत कुरंग संग उठ धाये ॥
रीझै सुनै उरग बिनु काना । झरना झरहिं जो पुलकि पषाना ॥१९०॥
थकित विहंग धरैं मन धीरा । चलत न पवन बहत नहिं नीरा ॥
नगर लोग सब देषन आवा । सुनत स्रवन तन मन विसरावा ॥१९१॥
गदगद गिरा रोम उठि अंगा । विथकित मनौ भई गति पंगा ॥
मोहे रूप सकल नरनारी । तिहिं परमदन बान करधारी ॥१९२॥

(दोहा)

मोहन राग बजाइ करि, चितवित लियौ चुराइ ।
मैन बान विहवल भई, नगर नार बहु भाइ ॥१९३॥
विरह विथा वर विरहिनी, संजोगिनि चित चाहि ।
देह गेह विसरीं सबै, यह रस तज्यौ न जाहि ॥१९४॥

(चौपही)

नगरी सकल राग रस भोई । अति रस विकल भयौ सब कोई ॥
घर घर बात यहै चलि आई । सो सुधि राज दुवारिहिं जाई ॥१९५॥

अचरजु सुनत सबन मनभावा। गुन सरूप रासि कोई आवा।
सुनत श्रवन गुनमंजरि धाई। गुनगाहक गुन देषन आई ॥१९६॥
गुन अरु रूप रीझि रस भोई। मानौ कनक कसौटी सोई ॥
इक टक नैन लगहिँ नहि तारे। तनु मनु प्रान निछावरि वारे ॥१९७॥

(गाथा)

रमयति गुन गन ठयौ। लुवधरस बास अंग पंकजाइ ॥
मानसयेवृ मराले। मुक्तामिव भाति हार गुन जाई ॥१९८॥

(चौपही)

तिहिँ छिन सूर सबन तन देषा। विरह बान उनि विथा विसेषा ॥
परी दिष्टि गुनमंजरि नारी। परखी प्रौढ़ बिजच्छिनि भारी ॥१९९॥
जान्यौ मरम मरम कर घाऊ। तिहि छिन अधिक भयौ चित चाऊ ॥
मैगल मत्तु गवनु गयौ पासा। पढ़ी गाह अति उच्च उँसासा ॥२००॥

(गाथा)

भूतल अस्थि न रामौ। जो जानति विरह रस भवै ॥
असह्र अधीर सकामो। दुल्हभ मित्रस्य विरह विषमेन ॥२०१॥

(सोरठा)

गुन मंजरि गुनवान। मर्म भेद विह्वल भई।
कियौ मधुर धुनि गान। कुंडलीक उत्तर दियौ ॥२०२॥

(कुंड़रिया गाथा)

वाला विरह विदेही, जानौ जानति सुंदरी।
प्रेमो दुसह विस्मयसनेही, लज्जा गढ़ वीय अंकुस सीस ॥
लज्जा अंकुस सीस मदन मैगल मद मंता।
बेसम्हार विय भार विकल विरहिनी विनु कंता ॥
एकु नाम आधार, रहनि जंपति उरमाला।
पुहुकर नेह विदेह विरह व्याकुल बर वाला ॥२०३॥

(चौपही)

गुन मंजरि गुनु वैनु सुभाष्यौ। प्रेम घाइ जनुओषदि राष्यौ ॥
सषि सुजान सुष उत्तर दीनौ। मानौ नेह निमंत्रनि कीनौ ॥२०४॥
उलटि सूर आयौ सिवधामा। कीनौ जहाँ प्रथम विश्रामा ॥
गुन मंजरि तहँ तुरतै आई। जिहि ठाँ कुँवरि विरह अधिकाई ॥२०५॥

मदनमुदित पूछहि हँसि बाता । किहि ठाँ कियौ गवनु परभाता ॥
सषि संवात सब आजु विसारा । कै अलि भई कहूँ अभिसारा ॥२०६॥
कहै वैनु गुनमंजरि नारी । अचिरजु एक सुनहिं जो प्यारी ॥
जोगी एक आहि निर्वानी । ह्वैहै तुमहिँ सुनी यह जानी ॥२०७॥
हौं गइ प्रात सरोवर तीरा । जहाँ विमल वारिज अलि भीरा ॥
विस्मित देषि अचंभौ भारी । षग मृग उरग जुरे नर नारीं ॥२०८॥
रूप रासि अरु गान सुजाना । है विद्या दस चारि निदाना ॥
जानति सषी बुद्धि उन्माना । त्रिया विरह बैराग भुलाना ॥२०९॥

(दोहा)

अलि परमल उनमंतु सँग, मुष अरु लुब्ध चकोर ।
नगर नारि नर नागरी, चाहत आनन ओर ॥२१०॥
छत्र वंस अवतंस कै, पहुँम पाल पति सोइ ।
सूर कुँवर उन्मान सौं, उहि विनु और न होइ ॥२११॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावति षंडे
गुन मंजरी दरसनो नाम सत्तमो अध्यायः ॥७॥

(चौपही)

मुदिता मुदित सुनत यह बाता । प्रफुलित हृदै मनौ जल जाता ॥
चली उभै रंभावति पासा । विरह विथा जहँ परम उदासा ॥२१२॥
मुदिता मुदित कहत सुनु प्यारी । गुन मंजरि गुन जानन हारी ॥
आपुनु आजु सरोवर न्हाई । विसरे प्रान दँह घर आई ॥२१३॥
जोगी एक नगर मह आयौ । अति गुनवंत रूप मन भायौ ॥
अति प्रवीन वीना कर धारी । रहति मोहिं षग मृग नर नारी ॥२१४॥
इक सुंदर अरु विरह वियोगी । राज कुमार आहि नहि जोगी ॥
पहिल सुनै हमहूँ ये बैना । राषे रोकि लाज भरि नैना ॥२१५॥
अब जो देषि गुन मंजरि आई । सहस जीभ करि करत बड़ाई ॥
निस्चै वात कहति सषि सोई । सूर सैन विनु और न होई ॥२१६॥

(दोहा)

अवधि दिवस बीते बहुत, लगन दिवस पुनि आइ ।
तिहिं गुन आगम सूर कौ, मानति सत्ति सुभाइ ॥२१७॥

दूरि देस कारन बनै, प्रीति फंद अति जोर।
जोग भेष तजि भोग सब, आइ पहुंचिय ओर ॥२१८॥

जौ अब आइसु दीजिये, हम पुनि देषैं ताहि।
रूप विचित्र उन्मान करि, कहैं सत्य समुझाहि ॥२१९॥

(चौपही)

रंभावत सुनि अकथ कहानी। चकृत चित्त अचिरजु अधिकानी ॥
विसमय हर्ष भयौ इकबारा। कहति करौ करुना करतारा ॥२२०॥

जौ यह बात निरंतर नाहीं। है मम मरनु अवध छिन माहीं ॥
जौ पुनि वचनु सत्य यह होई। मेटौं जोगु भेष वर सोई ॥२२१॥

आदि अंत सब सुष रस भोगी। कारन कवन भयौ वह जोगी ॥
जो यह जोगु धरै अनुरागे। जोगिनि होहुँ अवहिं उहि लागै ॥२२२॥

जो ए भेष मेरे प्रीतम कीन्हा। वहै रूप मम अंकुस चीन्हा ॥
विजैपाल नरपति औ नाहू। जोगी जानि करै नहिं व्याहू ॥२२३॥

(दोहा)

हौं कन्या छितिपाल की, सूर पृथीपति पूत।
हौं वैरागिनि जोगिनी, वह जोगी अवधूत ॥२२४॥

(चौपही)

अब तौ अली यहै वनि आई। तजौं लाज कुल कानि वड़ाई ॥
कंथा पहिरि विभूति लगाऊँ। प्राननाथ गोरिष गुहराऊँ ॥२२५॥

छाँड़ौं राज पिता घरबारा। छाँड़ौं लोग कुटुम परिवारा ॥
तजौं प्रेम पहुँपावति माई। प्राननाथ पिय देषौं जाई ॥२२६॥

तलफति तलफ अलप जनु आऊँ। नैन प्रान सब मिले अघाऊँ ॥
देह गेह तैं भये उदासी। व्याकुल विरह दरस की प्यासी ॥२२७॥

(दोहा)

मदन मुदित इमि उच्चरहि, सुनि विरहिनि वर नारि।
मिलन अवध आई निकट, बोलौ वचन विचारि ॥२२८॥

जिहिं प्रभु विरह विदा कियौ, कीनौ मिलन विचारि।
सो प्रभु सुष संजोग मैं, नाथ निवाहन हारि ॥२२९॥

(चौपही)

आइसु देउ देषि हम आवहिं । पिय सुष चाहि चाह सब ल्यावहिं ॥
जौ उनि जोगु धरौ अनुरागै । जोगिनि होहु अबहिँ उहि लागै ॥२३०॥
यह तौ जुगतु सदा जग माहीँ । सदा पहुमपति राज कराहीँ ॥
जो रघुनाथ जोगु वपु धारौ । लंक जीत रावन संघारौ ॥२३१॥
द्वादस बरष रहै वनवासी । तजी न लाज धर्मसुत आसी ॥
कारन पाय भयौ यह जोगी । करिहैँ सर्व रास रस भोगी ॥२३२॥
राज लच्छ सोभित उत मंगा । सो नहि तुरतु जो भस्म तुरंगा ॥
[1]कंथा पहिरि विभूति लगाऊँ । प्रान नाथ गोरिष गुहिराँऊ ॥२३३॥

(दोहा)

चिंता चित्त न कीजिये, हरषौ हित चित चाइ ।
सषियनि आइस दीजिये, परषहिँ प्रीतमु जाइ ॥२३४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावति षंडे जोगु अनुरागु वर्ननो नाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

(चौपही)

रंभा सुनत धीर मनु कीनौ । मदन मुदित कौ आयसु दीनौ ॥
देषौ जाइ जोग वैरागा । उपज्यौ जाहि सुनत अनुरागा ॥२३५॥
जौ सति होहिँ प्रेम रस माता । कारन हेत पूछियौ वाता ॥
मदन मुदित सुनि सुंदर वानी । अति हित चली करुन रस सानी ॥२३६॥

(दोहा)

गुनमंजरि कौ आदि दै, सषी अष्टमिल संग ।
मानौ रति दूती चलीं, अरचन देव अनंग ॥२३७॥

(चौपही)

सषियन सहित चली सिव धामा । मानौ मुदित कामरस कामा ॥
जप तप जोग जुगति बलि देवा । मानौ करै सवै सिधि सेवा ॥२३८॥
प्रथम पाइ नव नाइक साईं । अष्ट नारि मिल देषन आईं ॥
मदन देव पूजा मति कीनी । सिव अर्चन सामिग्री लीनी ॥२३९॥

१—२२५ संख्या चौपाई की दूसरी अर्धाली भी यही है ।

(दोहा)

पुहकर अचिरज एहु मन, क्यौं करि कहौं बनाइ।
कामिनि संग अनंग लै, संकर पूजन जाइ ॥२४०॥

चंदन फूल सुगंध लै, धूप दीप वहु भाइ।
मन वच क्रम करि कामना, चलीं चरन चितु लाइ ॥२४१॥

(छंद प्रवानिक)

चली प्रवीन नागरी। अनंग अंग आगरी ॥
मराल मंदगामिनी। अनेक भाइ भामिनी ॥२४२॥

घनंक घोर घूँघुरा। चलंत सोभ नूपुरा ॥
जराइ पाइ जेहरी। विराज लंक केहरी ॥२४३॥

उरोज छाजि छत्तियाँ। कठोर बोल बत्तियाँ ॥
सुरंग अंग सारियाँ। सुमध्य मध्य नारियाँ ॥२४४॥

मुषारविंद सोहई। चकोर चारु मोहइ ॥
विसाल बाल लोचनं। वियोग ताप मोचनं ॥२४५॥

विराजमान भूषनं। सबत्रि साल दूषनं ॥
डुलंत नाक मुत्तियाँ। दुभाइ गुंज दुत्तियाँ ॥२४६॥

कटाच्छि बान बंधहीं। कमान भौंह संधहीं ॥
जराय जोर कुँतला। नवीन मेघ चंचला ॥२४७॥

चमंक चारु कुंडलं। विराज चन्द्रमंडलं ॥
मनोज मत्त मोहनी। रसाल बाल सोहनी ॥१४८॥

(दोहा)

पुहुकर वर भामिनि चलीं, साजे सहज सिंगार ॥
हर मंदिर पहुँची सवै, चित्तहुँ रिपु अधिकार ॥२४९॥

देव देव दरसन कियौ, पूजा पंच प्रकार ॥
कर जोरहिं विनती करैं, मिलवहु प्रान अधार ॥२५०॥

(चौपही)

देव पूज तब बाहिर आई। दरस हेत नव नाइक साईं ॥
अंग अनूप पट पहिरि वनाई। पावस प्रगट इंद्रबधु आई ॥२५१॥

देष्यौ रूप अपार अनंता। बुधि विवेक नहिँ पावहिँ अंता ॥
जटा मुकुट मंडित भुवपाला। अरुन स्याम सित नैन विसाला[1] ॥२४२॥
मोहीँ सकल रूप सहचारी। तदपि लाज मन राषन हारी ॥२४३॥
भईं अधीन वदन विधु चाहैँ। पौढ़ा धीरा धीर निवाहैँ ॥
आईं निकट रूप की रासी। पायौ सिद्ध सिद्ध भईं दासी ॥२४४॥

(दोहा)

दीनी प्रथम परिक्रमा, करि प्रनाम बहु भाइ।
नैन प्रान मन मोहि करि, रही चरन चितु लाइ ॥२४५॥

(चौपही)

चाहत कियौ सूर सनमाना। अष्ट सषी जानी उन्माना ॥
उदित प्रेम प्रगट ह्वै आयौ। हिय हुलास दुहुँ ओर जनायौ ॥२४६॥
मदन मुदित पूछहि हँसि बाता। मानौ सूर उदै जल जाता ॥
अति आनंद भई अनुरागी। मृदु मुसक्याइ चली फिरि लागी ॥२५७॥

(दोहा)

मदन मुदित इमि उच्चरै, विनती करत डराउँ।
वनत नहीँ पूछे बिना, मन बलिहार कराँउँ ॥२४८॥

(चौपही)

सकल सषी मिलि पूछन आँईं। निरषि रूप अचिरजु अधिकाँईं ॥
चरन चाहि आपुन उनमाना। निस्चै भेद परतु नहिं जाना ॥२४९॥
देषहिँ तुमहि नहीँ मन धीरा। परौ रूप सागर गंभीरा ॥
इतौ रूप नहिँ नैननि देष्यौ। सुंदरता मनमथ्थ विसेष्यौ ॥२६०॥
संकर भेष उरग उर माला। तिहिं तैं होड़ बदी मिलि बाला ॥
पूछैं बचनु सत्य कहि दीजै। विन गुमान मन क्रोध न कीजै ॥२६१॥

(दोहा)

एकु कहै हर देव है, एकु कहै यह मैन।
तातैं सत्य वषानिये, होहिँ जुवति चित चैन ॥२६२॥

१—बैठे पास उरग मृग छाला। अतिरिक्त।

तब आइस आइस दियौ, हम नरवे प्रभु देव।
अति बल सौँ कछु बल नहीं, जानति जानिँहि भेव ॥२६३॥
छीन देह नहिँ सहि सकै, प्रबल पंच सर घाइ।
मकरध्वज वैरहँ परौ, चंपक चाँपु चढ़ाइ ॥२६४॥

(चौपही)

मुदिता मुदित कही मुष बानी। अंतर कथा सकल हम जानी॥
अचिरजु एक आइ इहि बारा। पद्मपाल तुम राज कुमारा ॥२६५॥
राजकुमार होहिँ नहिँ जोगी। अरु जोगी नहिँ विरह वियोगी॥
यह जु बात नहिँ जानत जोगी। तुम जोगी अरु विरह वियोगी ॥२६६॥
सकल बात जद्दिप हम पाई। कहौ नाथ विरदंतु बनाई॥
मन अति दुष्य अचंभौ होई। जोगी नृपति न चाहतु कोई ॥२६७॥

(दोहा)

प्रेम वचन अरु चातुरी, सुनत सूर आनंद।
इंदीवर विहसैँ मनौ, वदनु विलोकतु चंद ॥२६८॥
कहत बात आनंद मैं, तुम जानतु सब भेद।
सिद्धि जोगु पथ पाइये, बदतु लोक अरु बेद ॥२६९॥
भयौ जोगु तब जब सफल, सो जगु नैननि दिष्ष।
पूरब पुन्यनि तै भयौ, सकल सिद्धि परतिष्ष ॥२७०॥
करनहार करता रहै, मिलीँ रूप की रासि।
सबै सिद्धि की आस मन, अष्ट सिद्धि हैं दासि ॥२७१॥

(चौपही)

जिहिँ कारन हम जोग विचारा। सो अब काजु करौ करतारा॥
भेटौ सिद्धि सिद्धि मन पाई। जोग जुगति विधि आज बनाई ॥२७२॥

(दोहा)

अनुमा, महिमा, गरमता, लघुमा प्रापति काम।
वसीकरन वरईसदा अष्ट सिद्धि के नाम ॥२७३॥

(चौपही)

जानौँ अष्ट सिद्ध कर नाऊँ। पायौँ सिद्ध वास कर ठाँऊ।
अब छिन छिन करतार मनाऊँ। सिद्धि दसा इनि नैननि पाऊँ ॥२७४॥

(दोहा)

मदन मुदित इमि उच्चरै, तुम नरपति नर नाह।
वैरागर अधिपति बली, आये जान बिबाह ॥२७५॥
किहि कारन वपु जोगु धरि, कहँ दल हय गज साज।
आपु एक रवि ज्यौं चले, यह अचंभ जिय राज ॥२७६॥
विजयपाल भुव पाल नृप, कीन्ह सुयंवर काज।
आवत बहु सैना सहित, देस देस पति राज ॥२७७॥
प्रेम लुब्ध रंभावती, तुव व्रत धरौ विसेष।
विजैपाल नृप तेजमय, नहि पत्याइ इहि वेष ॥२७८॥
मदन मुदित मम नाम है, और मुदित मति येह।
सोई जतनु विचारिजै, वेग विराजौ गेह ॥२७९॥
प्रभु प्रसाद तुव हेत चित, हय गय साजु अपार।
दिव्य बसन बहु भाँति अति, ताहि न लागहि वार ॥२८०॥
भेष उतारहु जोग कौ, भोगु धरौ मन माहिँ।
सुदिनु सयंवर निकट है, राजा रंभा नाहिं ॥२८१॥

(चौपही)

सूर सिंह उठ उत्तर दीनौ। मुदिता मोल उभै मनु लीनौ॥
जिहि विध सुनी श्रवन तुवँ बाता। पेषी नैन अधिक विष्याता ॥२८२॥
एक विचित्र और तुम दोऊ। हौ परदुष्य हरन हित कोऊ।
दिवस पंच पुर पाटन पेष्यौं। बुधि विचित्र नहिँ नैननि देष्यौं ॥२८३॥
मुदिता कहै सुनौ प्रभु देवा। दासी दास करहिँ प्रभु सेवा॥
मै प्रभु सेव करी सुनि सोई। माँगौ आवस फल यह होई ॥२८४॥
दच्छिन विजय सँदेसौ आयौ। बुधि विचित्र तिहिँ ठाउँ पठायौ॥
बिजै नगर नव नग्र बसायौ। रचना रचन काज उठि धायौ ॥२८५॥

(दोहा)

अब यह मंत्र विचारिजै, वेगि उतारौ जोगु।
करनहार करता रहै, होहिँ सजन संजोग ॥२८६॥

(चौपही)

रंभा विरह कहौं किहि भाँती। छिन छिन अधिक निमिष नहिँ साँती॥
अब तज लाज कहति अनुरागी। जोगिनि होउँ प्रेम रस पागी ॥२८७॥

जब तुव चित्र चित्र करि ल्यायौ । तबही ँ प्रान मृतक तन आयौ ॥
करत मनोरथ मनमथ माती । नबला नेह निवाहन राती ॥२८८॥
जब तैं सुन्यौ श्रवन तुवँ नाऊ । जोग मेष आये तिहिँ ठाँऊ ॥
बदि व्याकुल उतकंठ न जाई । सदन सेज नहिँ नेक सुहाई ॥२८९॥

(छंद पद्धरी)

सुनि मुदित वैन इमि कहै सूर । मन मैन नेम मरजाद पूर ।
जिहि लागि एत आरंभ कीन । बिबि बरष चित्त नहिँ चैन दीन ॥२९०॥
तिहि दरस काज लगि तपत नैन । कब सुनहिँ श्रवन सुष अमिय बैन ।
जुग बरषि लागि मन मथ घाइ । अब निकट विरह नहिं सह्यौ जाइ॥२९१॥
जो मुदित मान मानहिं सुभाउ । मुहिँ प्रान पिया नैननि दिषाउ ।
पेषिहौं चरन दुत चरन गात । सब जोग होहिँ सब सफल जात ॥२९२॥
जिहि लागि तज्यौं सुष सदन भोग । तिहिँ दरस बिना उतरहिँ न जोग ।
मनु रह्यौ चित्र लगि मित्र आस । अब नहिँ न धीर पुर एक बास॥२९३॥
विभास चित्त जिनि करहु बाल । दल अषिल दिव्य आवहि उताल ।
जद्दिप धिराज महि बिजै पाल । वैरागरेस पुनि सत्रुसाल ॥२९४॥

(दोहा)

सूर बचन मुदिता सुनै, उठी सकल मिलि संग ।
हिय हुलास मन मोद नित, प्रगट अंग रस रंग ॥२९५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि षहुंकर विरचितेयं चंपावति षंडे
सषी समागमनो नाम नममो अध्यायः ॥ ९ ॥

(दोहा)

अष्ट नारि मुदिता प्रमुष, हिय हुलास आनंद ।
जनु चकोर चितु चैनु हुव, पेषत पूरन चंद ॥२९६॥

(चौपही)

कहै वचनु सुनु प्रान पियारी । सफल सेव भई आजु हमारी ।
देष्यौं सूर सिंह जुग नैना । रुचिर रूप जनु मूरति मैना ॥२९७॥
दल पीछे आवहिं सब साथी । धनुक धार रथ हैवर हाथी ।
कौन कौन गुन करौं बड़ाई । एक जीभ छबि वरनि न जाई ॥२९८॥

मदन रूप गंध्रप सम गाना । है विद्या दस चारि निधाना ।
वीर धीर दोइ बातनि पूरौ । है नरसिंह सिंह जिमि सूरौ ॥२९९॥
हम जौ कह्यौ तुम जोग उतारौ । दलबल सहित गेह पगु धारौ ।
दिय उत्तर इमि राजकुमारा । जिहिं कारन हम जोग विचारा ॥३००॥

(दोहा)

सिद्ध दरस कौ मनु रह्यौ. लोगन जानत भेद ।
सिध्यि जोग पथ पाइ जै, बदतु लोक अरु वेद ॥३०१॥

(चौपही)

है यह पंथु अगम अति भारी । जोगी बहुत भेष वपु धारी ॥
गुर जिहि मिला सिध्यि जिहि पाई । वाहि नाथ कछु दीन बड़ाई ॥३०२॥
जोगी नाम वेष धरि आयौ । लहै सिध्यि तब सिध्य कहायौ ॥
लहै न सिध्धु सिध्यि विनु पायै । तातै रहै जोगु मनु लायै ॥३०३॥

(दोहा)

सिव मंदिर पगु धारि कै, सिध्य दरस करि लेत ।
जब आयौ फिरि जुध्य कौं, मैन मकर धरकेत ॥३०४॥
नहिं न अंग भूषन वसन, जदिप धरौ वपु जोग ।
रूप रासि पिय मन हरन, तऊ सुदेषन जोग ॥३०५॥
सिध्य दरस सिव पग परसि, एक पंथ द्वै काम ।
गवरि पूजि आनंद मय, पुनि फिरि आवहु धाम ॥३०६॥

(चौपही)

मुदिता कहै सुनौ रंभावति । जिहिं तै अधिक सषिनि मन भावति ॥
प्रान नाथ दरसन हित आयौ । जिहिं लगि विरह विषम दुष पायौ ॥३०७॥
लग्न द्वैस पुनि नियरै आये । दिसि दिसि भूप अषिल दल ल्याये ॥
करि मंगल आनंद वधाई । चलौ साँझ सिव पूजन जाई ॥३०८॥

(दोहा)

चंद सरद तुव दरस करि, मानि लेहि द्दग भोग ।
सफल करहिं मन कामना, पुलकि प्रेम के जोग ॥३०९॥

(चौपही)

रंभा कहै सुनहिं सषि प्यारी । विरह वियोग बढ़ावन हारी ॥
संकर सेष नैन अरुझानी । अरु उत्कंठा जाहि वषानी ॥३१०॥

जौ विधि कृपा भयौ संजोगू । प्रान नाथ उतरावहिं जोगू ॥
जोर कहै पहुँपावति रानी । चलौ साजि सेवन सर्वानी ॥३११॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावति षंडे सिद्ध दरसनो नाम दसमो अध्यायः ॥१०॥

(दोहा)

मदन मुदित ह्वै करि गई, पहुँपावति के पास ।
होत बहुत मंगल जहाँ, हिय हित हरष हुलास ॥३१२॥

(चौपही)

मुदिता कहै सुनौ हो स्वामिनि । मनौ श्रीय हरि गृहनी भामिनि ॥
आये भूप बहुत अरु आवहिं । दल चतुरंग संग सब ल्यावहिँ ॥३१३॥
पूछति बिहँसि बात सुष रानी । नव तम चाह कहौ कछु आनी ॥
कौन कौन पहुँमी पति आये । लग्न द्वैस अति निकट जनाये ॥३१४॥
सूरसेनि मारग पुनि आयौ । जोगी एकु चाह यह ल्यायौ ॥
आवतु आजु कालि महँ सोई । पंचम दिवस स्वयंवर होई ॥३१५॥

(दोहा)

जो अब आयसु दीजिये, कुँवरहिं लेहि लिवाइ ।
पूरन भाग सुहाग हित, गौरि मनावहिं जाइ ॥३१६॥
जो जप तीरथ जग्यँ फल, तिहि विधि दियौ सुहाग ।
त्यौँ विधना पर माँगि जे, होंहि सुता सिर भाग ॥३१७॥
दूध पूत अरु लक्ष्मी, नित नाइक अनुराग ।
(त्यौ विधना परमागि जे, होहि सुता सिर भाग[१]) ॥३१८॥
पुषपावति अग्याँ दई, होहु सषी सब संग ।
साँझ समै सिव पूजियौ, गौरि जासु अरधंग ॥३१९॥
नृप गृहनी आइसु दियौ, मुदिता आदि सुनारि ।
भवगौरी पूजन चलीं, अँग अँग सजे सिंगार ॥३२०॥
संग सषी सब सहस इक, सत सहस्र मिलि दासि ।
एक एक गुन आगरी, दरस सरस रस रासि ॥३२१॥

---

१. यह ऊपरवाले दोहे का ही दूसरा चरण है, जो भ्रमवश लिपिकर्ता ने इस दोहे में भी डाल दिया ।

बहुत संग परदार मिलि, पति परतीत अडोल ।
रथ अगिनित अरु पालकी, अंभारी चौडोल ॥३२२॥
केसरि कुसम सुगंध रस, चंदन अगर अनंत ।
धूप दीप बहु भोग विधि, कुँवरि हेत मिलि कंत ॥३२३॥
धुज पताक तोरन बने, सीच सुधा रस रंग ।
पंच शब्द मंगल बजे, भेरी ढोल मृदंग ॥३२४॥
चली कुँवर पूजन गवरि, वाजन वाजन लग्ग ।
मुरज, रुंज सहनाइय, वीना ताल तरंग ॥३२५॥

(छंद मोतीदाम)

चली हरि मंदिरि सुंदरि साज । मनो दुज राज तमीतम माँज ॥
सषी सब गावहिं मंगल गीत । धरै जु हृदै पग पुन्य पुनीत ॥३२६॥
कियौ मन ध्यान पहुंचिय जाइ । चढ़ी चित चाइ चवग्गुन चाइ ॥
कियौ जो प्रनामु सबै नत सीस । पिया परसे पग पार वतीस ॥३२७॥
कियौ सब अर्चन पंच प्रकार । प्रसन्निय पिष्षिय गौरि भतार ॥
लसैं विलसैं विहसैं मिलि नारि । अली अलिपंकज प्रीति विचारि ॥३२८॥
निहारहिं नागरि आनन ओर । मनौ लषि लोचन चंद चकोर ॥३२९॥

(सोरठा)

अलि लोइन्न चकोर । चंद सरस अबला बदन ॥
निरषत आनन ओर । पलक नहीं इत उत डुलत ॥३३०॥

(दोहा)

बहुत भाँति सेवा करी, संकर गौरि मनाइ ।
उठि कामिनि करु टेकि के, ललिता चित्त लजाइ ॥३३१॥

(चौपही)

बहुत विधान सिव अर्चन कीनौ । विहँसि गौरि संकर वर दीनौ ॥
बहु फल सिंध्य जोग चित लावहु । दिय वरु सूर सूर वरु पावहु ॥३३२॥
नवल नेह अरु सदा सुहागू । इंदु पूत फल पूरन भागू ॥
जियहुँ जुगल नाह अरु गोरी । जनु रुचि राजत मनमथ जोरी ॥३३३॥

(दोहा)

गवरि नाथ वरु पाइकै, उठी सषी कर जोरि ।
जुवती विश्व सिरोमनी, लाजति कामिनि कोरि ॥३३४॥

(छंद प्रयंगम)

लज्जति कामिनि कोरि किसोरि कुमारिका ।
पढ़ति मैन चटसार मनौ सुकसारिका ॥
नवल नेह नव दुलहिनि सुंदर सोहई ।
मंगल सहज सनेह देष मन मोहई ॥३३५॥

अरुन अधर मृदु हास विलासनि भामिनी ।
यौं छवि घूँघट वोट दमंकति दामिनी ॥
मलिन बसन तन लोह मुंद्र कर अंगुली ।
द्वै कर कंकन तीन सनेह सुमंगली ॥३३६॥

अंबुज नैनि विसालनि अंजन दीजिये ।
चंचल षंजन मीन पलट्टै कीजिये ॥
सुंदर विंदु बनाइ दियौ अलि भाल मैं ।
मानौ राजत हीर कनक के थाल मैं ॥३३७॥

कुंडल लोल कपोल झलक्कत यौं लषैं ।
मनौ चंद्र रथ चक्कत वाहन हैं षचैं ॥
मुत्तिय अधर अमोल तहाँ छवि नथ्थ की ।
मानौ पासि प्रचंड परी मन मथ्थ की ॥३३८॥

उठत उरोज नवीन छीन कटि केहरी ।
नूपुर की झनकार जराऊ जेहरी ॥
कंज तै कोमल चरन अरुन अति वाम के ।
पूरित पंचहु वान तरक्स काम के ॥३३९॥

नव नव तरुनि कदंब सिरोमनि सुंदरी ।
राजति राज कुमारि रूप तरु मंजरी ॥
वंक विलोकनि संक सुनैननि मोहई ।
ता तन की छवि वर्नि कहै कवि को हई ॥३४०॥

(दोहा)

उडल मँडल हिमकर मनौ, सोहति सषियन संग ।
हिय हुलास लज्या दगन, उदित अंग अनंग ॥३४१॥

उत मयंक अंबर उदौ, सुंदरि देवल द्वार ।
उत उडुगन इत सहचरी, होड़ परी तिहिं वार ॥३४२॥
लोचन विमल कटाच्छ वर, दिष्टि गतागत लोल ।
कनक थार मुत्तिय जुगल, मानौ भ्रम्म अमोल ॥३४३॥
वर विरही वनि वाटिका, फिरत सषी गन संग ।
रति डोलति दासी मनौ, अनुचर भयौ अनंग ॥३४४॥
सूर सैनि विथकित भयौ, सोभा निरषि न जाइ ।
यह देषै नव नागरी, दुरि तिहिं ठाउँ समाइ ॥३४५॥
और वधू लज्जा करै, दुरतिहिं घूँघट सोइ ।
यह अद्भुत देष्यौ नहीं, दधि सुत घूँघट होइ ॥३४६॥

(सवैया)

चंद उजियारी प्यारी नेकु न निहारी परै
चंद की कला तै दुति दूनी दरसाति है ॥
ललित लतानि मैं लतासी लगे सुकुँवारि
मालती सी फूलै जब मृदु मुसकाति है ॥
पुहुकर कहै जित देषिये विराजे तित
परम विचित्र चारु चित्र मिलि जात हैं ॥
आवै मन माहिं तब रहै मन ही मैं गड़ि
नैननि विलोकै बाल नैननि समाति है ॥३४७॥

(दोहा)

प्रान नाथ पूरन निरषि, उपज्यौ अति आनंद ।
रवि प्रकास उदित मनौ, कमल कली मकरंद ॥३४८॥
चतुर चतुर चित एक हूं, चतुर नैन इक डीठि ।
सबै धरै न्यारे रहैं, दूती सषी वसीठि ॥३४९॥
गहि जँजीर तोरन चहै, मदन मत्त गजराज ।
सकुचि महावत रोकि लिय, दै अंकुस सिरताज ॥३५०॥
नवल नेह अभिलाष रस, और न जानत कोइ ।
मन मनमथु अरु सारथी, कै जिनि नैननि होइ ॥३५१॥
जदिप लगे दृग अंतरहु, रति पति बान दुसाल ।
सहज भाव छाड़ौ नहीं, परम विजच्छिन बाल ॥३५२॥

उलट चली फिरि धाम कौ, बाजे बजत अनंग ।
चारु ओर चतुरंग दल, दंत जूथ मैमंत ॥३५३॥
मदन मुदित इक चित रही, बचन निवेदनि हेत ।
पंचवान विहवल परौ, देषौ सूर अचेत ॥३५४॥
सूर विना सकुचै कमल, हरषि न करै प्रगास ।
सूर जु सकुच्यौ कमल विनु, यह विरोध आभास ॥३५५॥
अंचल बाउ उपाइ किय, रंभा रंभा नाम ।
मुदित मंत्र गुनु गारुडी, मनौ जगावै काम ॥३५६॥
कहति वचनु अति हेत चित, सुनियै राजकुमार ।
प्रीत रीत कहँ लगि कहौं, नवल वधू व्यौहार ॥३५७॥
पहुकर उर अंतर जरै, वाहिर प्रगट न होइ ।
वधू विरह आवाँ अगिनि, और न जानै कोई ॥३५८॥
जो कछु दाउ उपाउ किय, सिध्यि करौ हम सोइ ।
तबहिं सफल मम सेव है, पानि ग्रहन जब होइ ॥३५९॥
सुदिन सुयंवर अति निकट, वेगि उतारौ जोगु ।
ज्यौं हरदहि चूना लगै, रँग रोचन संजोगु ॥३६०॥
अब मुहिं आइसु दीजियै, रति पति राज कुमार ।
कुँवरि अकेली जाति है, हौं पहुंचौ इहि वार ॥३६१॥
विहँसि सूर आइसु दियौ, करि वहु भाँति निहोर ।
बहुत भाँति कहँ लगि कहौं, यह तनु राख्यौं तोर ॥३६२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावती षंडे
नेत्र दरसनो नाम एकादसमो अध्यायः ॥११॥

(दोहा)

गवरि पूजि फिरि घर चली, रोर परी सब नेर ।
वैरागर पति दलि अषिलु, आवहि प्रात के वेर ॥३६३॥
सुरथ सुभट संख्या नहीं, गज तुरंग नहिं ओर ।
सावधान सब जन चलौ, छत्री गनौ न थोर ॥३६४॥
सुनि मुदिता मन मुदित ह्वै, कहौ कुँवरि सौं जाइ ।
अब जौ मिटौ संदेह सब, दल वैरागर आइ ॥३६५॥

बाजत भेरि मृदंग धुनि, गावत मंगल गीत ।
राज महल पगु धारियौ, करि प्रसन्न सिव प्रीत ॥३६६॥

(चौपही)

राज मंदिर सुंदरि पगु धारी । करि प्रतिच्छि दरसनु पिय प्यारी ॥
आइस नैन नींद नहि आवै । बार बार मन मथ्थ सतावै ॥३६७॥
होत प्रात उग्गित नभ सूरा । नृप दरबार संष वजि तूरा ॥
उतहिं गहिर वाजे निस्साना । मानौ प्रलय मेघ घहराना ॥३६८॥
परी रौरि सब नगर मँझारी । आयौ दलु वैरागर भारी ॥
नगरु लोग सब देषन आयौ । इहि आवनि नृप और न आयौ ॥३६९॥
सूर सैनि आवन सुनि संगी । अति रस रंग रच्यौ नवरंगी ॥
बहुरि बुद्धि मन माह विचारी । चाह जाइ को कहै हमारी ॥३७०॥
जोग भेष अब रहै जु गाता । विजैपाल सुनि पावै बाता ॥
चल्यौ धाइ सनमुष दल आगे । आवत प्रान विनहिं जिहि लागे ॥३७१॥
जोजन एक नगर के पासा । किय सरवर तट सेन निवासा ॥
बैठे मंत्रि सकल रन धीरा । गुनगंभीर राइ रघुवीरा ॥३७२॥
कहहिं कौन विधि चाह कराहीं । कौन दूत पठवहिं पुर माहीं ॥
तबहिं सूर उहित भौ आई । ईस भेष जनु देह बनाई ॥३७३॥
आयौ सभा मध्य जब धाई । तब सब सुभट उठे भहराई ॥
मोहन रूप देषि पहिचान्यौ । सबनि चित्तअचिरजु अधिकान्यौ॥३७४॥
तिहिं छिन निकट मिले जो कोई । सिर धरि रहे चरन गहि दोई ॥
बैठि राइ रघुवीर सुजाना । गुन गंभीर सकल गुनषाना ॥३७५॥
लोचन कौंचि आँसु आनंदा । जनु पयोधि लषि पूरन चंदा ॥
सहस पंच वाजहिं निसाना । लागे सुभट करन वहु दाना ॥३७६॥
पलटि प्रान आये घट माहीं । बार बार बलि हार कराहीं ॥
तबहि सैनबंसी बुलवायौ । घसि केसरि उबटन करवायौ ॥३७७॥
चोवा चंदन तेल फुलेला । कदलि सार कुंकुम रस मेला ॥
करि मंजनु गंगा जल नीरा । दियौ दान हय हाटक हीरा ॥३७८॥
विविधि भाँति ज्यौनारि सँजोई । कहँ विप्र भइ सिध्यि रसोई ॥
भोजन सुभट कियौ मिलि साथा । गुन गंभीर कहै सुनि नाथा ॥३७९॥
कारन कौन परहिं नहि जान्यौ । कौन चतुर विधना पहिचान्यौ ॥
कहाँ मानसरवरि सुधि आवति । कहाँ देव नगरी चंपावति ॥३८०॥

कौन भाँति पहुँचे इहि देसा। हम थकि रहे देषि यह भेसा॥
कुँवर कही यह कथा अपारा। कहत सुनत लागे बड़ि वारा॥३८१॥
विधना सबै समारी नीकी। प्रथमहिं कुसल चाहिये जीकी॥
दुष सुष चल्यौ जातु इहि तेरौ। तिहिं पर मिलन भयौ सब केरौ॥३८२॥
सब दिन चारि लग्न महँ आहीं। अब यह काम ढील कौ नाहीं॥
कीजै जाइ नगर ढिग डेरा। कीजहि साज निमंत्रिनि केरा॥३८३॥
सरवर मध्य परम सुखदाई। उपवन तीर सरस छबि छाई॥
सुनि आयस दल कीन पयाना। भई बंब वाजे निस्साना॥३८४॥

(दोहा)

सहस पंच दुंदुभि बजे, पंच शब्द घन घोर।
मुरज रुंज सहनाइ अव, भेरी संषिनि घोर॥३८५॥

(छंद भुजंगी)

वंब वाजि सोर घन घोर सादं। सब्द मिलि पंच वाजंत नादं॥
संष सहनाइ करताल तूरं। मिलि सब्द आकास पाताल पूरं॥३८६॥
पष्षरे लष्ष तुष्षार तीषे। नृत्य जनु इंद्र अष्षार सीषे॥
वाउ वह वेग मन मौन धावै। इंद्र रथ जान उपमान पावै॥३८७॥
शुभ सावंत सोहंत अच्छे। मनहु नट नाट रन रंग कच्छे॥
दंत दलपत्ति मैमंत सज्जै। उमड़ आषाड नव जलद लज्जै॥३८८॥

(दोहा)

तिहि छिन तुरत पयान किय, चतुर बरन दल संग।
आपु चढ़े आरूढ़ गज, मानौ मुदित अनंग॥३८९॥
सत्त सहस्र हेवर सुदल, गैवर बीस हजार।
दस सहस्र रथ कोटि पय, रवि अलोपि तिहिं बार॥३९०॥
बहुत भार धँसि गसि धरनि, कसमसि कमठ करक्कि।
छूटि सहनि टुट्टिय गहनि, फन फटि फनिग तरक्कि॥३९१॥
सरवर तीर मिलान हुव, जुग जोजन चहुँफेर।
नृप गृह पट्टकुट उच्च अति मानौ मध्यि सुमेर॥३९२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावति षंडे
सेना समागमनोनाम द्वादसमो अध्यायः॥१२॥

स्वयंवर खंड

(दोहा)

सूर सिंह आगम सुन्यौ, चंपावति पति राज ।
सुमति बोलि आइसु दियौ, साजौ आदर साज ॥ १ ॥
बहुत साजु एकत्र हित, आदर अरु मनुहारि ।
एक जीभ बरनन करत, पद्दुकर कवि थकि हारि ॥ २ ॥
बहुत पान पकवानु पट, बहुत अन्न धन साज ।
बहु सुगंध रस रीति करि, जिहि विधि आदर साज ॥३॥
सुमति संग अनुचर चले, ढोवत भार कहाँर ।
अन्न हेत मनु हार कर, जनु गिरि नव तिहि बार ॥४॥
विविधि विविधि विनती करी, सुनिये राजकुमार ।
विजै पाल तुव आगमनु, भये सनाथ तिहि वार ॥५॥
इत गँभीर रघुवीर मिलि, कहत मुदित सुष वैन ।
दीन भाँति रस लीन अति, प्रीत पगाये नैन ॥६॥
सुष मानौ जानी कृपा, सिर धरि लीनी साज ।
अब सोमेस सपच्छ ह्वै, दुहु कुल कलस विराज ॥७॥
कुसल प्रस्न आदर घनौ, प्रीत रीत बहु भाइ ।
बाढ्यौ सुष अति परसपर, आनद वरन समाइ ॥८॥
बहु आदर करि कै विदा, मान्यौ चित करि चाउ ।
दुहुँ दिसि प्रेम प्रकास हुव, पद्दुकर प्रीत सुभाउ ॥६॥

(चौपही)

सब मिलि बैठि सुभट इक साथा । कहत सुनत आँनद गुन गाथा ॥
मन मनमथ जो मनोरथ होई । नव मंगल मानैं सब कोई ॥१०॥
होत प्रात सब साज समोये । सब सुष राति निमिष नहिं सोये ॥
गुन गंभीर राय रघुवीरू । लै सब चले नृपत के तीरू ॥११॥

(छप्पय)

सहस हीर हैवर हजार गैवर सत सज्जिय ।
मानिक मनि मुत्ती रतन राजत रवि लज्जिय ॥

जाति रूप अनरूप वि.विधि विधि विविधि बनाये ।
पाटंबर जरतार ओपि महि मंडल छाये ॥
अभरन अनेक अनगन रुचिर बहुत भाँत आदर करिय ।
सज साज सकल नव नेह रस विजैपाल सनमुष धरिय ॥१२॥

(चौपही)

कहत वैन रघुवीर गँभीरा । जनु गुन बचन परोहित हीरा ॥
सोमेसुर अब भूप कहाये । जौ तुम सुरति आन बुलवाये ॥१३॥
दूरि देस बहु अंतर आही । सामग्री नहिं जाति निवाही ॥
ताते अलप साज कछु आयौ । वैरागर पति नेवति पठायौ ॥१४॥

(दोहा)

कुवर संग दासी सकल, दिये बसन तिनि काज ।
और कछू तुवँ जोग है, सुनियै राजधिराज ॥१५॥
विजय पाल बचनन कहै, सुष आँनद अनुराग ।
सूर सिंह कीनी कृपा, अब हम सत्य सभाग ॥१६॥
आदि राज महिपाल महि, सजन सिरोमन आहि ।
जो कछु पठयौ करि कृपा, क्यौं करि फेरौं ताहि ॥१७॥
बहुत भात सनमान करि, कर धरि दीनहिं पान ।
मुदित सूर सनमुष चले, देवल चतुर सुजान ॥१८॥
कही सकल सुभ बारता, रोम रोम सचुपाइ ।
जब जो काव्य है वरनवौं, सो कवि कहै बनाइ ॥१९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचिते स्वयंवर षंडे नेह निमंत्रनो नाम प्रथमोध्यायः ॥१॥

(वार्ता)

[श्री श्री श्री सूर सैन राजा स्वयंवर सुन के स्थान से चले वैसाष सुदी ५ कौ येक महीना २० रोज मै मानसर पै ज्येष्ठ सुदी ११ कौ पहुचे, फिर अर्द्ध रात्रि के समय अपछरा स्नान करवे आंई और सूर सैन को लेकर उत्तर दिसा ब्रह्मकुंड पर पहुंची, और गांधर्व विवाह कल्पलता के साथ रायत भई । फिर काल पाय रह कर चले और कई महीनौं में चंपावती नगरी में आये और इनकी फौज भी चंपावती मैं पहुँची । येक साल आर कुछ दिन हो गये फिर इनके ठहरने पर स्वयंवर ज्येष्ठ सुदी ५ कौ ठहरौ दूसरी साल मैं ।]

(दोहा)

ज्येष्ठ मास सित पंचमी, कीनी लग्न प्रमान ।
अति निर्मल नव ग्रह बली, थपी गनक गुन जान ॥२०॥
सुभ नच्छत्र सुभ दिन घरी, मंडप छाहन कीन ।
पूजि प्रथम कुल देवता, दान दुजन कहँ दीन ॥२१॥
गीत नाद वादित्र बहु, नव मंगल दरबार ।
बाजत भेरि मृदंग रव, तरुनिनि पत प्रति भार ॥२२॥

(छंद तोटक)

नव मंगल मंडफ छाद दियं । तह थप्पिय कंचन खंभ प्रियं ॥
वर वेदिय विप्र बनाइ सची । मनि मानिक मोतिय चौक रची ॥२३॥
तिहिं मध्यि जड़ौ नव थंम्ह धरौ । मनि कुंकुम मंडित नीर भरौ ॥
नव पल्लव चूत विराजि तहाँ । जिहिं ऊपर दीप उदीप जहाँ ॥२४॥
बहु भाँति वितानिनि छाँह सजी । जिहिं चाहति सूर किरिन्नि लजी ॥
जरतार चँदोवनि भेद नवो । जनु चंद अनंत उदोत भवो ॥२५॥
जलजातन झालर ओप मई । रजनी उडु मंडल सोम लई ॥
कदली दल पहुँकर रंग भरे । कलपद्रुम अंगनि आनि धरे ॥२६॥
बहु तोरनि वंदनवार वनी । अमरावति तै अति सोभ घनी ॥
वर वानिय विप्रनि वेद भनैं । जह वंदिय सूर जहाँ वरनै ॥२७॥
बहु वाजत भेरि मृदंग जहीं । सहनाइय दुंदुभि ढोल तहीं ॥
तह गावहिं गीत अनंद भरी । नव कामिनि मांग सुहाग भरी ॥२८॥
नवला नव जोबन रूप धरी । जनु अच्छरि इंद्र पुरी उतरी ॥
दृग अंजन षंजन मीन लजे । अबला नव सात सिंगार सजे ॥२९॥
मृदु हास विलासनि चित्त हरैं । मधि पंकज दाड़िम बीज भरैं ॥
छवि रूप कहाँ लगि ओप गनौं । बहु आनद मंद कहा बरनौं ॥३०॥

(दोहा)

सुदिनु सुयंबर थापि कै, नृपति बुलौवा दीन ॥
मुदित मोद मंडफ निकट, विविधि विछावन कीन ॥३१॥
कनक रतन विधि विधि बसन, मंडित पंथ वजार ।
घर घर धरि कंचन कलस, घर घर वंदनवार ॥३२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे मंडफ छादनो नाम द्वितीयो अध्यायः ॥२॥

(दोहा)

उत अनेक नृप आगमनु, विजय पाल दरबार ।
इत सहचरि सज्जन लगीं, सुंदरि अंग सिंगार ।।३३।।
नष सिष कौ बरननु विमल, कियौ कवन बहु भाइ ।
अलप बुद्धि अनुमान करि, पुहुकर कहत बनाइ ।।३४।।

(सवैया)

मज्जनु समै अंगु अंग को निहारी छबि ।
सोभा के समूह मोपै बरनै न जात हैं ।।
केसरि कनक चंपा दामिनि दिया की जोति ।
देषत मलीन होति ऐसे गोरे गात हैं ।।
तन की सुबास उनमत्त अलि आस पास
बदन प्रकार तै चकोर ललच्यात हैं ।
पुहुकर कहै नर क्यौं न बसि हौंहि जाके
नैन के निहारे मुनि सिद्धऊ सिहात हैं ।।३५।।

पद नष निरमल विराजमान मेरे जान
रति पति आये नव आरती बनाई है ।
कैधौ पंच बान कामिनी कमानि सोभियत
आगम समय वीर बहूँटी बनाई है ।।
जंबूनद जोर मानौ मानिक जराइ जरे
उडुगन उदित अनेक छवि छाई है ।
पुहुकर कहै परवीन प्रिया प्रान प्यारी
विनु तप ऐसी कौने नारि कहूँ पाई है ।।३६।।

चरन कमल वर अरुन वरन तल
सीसी सम रंगु डोलै आभा एड़ी लाल की ।
पुहुकर कहै चित रही चुभि चारु मेरै
वरनी न जाति है चटक मंद चाल की ।।
पारावत हारे मद मैगल विसारि डारे
उपमा न आवै मन मुदित मराल की ।
जावक रचित पद परम विचित्र प्यारी
वदन को सोभा पद पूरे पद बाल की ? ।।३७।।

नूपुर झनक्क रव घूघुर घनक्क घोर
घाइल करि प्रान राखे ? पाइल्ल जु पाइ की ।
पीवै तै पराग उनमत्त किलकारी मानौ
पंकज के मध्यि अलि सावक सुभाइ की ॥
कंचन रचित मनि षचित जलज हीर
रसना न आवै वह बनक बनाइ की ।
बाल के विमल वपु काम के चढ़न काजै
सिढ़ी सी बनाइ राषी जेहरी जराइ की ॥१८॥

कंचन के षंभ रंभ उपमा कहत कवि
मेरे जान उभय सुभट नृप काम के ।
कहै कवि पुहुकर करभ करेलै लागै
एतौ अति कोमल हैं मनि अभिराम के ॥
साचे सौं सुधार मध्यि माषन की कीनै विधि
केसरि के गहै हैं निकट कटि छाम के ।
चितवित धूत किधौं दूत सम आगम के
प्रान निध ? जानि किधौं जंघा जुग बाम के ॥२१॥

भृंगी नहिं भृंग भँवर सिंघिनी विलोकै छवि
उपमा कहत कवि कौन गुन लेषिये ।
नैननि न आवै अरु मन मैं न आवै लंक
चितहूँ न आवै जातै चित्र अवरेषिये ॥
विरही कौ वल विरहिनी कौ विलासु हासु
दुषित के जीव ही तैं छीनता विसेषिये ।
जोग की जुगति जप जोतिक के ग्यान जोई
पाइये जु नैन[1] तब तेरी कटि देषिये ॥२०॥

मदन मृदंग किधौं माधुरी सुगंध धुनि
पावस के पिक सिषि सबद सुहावनै ।
कैधौं वज पाठक वदन दुज सभा मैन
मृग मोहवे कौं घटा कारि मन भावनै ॥

१—इस प्रकार का कोई अंश छूटा हुआ है ।

कहै कवि पुहुकर पूरन सिंगार सभा
भनत है वंदी जन जोवन के आवनै।
अभरन और अंग अंग छबि और और
किंकिनी न होंहि वीय प्रेम के वँधावनै ॥४१॥

मति गज उभय उरोजनि की आड़ किधौं
सोभा की अवधि सिंवा सब सुषदैनी है।
तीनि लोक पैये के विधना तीनि रेष षांची
साँची छवि पुहुकर मनुहरि लेनी है॥
किधौं मनमथ जू जनेउ दियौ जोबन कौं
प्रगटे त्रिगुन किधौं तरल त्रिबेनी है।
चारु चतुराई तरुनाई रूप अधिकाई
त्रिवली सरस किधौं तरल त्रिबैनी है[1] ॥४२॥

अमल कमल कुच कमल के नाल किधौं
विमल विराजमान बैनी कैसी झाँई है।
चक्रवाक चुंच तै छुटी सिवाल मंजरी कि
नागिनि निकसि नाभि कूप ही तै आई है॥
जमुना की धार तम धारि किरवान धरि
किधौं अलि सावक की पंगति सुहाई है।
पहुकर कहै रोम राजी यौं विराजी आइ
वरनी न जाइ कवि उपमा न पाई है ॥४३॥

रासि रस रूप किधौं दोई तन भूमि भूप
उभय अनूप फल सुरसरि हार के।
कंचन के कुंभ के कठोर करि कुंभ कैधौं
संभु है स्वयंभु है जु कोडवार पार के॥
काम के गुरज गढ़ जोवन धुरज आछे
उन्नत उरज राखे राषन सिंगार के।
श्रीफल सबेल ऐसे नारँग जँभीर जैसे
जुगल कुच सुफल फल कनक की डार के ॥४४॥

१—यह पंक्ति कुछ भिन्न होनी चाहिए।

घुपरि चुनाई चोली सेतश्री साफ छबि
छाजत कवीन मनु उकति कौं धायो है।
मेरे जान हैम गिरि सिषिरि उतंग विधि
ता पर तुषार पूरि पातरौ सो छायो है ॥
झीने जल जलज कमल की कली सी मानौ
अमल अनूप रूप रतनु लजायो है।
महा मनि छटा पट अमित बिराजमान
कींधौ पूजि पट जुग ईसनि चढ़ायौ है ॥४५॥

नगन की जोति उर लसै लर मोतिनि की
चकचौंधि होति मनि गन गुन जाल जू।
कैधौ मषतूल फूल झूलति हिंडोरा मानौ
सिषिरि सुमेर बीच वारिधि को बाल जू ॥
कैधौ नवग्रह संक भिलि संकर सहाइ हेत
समर समर काज आये तिहि काल जू।
पहुकर कहै पीय प्रानति परम मोद
रीझि तानि हारे छबि रसिक रसाल जू ॥४६॥

कोकिला कपोत कीर कोकिल कलप कल
माधुरी मधुर धुनि सुनत सुहावनी।
कैंधौ सुरवीन वीन वासुरी विसाल रस
रस अनुराग रासि जगत जिवावनी ॥
पहुकर कहै पीक पाननि झलक ग्रीवँ
सोभा की अवधि सिवाँ पिय[1] मन भावनी।
रति ऐसी रंभा ऐसी रूप उरवसी जैसी
देषै उर वसै दुति दामिन लजावनी ॥४७॥

कंठ सिरी जाल उर कंठ कंठ माल तैसी
मनि बाल लाल (भाल ?) विमल विसेषियै।
कहै कवि पुहकर छूटी लर मोतिनि की
पोतिहू को छरा अपछरा सम लेषियै ॥

१—सिँवा पिय।

जीतिहै त्रिलोक त्रिया त्रिगुन विराजमान
सत रज तामस परम छबि पेषियै।
अभरन अंग जनु तीरथ प्रसिद्ध जग
सब सुषदैनी की त्रिवैनी तन देषियै ॥४८॥

कमल के नाल किधौं जुगल मृनाल भुज
किधौ विवि डार तरु कंचन सुहाई है।
साँची छबि साँची विधि साँचे सौं सुढारि कीनी
कैंधौ करि कुंदन कुदेरे काम भाई है॥
अंगद अनूप ढाड़ कंकनिन चौप चाड़
चारि चारि चूरी चारु करन चढाई है।
गरुव सिंगार गज मोतनि के गजरन
अजर अमर नारि निरषि लजाई है॥४९॥

कोमल किसल करपल्लव विराजै वर
अमल अनूप नष पोषक हैं प्रान के।
कहै कवि पहुकर सान दै सँवारि राषे
पेषियै प्रतिच्छि पंचवांन पंचवान के॥
नील सित पीत लाल मुद्रिका जटित मन
हरत रहत चित चतुर सुजान के।
कर सौ गहै जु कर कौन बड़भाग नर
जाकै फल पूरे जप तप अरु दान के॥५०॥

चाषौ हौं सुहाग कौ कि भाग अनुराग कौ हैं
हिय कौं हुलास कैधौं पिय कौ षिलौना है।
कैधौ कवि पुहुकर कंत के रिझाइवे कौ
सौतिनि सताइवे कौ कीनौ कछु टौना है॥
चातुरी कौ भाउ किधौ दाउ प्रेम पासि कौ है
डीठिहू की डीठि कैधौं चिबुक डिठौना है॥५१॥

अधर अनूप विय विद्रुम बँधूप विंव
मेरे जान चंद्र षंड दोऊ लै मिलाये हैं।
ऊष ते पऊष ते मऊष तैं हैं मीठे अति
सरस रसाल गुनि गीतन मैं गाये हैं॥

सधर सुरंग रंग श्रवन सुधा के रस
मोहन मधुर मूरि जीवनि उपाये हैं।
पुहुकर कहै प्रेम पाउ पिय जीय प्रान
विमल विचार वर विधना बनाये हैं ॥२२॥

अमल अदोस मानौ प्रात कन वोस छबि
वेसरि कौ मोती कवि उपमा कहतु हैं।
मेरे जान जलसुत इंमृत के हेतु आइ
अंतरच्छ तपु करि चाषन चहतु हैं॥
किधौं रंग भूम पर नटवा करतु कला
कानन के गुनु लागि त्रिगुन गहतु हैं।
अरुन अधर आभा कज्जल कटाच्छ मानौ
विहसैं दसन दुति ऊजरौ रहतु हैं ॥२३॥

(दोहा)

पुहुकर मुकता पुन्य फल, बरनै कौन प्रकार।
अधर पयोधर वर सरस, इत बेसर उत हार ॥२४॥

(सवैया)

मुष मृदु हास छबि बरनी न जाति
जानतु है जोई जाकै रही गड़ि मन है।
दामिनि दमकि दुति दीपक उज्यारी जोति
दाड़िम के बीज वर उपमा दसन है॥
हीरा से दसन रंग वीरा सौं बनायो विधि
काहि सरवर कहौं कौन ऐसी धन है।
कौन को है ऐसो जपु कौने कीनौ एतो तपु
ऐसी नीकी नारि जाके सोहति सदन है ॥२५॥

कोमल कपोल अति अमल अलोम गोरे
विधना सुधारे मिल कंचन सुधा रसी।
पल मनि लालता तैं कुंडिल झलक जल
बरनी न जात छबि अगम अपारसी॥

दुलही नवलता की पूरन तपस्या जाकी
पुहुकर सेई जिनि वेनी औ बनारसी।
मेरे जान सूर उवै उरज विराजमान
कैधौ हैं रतन सत नाक कैसी आरसी ॥२६॥

मोहे जल मीन मृग सावक अधीन भये
चंचल विसालनी के नैन नैन त्रीय के।
कुटिल कटाछ वान भाल[1] ते विसेषियतु
हितु करि हरहिं[2] हरन हार हीय के॥
अंजन के दीये दृग षंजन लजानैं वन
कंजन समान मन रंजन हैं पीय के।
पहुकर कहै लोल लोचन ललित लाज
प्रेम रस पीवनि कै जीवनि हैं जीय के ॥२७॥

वरुनी विसाल भृंग भृगुटी कुटिल वंक
तीखी तिरछौंही डीठि काम किरवाँन के।
कहै कवि पुहुकर मुनि मन मोहिबे कौं
सान दै सँवारे विध मदन के वान के॥
दृग मृग कंध मानौ मोहिनी को जोरौ जुवा
चुंचि विचारि चक्र चंद रथ जान के।
होड़ सी परति छबि षोड़सी के अंग अंग
अंगना अमर धन मैटनि गुमान के ॥२८॥

कंचन को आड़ भाल टीका जग जोति जाल
मोती मनि हीरा लाल बनक बनाइ के।
मेरे जान राका ससि उदित प्रताप पूरे
बैठौ है सिंहासन सभा मै चित चाइ के॥
तरल तरौना दुहूं श्रवन विराज मान
चंद्र रथ चक्र चारु सोभित सुभाइ के।
पुहुकर प्रान पति रीझि रस वस भये
रोम रोम रचि रंग संग सचुपाइ के ॥२९॥

---

१. पाल २. हरैं ३. चक्र।

जोबन जलधि मैं तरंग छबि रूप जाल
विलषि बिलोके जीउ उदोइ रहतु है।
अधर पयूष धर लोचन कुरंग वर,
डहडही छबि देषे डाहन मरतु है॥
पुहुकर मुकता के गन मानौ उडुगन
राकापति जामिनि मनु भरम धरतु है।
षोडस सिंगार चाहि षोडस कला सौ ससि
षोडसी के आनन सौ होड़सी वदतु है॥६०॥

काहू कौं टारौ अरु नाह कौं उगिलि डारौ
बाट परी येतौ बोझ जिय मैं धरतु है।
कहा करौं चंद्रमुषी कहत कवि कोऊ
ताहि के सुनै तै मनु धोषौ सौं परतु है॥
पहुकर पहिले तौ सदन संम्हारियतु
झूठी पैज पालिवे कौं काहे कौ अरतु है।
मानतु न हदि ससि वदन हुँ पूछि देषि
प्यारी के वदन सौ तूं वदन करतु है॥६१॥

स्याम कचपाटी मैन मंडित फुलेल तेल
सीस फूल छबि तहाँ वरनी न जाति है।
मानहु फनिंद मनि दीपत उदोत मनि
किधौ भरीं दीवटि बनाई कहूं राति है॥
कैधौं कारी घटा है पावस प्रचंड मानौ
मारतंड किरनि अरुन उदै भाति है।
पहुकर कहतु चतुर चित चूड़ामनि
चाहि चाहि रति अति ? मैनका लजाति है॥६२॥

वंदन सौ माँग भरि मोतिनि सवाँरी सरि
मेरे मन आई कछु उकति सुभाति है।
पावस उमड़ घन घोर मानौ कारी घटा
ता मधि विराजै वरावगनि की पाँति है॥
जमुना बिदारि किंधौ सुरसरि धारि वही
स्याम सिर सोभित नच्छत्र माल कान्ति है।

पूरन सुहाग भाग नवो नवो अनुरागु
सौतिनि कौ सालु उर पिय मन राति है ॥६३॥

कारी सटकारी लट लाल गुन गूँथि बेनी
मालती के फूल मेलि सषिन बनाई है।
कहैं कवि पुहुकर उपमा न आवै मन
मेरे जान त्रिविधि त्रिवेनी छबि छाई है॥
कंचन के षंम्ह तन चढ़हिं भुजंग मानौ
कौन कवि कहै काम एती चतुराई है।
अम्बर तै उतरी कै चित्र कैसी पुतरी है
अमर की नारि अमरावति तै आई है॥६४॥

पाटंबर पीत पट लहँगा ललित कटि
डोरी कसि गाँठि बाँधि विविध बनाई है।
सौधे संग पार्तिगी सारी हित की हरनिहारी
पहिरी है गोरे अंग चूनरी चुनाई है॥
मेरे जान प्रगट है इंद्र वधू इंदुमुषी
रीझे वर नैन सैन आगम जनाई है।
पुहुकर कहै और उपमा कहाँ ला कहौं
जाकी छबि देवै अपछरी छबि पाई है॥६५॥

(दोहा)

नषसिष की सोभा निरषि, थकित भये मुनि नैन।
सुर नर नाग नरिंद मुनि, अँग अँग उपज्यौ मैन॥६६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहंकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे
नषसिष वर्ननो नाम तृतीयो अध्यायः ॥३॥

(दोहा)

बाजत नांद मृदंग धुनि, दुंदुभि ढोल अनंत।
आवत भूष हुलास हित, रूपवंत गुनवंत॥६७॥

पहुमि पाल परताप बल, दल पति दल अधिकार।
दान षड्ग निर्मल नवल, पुहुकर परम उदार॥६८॥

विविधि भाँति भूषन बसन, सुष सुगंधु बहु भाइ ।
भूप सुयंबर हेत लगि, आये चित धरि चाइ ॥६९॥

(छंद पद्धरी)

चित चाहि चौप आवहिं त भूप । मन मुदित काम अरु कामरूप ॥
मनि धीर वीर बहु बल अपार । मन रूप रास उदित उदार ॥७०॥
गजपति गह्वव असपत्ति ईस । छितपाल छाजि छबि छत्र सीस ॥
दुति कनक दंड चामर विराज । सुर सभा मनौ सुरलोक आज ॥७१॥
मृदुहास मंडि मुषि भरि तमोल । झलकंत करन कुंडल विलोल ॥
अभरन अनंग मनि हीर लाल । राजत्ति रुचिर उर मुत्ति माल ॥७२॥
बहुविधि सुगंध बहु गौर गात । चातुरी चवहिं मुसक्यात बात ॥
तिहिं मध्यि मध्यि नाइक समान । प्रगट्यौ पहुँमि जनु पंचवान ॥७३॥
सौमेस बंस नंदन सौं सूर । षोडस कलानि दुजराज पूर ॥
राजाधिराज वैरागरेस । जानहिं जगंत्रु पहुमी नरेस ॥७४॥
बैठीयौ आन आनंद भीन । जनु कोटि सूर उद्दोत कीन ॥
बहुराज पुत्र राजत्त संग । अति अमल रूप सागर तरंग ॥७५॥
इल मुदित उदित मंगल अपार । बहु गीत नाद वादित्र वार ॥
चारन्न विप्र वंदीन भीर । बहु भनहिं वेद धुनिवंत धीर ॥७६॥
मंडीय सभा मंडफ बिनोद । नर नारि सकल आनंद मोद ॥
सत सहस लच्छि उद्दित मसाल । कप्पूर अगर वाती विसाल ॥७७॥
तोरन पताक वंदननि बार । जग मत्त मनौ जामिनिय तार ॥
कौतिक विनोद मन हिय हुलास । देषहिं विवाँन वर सुर अकास ॥७८॥
हरषंत्त हेरि हिय हरत सूर । वरषंत्त देव मन फूल फूल ॥
अप्छरि उछाह गंधप्प गीत । धन धन्य जग्गँ पुहमी पुनीत ॥७९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे
सभा संचरन वर्ननो नाम चतुर्थमो अध्यायः ॥ ४ ॥

(दोहा)

कुल कुलीन गुर पूजि कुल, परम गुरू गुनवंत ।
गनक पूछि सुभ छिन समय, साधे सिध्य अनंत ॥८०॥
कहत वचन आनंद मय, पुष्पावति पिय पास ।
सकल नृपति आये सभा, अति हित हिये हुलास ॥८१॥

सुभ नच्छत्र सुभ दिन घरी, अति सुभ समय सुभाइ ।
कुँवरिहिं आइस दीजियै, मंडफ चलैं लिवाइ ॥८२॥
प्रात लग्न श्री पंचमी, पानिग्रहन दिन जोइ ।
ताते अवसि विचारियै, जु आजु स्वयंवर होइ ॥८३॥
पहुपावति अग्याँ दई, मदन मुदित चित चाइ ।
कुँवरि लेउ लिवाइ संग, जो गुर अग्याँ आइ ॥८४॥
सुनि आइस सहचरि सबै, उठीं कुँवरि कर जोरि ।
मानौ कन्या देव की, लषि लाजति रति कोरि ॥८५॥
दुज कर गडुवा नीर कौ, सुंदरि कर जैमाल ।
संग सकल सहचारिका, सदा सुहागिनि बाल ॥८६॥
गनपति गवरि पुजाइ कै, विहँसि धरौ पग मग्ग ।
जुवति गीत आरंभु किय, बाजे बाजन लग्ग ॥८७॥

(छंद तोटक)

जयमाल गुलाल बनाइ गुही । घसि केसरि कुंकुम मंडि छुही ॥
मुकता मनि हार हिरन्य भरी । बहु भाँतनि चित्र विचित्र करी ॥८८॥
करि दच्छिन लच्छि समान किये । जुग नैन विसालनि लाज लिये ॥
गुरन्नित अग्र असीस पढ़ै । मन ही मन आँनंद ओप बढ़ै ॥८९॥
अनुचारित नारि नवीन सषी । कमला सँग ज्यौं सब सिध्यि लषी ॥
नवला नव आगम ओप भई । रजनीपति पूरन सोभ लई ॥९०॥
गुरु रूप अनूपक वानि सजी । लच्छिमी जनु छीर समुद्र लजी[1] ॥
नर नारि निहारहिं नेह नये । दुतिया जिमि इंदु उदोत भये ॥९१॥
पहुमी मन मंडित चित्त हरै । गज गामिनि भामिनि पाइ धरै ॥
प्रतिबिंब विसेषि तरंग भरे । विधना जल जात विछौन करे ॥९२॥
मुदितादि सषी सब संग लगीं । निजु नेम मनौ रस प्रेम पगीं ॥
नवला सुकुवाँरि सुनारि सषी । जनु अंगन कंचन बेलि लषी ॥९३॥
मुष जोति अनंतर घूँघट के । सबके मन नैन जहाँ अटके ॥
इक देषत ही विसम्हार भये । सुधि बुद्धि विधान विसारि दये ॥९४॥
इक पान विरी वर हस्थ रही । भ्रमि भूमि चुनौती दंत गही ॥
इक चाहत चित्त समान रहे । इक बैन विसेषि बिचारि कहे ॥९५॥

१—मथी ।

सब भूपन के मन आस बढ़ी। सरिता जनु प्रेम तरंग चढ़ी ॥
फिरि हेरि सभा दुहुँ ओर सिरे। जनु अंगनि चक्र इलात फिरे ॥९६॥
छबि रूप कहाँ लग ओप गनौं। सँग डोलति चंद चिराक मनौं ॥
जिहिं भूपहिं चाहि पमुक्कि चलै। मुषु होहिं मलीन तजंतु वलै ॥९७॥
जिंहि की ढिग आवहि भाइ भरी। सोइ मानतु जीवनि एक घरी ॥
इहिं भाति निहारि विचारि चली। जनु सूर विलोकति कौंल कली ॥९८॥

(दोहा)

मेलि माल पाइनि परी, मन क्रम वच रस रास।
कवि कहँ लगि बरननु करै, भई लच्छि जिहि दास ॥९९॥
चतुर नैन मिलि एक हुव, दुहुँ मन प्रेम प्रकास।
मानौ दुहुँ तन एक मन, पहुकर परम हुलास ॥१००॥
ललित बाहु कोमल सुकर, हरषि हेरि तिहिं काल।
जय जय मंगल शब्द हुव, सूर कंठ जयमाल ॥१०१॥
भेरी ढोल मृदंग धुनि, बाजे गहिर निसान।
उदित मुदित नव नागरी, कियौ मधुर धुनि गान ॥१०२॥
रति रतिपति नृप घरनि मिलि, नरनारी सचुपाइ।
जोरी जुगल विचारि करि, मानत मुदित सुभाइ ॥१०३॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वयंवर षंडे उत्साह जयमाल मेलन वर्ननो नाम पंचमो अध्यायः ॥५॥

(छप्पय)

जबहिं स्वयंवर वरिग सूर सुकँवारि नारि नर।
ओप चोप चित चढिग वढिग अभिलाष विविधि वर ॥
विजय सोभ श्रीवदन सदन कमला जनु आइय।
राज रिद्धि थिरु थप्पि सिद्धि साधन फल पाइय ॥
जय जय प्रकास तिहुँ लोक हुव, मन प्रसन्न सुर नाग नर।
अविचलि विचारि जोरी जुगल, सु जव लगि रवि ससि गंगधर ॥१०४॥

(दोहा)

सूर सिंह आनंद भय, मुदित उदित अति रूप।
मानौ जय जय माल करि, जीत लिये सब भूप ॥१०५॥
चढ्यौ मत्त मातंग पर, प्रगट पाइ नव प्रान।
वरषत कनक अनंत गन, प्रफुलित चल्यौ मिलान ॥१०६॥

(चौपही)

चल्यौ मिलान सूर सक बंधी । मदन रूप मनमथ सुक फंधी ॥
बरषत कनक हरष मन कीनै । दर्बि अनंत भिच्छुकनि दीनै ॥१०७॥

निरषत रूप वृद्ध जुव वारे । इक टक नैन लगहि नहि तारे ॥
सरवर करे काम छबि कोरी । रचि बिरंचि रति मनमथ जोरी ॥१०८॥

हरषहिं हँसहि संग के संगी । नाइक मानि नवल नव रंगी ॥
और भूप सब गये मिलाना । परम मलीन बदन कुम्हलाना ॥१०९॥

फिरि सुंदरि मंदिर महँ आई । जहाँ मुदित पद्मावति माई ॥
प्रोहित सँग सषी सुषदाई । सलज नैन नहिं देहि दिषाई ॥११०॥

ललित लाज उपजी जिहि काला । नीचे नयन किये बरवाला ॥
लोइनि लाज मैन मन माहीं । ऊँची डीठि बिलोकति नाहीं ॥१११॥

वचनन चवै उतर नहिं भाषै । जनु पति रूप हृदै भरि राषै ॥
बिडरौ बिरह मोद मन आयौ । जननी निरष परम सुष पायौ ॥११२॥

बहु बिधि करहिं निछावरि रानी । भाग सुहाग प्रीय पिय जानी ॥
यह जोरी पचि रची बिधाता । गवर पती संकर बरदाता ॥११३॥
किय जागरन रैन सब रानी । गावत गीत मधुर धुनि वानी ॥
बाजहिं झाँझ पषावज तूरा । पायौ मान परम सुष पूरा ॥११४॥
नेगचार पूजहिं कुल देवा । संकर गौरि करहिं मिलि सेवा ॥
नृत्यहिं जुवति जोति उँजियारी । हरषहिं हरष सकल वरनारी ॥११५॥
सुंदरि सकुचि अवासहिं आई । उद्धत संग सषी सुषदाई ॥
मुदिता आदि सकल सहचारी । दुष सुष बिरह बड़ावन हारी ॥११६॥
तिजि जगरन जुवति बिधि ठानी । वरनत प्रेम रसाल कहानी ॥
रुचिर साजु दुति दीप उज्यारी । उज्जल वसन रची नव नारी ॥११७॥

करहिं बिलास हास वर बाला । बोलहिं बोल बिनोद रसाला ॥
पौढ़ि लेहु अलि आजु अकेली । कालि होहु रति नाइक चेली ॥११८॥

जिहिं लगि बिरह बिथा सब षोई । सो पति अंक कालि भरि सोई ॥
सुंदरि संक सकुच नहिं बोले । मंद बात वारिज जिमि डोले ॥११९॥
बिसरि बिलास हास तिहि पासा । लज्जित लाज उपजी जिय त्रासा ॥
चिंता मिटी नींद निसि आई । तब तिहिं सभै परम छबि छाई ॥१२०॥

(दोहा)

पुहुकर संका सकुच सुष, मदन भयौ इक ठौर ।
बहु छबि कवि वरननु कियौ, यह छबि की छबि और ॥१२१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे रैन जागरन वर्ननो नाम षष्टमो अध्याय: ॥६॥

(चौपही)

होत प्रात उग्गित जग भाना । बाजे गहिर गरुव निस्साना ॥
सूर पास षट दरसन आये । चारन विप्र वंदिजन धाये ॥१२२॥
मेघ अपंड धार जिमि दाना । सरिता सरल प्रवाह समाना ॥
सकल सुभट आँनद अनुरागे । भूषन विविधि बनावहिं आगे ॥१२३॥
राग रीति रस रंग रसाला । मानहि मुदित मोद भुवपाला ॥
रूप रास सब राज कुमारा । आँनद जल लिमगन तिहिं वारा ॥१२४॥

(दोहा)

विजयपाल नृप धाम तैं, आवहिं सरस सुसार ।
अन्न पान पकवान रस, अति अगनित अधिकार ॥१२५॥
नहि प्रवाँन संष्या तुला, सामग्री बहु भाइ ।
आवति विधि ज्यौनारि त्रिय, मोपै वरनि न जाइ ॥१२६॥

(चौपही)

सब दिनु केलि कला महँ वीत्यौ । कंचन दानु दियौ जग जीत्यौ ॥
नृत्य गीत आनंद बधाई । अष्ट सिध्यि दुहुँ मंडफ छाई ॥१२७॥
संध्या समै लग्न नियरानी । नवग्रह चलीं नवल निर्वानी ॥
जे त्रिय सदा सुहागिल जानी । पठई तेलु चढ़ावन रानी ॥१२८॥
दूलह तरुन बाल नव नागर । सूरज तेज रूप गुन आगर ॥
दिजु वर गुन गंभीर प्रधाना । नेग रीति सब करहिं प्रवाना ॥१२९॥
तब सनेह मंगली मिलाई । प्रोहित मोतिन चौक पुराई ॥
बोली सकल सुहागिल भामिनि । बंदन हरद कियौ मिलि कामिनि ॥१३०॥
गंगा जलु अस्नानु करावा । अगिनित दानु प्रोहितनि पावा ॥
तब दुकूल अँग अँग पहिराये । विविध विविधि जरतार बनाये ॥१३१॥

(दोहा)

कनक मौर रतनन जरित, धरौ गरुव गुर सीस।
चहुँ दिसि जै जै शब्द हुव, दुजवर पढ़ैँ असीस ॥१३२॥
रुकमिनि नंदन रूप सम, मकर केत अवतार।
दिन दुलहन दूलह नवल, रवि छबि तैं उजियार ॥१३३॥
बाजे गह्विर निसान घन, साजै बहु विधि साज।
राजन राजकुमार बहु, चढ़े राज गज बाज ॥१३४॥

(छंद मोतीदाम)

चढ़े गजराज विराजत राज। मनौ सुरनाइक देव समाज ॥
जरौ नग हीर महामनि मौर। चमू चतुरंग ढरै सिर चौर ॥१३५॥
जजीरन जोरु चलै हलि नाग। मनौ नव मेघ मिले अनुराग ॥
फबै छबि मंडित कुंम्ह सिंदूर। उयौ उदयाचल ऊपर सूर ॥१३६॥
बढ़ी छबि कानन कुंडल लोल। बनौ कर कज्जल नैन अमोल ॥
बिराजति केसरि षोरि जु भाल। लसै उर ऊपर मौतिय माल ॥१३७॥
भरे सुष पाननि आननि जोति। मनौ रसना वलिय[1] कनि मोति ॥
धरी पनरथ्थ भिरत्त जु अंस। वन्यौ अति रूप महावर वंस ॥१३८॥
सबै सँग राजत राज कुमार। भये अमरापुर कौतिक हार ॥
हरिक्किय आदिक तेज तुरंग। लिषे जनु चित्र महा रस रंग ॥१३९॥
जँजीरनि जीन निरूप रकेब। जलज्जनि जोति जलाजल जेब ॥
महामनि मैगल ज्यौं पग पौन। लषै लषि दामिनि षंजन कौन ॥१४०॥
वरैं तहँ लच्छिन लच्छ मसाल। उठै अति आतसबाजुव जाल ॥
छुटै हथफूल हवाइनि गुंज। दुरौ दुति इंदु मती तम पुंज ॥१४१॥
बजैं तहँ पंच हजार निसान। मनौ भरि भादव मेघ समान ॥
निहारत नैन सबै नरनारि। करौ तन प्रान प्रिया बलिहारि ॥१४२॥
चढ़ी वर सुंदरि जाइ अवास। लसै जनु अच्छरि आइ प्रवास ॥
वरष्षत कंचनु मुत्तिय धार। भये मन मोहित कौतिक हार ॥१४३॥
भनै वर वंदिय चारन चारु। सकै नहिं सेस सँभारित भारु ॥
फिरै जु चहूँ दिसि नेरि मझार। पहुँच्चिय दूलह देव दुवार ॥१४४॥

१—दसना वलिय (दस नाव लियं)

(छंद प्रयंगम)

दूलह देव दुवार फिरे पहुचाइ कै।
रूप निहारन हार वली वलि जाइकै॥
हास विलास विलोकनि वंक सुभाइ कै।
वारति जीवनि प्रान मनो सचुपाइ कै॥१४५॥

जोबन राज सरूप अनूप सराहिये।
सूरज तेज प्रकास मनो भव आहिये॥
थकित भये नरनार निहारत रूप कै।
अँग अँग बढ़ौ अनंग बिजैपति भूप कै॥१४६॥

(दोहा)

पुहुपावति परछन करत, नवल नारि बहु संग।
सुत सनेह नृप घरनि मिलि, औरनि अंगन अंग॥१४७॥
सुता पलटि सुत पाइयाँ, संकर कृपा सुभाइ।
लेषि लेहि जीवनि सफल, देषि रूप बलि जाइ॥१४८॥

(चौपही)

सूर कुँवर वर विप्र हँकारे। अर्घ सहित मंदिर पगु धारे॥
प्रथम पूजि गनपति कुल देवा। जिहि विधि विप्र करावहिं सेवा॥१४९॥
नेग चार कुल रीति अचारा। जिहि विधि पुहमिपाल व्यौहारा॥
मंगल विमल जुवति जन गाये। वर कन्या वेदी पर आये॥१५०॥
बजे मृदंग भेरि सहनाई। दासन बहुत निछावरि पाई॥
अग्नि प्रतिच्छ धरी तहँ आनी। भनै विप्र बेदनि धुनि वानी॥१५१॥
चार वेद पहुमी जे आना। तिनि महँ साम सरस कर जाना॥
जुजरबेद ऋगुबेद अपारा। होहि अथर्वन धुनि झनकारा॥१५२॥
धोती पीत पीत उपरैना। निरष रूप सचुपावत नैना॥
पहिरि पीत पट्ट सुंदरि सोहै। सरवर त्रिया तिहूँ पुर को है॥१५३॥
कंन्या दान सँकल्प सुकाजा। जुवति संग पगु धारे राजा॥
नृप कर कुस रानी कर झारी। भनहिं विप्र ब्रह्मा अवतारी॥१५४॥
जब संकल्प कियौ भुवपाला। विलषि वदन विह्वल वर बाला॥
करुना प्रगट भई तिहिं काला। मोचतु जल जुग नैन विसाला॥१५५॥

ले उसाँस बोलत नृप बैना। भरे वारि वर वारिज नैना॥
संपति सुता न संचति माहीं। परवस परी कछू वस नाहीं॥१५६॥
द्वादस बरष लाड लडवाई। सो तनया अब भई पराई॥
पुत्री पुत सब बातन ऊना। होहिं भँडार सदन दोउ सूना॥१५७॥

(दोहा)

इहि विधि वचननि उच्चरै, भरि भरि लेहिं उसास।
सत कन्या गृह औतरैं, जननी तऊ निरास॥१५८॥
लच्छि धेनु पृथवी बहुत, अरु सुवर्न सत भार।
अरपे कन्या दान सँग, वरननु वरनत हार॥१५६॥
सहस नाग हैवर अयुत, पाटंबर वहु भाय।
रतन कोटि दासी बहुत, वर्नतु वरन न जाय॥१६०॥
सूर सैन तब स्वस्ति कहि, अंगीकृत करि लीन।
अग्नि वरुन साषी भये, पानिग्रहनु जब कीन॥१६१॥
वेद रीति भाँवरि परी, ग्रंथनि बंधनि भाइ।
वर विवाह पूरन भयौ, पुहकर कहत बनाइ॥१६२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे पानिग्रहन वर्ननो नाम सप्तमो अध्यायः॥ ७ ॥

(दोहा)

इत अंतर तेही समै, विजैपाल मति धीर।
बोले मंत्री कुँवर के, गुन गँभीर रघुवीर॥१६३॥
मंत्री ढिग बैठारि के, कहत कुँवर सौं बात।
एक दान मागौं अबहिं, तुम दाता विख्यात॥१६४॥
मन वच क्रम जौ दीजिये, तौ जाँचौ जस काज।
विमल होहिं कीरति जगत, सुनिये राजधिराज॥१६५॥

(चौपही)

सूर सैनि करि लज्जित नैना। गुन गंभीर इमि भाषत बैना॥
महाराज तुम राजधिराजा। जसु मंडफ चारिहु दिसि छाजा॥१६६॥
ये तौ पुत्र पिता तुम आहू। विधि निमित्त यौं भयौ विवाहू॥
जो आयसु दीजहि प्रभु देवा। मानि सभागु करैं हम सेवा॥१६७॥

(छंद पद्धरी)

उच्चरत पहुमि पति विजैपाल । रसलीन दीन बतियाँ रसाल ।।
विधना विचारि यह काजु कीन । सुहिं अति अनाथ कहँ पच्छ दीन ।।१६८।।
राजाधिराज वैरागरेस । जानहिं जग अपहुँ मीन रेस ।।
सो जानि मानि मै गहे पाइ । सँकत बयन मुष कहि न जाइ ।।१६९।।
जानौं अनंत मम देस राज । बिनु पुत्र सबै संपत अकाज ।।
एहि सुता सुत आइ गेह । जिय जान हेत बाढ्यौ सनेह ।।१७०।।
वपु मनहु वृद्ध दिन अंत साँझ । जीवनु अनित्य संसार माँझ ।।
मागौं विचारि यह कौन लैन । मम घर धनीय धन सूर सैन ।।१७१।।
वैरागरेस जिय आन फेरि । तिहिं भाति जानि यह चंपनेरि ।।
मम नैन प्रान धन जीव जीय । सुत सूर सिंह अति परम प्रीय ।।१७२।।

(दोहा)

विजयपाल इमि उच्चरै, सुन गँभीर रघुवीर ।
सूर सैनि मम घर धनी, चंपावति पति वीर ।।१७३।।

(चौपही)

कहत बचन राजा सब आगै । करुना हेत प्रेम रस पागै ।।
मै दीनौ चंपावति राजू । अपनौ जानि समारौ काजू ।।१७४।।
है सरीर छिन मै छिन भंगी । विनु सुकृत्य और ना संगी ।।
जब लगि पुत्र बिधाता देई । सुष सुत सूर मानि मन लेई ।।१७५।।
मन वंछित पूजहिं मन आसा । तब लगि रहै कुँवरि मो पासा ।।
प्रथम पुत्र चंपावति राजा । वहुरू सिद्धि करौ गृह काजा ।।१७६।।

(दोहा)

यहै बैनु मुहि दीजिये, तुम पुनि अति मति वंत ।
चंपावति पति विधि करे, अरु वैरागर कंत ।।१७७।।

(चौपही)

दिय उत्तर रघुवीर सुजाना । गुन गंभीर परम गुन गाना ।।
तुम पालक प्रभु आउ हमारे । हम सेवक हैं दास तुम्हारे ।।१७८।।
है सुत सूर पिता तुम ताहीं । एक भाँति कछु अंतर नाहीं ।।
जानतु जगत विदिति ये बैना । सूर सैनि सौमेसुर नैना ।।१७९।।

एकु पुत्र सौमेसुर आसा। नातर रहै सदा तुम पासा ॥
तुम राजाधिराज प्रभु देवा। जीवन सुफल कियौ तुम सेवा ॥१८०॥
पुत्र प्रीति माया विस्थारा। सुष सनेह अरु लाड दुलारा ॥
गुरजन सेव सहज गृह काजू। ये तो येक पंथ दो काजू ॥१८१॥
ये विख्यात वेद विधि वानी। जग प्रसिध्य अब भई कहानी ॥
एक पूत जनि जनमो माई। घर सूनौ जौ बाहिर जाई ॥१८२॥
तातैँ जो कछु आइस दीनो। सो धरि सीस मानि हम लीनो ॥
तब लगि सूर वसै तुव पासा। जब लगि पूजहिं मन की आसा ॥१८३॥

(दोहा)

विजैपाल सौमेस सम, अरु पुष्पावति माइ।
वैरागर चंपावती, अंतर कियौ न जाइ ॥१८४॥
सूर सैन पुनि सुनि वचनु, मानि लियौ धरि सीस।
विजै चंद आनंद मति, मन वच दई असीस ॥१८५॥
नौवद नाद निसान बजि, भेरी ढोल मृदंग।
नगर नार आनंद मय, प्रमुदित दल चतुरंग ॥१८६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे
वचन बंधनो नाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

(दोहा)

भोजन विधि विधना रचै, तरुनी तकि त्यौं नारि।
जान जिवावन हेत लगि, सिद्धि भई जिवनारि ॥१८७॥
अनगन भाँति अनूप अति, उत्तिम विधि व्यौहार।
सुधा सरस भोजनु रच्यौ, षट रस पंच प्रकार ॥१८८॥

(चौपही)

छरस सरस ज्यौनारि बनाई। षड दरसन मिलि ज्यौन बुलाई ॥
चंदन लेपि अवनि अधिकाई। राजा रुचिर रम्य मन भाई ॥१८९॥
दुहँ दिसि दीवटि वरहिं मसाला। दिव्य वृच्छ दीपति दुति जाला ॥
पाटंबर बहु आसन डारे। अदभुत अंब पत्र पनवारे ॥१९०॥
जल सीतल कप्पूर बसायौ। बिमल कनक झारिनि महिं नायौ ॥
बैठे सजन सिरोमनि पाँती। देषत दरस होहिं मन साँती ॥१९१॥

विप्र वृंद चातुर मन भारे। परम प्रवीन परोसनहारे ॥
आइस माँगि परोसन लागे। नव रस प्रीत रीति अनुरागे ॥१९२॥
प्रथमहिं दधि परसहिं पकवाना। विविधि भाँति नहिं जाइ बषाना ॥
मोदक मुकत, सुफीनी फेनी। पूप पिराक पुरी सुषदेनी ॥१९३॥
ललित लोचई बेलनि बेली। सरस कचौरी अदरष मेली ॥
अमृत इंमृती सरस जलेबी। माठे घेवर प्यालि रकेबी ॥१९४॥
ओदन अद्भुत आनि परोस्यौ। उज्जल सुलफ सुवासु अदोस्यौ ॥
परमल मनौ मालती फूला। कवि मन मुक्त मानि भ्रम भूला ॥१९५॥
घृतकप्पूर सुगंध वसायौ। अति आदर भरि थार मँगायौ ॥
मूँग दार बिनु वक्कल साजी। केसरि सहित प्रीत रंग राजी ॥१९६॥
बेसनि विविधि विधान बनाये। रुचिकर रुचिर गीत गुन गाये ॥
कतरा निबुना अनवर साजे। सरस षटाई मै अति राजे ॥१९७॥
दधि रस लवन कढ़ी करि काढ़ी। मिरच हींग लौंगनि रुचि बाढ़ी ॥
मूँग माष बर बरी बनाई। अरु आमलक बढ़ी सुषदाई ॥१९८॥
रुचित रकौंछ रुचिर अति नीके। ... ... ॥
मैदा माड़ि रचे रुचि माड़े। उज्जल सुफल परोसहिं पाँड़े ॥१९९॥
अनगन भाँतिनि मासु बनायौ। लवन लौंग घृत मिरच मिलायौ ॥
छाग मेष मृग सकल सँवारे। बटवा विविधि समौचा न्यारे ॥२००॥
विविधि तीतुरी लवा बटेरी। असन आस पूजी मन केरी ॥
मधुर माँस चकतारे कीनै। सूला रुचिर माँगि पुनि लीनै ॥२०१॥
अषनी अदभुत अरु ताहरी। बहु छुड़वा सनि पातरि भरी ॥
तरि करेज राइत बनवावा। जैंवत सजन अधिक मन भावा ॥२०२॥
मरगल मीन रसारी कीनी। बहु जंभीर नई रस भीनी ॥
तरकारी तरुनीनि बनाई। मनौ कलप तरवर फल दाई ॥२०३॥
विविधि भाँति वृंताक सँवारे। अनवर रँगि रुचि स्वादनि न्यारे ॥
कुँदरू केरक कोर करेला। परवर परम सुधा रस चेला ॥२०४॥
बथुवा पालक सोवा साजा। अरुई सूरन सरस विराजा ॥
सिगरी कौंस कँरौदा राधे। राई नोन मठा मै साधे ॥२०५॥
रुचिर रतालू औ करचालू। नव निमौन परसे भरि थालू ॥
तापर पापर परसे आनी। सरस झारि अरु कांजी पांनी ॥२०६॥
चक्रा निरषि चकृत मन होई। वियौ उकत वरने नहि कोई ॥२०७॥

(दोहा)

मगन मिठा दधि मैं दये, जेवति अति आनंद।
मनौ प्रेम चहलै परे, निकसि सकत नहि चंद ॥२०८॥
पछियावर विधि विधि रची, ते सजन जिवाँवन काज।
दूध दही घृत षाँड़ मिलि, पंच अमृत मिलि साज ॥२०९॥

(चौपही)

मेवा मुदित मधुर मन लाये। दरिबा दाष छुहारे भाये॥
पगी चिरौजी बिही बनाई। नासपात नागर मन भाई॥२१०॥
पागे मगम मषाने आनै। मिश्री लौंग मिरच रस सानै॥
पय प्रकार अनबन बिधि साजे। बहुत सुगंध सहित मधु राजे॥२११॥
सिषिरिन सरबत छुंन्ना पानी। सहित कपूर परोसहिं आनी॥
जेवहिं सजन स्वाद रस लोभा। जनु सुर सभा जग्यँ बस सोभा॥२१२॥
बिजैपाल बहु आदर करई। छीर समुद्र धरनि मनु धरई॥
त्रिपित भये भोजन सब कोई। बरनत बियौ ग्रंथ इकु होई॥२१३॥

(दोहा)

मधुर लवन अरु चिरपिरौ, करु ओषाठो सीठि।
जगत बिदित षट रस प्रगट, श्रवन सुनै द्दग दीठि॥२१४॥
चूसन चाटन चर्मना, सरस षान अरु पान।
भोजन विधि बिधना रचे, षटरस पंच बिधान॥२१५॥

(चौपही)

जेइ जूठ जब अचवँन लीनौ। नृपति बहुत बिधि आदर कीनौ॥
बहु सुगंध चरचे सब लोगा। मानौ अवनि अमर पुर भोगा॥२१६॥
सुष सुवास तंमोल मँगाये। आदर सहित थार भर ल्याये॥
पान पचास बनाये बीरा। उज्जल अमल दिपहिं जनु हीरा॥२१७॥
फूलनि संग सुपारी वासी। मुतिया जरित चून सुष कासी॥
एला लौंग ललित कस्तूरी। भरे कपूर भई रुचि पूरी॥२१८॥

(दोहा)

राज पुत्र रघुबीर बर, गुन गँभीर दै आदि।
उलट चले जन बास कौं, मनौ देव इंद्रादि॥२१९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे भोजन बिधान वर्ननो नाम नवमो अध्यायः॥९॥

(दोहा)

मदन मुदित दै आदि सषि, रचहिं सेज सुष धाम ।
चित्र सार चित्रित जहाँ, चतुर चितेरो काम ।।२२०।।
धवल धाम कंचन रचित, षचित हीर मनि लाल ।
पुहुकर दीप नच्छित्र गन, होड़ परी तिहिं काल ।।२२१।।
चंदन अगर कपूर बर, बाती बरहिं अपार ।
मनौ सूर आगम उदौ, होड़ परी तिहिं बार ।।२२२।।

(छंद पद्धरी)

सुषधाम सेज सषि रची आनि । रस सूर सैनि उद्दोत भानि ।।
आनंद मानि मन मुदित बाल । उद्दीप मनौ नवती बिसाल ।।२२३।।
लषि रहहिं भूमिमृग पहुमिपाल । अति रुचिर रचितवर चित्रसाल ।।
राषिय सुगंध भरि करि बनाइ । अंगनहुँ मध्यि सरवर सुभाइ ।।२२४।।
गुंजरत भृंग रसबास लीन । मृग बाल नाद स्वादहिं अधीन ।।
परजंक मंड तहँ चित्त चाइ । मनि मुक्त हीर मानिक जराइ ।।२२५।।
चहुँ ओर चित्र पुतरीय चारि । परवार हेतु जनु अमर नारि ।।
इक हथ्थ पाइ इक हथ्थ चौरि । इक कर सुगंध गहि मुकर औरि ।।२२६।।
पचरंग पाट सीरक बिछाइ । वहि रूप ओप बरनी न जाइ ।।
बहु फूल सूल सम धरि बनाइ । पट झीन झारि चादरि चुनाइ ।।२२७।।
गिंडूव जुगल दुहुँ ओर साज । सुर सरित सेज दोउ कूल राज ।।
झलकंति मुत्ति झालर अपार । चंदोब चंद जनु जलज तार ।।२२८।।

(चौपही)

धवल धाम बहु फूलनि छायौ । मनौ मदन सुष सदन बनायौ ।।
दुति दीपति अरु चंद उज्यारी । मनिमय रतन जोति रुचि कारी ।।२२९।।
चित्रसाल चित्रित बहु रंगा । उपजतु निरषि सुषद सुष अंगा ।।
बिबिध चित्र अनबन बिधि साजे । जल थल जीव जंतु सब राजे ।।२३०।।
लिषी बहुत लीला करतारा । चित्र चारु दसऊँ अवतारा ।।
व्रज विनोद बहु भाँतन चीन्हा । राम चरित्र चारु सब कीन्हा ।।२३१।।
सोरह सहस अष्ट पटरानी । चित्री इंद्र घरनि इंद्रानी ।।
नायक नाथ लिषे सुर ग्यानी । रुकमिन आदि आठ पटरानी ।।२३२।।

---

१. भंगा ।

चित्रे जहाँ सर्व सर्वानी । परम प्रीत नहिं जाति बषानी ।।
रति रतिनाथ चित्रु पुनि कीन्हा । ऊषा हित अनुरूध मनु लीन्हा ।।२३३।।
चित्रित सकल प्रेम रस प्रीती । माधौ काम कंदला रीती ।।
अग्नि मित्र यौरावत धाता । भरथरि प्रेम पिंगला राता ।।२३४।।
लिषे आस पावस पिक मोरा । लिषे चंद रस लोभ चकोरा ।।
चात्रिक मीन लिषे ते दीना । अरु पतंग दीपक आधीना ।।२३५।।
अलि मन कमल कमल रबि सेती । मृग अनुराग राग बिधि जेती ।।
बहु बिधि सेज चित्र बहु भाँती । चाहत जाहि सूर मन साँती ।।२३६।।
साथ षवास षास गुन जाना । आये सेज षवावन पाना ।।
सोभा सिंधु कहत नहिं आवै । सिव समाधि देषत बिसरावै ।।२३७।।

(दोहा)

बहु सुगंध भूषन बसन, बहु गुन आँनद रूप ।
पूरन जोति प्रकास रस, जो सेज सिधारे भूप ।।२३८।।
दिन दुलहिनि दूलह नवल, नागर चतुर सुजान ।
जग जुवती जनु मदनहर, सब गुन रूप निधान ।।२३९।।
अँग अभरन रतनन जरित, बिबिध बसन परिधान ।
चरित चारु सुगंधु रस, किये मधुर धुनि पान ।।२४०।।
मिलन मनोरथु मनु बढ्यौ, सोभा सिंधु अपार ।
सँग अनुचर करि कै बिदा, सेज चढ़े तिहिं बार ।।२४१।।

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितैयं स्वयंवर षंडे
उत्साह वर्ननो नाम दसमो अध्यायः ।।१०।।

(चौपही)

उतहि सेज दूलह पगु धारे । इत सहचरि सिंगार सुधारे ।
अष्ट नारि प्रमुदा अनुरागी । सुंदरि अंग सँवारनि लागी ।।२४२।।
मृग मद मीड़ि मिलैं घनसारी । उबटन केसरि कुसम सँवारी ।।
मंजनु कियौ चीरु पहिरायौ । विविध भेद आभरन बनायौ ।।२४३।।
कचुकि वंधि वंधि कचबैनी । नीबी वंधि ललित सुषदैनी ।।
किंकिनि बंधि ग्रंथि कसि बीनी । सषियनि चतुर चातुरी कीनी ।।२४४।।

बंधि मंग वंदनु रचि भारी। तापर लर मुतिया सुर सारी ॥
गंग जमुन बिच मो मन मुत्ती। सोभित मनौ गुंज सरसुती ॥२४५॥
तिलक भाल कुंडल छबि छाजै। बिबि रवि बीच इंदु जनु राजै ॥
लोचन लोल दियौ अरु अंजनु। मोहे कमल मीन अरु षंजन ॥२४६॥
अति अमोल नकवेसर मोती। दीपक फूल झरत दुति जोती ॥
अरुन अधर उज्जल मृदुहासा। दामिनि दमक चंद मुष पासा ॥२४७॥
पहुपमाल मुत्तिय उर माला। कुच कठोर कोमल अति बाला ॥
गुर नितंब सोहत कटि छीनी। चंचल नैन मंद गति लीनी ॥२४८॥
मन मन मथ्थ लाज उर आई। उभै भाइ अदभुत छबि छाई ॥
कनक थार सषि आरति ल्याई। मानिक मुकुत हीर छबि छाई ॥२४९॥

(दोहा)

कनक थार रच आरती, कहहिं सषी सचुपाइ।
प्रान नाथ पूजन भवन, चलि अलि लेइ बलाइ ॥२५०॥
सुन सुंदरि मन त्रास हुव, रोम उठे तन अंग।
चित अधार उर धुकधुकी, डरि मुरि दुरौ अनंग ॥२५१॥
नैन लाज उर त्रास बढ़ि, मदन दुरौ तन मांह।
डुलति नारि नाहीं करै, सकत छुड़ावत बाँह ॥२५२॥

(छंद मोतीदाम)

अली कर बाँह छुड़ावति बाँह। सुनै सुष त्रास भयौ मन माह ॥
डरे बिडरै जु रहै गहि पाइ। उठै झुकि बोलति बैन रिसाइ ॥२५३॥
हा हा ना करि ना करि नारि। करै बिनती वर बोल पसारि ॥
रहै गहि टेक कहै मृग नैनि। सषी मुहि छाँडि जु आजु की रैनि ॥२५४॥
चलौं जहँ कालिह बुलावहु आइ। कहै कबहूँ मुष बोलत माइ ॥
रहै कबहूँ मिसु कै फिरि सोइ। अली अंग पीर न जानत कोइ ॥२५५॥
कहै कबहूँ सिर दूषत अंगु। चलै उठि रूठि कियै रस भंगु ॥
करै बहुभाति निदाइ उपाइ। समारग संक परै नहि पाइ ॥२५६॥
सषी मुदितादि कहैं करि सौंह। करै जनि सुंदरि टेढिय भौंह ॥
सबै बिरहानल कारन जासु। करै किनि नैन दरस्सनु तासु ॥२५७॥
डरै जनि त्रासु समागम जानि। अली इतनी हमही डरु कानि ॥
पिता घर सेज न सोवति बाल। बिना डर व्याकुल होति बिहाल ॥२५८॥

न जानति रीति विवाह अचार । भुवप्पति गेहन कौनु व्योहार ॥
लइ जयमाल गई क्यों न पौरि । चली सजनी सँग पूजन गौरि ॥२५६॥
निरंतर होइ दुहूँ दिसि प्रीति । थपी गुर पंडित आरति रीति ॥२६०॥

(चौपही)

कहै सषी सुनु प्रान पियारी । कारन कौन डरति वरबारी ॥
भुवपति रीति और ब्यौहारा । सुनियत नेम कुल धर्म अपारा ॥२६१॥
बर विवाह बर आरति कीजे । सदा सुषित जग जीवन जीजे ॥
भाग सुहाग सदा सुष राजू । कीजे नेगचार विधि काजू ॥२६२॥
हम सब चले संग सषि तेरे । देहि न होइ प्रान पति नेरे ॥
करि आरती उलटि फिरि आवहिं । सषिन सेज इहि ठौर बिछावहिं ॥२६३॥
पितु घर सेज न सोवहि कोई । इहि विधि सदन सासुरे होई ॥
बादिहि त्रास डरति मन माहीं । निधरक चलौ कछू डरु नाहीं ॥२६४॥
चली संग रंभावति रानी । कपट सौंह सषियनि पतियानी ॥
डरु लज्जा चिंता चित बाढ़ी । डग भरि चलै होहि फिरि ठाढ़ी ॥२६५॥
अंचल छोरु गहै पट आली । आभा पीत मनौ दल ताली ॥
गुन विसेष वचनन चतुराई । बातनि लाइ सेज ढिग लाई ॥२६६॥

(दोहा)

नष सिष रूप अनूप छवि, कवि सुष वरनि न जाइ ।
ससि सहाइ उडुगन मनौ, सेज पहुँची आइ ॥२६७॥
प्रान नाथ नाइक नवल, निरषत अति आनंद ।
सहचरि नैन चकोर हुव, बदनु बिलोकत चंद ॥२६८॥
उतहि सूर इक टक रह्यौ, निरषि नैन नव नारि ।
मनौ दिष्टि पररंभु किय, लोचन अंक पसारि ॥२६९॥
लई कुँवरि कर आरती, नागर चतुर सुजान ।
घूँघट पट मुष वोट करि, किये निछावरि प्रान ॥२७०॥
सषि अलाप कल कंठ सुर, गावहिं मंगल गान ।
वर विचारि जोरी जुगल, विथकित देव विमान ॥२७१॥
मदन मनोरथ मनु बढ्यौ, लाज लगी दृग आइ ।
रति भय उपज्यौ रति उरहं, यह छवि बरनि न जाइ ॥२७२॥

चरन गहे करि आरती, कुँवर गही भुज बाम ।
सखि तजि मंदिर भाजि चलि, थकित भई बस काम ॥२७३॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुंकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे संकर्षनो
नाम एकादसमो अध्यायः ॥११॥

(चौपही)

सखि अजि चलीं छाँड़ि गृह गोरी । कोमल कुँवरि प्रीति रस बोरी ॥
करि कपोल पीरी परि आई । प्रीति रीति बिसरी चतुराई ॥२७४॥
हहरि थहरि थर थर हिय कंपै । अंग अंग चंचल पट झंपै ॥
कर कर करहिं छुड़ावन चाहै । चित भौ नैन लाज निरवाहै ॥२७५॥
काम कुमार कोक अधिकारी । परम प्रवीन बिचच्छिन भारी ॥
नवल नेह नवला नव बेली । तरु अंगी अबला अलबेली ॥२७६॥
कुँवर छाँड़ि उर आतुरताई । धीरज चित्त धरी चतुराई ॥
पासै सार षिलौना काढ्यौ । षेलन हेत कुँवरि मन बाढ्यौ ॥२७७॥
बदि बर होड़ षेल बिस्थारा । हारै हारि जीति पुनि हारा ॥
इहि बिधि जानि दाउ फिरि देई । सुंदरि हरष जीति पुनि लेई ॥२७८॥
इहि रस षेल ढीठि जब भई । लोचन लाज संकु छुटि गई ॥
देषौ रसिक प्रीति की रीती । सर्बसु हारि सुंदरी जीती ॥२७९॥

(दोहा)

पुहुकर हारे हारिये, जीते हूं नहि जीति ॥
तातै प्रीत न कीजिये, कठिन प्रीति की रीति ॥२८०।

(चौपही)

लोइनि भरे परसपर चारी । अचयौ रूप नैन भरि प्यारी ॥
जुरै नैन जब बातनि लाई । मिन सुहात रस बात सुनाई ॥२८१॥

(दोहा)

नवल नारि रस रीति गति, वारू पार विचार ।
गाढ़ै गहै न पाइये, अलराये हित प्यार ॥२८२॥

(चौपही)

नायक चतुर करी चतुराई । बातनि ल्याइ बहुरि उर लाई ॥
जुग उर जुरत रोम उठि आये । नैन रसाल (सघन ?) घन भाये ॥२८३॥

दर्पक दुरौ प्रगट ह्वै आयौ । हिय हुलास दुहुँ ओर जनायौ ॥
समुझत सरस बैन चतुराई । प्रेम प्रीति रस कथा सुनाई ॥२८४॥

(दोहा)

विविधि भाइ बहु चातुरी, कामिनि रस बस कीन ।
पुहुकर परम प्रवीन प्रिय, पिया पानि गहि लीन ॥२८५॥
नैन लाज उर त्रास बसि, पुहकर अंग अनंग ।
नवल नारि डंदित अनत, प्रथम सुरत रस रंग ॥२८६॥
कमल बदन पीरी परी, नीरी होहिं न बाल ।
परम चपलु मन थिर नहीं, भ्रमत मुत्ति जिमि थाल ॥२८७॥

(छंद तोटक)

बिडरै डरि के बिलस्हार गिरे । गज मुत्तिय की गति थाल फिरे ॥
कबहूँ परजंकहि अंक भरे । करुना कमनीय अनंग करे ॥२८८॥
कबहूँ कर पल्लव हथ्थ गहै । कबहूँ कटि भागन जान चहै ॥
कसि नीविय कंचुकि बंध धरे । भुज मंडल ओट उरोज करे ॥२८९॥
जुग जंघ जुराइ दुराइ रही । निधरंक मनौ जिय जानि गही ॥
धरके हिय सांस उसास भरे । किहि हेरत नायक चित्त हरे ॥२९०॥
लगि जीवनि प्रीत के तत्तु रहौ । कवि के मुष भेद न जातु कहौ ॥२९१॥

(दोहा)

त्रिय अबला पिय अति बली, छलबल दाउ न पाइ ।
प्रान पिया रस बस करी, कवि मुष बरनि न जाइ ॥२९२॥
प्रथम समागम रीति रस, जानत जानन हार ।
पुहुकर प्रगट न कहि सकै, लैहै रसिक विचार ॥२९३॥
सुरति केलि सचुपाइ अति, मिटौ बिरह दुष दंद ।
छिन छिन मानौ माघ दिन, बढ्यौ प्रेम आनंद ॥२९४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे
प्रथम समागम वर्ननो नाम द्वादसमो अध्यायः ॥१२॥

(दोहा)

चतुर जाम जुग जामिनी, कामिनि काम कुमार ।
होत प्रात निसि अंत में, सेज तजी तिहि बार ॥२९५॥

(चौपही)

काम कुमार काम रस केली । ज्यौं रस बेलि कुँवरि अलबेली ॥
अंग अंग पिय करी ढिठाई । पूष मास जिमि ऊष मिठाई ॥२९६॥
निसि करि काम केलि करि क्रीड़ा । उपजी प्रात नैन मन पीड़ा ॥
सूर सैन सुंदर गुन भारे । जगि जन वास धाम पगु धारे ॥२९७॥
निकट आइ निरषहिं रति रानी । सुंदर वदन वदन कुम्हिल्यानी ॥
कज्जल छीन हीन रँग बीरा । नीचे नैन किये घन धीरा ॥२९८॥
मुदिता आदि सकल सहचारी । प्रीति रीति रस जानति हारी ॥
बिहसँत कमल कली जिमि पाई । सुंदरि सेज उठावन आई ॥२९९॥
षंडित अधर नैन अरुनाई । बिहि बल वाल परम छबि छाई ॥
अलि अलाप गुंजत रस लोभा । सोभित प्रथम समागम सोभा ॥३००॥
कंचुकि स्याम दरकि लषि देही । मनौ कसौटी कंचन रेही ॥
झपकत पलक नैन झपकारे । जनि पिय रूप भार भये भारे ॥३०१॥
भई सिथिल अलकावलि झोरी । राजति नवल नेह नव गोरी ॥
सोभित सुंदरि नैन उँनींनी । लोचन छबि इंद्री बर लीनी ॥३०२॥

(दोहा)

ललित लाज लोइन लगी, नष छत रेष कपोल ।
तंतु तोरि सहचरि सबै, बोलहिं प्रमुदित बोल ॥३०३॥
पीक लीक पलकनि लगी, प्रीति पगी उर माहिं ।
निकट बिलोकति सहचरी, दिष्टि मिलावति नाहिं ॥३०४॥
दुति ताली आली बदन, मदन महा दुति अंग ।
पुहुकर प्रेम प्रकास सौं, उदित मुदित रस रंग ॥३०५॥

(चौपही)

कहै सषी सुनु प्रान पियारी । इहि छिन छवि ऊपर बलि हारी ॥
जिहिं लगि बिरह बहुत दुष देषा । कागद मसि नहि आवहिं लेषा ॥३०६॥
जतनहिं जतन मिली तिहि रानी । किहि गुन सकुच लाज उर आनी ॥
करौ सुरति पिय प्रान पियारी । बिरह व्याह अरु सेव हमारी ॥३०७॥
जपु तपु नेमु होम अरु नामा । करँ अपुनु प्रभु पूरन कामा ॥
अब तजि संक सकुचि सषि पासा । कहौ कंत चातुर गुनु आसा ॥३०८॥

हम सब सषिन सिषापन दीना । सो तुम समुझि चित्त धर लीना ॥
अब उहि भाँति पियहिं बस कीजे । नवल नेह नाइक मनु लीजे ॥३०९॥
जो गुन कोक कला सिखरावै । सो सुष सेज करहिं मन भावै ॥
जो गुनु सब सुहागिलि गाये । ते गुन सदा पियहिं मन भाये ॥३१०॥

(दोहा)

राज कुँवरि प्रमुदित बदन, निरषहि सहचरि तीर ।
सुरति सेज प्राचीन कर, नैन लिये भरि नीर ॥३११॥

(चौपही)

कहै वचनु रंभावति रानी । सहचरि सुनौ सर्व गुन जानी ॥
जो कीनौ तुम सेव सहाऊ । सो मम चित्त न बिसरहिं काऊ ॥३१२॥
सदा सषी सुष दुष संघाती । तजहु न संगु निमिष दिन राती ॥
जो परपंचु विधाता कीनौ । मनमथ विरह प्रान तुम दीनौ ॥३१३॥

(दोहा)

काहू कंचन आभरन, काहू मोतिन हार ।
काहू कंचन वस्त्र दै, सषि सँतोषि तिहि वार ॥३१४॥

(चौपही)

विमल बारि भर कंचन झारी । बाला वदन पषारहिं नारी ॥
करि मंजन उबटनु अस्नाना । पहिरे बसन विविध परधाना ॥३१५॥
तेल फुलेल गूँथि कच बेनी । फेरि जो षोरि रची सुष देनी ॥
मुष तमोर दग अंजनु दीनौ । सहज सिंगार सषी पुनि कीनौ ॥३१६॥
अति रस बिजन बाउ त्रिय करई । वचनु भेद सुंदरि चितु हरई ॥
मो मत छीन मानि अग आली । अग्नि अनंग फेरि परजाली ॥३१७॥

(दोहा)

पुहुकर सषि सहचारिका, मानहिं अति आनंद ।
बढ़त प्रेम चितु सुंदरी, सुकलु पच्छ जिमि चंद ॥३१८॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे
त्रयोदसमो अध्यायः ॥१३॥

अथ मित्र महोत्सव वर्ननं

(छंद लीलावती)

सिर सोहत छत्र चँवर सिंहासन, आसन वास विसेषि कियं ।
बहु भूषन रत्न रुचिर रचि कुंडल कुंतल मंडित मंडिश्रियं ॥
मुकता मनि ग्रीव गिरा वरि वारिद बैननि बानी चंगपती ।
बत्तीसौ लच्छिन लच्छि लसै तन, ज्यौं गुन अच्छरि लीलवती ॥२१९॥
जुग लोचन लोल कपोल कनक छबि कवि सुष वरन तु भेद हुवं ।
बरुनी बरवानी त्रिया तन भेदन सोभित काम कमान भुवं ॥
नव नाइक लाइक सब सुष दाइक सूरज तेज प्रकास प्रभा ।
सुरराज विराज महा छवि छाजत यौं प्रभु राजत बैस[1] सभा ॥२२०॥
रथ हैवर हीर समद सुंडाहल अति बल पंतिनि पंति धरे ।
बहु विक्रम स्वान सिंचान सिंह मृग पच्छिय पिंजर आनि धरे ॥
तहँ राजत राज कुमार सभासद सुंदर राज सुजान सबै ।
कवि पुहुकर तेज प्रकास विलोकित लज्जित इंद्र अनंग तबै ॥२२१॥

(दोहा)

कवि अनंगु अँग अँग निरष, कहत राइ रघुवीर ।
धन्नि दिवसु धनि यह घरी, धन्नि कुँवरि बलवीर ॥२२२॥
जैसौ दिनु यह आज कौ, जौ ऐसौ नित होइ ।
सुर नर नाग नरिंद मुनि, सरवर करै न कोइ ॥२२३॥
मानत अनद बधावनौ, जानत जीवन सार ।
देत दानु गुनियनि बहुत, मनौ पुरंदर द्वार ॥२२४॥
पूछत साल बिलास रस, जदपि जगत बिख्यात ।
कहौ रूप गुन चातुरी, सुंदरता की बात ॥२२५॥
जिहि कारन भव दधि मथ्यौ, अरु दुष सह्यौ अपार ।
जप तप सो त्रिय पाइ कै, त्रिपिति भये तिहि वार ॥२२६॥

(चौपही)

कहत सूर सुंदर सुकुवारा । सुनौ मित्र मनि राज कुँवारा ॥
सजन सुहाय कृपा करतारा । पाई प्रथम पिया इहि वारा ॥२२७॥

१—सबै ।

जिहि विधि चित्र स्वप्न दग देषी । तिहि विसेषि सति गुनित विसेषी।।
स्वप्न चित्र इक रूप निहारा । अब गुन लील सकल गुनधारा ।।२२८।।
मथ्थौ सिंधु मिलि दानव देवा । बहुविधि करी बहुत विधि सेवा ।।
इक इक रतन सबनि मिलि लाये । तेमें रतन चतुर दस पाये ।।२२९।।
कोई बिधु लै जु सुधा लै कोई । कोइ गज तुरंग धेनु धनु होई ।।
काहू कलप तरोवर लीना । नाम नाथ कमला पति कीना ।।२३०।।

(दोहा)

मैं प्रभु कृपा प्रसाद तैं, सब पाये इक ठौर ।
रत्न चंद रस गेह मम, बाटनहार न और ।।२३१।।

(छप्पय)

जुवति बृंद मनि गनिय गुनन कमला गज गामिनि ।
पारजात परमल सुअगम मनमथ मद कामिनि ।।
बिरह व्याध वर वेध[1] धनुक भृकुटी बिधु आननि ।
लोचन लोल तुरंग अधर अंमृत रँग बाननि ।।
त्रिवलीय संष विष मान जन काम धेनु सल सील मनि ।
गुन नाम लील रंभा कुँवरि सो अंग चतुर्दस अंग बनि ।।२३२।।

(चौपही)

कहत सूर सुषदाइक बैना । सोभित अमल कमलजिमि नैना ।।
जबहि होहिं करतार कृपाला । तिहिं छन होहिं कांच मनिलाला ।।२३३।।
मरत एक कारन है पायौ । बिना साग निजु प्रानु गंवायौ ।।
मै न कह्यौ तुम सौं विरदंतू । भयौ प्रसवि गौरि कौ कंतू ।।२३४।।
धरे रूप हस नव निधि पाई । फिरि हर दीन सिध्यि मन भाई ।।
सोवत मान सरोवर माही । विधि चरित्र तुम जानत नाही ।।२३५।।
अप्छर सकल सरोवर आई । सेज उठाइ गगन महि धाई ।।
राजा मंजुघोष उरबसी । और घृताची सब गुन सची ।।२३६।।
निद्रा मगन मैं न कछु जानी । कहि गुनु कौन भाँति मनमानी ।।
लै करि ब्रह्म कुंड महिं आई । अप्छरि एक हती तिहिं ठांई ।।२३७।।

---

१. बरवैदधन ।

सुरपति श्राप हती महि मंडल। आइसु विरचि दियौ आषंडल ॥
कलपुलता कहि नाम बुलावहिं। अप्छरि हित सहचरि घर आवहिं ॥३३८॥

विविध सँजोगु कियौ मन ब्याहू। कछुक दिवस तहँ रह मिलि ताहूँ॥
वंछित भोग सिद्धि बहु केरे। सो रघुबीर मित्र घर मेरे ॥३३९॥

कहाँ कहाँ गुनु रूप बड़ाई। अप्छरि नारि कहाँ घर पाई ॥
अरु देषौ दृग इंद्र अषारौ। सो सुष लूटि लियौ हम न्यारौ ॥३४०॥
बिधि जु कियौ उर अंतर मेरै। ताछे छाँड़ि चल्यौ उहिं नेरै ॥
खींचि मोंहि लायौ चंपावति[1]। बिछुरन सजन बिरह रंभावति ॥३४१॥

(दोहा)

बहुरि मिले तुम आइ के, अब यह भयौ विवाहु ।
विवि घरनी घर भावतीं, नाथ हाथ निरबाह ॥३४२॥

जब चलियै इहि ठौर तै, बैरागर समुहाइ ।
तब उहि मारग जाइ कै, उहि पुनि लैइँ लिवाइ ॥३४३॥

गुन गंभीर रघुवीर मिलि, सुनत वचन आनंद ।
दृगनु मनोरथु मन बढ्यौ, मिटे सकल दुष दंद ॥३४४॥

(चौपही)

करत बहुत आनंद बधाई। मानौ आजु नई निधि पाई ॥
सुनि मंगल मंगल नहिँ दूजा। बहु विधि करहिँ देव गुरु पूजा ॥३४५॥
पंच सब्द मिलि बाजहिं बाजे। आँनद मगन सुभट सब राजे ॥
नव रस छरस भोग सुष कहईं। देत दानु दुष्षित दुष हरईं ॥३४६॥
गीत नाद वादित्र बधाई। उत्सव बहुत वरनि नहिं जाई ॥
करहि कैंलि कलोल कुमारा। ब्रह्मानंद भयौ तिहिं वारा ॥३४७॥

(दोहा)

बहुत दान सुभटन दियौ, रोम रोम सुष पाइ ।
आनि फेरि सब नगर मै, षट दरसनहिं बुलाइ ॥३४८॥

सूर सैनि सब संगियनि, दिये बाज गजराज ।
कंचन हीर अमोल अति, प्रेम सहित सुष साज ॥३४९॥

---

१. अनुमानित ।

सुफल घरी सब जगत मैं, जानि जगत जिय सार ।
बिलसति दर्बि अनंत अति, कीरति करत अपार ॥३५०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचिते स्वयंवर षंडे
मित्रलाभ वर्ननो नाम चतुर्दसमो अध्यायः ॥१४॥

(दोहा)

वैरागर कहँ पत्र लिषि, मंगल कुसल विवाह ।
सुष्ष देस पठये जहाँ, तहँ बैरागर नाह ॥३५१॥

नित्य नेमु अस्नान करि, प्रात पुन्य अरु दान ।
देव पूजि पहरे वसन, सब गुन रूप निधान ॥३५२॥

नृप गृह भोजनु सिद्धि हुव, आये बोलन हार ।
सुभट सहित आँनद मुदित, चले कुँवर तिंहि बार ॥३५३॥

छुधा सहित षटरस असन, पुहुकर पंच प्रकार ।
उज्जल तपत सुगंध अति, रुचित रचित ज्यौनार । ३५४॥

(चौपही)

कर भोजनु लीने कर बीरा । विहँसत बदन दिपहिँ जनु हीरा ॥
कनक वरन तन केसरि सोहै । नैन विसाल बाल मनु मोहै ॥३५५॥

भींजे तेल बार घुँघवारे । लहरनि भरे भुवंगम कारे ॥
तिलक भाल मृगमद घसि दीनौ । मनौ राहु विधु भेदनु कीन्हौ ॥३५६॥

सोहति है कटिपट पर धोती । जनु पयोधि लहरी जुत जोती ॥
भीर कपूर और कस्तूरी । वीरी पीत पान की पूरी ॥३५७॥

एला ललित लवंग सुवासा । उदित आनन इंद्र प्रकासा ॥
सूर सैन सुंदर गुन भारे । सयन हेत सुष सेज सिधारे ॥३५८॥

इत सुंदरि अभिलाष अपारा । सोभित अंग सकल सिंगारा ॥
नील निचोल पहिर पट अंगा । निरषत रूप बुद्धि गति पंगा ॥३५९॥

छवि आनन घूँघट पट आसा । मनौ सरद घन चंद्र प्रकासा ॥
कुंडल करन मुक्ति मन मोहै । मनौ गगन ताराइनि सोहै ॥३६०॥

कज्जल स्याम दुयौ मन भायौ । मनौ नैन वाननि विषु लायौ ॥
मंद हास दसननि छवि देषी । दामिनि रेष मनौ अवरेषी ॥३६१॥

(दोहा)

सुंदर चतुर सुजान अति, अँग अँग ओप अनूप ।
रति रंभा अरु उरबसी, सरवरि करहिं न रूप ॥३६२॥

(चौपई)

काम कुमार काम रस माता । नवल नेह दुलहिनि रस राता ॥
बिरह व्याधि दुष देषि अपारा । पाई बिरह बिदारन दारा ॥३६३॥
दुष सुष सुरति और नहि ताही । एक प्रान बल्लभ हित आही ॥
नवल नारि अभिलाष अनंता । नवरस नारि नवल रसकंता ॥३६४॥

(दोहा)

धन मद जोबन राज मद, मन मथ मद अधिकार ।
मैंगलु जनु उनमंत अति, कौनु निवारनु हार ॥३६५॥
तरुनि तरनि जिमि तेज मय, पहुकर प्रान अधार ।
मनमथ मूरति मद हरन, परम मुदित तिहि बार ॥३६६॥
बिहँसि चली सब सहचरी, रोम रोम सचुपाइ ।
प्रान प्रिया परबीन अति, लाल लई उरलाइ ॥३६७॥
कुच सिव पूजे कमल कर, लषि मुष नैन चकोर ।
दुहुँ दिसु दूत अनंग हैं, प्रीति बढ़ी दुहुँ ओर ॥३६८॥

(छंद तोटक)

पिय प्रान प्रिया उर लाइ लई । बिरहानल व्याधि बिडारि दई ॥
नवला नव सुंदरि सेज चढ़ी । दुहु ओर निरंतर प्रीति बढ़ी ॥३६९॥
परि रंभन चुंबन काम कला । बरसै जनु आनद मेघ भला ॥
रति हास हुलास बिलास जियं । रस रीति समागम सज्ज कियं ॥३७०॥
चमकै चल कुंडल लोल तबै । बिधि आनन सँग नच्छत्र सबै ॥
दुति दामिनि काल सुकंठ लगै । पलही पल उद्दित काम जगै ॥३७१॥
परजंकहँ अंक न धीर धरै । जुग नैन कटाच्छनि चोट करै ॥
पिय कौ मन आनद रीझि भरै । रस रीति समागम चोज करै ॥३७२॥
छुट नीबिय बंधन हार हियं । सिथिली कृत अंबर कंचुकियं ॥
कर सीकर आनन ओप भई । रजनीस सुधाकर सोभ लई ॥३७३॥
कल कूजिति कामिनि कोक कला । गुर होत पिया रस प्रेम पला ॥
अँग सौ अँग नैन सौ नैन जुरे । उर अंतर कंद्रप चोर दुरे ॥३७४॥

(छंद दुर्मिला)

नव कामिनि काम कुमार उरे । कल कंठ कलोलनि केलि करे ॥
कल कूजित कोक अनेक करे । कल कंठन कंठ बिलास धरे ॥३७५॥
कटि किंकिनि कूजनि कंचन के । कुच कुत्तिय माल बिलोल लरे ॥
कहि पुहुकर गंग तरंग मनौ । जुग हंसन के चढ़े सील तनौ[1] ॥३७६॥

(दोहा)

पुहुकर आनंद रीझि रस, कामिनि कंत कुमार ।
सुरति केलि रस बस भये, मदन मोद अधिकार ॥३७७॥
दुहुँ दिसि बैननि चातुरी, दुहुँ दिसि नैनन चाउ ।
दुहुँ दिसि बाढ़ति प्रीति अति, ज्यौं दिसि सिसिर सुभाउ ॥३७८॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वयंवर षंडे तृतीय
रसकेलि वर्ननोनाम पंचदसमो अध्यायः ॥१५॥

(दोहा)

इहि विधि सुष संजोग लै, काम कुँवर मृग नैनि ।
प्रीति परसपर अति बढ़ै, चाउ चढ़ै दिन रैनि ॥३७९॥

(चौपही)

इहि विधि प्रीत परसपर बढ़ै । दिन दिन मनौ माघ दिन चढ़ै ॥
दिन जामिन भामिन मन भायौ । कामिनि कंत प्रान सम पायौ ॥३८०॥
माघ छाँह धन दामिनि जैसे । जल जिमि रंगु लगत मनु ऐसे ॥
हरदी रंगु भयौ रँगु न्यारा । इहि विधि दुहुँनु अदुलुपौ हारा ॥३८१॥
रोचन नाम कहै सबु कोई । बहुरि न हरदी चूना होई ॥
है प्रवाह सलिता जल भारी । मिलै न होहिं उदधि तें न्यारी ॥३८२॥
जल तरंग दुति दीप उज्यारी । इहि विधि सदा पियहिं प्रिय प्यारी॥
इहि रस मगन कछू डर नाहीं । विहरत बिहँसि कुंज बन माही ॥३८३॥
अमर बेलि तरबर अरुझानी । पिय संग सदा प्रिया सुष सानी ॥
छह रितु छरस सरस अति भोगू । नवल नारि नायक संजोगू ॥३८४॥
प्रीति रीति दुहुँ दिसि अधिकानी । मनौ सरित धन सावन पानी ॥
राज वधू अरु पीहर पूरी । सुष रस सदा समद दुष दूरी ॥३८५॥

१—चढ़ ।

त्रिय मनु रह्यौ पिया महँ जाईं। पिय उर प्रिया लसै जनु झांईं ॥
स्वप्न सुभाइ प्रेम रँग राता। कहहिँ परसपर पूरन बाता ॥३८६॥

(सवैया)

जल तै तरंग जैसे जोति संग सदा तेज[1]
देह तै प्रकृति सदा होति नहिँ न्यारी है।
रूप रंग दुति जग्यँ वेदी माँझ आहुति
हुतासन मै तपति ससि साथ ही उज्यारी है ॥
कहै कवि पुहुकर देषिये विचारि मन
क्रम वच बुद्धि जैसे कुहूँ तै अँध्यारी है।
घरी घरी पल पल छिनु छिनु राँची रोम
रोम ऐसे मन मेरे प्रीति तेरी प्यारी है ॥३८७॥

(चौपही)

पिता राज चंपावति राजू। अरुपित राज बैस बड़ काजू ॥
सुष संपति दंपति अधिकारी। अति रस विवस सुप्रान पियारी ॥३८८॥
पतिवृत एक चित्त उर आना। पति कहँ पारब्रह्म करि जाना ॥
तीरथ नेम जग्यँ पति आही। अष्ट जाम मिलि पूजत ताही ॥३८९॥
सावधान सेवा मन रहही। फेरि जु उलटि न उत्तर करही ॥
सूर सिंह जो आइसु देई। रंभा मन सासनु सो लेई ॥३९०॥
अष्ट नारि सहचरी सयानी। सहज सुभाइ देष हरषानी ॥
तेँ सब सेव कुँवर की करहीँ। अति आधीन सेव अनुसरहीँ ॥३९१॥
इहि बिधि बरष एक नियरानी। मैन चैन दिन रैन न जानी ॥
सेज सुगंध बचन परिधाना। भुवपति हेत सकल सनमाना ॥३९२॥

(दोहा)

एक बरष इहि बिधि भई, अति आनद अनुराग।
प्रान नाथ नवनागरी, पुहकर पूरन भाग ॥३९३॥

इति श्री रसरतनकाव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे रस वर्ष
बितीतिमानो नाम षोडसो अध्यायः ॥१६॥

---

१. देहते प्रकृति दो वार दिया है।

युद्ध खंड

(दोहा)

सूर सिंह चंपावती, रंभावति पितु पास ।
कलपलता बिरहिनि बिकल, पिय बिनु परम उदासु ।।१।।
जा दिन तैं पति गवनु किय, ता दिन तैं सुध कौन ।
मलिन बसन कृस अंग अति, भावतु भोगु न भौन ।।२।।
कीर पढ़ावति सुंदरी, नीर भरे जुग नैन ।
आँसनु सींचति वाटिका, बोलति कातर बैन ।।३।।
वरस दिवस पिय बीछुरै, निमष वरष बर जात ।
बिरह बढ़ावन सहचरी, तज्यौ न सुष संघात ।।४।।

(छंद मोतीदाम)

व्याकुल बाल बिहाल वियोगिनि कामिनी ।
विरह बिथा श्रम द्यौस न जाति न जामिनी ।।
जंपति है पिय नामु सदा संग कीर सौं ।
सींचति प्रीति जु सदा सरोवर नीर सौं ।।५।।
बारह मास वीतिति छहौं रितु ह्वौ गईं ।
सुंदरि को दुष दाइक लाइक ते भईं ।।
विद्यावंत सुजान सबै समुझावहीं ।
विरहिनि विरह वियोग उसासन पावही ।।६।।

(सोरठा)

षट रितु बारह मास । दुष वियोगु विरहिनि मरै ।।
पलपल छीजै मास । सुनु सुक स्याम सहाइ बिनु ।।७।।

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं जुद्ध षंडे बारहमासो आगम वर्ननो नाम प्रथमो अध्यायः ।।१।।

अथ बारहमासा वर्णन

(चौपही)

प्रथमहि आइ असाढ़ जनावा । विरहिनि विरह त्रास मन आवा ।।
रितु आगम अलि दीन दिषाई । मानौ मदन फौज चढ़ि आई ।।८।।

अबला अधिक डरत मन माहीं। राषनहार पीउ घर नाहीं॥
जिहि घर कंत करहि प्रिय केली। हौं अनाथ विनु कंत अकेली॥९॥
षट मृग गेह चैनु मन कीनौ। बालम बिछुर हमहिं दुष दीनौ॥
आवहि बँधे प्रेम रस दारा। पिय तुँहि जलधि विरह मैं डारा॥१०॥

(सोरठा)

विरहिनि मदन रिसान। पावक दल बल साजि करि॥
बाजे बंब निसान। उमड़ि मेघ गरजे गगन॥११॥

(तोटक)

दल दर्प्पक पावक सज्जि कियं। डर व्याकुल बाल बिहाल जियं॥
उमड़े घन मैंगल मत्त जनौ। गरजै नभ बाजति बंब मनौ॥१२॥
चलि अग्गित पौनु पवंकि जहाँ। चपला समसेर झमंकि तहाँ॥
अमरा पति चापु चढ़ाइ चढ्यौ। जसु बंदिय कोकिल कीर पढ्यौ॥१३॥
वरषा अति बाननि ज्यौं वरषैं। पिय संग सुहागिनि ते हरषैं॥
बग पांतिनि सोगति ओर चलैं। कप चीक्रत धावत सूर भलै॥१४॥
बिसवासिय मो घर कंत भयौ। परहथ्थ बिचाइ बिसारि गयौ॥
कहि कीर कहाँ विधि कौन करौं। किहि भाँतिनि मासु असाढ़ भरौं॥१५॥

(सोरठा)

सावन आवन कीन। पिय आवन पेषत नहीं॥
विरह अधिक दुष दीन। सुन सुक स्याम सहाइ बिनु॥१६॥

(चौपही)

सहचरि सावन आइ तुलानौ। मुहि मनोज अबला करि जानौ॥
बरन बरन तन कीन सिंगारा। मेदिनि मेघ मिलीं इक बारा॥१७॥
पहिरै नारि अरुन तन चीरू। मानौ इंद्र वधू पसरीरू॥
गावहिं गीत मुदित ढिग ठाढ़ी। हमहिं विरह वेदनि अति बाढ़ी॥१८॥
बर कामिनि झूलहिं इक डोरें। हौं झूलति सषि बिरह हिंडोरें॥
दिन जामिनि दोऊ षंम्ह सँवारी। मदन बयारि लगी अति भारी॥१९॥
पटुली पीर बिछुरि पिय चिंता। ठाढ़ी चतुर जाम जिय भिंता॥
मरुबौं जुगल नैन टक लाई। विना[1] लाल पलु थिर न रहाई॥२०॥

१—विलना ?

सुनि सषि कहौं कहाँ लगि केती। होइ परी उँहि सावन सेती ॥
मरुवा मेवन और हिंडोरा। रित विरहिन मैं भयौ मिलि डोरा॥२१॥

(सोरठा)

सावन सरबर होइ, चात्रक और मनोज मिलि।
मोँ संग और न कोइ, सेज अकेली रैनु दिनु ॥२२॥

(छंद मोतीदाम)

सुनै रट चात्रिक पीय पुकारि। रटै पिउ पीउ वियोगिनि नारि ॥
लग्यौ झर मेघ अषंडित धार। झरै जुग नैननि नीर अपार ॥२३॥
बहै जब मारुत सीत सुबास। तहाँ त्रिय सीतल लेति उसाँस ॥
हियौ बर बारिद यौं उमगंत। रह्यौ रमि नेह नवेलिनि कंत ॥२४॥
भई हरिता हरतैं चहुओर। करैं पिक दादुल सागर सोर ॥
तरप्पति विज्जु उरप्पति बाम। चरक्कत मेलि तरक्कत काम ॥२५॥
भई सरिता बहि लोचन नीर। बिना पिय लागति ना उन तीर ॥
सषी सुनु सावन आन दुलान। गयौ सुहि ग्रंह्म उरूप समान ॥२६॥

(सोरठा)

भादौं गहिल गँभीर। लषा मेघ उनमत्त अति ॥
बरषत लोचन नीर। नारि अकेली सेज मैं ॥२७॥

(चौपही)

भादौं मेघ सिंह घन गाजै। मनु मतंग दैवत हरि भाजै ॥
निसु दिनु मेघ अड़ित जल धारा। जल थल भरैं सरित सर धारा ॥२८॥
जामिनि स्याम भयानक भारी। कामिनि कंत भरहिं अँकवारी ॥
उनमद मदन सिंह चढ़ि आयौ। बिरहिन वधन काज उठि धायौ ॥२९॥

(सोरठा)

सिंह चढ्यौ अरु सूर। दामिनि कर तरवारि लै ॥
काम कियौ कछु क्रूर। तिहिं पर मेघ सहाइ सब ॥३०॥

(छंद मोदिका)

घर घर बाउ जुरे धर अंमर। मो जिय बैरि परौं अरि संमर ॥
चात्रक टेक हियै उर सालति। पंकज लीन तजी अलि[1] मालति ॥३१॥

१—उर।

(छद मालती)

अलि मालति छाँड़ि रह्यौ रमि वारिज सोचन[२] लोचन वारि भरै ॥
दिन जामिनि जाम लग्यौ डर नैननि ज्यौं जल जोर प्रवाह टरै ।
उमग्यौ मनु बिरह बयारि लगै घर कामिनि जत्न अनेक करै[३] ॥
विरहागिनि व्याधि विथा सुनिजै जु सषी बिनु प्रीतमु कौनु हरै[४] ॥३२॥
इकई भरि द्वैस निसा अति लागति जागति राति न अंतु लहै ।
घन घोरित सोर सुनै सहि कै हिय व्याकुल वेदनि काहि कहै ॥
निसि आव न नींद लगे नहिं लोचन जों मिस ही मिस सोइ रहै ।
सपनै नहिं (प्रानहि[५]) प्रानपती कहँ पेषति तौ धरि अंचल पाइ गहै ॥३३॥

(सोरठा)

अस्वनि अवनि अनूप । रितु उज्जल बरषा घटी ॥
मुदित मनोभव भूप । पुहुकर सरद सुहावनी ॥३४॥

(चौपही)

अस्वनि उदै कुंभ सुत कीना । बरषा घटी मेव जल हीना ॥
काम कुमद फूले वन माहीं । निरस निपट पीऊ घर नाहीं ॥३५॥
चात्रिक स्वाति बढ़ी उर आसा । हौं सषि मरति दरस की प्यासा ॥
पानी पान सरद सब स्वादू । मोहिं कीर अति बिरह बिषादू ॥३६॥
सोभित जोति चंद उजियारी । करहिं केलि रस रास धमारी ॥
पितर पूज नर पूजहिं साया । मुहि पिय बिनु सूनी भई काया ॥३७॥

(छंद त्रिभंगी)

रितु सरद सुहाई, जय जग भाई, जोति जुन्हाई उद्दितियं ।
उज्जल रस नीरं, भौरनि भीरं, सुरसरि तीरं उनमत्तियं ॥३८॥
चात्रिक जल आसं, सूर प्रकासं, बल्लभ आसं, तन बासं ।
सोहैं नव नारी, पियहिं पियारी, जोवन बारी संभोगं ॥३९॥
बहु व्याकुल बाला, ज्यों जक हाला, मुत्तिय माला, प्रानु हरै ।
अति अबला दीनं, नेह नवीनं, बिरह बिलीनं, काहि करै ॥४०॥

२—'सोचन' पद छूटा प्रतीत होता है । ३—अनकेरे । ४—रहे ।
५—अनावश्यक लगता है ।

(सोरठा)

कातिक परम पुनीत । दीप माल प्रमुदित जगत ॥
घर घर मंगल गीत । घर घर कामिनि कंत सुष ॥४१॥

(चौपही)

कातिक दीप मालिका होई । घर घर दीपु धरहिं सब कोई ॥
बर कामिनि षेलहिं मिलि सारी । पिया जुवा परस रस प्यारी ॥४२॥
परम पुनीत मास जग जाना । सब नर नारि करैं असनाना ॥
कामिनि कंत भरहिं अँकवारी । हौं अलि बिरह संग लै डारी ॥४३॥
सुनु सषि सदन दिया नहिं बारौं । दीप बारि किहि वदनु निहारौं ॥
संजोगिनि मानै सुषराती । हौं सषी विरह बिकल उन्माती ॥४४॥
सुनौ कीर पिय लाज न आवै । बिरह काल हम साथ गँवावै ॥
तुला भान चढ़ि पुन्य करावा । सीत काल सब जग तजनावा ॥४५॥

(दोहा)

सूर तुला चढ़ि पुन्य हित, मान्यौ चित अति चाउ ।
विरह तुला सषि हौं चढ़ी, एक पला धरि आउ ॥४६॥

(छंद पद्धरी)

भई दीप माला । करैं केलि वाला ॥
प्रिया पीय संगा । करैं काम रंगा ॥४७॥
सरद चंद्र वित्रं । मनौ मारि मित्रं ॥
लसै जौन्ह जोती । मनौ भूमि मोती ॥४८॥
भई सेज सूनी । लगै रैनि दूनी ॥
महाँ मैन षूनी । पिया पाउ ऊनी ॥४९॥
गई नींद नैना । नहीं चित्त चैना ॥
कहाँ पीउ पाऊँ । दिवारी मनाऊँ ॥५०॥

(सवैया[1])

आवति है आये घर जाति उन[2] संग लागि
नैनन की निद्रा किधौं नाह अनुगामिनी ।
कर की कमान काम कान लगि तानि वान
मारतु निसान प्रान कैसे रहैं कामिनी ॥

१—रसवेलि के २४वें पद से तुलनीय । २—फूलनि ।

कहँ कवि पुहुकर प्रीतम पियारे पीउ
बिछुरे तेँ दुसह दुहेली भई जु दामिनी।
रूनी भई पिया बिनु सूनी हौँ बिरह बाल
ऊनी भई सेज तब दूनी भई जामिनी ॥५१॥

(सोरठा)

अगहन उदित सीत। अग्नि तूल आदर भयौ॥
नारि मदन भयौ भीति। बिरह वरोसी उर बरै ॥५२॥

(चौपही)

अगहन आइ सीत अधिकाना। कंत कीन पर भूमि पयाना॥
हौँ सखी सीति भीति भई भारी। अग्नि अनंग अंग परजारी ॥५३॥
वृश्चिकु बिरह चढ्यौ अति अंगा। डसत मनौ मन मथ्य भुजंगा॥
बहुत व्याधि नहि पावत अंता। हरै कौन विन गारुरि कंता ॥५४॥
भई जोति विनु आनन हीना। अगहन गहन राह जिमि कीना॥
जिहिँ घर घर अति नारि सुहेली। विरह दर्द धन परम दुहेली ॥५५॥

(चंद्रजोति छंद)

प्रिया पीय प्यारी। सुषी दुहेली॥
न सेज सोवै। निसा अकेली ॥५६॥
सरीर छीनं। सीत कार विकार मारं॥
बिहालन अंग तजै। त्रिय सिंगारं ॥५७॥
अहार[1] हारं। जनु पंच बानं॥
वसंत वैरी हरति जु। आस पिय प्रानं ॥५८॥

(दोहा)

हिमि रितु हम पिय दरस हित, विरह विकल विकरार।
कीर धीर किहि बिधि धरौँ, बिनु पति प्रान अधार ॥५९॥

(सोरठा)

पौष प्रगट रस ऊंष। हिमकेर सीतल पौष जग॥
बिनु पिय दरस पऊष। बिरहिन भार सुभार किय ॥६०॥

---

१. मराल हेतं।

(चौपही)

पौष मास चौगुन भौ सीता । बिरहिनि काम आनि भई भीता ॥
मदन सूर मिल धनुक चढ़ायौ । पौहम नाम धुरंधर पायौ ॥६१॥
मोहन हनत पंच सर मारं । विकल व्याधि अलि बिरह विकारं ॥
जामिनि बढ़त छीन दिन होई । कामिनि विथा तकहिं[1] नहि कोई॥६२॥
ज्यौं जल हीन मीन मुरझाई । हम मानस जु निपट दुषदाई ॥
लै कर मदन धनुष तिहिं वारा । करन जगत बिरहिनि संघारा ॥६३॥
मुहिं निसि नीद न आवत नैना । कबहिं सुनौ धुनि सुंदर बैना ॥
तलफ तूल नहिं नेक सुहाई । अग्नि अनंग अंग परचाई ॥६४॥

(दोहा)

औरन तन तापन करै, बारि बरोसी घाम ।
बिरहिनि अंगु प्रजार कै, सैंकतु है कर काम ॥६५॥

(सोरठा)

माघ महां वल सीत । कंपत कठिन उरोज उर ॥
माधव मास पुनीत । मैं अरप्यौं तनु प्रान सबु ॥६६॥

(चौपही)

मकर मास मकरध्वज बैरी । बिरहिन दुबन दुबन जनु हेरी ॥
मनमथ सूर भये सँग बासी । वाहन एक चढ़े बिसवासी ॥६७॥
भानु मैन अनुचारन कीना । तिहिं गुन जगत तेज भौ हीना ॥
दारुन सीत बढ़न दिन लागे । मो पिय आन त्रिया सँग पागे ॥६८॥
क्यौं बिहाइ सषि सेज अकेली । कंत संग बिनु रहे दुहेली ॥
लोइनि नीर तरंगिनि बाढ़ी । सेज नाउ करि सरबन ठाढ़ी ॥६९॥
साँसन ऊस बहै पुरवाई । डोलत करन धार बिनु माई ॥
दुस्तर निपट विषम अति धारा । केवटु कंत लगावहिं पारा ॥७०॥

(दोहा)

पुहुकर माघ अतीत हुव, दिवस बढ़ै घटि राति ।
मो घट साँसन साँस अति, घटी घटी घटि जाति ॥७१॥

---

१. तषरिनँ ।

(सोरठा)

फागुन मास जु फागु । परम मुदित पेषत जगत ॥
नर नारी अनुरागु । विरहिनि विरह विहार सँग ॥७२॥

(चौपही)

फागुन फागु जगत मैं होई । मन प्रमुदित मानत सब कोई ॥
संजोगिनि धन करहिं सिंगारा । बनि बनि बरन बरन अधिकारा ॥७३॥
बहु सुगंध परिमल उर लावहिं । कामिनि काम केलि गुनु गावहिं ॥
नवल नारि नाइक अनुरागी । छाँड़ि लाज अवलोकन लागी ॥७४॥
गुरजन कानि अंत्रपट टूटे । लोक लाज के बंधन छूटे ॥
तरुनी तरुन मदन दल साजहिं । बाजन बिजै दुहूँ दिसि बाजहिं ॥७५॥
हौं अनाथ अबला अति भोरी । तिहि तन बिरह धरी दुष होरी ॥
मनमथ अग्नि अंग परजारी । बिरह बियोग हुतासन भारी ॥७६॥
षेलहिं पिय संग नारि धमारी । मो मन चाँचरि विरह बिहारी ॥
मो घर पीउ नही सुनि आली । वदन जु देह भई दुति ताली ॥७७॥

(सोरठा)

पुहुकर चैत बसंत । वन राजी राजी विपिन ॥
प्रमुदित कामिनि कंत । मदन फौज साजी मनौ ॥७८॥

(छंद पद्धरी)

मधु मास चैत सोभित बसंत । संजोग संग दंपति लसंत ॥
रितु पाइ राज रति राज साज । दल सज्ज कीन विरहिनी काज ॥७९॥
अंकुरित पत्र तरु हरित नील । हलि चलत मनौ दल मदन पील ॥
रँग अरुन फूलि किंसुकि विधान । जनु कटक माँझ सोभित वितान॥८०॥
सोभित सरस छवि अम्ब मौर । सिर ढरहिं मनौ मनमथ्थ चौर ॥
केवरौ मलति[1] मालती जाइ । जनु मैन वान राषिय बनाइ ॥८१॥
गुंजरत भ्रमर कोकिल सुकीर । जसु भनत बंदिजन बिप्र धीर ॥
लपटाइ लता लागी तमाल । जनु करति त्रिया कर अंकमाल ॥८२॥
सुनु सुक जु चित्त मुहिं नहिन चेत । भये मदन सूर मिलि मदन केत॥
हिय सून प्रान घरनी निकंत । किहि अंग संग मानौं बसंत ॥८३॥

---

१. मलिन ।

(सोरठा)

विरह विषम वैसाष । कामु तपतु अरु चित तपै ॥
सुकल उभय दोई पाष । सेज तरंगिनि नैन जल ॥८४॥

(चौपही)

सुभग मास वैसाष जनावा । तरनि तपत तापन जग छावा ॥
निसि उज्जल अरु रैनि उज्यारी । सूनी सेज भयानक भारी ॥८५॥
उज्जल फूल कुंद अति राजै । मनमथ बान सान दै साजै ॥
मिलि मयंक ताराइनि जोती । निसि त्रिय सीस फूल जनु मोती॥८६॥
जिनि घर कंत केलि त्रिय साजहिं । हँसनि हंस मंद दुति राजहिं ॥
हौं विरहिनि अबला अति बाला । ता पर करतु बिरह बेहाला ॥८७॥
सुनौ कीर को पीर घटावहि । वेदनि कौन विरह बिसरावहि ॥
को कहि जाय विरह की पीरा । व्याकुल बाल बिहाल अधीरा ॥८८॥

(सोरठा)

जे अगनति आवेस । निपट दुसह वृषभानु जग ॥
बंधव जेठ विदेस । कौनु उबारै मार तन ॥८९॥

(छंद तोटक)

अबला अति भार सुमार कियं । बिरहा तन बाल विहाल जियं ॥
रितु ग्रीषम दीरघ[1] देह तपै । रसना रव कामिनि कंत जपै ॥९०॥
छहू रितु छीन अधीन भई । सुष की सुधि सुंदरि भूल गई ॥
छिनहूँ छिन छीजत प्रानु घटै । रसना रस पीउ सु पीउ रटै ॥९१॥
निसि उद्दित अंबर इंदु इमं । हर नैन हुतासन नील जिमं ॥
चिनगी सम चंदन अंगु लगै । परसंत्त हियौ यहि[2] देह दगै ॥९२॥
घन सार तुसार सुसार मनौ । तन लागत सीर सुसीर जनौ ॥
अहि छौन बिछौन तै भौन भयौ । इहि भाँति सुद्वादस मास गयौ॥९३॥

(दोहा)

पुहुकर सागर विरह कौ, जद्दिप दुसह अपार ।
मन बच प्रेम जिहाज करि, नाथ निबाहन हार ॥९४॥

---

१. दीषम दीख । २. महि ।

षट रितु बारह मास गे, पुनि फिर आइ असाढ़ ।
मनमथ पीर न छिन घटी, बिरह दिनै दिन बाढ़ ॥९५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं जुध्य षंडे बारह
मास वर्ननो नाम द्वितीयो अध्यायः ॥२॥

(चौपही)

कलपलता बिरहिनि सुकुँवारी । सो सरपंच पंच सर मारी ॥
पांच बान दस दसा अवाना । अरु बस भई अंग अधिकाना ॥९६॥
पल प्रति तपत मूरछा होई । प्रान नाथ मिलवै नहिं कोई ॥
सहचरि चतुर सुवा गुनु जाना । विद्या पति दसचारि निधाना ॥९७॥
देषी विषम व्याधि अधिकारी । इक अबला कोमल सुकँवारी ॥
मधुकर उतहिं आनि रसमाता । मालती फूल फलौ जल जाता ॥९८॥

(दोहा)

विद्या पति जिय जानि करि, बिरहिनि बिरह अपार ।
चंपावति मग पग धरे, चले दूत अधिकार ॥९९॥

(चौपही)

उड़े कीर लै बिरह सँदेसा । चले जहाँ चंपावति देसा ॥
स्वामिनि चरन परसि उतमंगा । अरु जुग नैन भये जुग गंगा ॥१००॥
सुंदरि कहै सुनौ सुक धीरा । तुम मम बिरह बटावन पीरा ॥
तव बिछुरत मुँहि दूभर भारी । ज्यौं बिनु दीपक रैनि अँध्यारी ॥१०१॥
एक बिरह बस परम दुहेली । क्यों मरिहौं दिनु रैनि अकेली ॥
जो तुम चले करन उपगारा । राषन हाथ साथ करतारा ॥१०२॥

(दोहा)

संकर संग सहाइ तुव, सुनौ कीर बलि जाउँ ।
जिहि जिहि मारग पगु, धरौ तहँ तहँ सीस धराउँ ॥१०३॥
कुसल सहित पहुँचौ जहाँ, जहँ चंपावति देस ।
प्रान नाथ पिय पाइकै, कहियौ यहै संदेस ॥१०४॥

(सोरठा)

जिहि रातौ मेरो पीव । हौं दासी तिहि नारि की ॥
करौ निछावर जीव । जब निरषौ संजोग सुष ॥१०५॥

(चौपही)

यहै चित्त सुहि परम परेषौ । कागद महि नहिं आवहिं लेषौ ॥
नवल नारि नाइक मन भाई । दासी क्यौ न लई सँग लाई ॥१०६॥
अब पुनि मनहिं मनोरथ होई । बिना नाथ नहिं जानहिं कोई ॥
देषौ एक सेज संजोगू । दुहिं दिसि प्रेम प्रगट रस भोगू ॥१०७॥
लै कर बाउ विजन कर ढोरौं । नव सिष रूप निरषि त्रनु तोरौं ॥
जिहिदिन जन्म सुफल करि जानौ । स्वामी कृपा सत्य कर मानौ ॥१०८॥
पहिली प्रीत जोर चित लावहु । दीपति दरस नैन अघवावहु ॥
मैं बिनती करि करी ढिठाई । तिहि ऊपर अब राज[1] बड़ाई ॥१०९॥

(दोहा)

विद्यापति संदेस यह, आन बचन नहिं ठाम ।
और कहौ सुष आपने, जो कछु कहौं बिराम ॥११०॥
यह कहि कै करि कै विदा, उदित सूर परभात ।
बहुरि विरह विहबल भई, सिथिलित अंग सुगात ॥१११॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं जुध्य षंडे
सुक संदेस वर्ननो नाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

(चौपही)

लै कर कीर बिरह सँदेसा । चले अगम चंपावति देसा ॥
गिरिवर गहन विपिन गंभीरा । सरिता समुद सरोवर नीरा ॥११२॥
निरषत नैन विजच्छिन जाना । उच्च गगन मग जाय उड़ाना ॥
जब निसि निकट अस्थ रबि होई । तरवर विहंग बसै सब कोई ॥११३॥
यह पुनि मिलहिं सुवा संघाता । पूछहि निसि चंपावति बाता ॥
बैठे निकट मिलै संग जासू । नहि पत्याइ हिरदे मै तासू ॥११४॥
फल रसाल परपक्व सुपावै । फल अहार छुधा बिसरावै ॥
दिवस पंच मारग प्रस्थाना । देषत नैन विकट उद्याना ॥११५॥
बहु विधि बाग राज अस्थोभा । मधुकुर विहंग बासु रस लोभा ॥
सरवर छोड़ि कमल चित चोभा । अनवन भाँति फूल फल सोभा ॥११६॥

---

१. अपराध ?

सरवर वियौ समद गंभीरा । चंदन विरष लगे सब तीरा ॥
नाना वरन पारि तहँ साजी । कामिनि कलस भरहिं गुन राजी ॥११७॥
चंद्र वदन मृग लोचन नारी । पहिरै वरन वरन तन सारी ॥
परम उतंग चारि दिसि बारी । उतरहिं चढ़हि तहाँ पनहारी ॥११८॥
कवि मन निरषि अचंभौ होई । वियौ उकति बरनै नहि कोई ॥
अप्छरि चंद मनौ सब आई । अमर लोक तै आवहिं जाई ॥११९॥
देषत कीर अचंभौ कीना । मोहन सूर दोस नहिं दीना ॥
जिहिर देस की अस पनिहारी । क्यौ न हरै मन राजकुमारी ॥१२०॥
चल्यौ बहुरि उड़ि नगर मझारा । जहाँ कनक मंदिर अधिकारा ॥
मनि मय कलस राज दरबारा । वरनि न जाइ बरन विस्थारा ॥१२१॥
प्राची दिसि तब चल्यौ सुजाना । सूर सिंह मंदिर जहँ जाना ॥
मंदिर मध्य निरषि फुलवारी । उतरौ कीर चतुर गुन भारी ॥१२२॥
नाना बरन फूल तहँ फूले । मधुकुर वास मान तहँ भूले ॥
सरबर सुभग मध्य सुषदाई । पंकज परम रम्य छबि छाई ॥१२३॥
विहरति तहाँ नृपति सुकुँवारी । मानहु सरद चंद उज्यारी ॥
वल्ली लता प्रेम अनुरागी । मानौ कनक लता रस पागी ॥१२४॥
सोहत नील वरन तन सारी । ज्यौ घन तरल तड़ित उजियारी ॥
विहँसत हँसत दसन छबि देषी । दधि सुत तीर हीर छबि पेषी ॥१२५॥

(दोहा)

तरवर सर बल्ली लता, सुंदरि करति विहार ।
संग सकल सहचरि लिये, कीर विलोकनिहार ॥१२६॥

(चौपही)

कंचन लता जबै ढिग आवै । तिहिं के रूप लता छबि छावै ॥
सरवर तीर जबहिँ धन जाई । कमल देषि बहु भाँति लजाई ॥१२७॥
बारिज वदन देषि परगासा । इदु जानि सकुचे सरपासा ॥
देषत कीर परम सुषमाना । रंभावति जानी उनमाना ॥१२८॥

(दोहा)

जब निरष्यौ रंभावती, कीर कुसम जुत डार ।
अचिरजु अति अभिलाष हुव, देषि सुवा तिहिँ वार ॥१२९॥

रतन जड़ित पग पैजनी, कंठ मुत्ति वनमाल ।
षग पति षग वारी गरै, निरषि विमोही बाल ॥१२०॥

अरुन चुंच अरु वरन जुग, हित पंछी बहु रंग ।
मानौ चित्र विचित्र किय, चतुरानन चतुरंग ॥१२१॥

(चौपही)

करी चाहि सुंदरि ढिग आई । चल्यौ छाँड़ि द्रुम डार उड़ाई ॥
उड़ि करि और लता पर गयौ । अति अभिलाष कुँवरि मन भयौ॥१२२॥
जिहि छिन निकट सुंदरी आवै । उड़हिँ कीर बहु भाइ दिषावै ॥
बैठहि जाइ बहुरि द्रुम डारा । लोचन ओट होहि नहि न्यारा ॥१२३॥

(दोहा)

कीर गहन सुंदरि चली, छोड़ि सषी गन साथ ।
निकट जानि एकंत मैं, पढ़ी कीर यह गाथ ॥१२४॥

(गाथा)

विरहिनि विरह विकारं । न जानंति नारि संजोगीनी ॥
धनि धनि जिमि अविकारं । बिरला बूझति रंक दुष्वह ॥१२५॥

(चौपही)

यह कहि कीर कुँवरि कर आयौ । वचनु रसाल बाल मन भायौ ॥
अचरज सुनत बिगाबर वाता । प्रफुलित वदन मनौ जलजाता ॥१२६॥
सहचरि सुनत ततच्छन आई । सुंदरि सुकहि बिलोकन धाई ॥
अनवन बरन[1] रूप अधिकारी । अरु विद्या दस चारु उदारी ॥१२७॥
जिहि प्रसन्न कोई बात चलावै । द्वादस भाव अर्थ बैठावै ॥
अति सरूप पंडित मन धूता । मानौ सुक पारासर पूता ॥१२८॥
अचिरजु अधिक सबनि मन होई । बहु बिधि बात कहैँ सब कोई ॥
कोई कहै छूटि पिंजर तैं पायौ । कोई कहै अमर लोक तै आयौ ॥१२९॥
सकल सषी पूछैं तिहि बारा । सत्य न कहै भेद निर्धारा ॥
तिहि छिन कनक पींजरा साजा । ताहि मध्यि दुज राज विराजा ॥१४०॥

---

१. अन वरन ।

रंभा पय वोदनु करवायौ। तिहि छिन मनौ काम फल पायौ॥
इहि अंतर सुंदर सुक वारा। सूर सिंह आये तिहि बारा ॥१४१॥
सुंदरि कर सुक निरषि सुजाना। अचिरजु करि अपने उर आना ॥
पूछौ कीर कहाँ यह पायौ। रंभावति कर गहि दिषरायौ ॥१४२॥
यह प्रसाद विधना बहु कीनौ। पंडित कीर अचानक दीनौ ॥
जानति नहीं कहाँ ते आयौ। अमर लोक तैं इंद्र पठायौ ॥१४३॥
देष्यौ कुँवर विजच्छिन भारी। नाना बरन रूप अधिकारी ॥
अति रसाल बानी मन भाई। बहुरू कीर गाथ गुन गाई ॥१४४॥

(गाथा)

नाइक मधुप समानं। चात्रिक चित्र नाइका नही ॥
जिय जानंति सुजानं। अंत अधिकार सुष्ष दुष्षं ॥१४५॥

(दोहा)

नाइक मधुप समान है, मन सुगंध रस प्रीत ।
पान सौह बिन स्वाति जल, त्रिय चात्रिक की रीत ॥१४६॥
बहु नाइक नाइक जिते, ते न होहिं अनकूल ।
सो तज मधुकुर मालती, बँधौ कमल के मूल ॥१४७॥

(चौपही)

यह कह कीर मौन मन कीनौ। सूर सिंध नहिँ उत्तर दीनौ ॥
रंभा समुझ दिंगबर बाला। उपजि प्रीत पुलकित भौ गाता ॥१४८॥
कहति बैन सुनियौ प्रति प्राना। यह तौ सकल भेद हम जाना ॥
यह सुक कहत आय त्रिय ताकौ। तुम रस रंग रचौ मनु जाकौ ॥१४९॥
स्वामी चतुर एत गुन जाना। एक जीभ नहिँ जाइ बषाना ॥
पहिल कछू कही हम सेती। मैं तब मनहिँ न आई एती ॥१५०॥
विरहिन विरह विरहिनी जानै। रोगी बैद रोग पहिचानै ॥
अब कहियै विरदंतु बनाई। कौन नार किहिं ठाँ बिसराई ॥१५१॥

(दोहा)

सूर सिंघ जिय जानकरि, कलपलता कौ दूत ।
कमल वदन विहसँ मनौ, सची सहित पुरहूत ॥१५२॥
धन्न मान धन चातुरी, जान सहज मन भाव ।
कलपलता विरदंतु कथ, राष्यौ कछु न दुराव ॥१५३॥

सुनतु सुकहिं विरदंतु, कहि प्रगट प्रेम रस बैन ।
तन पुलकित गद गद गिरा, वारिद वारिज नैन ॥१५४॥
मान सरोवर आहि क्यौं, गुर बरनतु बपु अंतु ।
बहु विसेष विनयन लग्यौ, सकल कथा विरदंतु ॥१५५॥
कारन सुरपति आप तैं, अप्छरि भूतल वास ।
रूपरासि रसि माधुरी, गुन गन इंदु प्रकास ॥१५६॥
विद्या पति जिय जान करि, दंपत अति अभिलाष ।
तब सँदेस विनवन लग्यौ, चातुरता बहु साष ॥१५७॥
वपु विहंग विद्या निपुन, सुरवन कौ हौं दूत ।
जौ सँदेस विनवै नहीं, दूत कहावै धूत ॥१५८॥

(चौपही)

सुनिये राजधिराज संदेसा । जिहि कारन आयौ परदेसा ॥
कलपलता सुंदर सुकमारी । सो तुम विरह जलधि मैं डारी ॥१५९॥
प्रथमहिं चरन वंदना कीनी । कर दंडवत ढिठाई कीनी ॥
रंभावत कौ कह्यौ प्रनामू । जद्दिप सुनौ श्रवन नहिं नामू ॥१६०॥
तलफत विरह दाह तन छाती । पूँछत सकल प्रेम रस माती ॥
जिहि रस रच्यौ कंत बिलवासी । हौं तिहि चतुर नार की दासी ॥१६१॥
अब छिन छिन करतार मनाऊं । यह प्रसाद दै पति हित पाऊं ॥
पौढि प्रजंक रंग रस पीजे । वाउ विजन मेरे कर दीजै ॥१६२॥
मैं तो कछु ढिठाइ न कीनी । किहि गुन करी सेव कर हीनी ॥
रजनी भई चरन लिपटाती । सेवा करति सँग लगि जाती ॥१६३॥
जो आवतो सँग ही लागी । करती सेव प्रीत अनुरागी ॥
पहिली प्रीत हेत हित कीजे । जुग नैनन जुग दरसन दीजै ॥१६४॥

(दोहा)

विद्यापति इमि उच्चरै, कलपलता संदेस ।
विरह बिथा कहँ लगि कहौं, सहस बदन थकि सेस ॥१६५॥
दग पावस ग्रीषम हृदै, तनु कंपति जनु सीत ।
विरहिन वपु सब रित समै, सदा विरह भय भीत ॥१६६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं युद्ध षंडे सुक
संदेस वर्णनो नाम चतुर्थमोध्यायः ॥५॥

(चौपाई)

रंभावती मान कछु कीनौ। प्रीतम पियहिं उरहनो दीनो ॥
प्रीति निरंतर वहै कहावै। जौ मन की नहिं बात दुरावै ॥१६७॥
तुम चित भेद कपट कर राष्यौ। वरसहिं बस रसना नहिं भाष्यौ ॥
हौ न हौंहु औरन सी नारी। दासी सदा जु अग्याँकारी ॥१६८॥
ज्यौं जुवती रस बस करि आये। सो धन क्यौ न संग करि लाये ॥
जिहिं रस रंग पीउ अनुरागा। मो चित मन कंचनु नग लागा ॥१६९॥
सौत जान हिय हौं न डराऊँ। त्रिय सठ हटहिं सौति के नाऊँ ॥
जौ पिय मन अनुरंजन जाँनौं। सौतिन सकल सषी करि मानौ ॥१७०॥
रूप रंग जोवन अभिमाना। मोहन जोहन और सयाना ॥
करहिं न वस्य प्रान पति कोई। मनु अनुसरे आपु वसु होई ॥१७१॥

(दोहा)

अब इतनी बिनती यहै, सुनियै प्रान अधार।
कलपलता लै आइये, पलु न लगावहु बार ॥१७२॥

(चौपही)

सूर सिंह हँसि उत्तर दीनौ। वचनन मोहि मोहि मनु लीनौ ॥
यह तौ दोस न दीजै काहू। विध परपंच भयौ निरबाहू ॥१७३॥
सुरपुर छाँड़ होहि घरवासी। अप्छरि भई तुमारी दासी ॥
रंभावती बहु भागिन रानी। सुर अप्छरि दासी परमानी ॥१७४॥

(दोहा)

सौति नाउँ क्यौ लीजिये, मो मन यह संदेह।
अग्नि दीप क्यौं देषिये, वरसौ दुरे न मेह ॥१७५॥
जो मनु औरहि राँचतौ, धरते अंग न जोग।
विपन गहन नहि गाहते, छाँड़ सकल रस भोग ॥१७६॥
जबहि चलहि वैरागराहि, भूवपत अग्याँ पाइ।
तब तिहि मारग जाइकै, उहि पुनि लैंहि लिवाइ ॥१७७॥

(चौपही)

रंभावति करि लज्जित नैना। मृदु मुसक्याइ कहत मृदु बैना ॥
इहि तौ वेद भेद विधि भाषी। दुहुँ दिस प्रीत प्रीत की साषी ॥१७८॥

स्वामी कृपा सत्य कर मानौ। अब उहि सरस आप तैं जानौ ॥
उहि विरहिनी विकल बेहाला। पल न गहनु करियौ इहि काला॥१७९॥
प्रातहि चलै हसै मिल धाई। हमहिं लेउ संग कर लाई ॥
ब्रह्म कुंड तीरथ जग जानौ। प्रगट पुन्य पौरान बषानौ ॥१८०॥
पहुमपाल सौं आइसु लीजै। मारग साजु साज सब कीजै ॥
और न मंत्र चित्त महँ ल्यावहु। यहई मंत्र हियै ठहरावहु ॥१८१॥

(दोहा)

पति सो मत ठहराइ कै, दीनी कीरहिं आस।
कलपलता को फिर दयौ, रंभावति घरबास ॥१८२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं जुद्धषंडे दंपति
संवाद निमंत्रनो नाम पंचमोध्यायः ॥५॥

(चौपही)

होत प्रात उग्गित जग भाना। राज द्वार पठये परधाना ॥
बिनती कही कहौ यह भाई। बैठि रहौ न निपट अरसाई ॥१८३॥
जौ मै राज रजाइसु पाऊं। कछुवक दिवस सैल कर आऊं ॥
कर अषेट वन करौं नियारा। देषौ नवल भूमि अधिकारा ॥१८४॥
रित वसंत सोभित वन राता। षेलहिं जाइ सकल संघाता ॥
ब्रह्म कुंड तीरथ इक आही। कहहिं पुनीत पहुम पर ताही ॥१८५॥
करहि जाइ दंपत असनाना। आवहि बहुर राज अस्थाना ॥
इतनी बात कही गंभीरा। आइसु दियौ नृपत बल वीरा ॥१८६॥
हय गज दल पष्षर बहु साजे। सुभट सँग सावंथ गल गाजे ॥
रथ हैवर चौंडेल सँवारे। बिहँस राज मारगु पगु धारे ॥१८७॥
सोभित विपन बसंत अनूपा। कूजित बिहंग बिबिधि बिधिरूपा॥
नवल वसंत नवल पिक जोरी। नवल संग गुन आगर गोरी ॥१८८॥
सहचरि नवल नवल सब संगी। नाइक नवल नवल नवरंगी ॥
पेषत वन अद्‌भुत असथाना। रंभावति मन आँनद माना ॥१८९॥
सहचर कहँ कुँवर सौ बाता। देषौ आजु सकल बन राता ॥
कोमल किसल नवल रँग राते। तहँ कोकिल गूजहिं उनमाते ॥१९०॥

बौहुर होहिँ नव पल्लव हरे। फूलहिँ फलहि सकल रसु भरे॥
बहुरि पीत ह्वैहैं रँग पाके। तब फिर काम न आवहिँ ताके॥१९१॥
इहि अंतर कोई पल्लव लेही। कोई लहर अंम महँ देई॥
कोइ तोरे फल काचे पाके। जिहिबिध जो आवहिं जिय जाके॥१९२॥
बाउ एक बहिहैं इक बारा। एकहिं बार होहिँ पतझारा॥
जो रँगु सुरँगु सथिर न रहाई। जो उपजत सो बिनसत माई॥१९३॥
जोबन आहि आजु मैमंता। मन वच क्रम कर से बहु कंता॥
करहु न जिय जोबन अभिमाना। ... ... ॥१९४॥
मन जनु जान कंत है मेरा। यह वह नाइक सबहीं केरा॥
जोर दिष्टि चितवै चष फेरी। रानी होहि पलक महँ चेरी॥१९५॥
जिहि तिरिया कहँ होहि बड़ाई। ताकौं साचु रूप तरुनाई॥
सो सुहाग सब ऊपर राजै। जिहिं नाइक कर कृपा बिराजै॥१९६॥
एकु चित्त करि सेवहु ताही। जानहु रब सब ऊपर आही॥१९७॥

(दोहा)

कहँ रानी दासी कहाँ, कहाँ पौढ कहँ बाल।
ज्यौ पिय के मन भावहीं, सो सौतिन सिर साल॥१९८॥

(चौपही)

रंभा कहहि सुनौ सहचारी। मुहि मति देव सीष सषि प्यारी॥
हौं पुनि सेव करौं बहु भाँती। पल पल करौ पिया मन साँती॥१९९॥
हौं निरगुन पिय अति गुनवंता। क्यौं करि कहौं कै मेरो कंता॥
जानौ नहीं जगत विधि सेवा। जथाँ सक्ति करि पूजौं देवा॥२००॥
ना जानौ पिय किहि गुन राँचै। कंचन कौन सुहागे आँचै॥
सेवकु सकल करैं बहु काजा। सो सुजानु जिहि बूझहिं राजा॥२०१॥

(दोहा)

जहँ लगि जिय गुन बुद्धि अति, सेउ करौं करि चाउ।
नहि जानौ उहि कंत कौ, किहि गुन उपजै भाउ॥२०२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं जुद्ध षंडे वनबिहार वर्ननो नाम षष्टमोध्यायः॥६॥

(दोहा)

विपन गहन गहवरि जहाँ, षेलत कुंवर अहेरि ।
बहु मृग बहु मृगराज गज, बहु सावक बहु फेरि ॥२०३॥
इक चित्रक इक स्वान गहि, इक बहु बाजि सिचान ।
एक षड्ग बंदूक इक, एक बांन संधान ॥२०४॥

(चौपही)

सिंघ सिंदूर होइ अनकारा । इहि विधि नित प्रति करहिं सिकारा॥
गज मयमत्त तरकि तर घोरा । अनुसावज बहु करहिँ अहेरा ॥२०५॥
डीठि डिठार हनहिँ किरवाना । इक जोजन पर होंहि मिलाना ॥
कहत सूर सुभट सौँ बाता । वन पुन रात बरनि पुन राता ॥२०६॥
सिंह बाघ सूकर गज ठाटा । ये पंथिन मारत इहिं बाटा ॥
इहि मग आइ चलहिँ सो सूरा । करहि पंथ निरमल पद पूरा ॥२०७॥
मद मैगल कहँ आइसु देई । सिंघ सिंदूरन छाला लेई ॥
सावधान इहि मारग जाहीँ । जो निबिहै तौ बड़ि ताही ॥२०८॥

(दोहा)

कठिन पंथ गहबर विपिन, पथिक चलै मन बूझ ।
जो सूरा सो निरबहै, जो काइर सो जूझ ॥२०९॥

(चौपही)

कहै सुभट सुन राज कुँवारा । यहिँ सब आइ बँधे संसारा ॥
बहु विध रतन आहिँ इहि माहीँ । सबै षरे सब षोटे नाहीँ ॥२१०॥
काइर सकल सकल नहि सूरे । सब नहि सुघर नहीं सब कूरे ॥
सबै सिद्धि जोगी नहि होई । सब तरुनी पदमिन नहिँ जोई ॥२११॥

(दोहा)

सब तरबन चंदन नही, सब कदली न कपूर ।
सब छीपन मुकता नही, सब दल नाहिंन सूर ॥२१२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचिते जुद्ध षंडे आषेट
वर्ननोनाम सप्तमोध्यायः ॥७॥

(चौपही)

इहि बिध नित प्रत करहिँ पयाना । इक जोजन पर होहिँ मिलाना ॥
उभै माल तिहि मारग लागे । सुर अपछरी प्रीत अनुरागे ॥२१३॥
गिरबर बिपन गहन अधिकारा । नाके साइर और अपारा ॥
देषत बिधि अन उन अस्थाना । माया पुरी नगर नियराना ॥२१४॥
माया नगर भूप वर मंडा । जिन बस करी पहुम नव षंडा ॥
दलबल सर्व दर्व संजीते । वह अजीत उह सब कोइ जीते ॥२१५॥
मदन देव तिहि राजहि नाऊ । बहुत सुभट जोधा तिहिँ ठाऊ ॥
तिहि पठये विवि दूत सुजाना । तिहि ठाँ सूर सिंघ परधाना ॥२१६॥
कहुहि राज तुम कहौ जुहारू । संदेसौ सुन करौ बिचारू ॥
इहि मारग कोइ जाइन राजा । जौ आवै तौ विनसहि काजा ॥२१७॥
आवन हम न देहिँ इहि वाटा । हम तौ रोक रहहिँ सब घाटा ॥
नातरु उलट जाब मग आना । कुसल छैम निबहै अस्थाना ॥२१८॥
इहि मारग कोई निबह न जाई । माया पुरी कठिन गुन गाई ॥२१९॥

(दोहा)

दूत बचन गंभीर सुन, और राहि रघुवीर ।
सब बिचार पूछन निर्विति, गये कुवँर के तीर ॥२२०॥
दूत बचन संदेस कह, बैठे मंत्र विचार ।
सो कीजै जो निरबहै, माया पुर हरद्वार ॥२२१॥

(चौपही)

उत्तर पंथ अगम अति भारी । गिरवर गहन बिपन वन सारी ॥
मदन देव राजा बलबंडा । जीते भूप बहुत गुन चंडा ॥२२२॥
उलट जाइ तौ जात बड़ाई । बृम्ह कुंड पुन नियरे ताई ॥
फेर उलट नाहीँ पैसारा । सकल देव माया बिस्थारा ॥२२३॥
जौ निबहै इहि तहँ हर द्वारा । भेटहिँ जाइ अमर पुर दारा ।
कहत सूर सुन गुन गंभीरा । छत्रिहिँ मरन हाथ है हीरा ॥२२४॥
जुद्ध नाम सुन हौँ न डराऊँ । दुहु दिसि आजु अप्छरी पाऊँ ।
जीतौ जुद्ध मदन दल षेदौं । जौर मरौ रविमंडल भेदौं ॥२२५॥

(दोहा)

इहि कहि दूत बुलाइ कै, बिदा किये दे पान ।
हमहि तुमहिँ निजु होहिँगौ, जुरतहिँ जुद्ध बिहान ॥२२६॥

तुम वहु भूपन जीत कै, गर्व भरे वहु भार।
जुरत जुद्ध अब जानबौ, कौ षेरी कौ सार ॥२२७॥

(चौपही)

माया नगर गये फिरि दूता। जिहि ठाँ मदन देव पुरहूता ॥
सुनकर भूप सूर कर बैना। कहौ सुभट साजौ तुम सैना ॥२२८॥
पंच लाष तुष्षार पषारा। अउत नाग जनु मेघ पहारा ॥
सुरथ पैक साजौ चतुरंगा। श्रोनित करौं सरसुती गंगा ॥२२९॥
सुन आइसु दल कीन पयाना। बाजे दुंदभि ढोल निसाना ॥
सुनत सूर इत पहिर सनाहा। दुहुँ दिस दल बल सिंधु अथाहा ॥२३०॥

(दोहा)

बिना जाप संजम किये, रन छत्री उद्धार।
मरे सुर्ग जीवत सुजस, नीके उभय प्रकार ॥२३१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं जुद्ध षंडे
सैना बर्ननो नाम अष्टमो अध्यायः ॥८॥

(दोहा)

सूर उतहिं इत सूर दल, सकल भये असवार।
बीर जुद्ध जिय जान कर, भये ते कौतिक हार ॥२३२॥

(छंद तोटक)

मदनं दल दीरघ सज्ज हुवं। अमरापुर कौतिक हार सुवं ॥
चतुरंग न सैन सवार तहाँ। रथ पाइक पील तुरंग जहाँ ॥२३३॥
सहनाइस भेरि निसान बजै। दुहुँ ओर तैं सूर सनाह सजै ॥
रिष नारद बीन सुहथ्थ लियं। मुख मारुव राग अलाप कियं ॥२३४॥
गिरजा पति नंदिय आन चढ्यौ। जिय जुग्गिन पान हुलास बढ्यौ॥
बहु दंति सुपंतिय जोर भये। जनु कज्जल स्याम पहार नये ॥२३५॥
तर जो रह्यो हत्थ जँजीर जरे। घन घूमत अंकुस आन घरे ॥
वरषा जिमि फौज बनाइ तहाँ। मद मैगल उन्नत मेघ जहाँ ॥२३६॥
चपला जिमि खड्ग चमंकि इमं। वरषै बहु बूँदनि तीर जिमं ॥
रन रोस तै पौन प्रचंड चलै। वहु वीरन के मन माह मलै ॥२३७॥
लष्षन लष्षन पंच अनी। विरच्यौ रन ज्यौ हरद्वार धनी ॥२३८॥

(दोहा)

सूर सुभट इत सूर दल, कोपि चढ़े हय पीठ।
दुहूँ दिस तै सनमुष चले, मिली सुडीठहिं डीठ ॥२३९॥
ग्यान राइ कहँ अग्र करि, वाम अंग रघुबीर।
दिस दछिन सब दल सहित, मंत्री गुन गंभीर ॥२४०॥
सूर सिंध नाइक नवल, तिहि पीछो रनु धीर।
मानौ पहुम जराव किय, मंदाकिन के तीर ॥२४१॥

(छंद भुजंगमप्रयात)

मंडियं जंग जुर जंग तीरं। जग्गियं वीर वीराधिधीरं॥
डमरू डमकि डमकियं गवरि कंतं। डंकनी जहां दमकंत दंतं ॥२४२॥
जंबुकन जान जिय बात जोई। जुग्गिनिय जान जिय आस होई॥
अप्छरीय छाहँ उच्छाह कीयं। दिष्षियं सुरसु रन रंग श्रीयं ॥२४३॥

(दोहा)

सूर सुभट सावंथ दल, विरचित वंधिय[1] लाम।
सूर बदन रन रंग श्री, सूर विलोक ललाम ॥२४४॥

(छंद भुजंगमप्रयात)

जबै राग बंधी बजौ राग मारू। कियौ अच्छरी अच्छ मंगल्ल चारू॥
दुहुँ ओर निसान सो वज्जै जुझाऊ। उठै जीय-जोधान जूझंत चाऊ ॥२४५॥
बजे श्रृंग सारंग भीरी मृदंगा। बजे बाँसुरी संष सहनाइ संगा॥
वेजै दुंधभी ढोल ते संष तूरं। लहै लोह सौभे गहै षग्ग सूरं ॥२४६॥
हसैं षेत दानै लसैं भूम माहीं। फिरै देवि गौरा गहै पीउ वाहीं॥
लियै संग वेताल ते दैं ताल ताली। सुरा पान कीनै मनौ मत्तवाली[2] ॥२४७॥
नचैं भूत भैरौ छुटे केस सीसं। करे जुग्गिनी पान दंमकंत हीसं।
तहाँ गौरि भरतार डौंरू बजावै। लसै चंद माथै महा सोभ पावै ॥२४८॥
जुरी डीठि फौंजं करैं मारुमारं। दुहु ओर सामंथ काढै हथ्यारं॥
चलै तीर गोला मनौ मेघ धारं। लगै साँग हथ्थं जु बाजंत सारं ॥२४९॥
लगै षग्ग एकै गिरै सीस टूटै। कहूँ वान साँगी दुहुँ आँख[3] फूटै॥
करै एक अर्धं जु अंगदु भालं। पियौ रक्त काली लई ईशमालं ॥२५०॥

---

१. वंधिय राम। २. मत्तवाही। ३. अनुमानित।

परै एक घाइल्ल घूमंत धाई । तिने देष सूरान के चित चाई ॥
फटो षोपरी गुंद फैलंत पिंडी । मानौ माथ मारग्ग फूटी दहिंडी ॥२५१॥
घनै धाइ बोले रकन्ते अभक्कै । बहै एक लोहू हिलक्की हिलक्कै ॥
जुरे जोर जोधा मही मारु भारी । लरैं लोह थक्कै मनो हार ज्वारी ॥२५२॥
तबै ग्यान चौहान बागै उठाई । पर्‍यो बृंद पछ्छी नमै वाजुताई ॥
उतै उत्तरी राइ तैं पील पेलै । महा मेघ भादो मनौ इंद्र ठेलै ॥२५३॥
तलै बीर लै हथ्थ हथ्थी जु धाये । वे मनौ बद्दला बाइ वेगै चलाये॥
षिलै षग्ग पुल्लै भये तेउ तारे । किलक्कार धावन्त दंती सथारे ॥२५४॥

(दोहा)

ग्यान राइ अगवानहीं, सूर पौहुचे आइ ।
नैन अरुन तामस भयौ, रिसि रन घल्लेइ धाइ ॥२५५॥
सूर सिंघ तह सिंघ जिमि, हथ्थ गही तरवार ।
करवाकिरन प्रकास किय, तमकरि कुंभ बिदार ॥२५६॥

(छंद तोटक)

समसेर सम्हारत सूर लियं । धरनी गज मुत्तिय चौक कियं ॥
बहु[1] मुंडन टुंडन ठुंड कियं । निरषैं नभ नाइक अप्छरियं ॥२५७॥
सुरिता[2] बहु श्रोनत नीर वही । कफ फेन सुवार सिवार सही ॥
दर राइ धरे रन धाइ घनै । गज टापू वपारन स्याम बनै ॥२५८॥
घररात सुघाइल घूम परैं । जनु कोकन संभ्रम लोक करैं ॥
जल जातन ज्यौं उतमंग तरैं । पनहारिन जुग्गिन कुंभ भरैं ॥२५९॥
नृप उत्तर साँग सु हथ्थ लई । उत[3] सूर सु जोर सु को पदई ॥
कर सूर इतै कर षग्ग रह्यौ । कटि सीस मनौ वध केत रह्यौ ॥२६०॥

(दोहा)

तह्न रक्त जुग्गिन पियौ, ईस रची उरमाल ।
सूर सिंघ सिव रूप ह्वै, मदन दह्यौ तिहि काल ॥२६१॥

(छंद मोतीदाम)

तहाँ तकि संभु रचै उरमार । गुहै गिरजा गज मुत्तिय हार ॥
रचौ गुर अप्छरि फूलनि माल । पियौ रक्त जुग्गिन आनन लाल ॥२६२॥

---

१. बौह । २. वौह । ३. उर ।

करै बल भच्छ किलक्कत येत । निरष्षर देष धुरांकित षेत ॥
भवैं भवगी घन गीध सिचान । भयानिक धूम उभ्यात मसान ॥२६३॥
वहै वहु केत वरातिय राह । सजै मिल डंकिनि प्रेत विवाह ॥
करे गज चर्मनि की इक ताहि । × × × ॥२६४॥
धरी सु धरी सिर तानौ मौर । ढरे नर केसन सीसन चौर ॥
भये तहाँ बाहन जंबुक स्वान । चढ़े फिरैं दूलह भूत गुमान ॥२६५॥
सिवा फिकरैं जनु गावहिं गान । रच्यौ जनु मंडफ भूमि मसान ॥
लिये पटि सूरन की कटछोर । करी पनरथ्थ रकत्तनबोर ॥२६६॥
लियै कर हाड़न की जयमाल । फिरे वर देषत डंकिनि काल ॥
सुहागिन जुग्गिनि अंग समेल । चरक्किय चारु चढ़ावहिं तेल ॥२६७॥
पिसाचन रच्छ रचैं ज्यौनार । सरब्बत श्रोन करैं मनुहार ॥
करे तहां प्रेत पिसाच अहार । × × × ॥२६८॥
मरोरत मुंड नचावत चाड़ । कटंकट दंत चचोरत हाड़ ॥
बचै इक फेरि रक्कत्त अघाइ । गिलै हकलीय अछंग वहाइ ॥२६९॥
गिरै छुन अंग गही इक ओर । करे इसठीं इक जंबुक जोर ॥
करग्ग समंडि विहंडिय दंत । दुहुँदिस बेर मिटौ वह अंत ॥२७०॥
महां बल जुध्ध जु जीत्तिय सूर । भई धरनी धर श्रोनित पूर ॥
निरष्षत अंबर देव विमान । जयज्जय चारन सिद्ध बषान ॥२७१॥

(छप्पय)

सूर सिंघ छत्रपती दीह उत्तर दल षंडिय ।
तास सीस लै ईसु मुंड माला उर मंडिय ॥
भिन्न भिन्न भव आय भाग एकादस लिन्नव ।
वौहुरि सेषरि ससवनि अंस एकत सम किन्नव ॥
इक सीस मदन महिपाल कौ सु लेन्निय सह गौनि किय ।
गुन गुनहु गुनिय पुहुकर कहै सुकितिक दुख दलन संधारिय ॥२७२॥

(दोहा)

गगन रुद्र रस गगन मिल, सागर कला ससंक ।
अग्नि बान अरु सिद्धि लै, नैन बिलोकौ अंक ॥२७३॥

२८५३११६७०६११० ॥

(छप्पय)

प्रथम गगन अरु रुद्र गगन रस वेद वषानिय ।
नैन वेद वसु अग्नि खंड पंडव द्दग जानिय ॥
२५६३८४
दुति उभय अंबर अनादि निधि भाष उदधि गन ।
वेद खंड सुरवांन अग्नि पर प्रगट पच्छ भन ॥
२४६०११०
धर तीन सुन्न ससि तीन वसु वांन अग्नि अरु रत्न कर ।
२५७६४७६९१००
लिय भिन्न भिन्न भव भाग अपु सुशेष ईश वरनौ अपर ॥२७४॥
२१४३५८८८१०००
चार सुन्न ससि समुद वीर ससि समुद वषानौ ।
तिहि ऊपर वसु वेद खंड रजनी पति जानौ ॥
१६४८७१७२७००००
पंच सुन्न ससि रस विचार तिहि वार उदधि ससि ।
१७७१५६१०००००
वहुर सिंधु घट इन्दुवान अप्रतार कलावसु ॥
१६१०९१००
धर सप्त सुन्न सतमास वहि ससि जुग्गिन अरु भवनि भनि ।
१४६४१०१०००००००
पुनि अष्ट सुन्न ससि अग्नि गुन तापर चंद प्रकास गनि ॥२७५॥
१३३१०००००००००
नवम रुद्र नव सुन्न इन्दु दे आदि बखानहु ।
१२१००००००००००
दसम धरतु दस सुन्न इन्द्र तिहि ऊपर आनहु ॥
११०००००००००००
ग्यारह अंबर इन्दु भाग भव सुन्न सुलिन्नव ।
१००००००००००००
रहिय शेष दस वर्ष अंसु एकत समकिन्नव ॥

निधि गगन माल आकास रचि एकादस अंकन करतु।
१०१०१०१०१०१०
तम अंस सर्व सनि अरपिकर सुकंत सीस तियकर धरतु ॥२७६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं युद्ध खंडे शिवमाल
वर्ननो नाम नवमोध्यायः ॥६॥

(चौपही)

सूरसिंह आँनद अनुरागे। वीर खेत रन साधन लागे॥
सुनतहिं वीर नारि सब धाँई। सोवत कंत जगावन आई ॥२७७॥
आई मदन देवकी भामिनि। सत सों मही सती सहगामिनि॥
आवत अंक कंत भर लीनौ। अंचल अंग अगौछा कीनौ ॥२७८॥
कहत प्रेम करुणा रस बैना। सोभित अमल कमल दल नैना॥
मुकलित केस सीस बिकरारा। मानौ अंधकाल निसि धारा ॥२७९॥
अहो कंत तिय प्रान पियारे। वेग न बोलतु रूसन हारे॥
बदन मोर ह्वै रहे अबोला। प्रेमयुक्त बोलो किन बोला ॥२८०॥
किहि कारण मन कियौ उदासी। हौं तो हती सदा संग दासी॥
इक रस प्रीति सदा निरबाही। अंत बेर सुर अप्सरि चाही ॥२८१॥
चितन चढ़ी तिय जगत उज्यारी। अब हम सौति भई सुर नारी॥
जो पिय अमर नार मन मानी। हौन हौंहु रत ना बतरानी ॥२८२॥
इहि विधि करौं आपु बस कंता। होहि न सौति आद अनु अंता॥
सकल देव मो कौतिक आवहिं। त्रिदस त्रिया नहि नैन दिषावहि ॥२८३॥
यह कह भर सिंदुर सिरभंगा। सूर सैन से आइसु मंगा ॥२८४॥

(दोहा)

मंदाकिन असनान कर, कियौ सन्त सहँ गौन॥
पिय प्यारी पिय संग लै, मुदित चली सुर भौन ॥२८५॥
अदभुत भय वीभत्स त्रय, करुना रुदनरु हास।
समर वीर श्रृंगार हुव, रस बस कौ आभास ॥२८६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं जुद्ध
षंडे सह गौन वर्ननो नाम दसमो अध्याय ॥१०॥

(चौपही)

सूर सिंध नरपत नर नाहा। किय सेव रूप मदन तिहि दाहा॥
बहुर चले माया गढ़ माहीं। जीत्यो जहाँ नृपत कोउ नाहीं॥२८७॥
अगम उच्च अति विषम पहारा। कठिन पंथ मानौ असि धारा॥
तहाँ विवि कोट अमल अत भारी। काया माया नाम विचारी॥२८८॥
काया कोट नगर चहुँपासा। माया कोट राज निज बासा॥
काया कोट चार दरवाजा। उच्च उतंग अगम अति साजा॥२८९॥
काम पौर मानौ कविलासा। आस पौ रतहँ देवी आसा॥
मोहन द्वार देष मन मोहै। तेज द्वार तेज रवि सोहै॥२९०॥
द्वार द्वार मैगल मैमत्ता। रक्षक सुभट बहुत बलवंता॥
ते सब आइ मिले सुर ग्याना। भुव पत मदन मरन सुन काना॥२९१॥
माया जीत मदन संघारा। लिय जयपत्र सूर तिहिं बारा॥
नगर लोग सब देषन आवहिं। चारन विप्र वंदि जन गावहिं॥२९२॥
धन्य सूर छत्री बल रीती। मदन मार माया विहि जीती॥
ग्यान राइ राषे तिहि थाना। विजैपाल की फेरी आना॥२९३॥
फिर उत्तर दिस कीन पयाना। ब्रह्म कुंड दिन ब्रत नियराना॥२९४॥
विद्यापत आगे उठि धावा। सूर सिंघ आगमन सुनावा॥२९५॥
कही हेत रंभावत बाता। माया जुद्ध कथी विष्याता॥
कलप लता सुन सुंदर बैना। आनँद नीर पमुक्कत नैना॥२९६॥
जय मंगल जय जय नव व्याहू। मंगल बिमल मोद सब काहू॥
बाजत तूर नाद दरबारा। बाँधि मुक्तमनि वंदन वारा॥२९७॥
सदन सेज सिंहासन साजा। फूलनि रचित चँदोवा राजा॥
उलट कीर आयौ अगवानी। कलपलता की प्रीत बषानी॥२९८॥

(दोहा)

मंदाकिन के तीर पर, सकल कटक चहुँ पास।
कलपलता के धाम पर, कियौ सूर परगास॥२९९॥
गृह गृहनी आइसु दियौ, अष्ट सिद्धि जिहि साथ।
कलपलता पदमिन करी, दरसन सूर सनाथ॥३००॥

आगै आइ प्रेम रस प्यारी। आदर अर्घ करत मन हारी॥
पैंड़े पलक पाउँड़े पारा। विमल बरन बरननि मगु सारा॥३०१॥

करि दंडवत परिक्रमा दीनी । चित हित बरन बंदना कीनी ॥
सूर सिंघ लीनी उरलाई । प्रीत रीत रस दई बड़ाई ॥२०२॥
रंभावत के पाइन लागी । अत हित हरष प्रेम अनुरागी ॥
अष्ट नारि सहुचरी सभागी । कलपलता के पाइन लागीं ॥२०३॥
दुहु दिस प्रीत प्रगट भई पूरी । ... ... ॥
बैठ्यो त्रियन मध्य नर नाहा । मानौ इंदु तराइन माहा ॥२०४॥
बिहसत बदन चातुरी हासा । करत केल बहु भाति प्रकासा ॥
कलपलता की दासि सयानी । ल्याई कनक कुंभ भरि पानी ॥२०५॥

(दोहा)

दंपत चरन पषार कर, कलपलता धरि सीस ।
सदा सुहागिन कामिनी मन, बच दई असीस ॥२०६॥

(चौपही)

आसन असन करी मनुहारी । मँदिर मद्धि सुष सेज समारी ॥
बैठे काम कुँवर तह जाई । रंभावत रस बात चलाई ॥२०७॥
मदन मुदित सौ पूँछी वाता । प्रफुलित बदन मनौ जल जाता ॥
कलपलता अँग सजौ सिगारा । जिहि विधि नवल वधू ब्यौहारा ॥२०८॥
जदिप त्रीय तन नहिं अधिकारा । सुंदरता कहँ कौंन सिंगारा ॥
और नार आभरन बनावहिं । इहि अँग सँग अभरन छविछावहिं ॥२०९॥

(दोहा)

होहि सिंगार सिंगार कौ, रूपमती के अंग ।
अभरन कौ अभरन करौ, कलपलता के संग ॥२१०॥

(चौपही)

अष्ट नार सुनि धाई आई । तेल फुलेल अरगजा ल्याईं ॥
कलपलता करि लज्जित नैना । मधुर हास बोली मृदु बैना ॥२११॥
मो मन सदा यहै अभिलाषा । कहँ लगि कहौं आहि बहु साषा ॥
दंपति रूप रीझि अनु तोरौं । लैकर विजन बाउ कर ढोरौं ॥२१२॥
बिनती पहिल यहै करवाई । विद्या पति सौ कहि पठवाई ॥
मानौ जान सिवा सिव देवा । ठाढ़ी करौं जोर कर सेवा ॥२१३॥

(दोहा)

तुम मानौ रति रंग रुचि, वहाँ कर ढोरौं वाउ ।
आपु सेज पर पौढ़िये, दासि पलोटै पाउ ॥३१४॥

(चौपही)

रंभा सुनत अप्छरी बैना । भये हेर चित लज्जित नैना ॥
कलपलता सौं बोलत बानी । हौ तुम कंत सुहागिन रानी ॥३१५॥
करिये काम केलि रस हासू । मो नैनन सुष देष विलासू ॥
मो चित हेत प्रेम रस प्रीती । विद्यापति सन पूछौ रीती ॥३१६॥

(दोहा)

मुदित आदि सहचरि कियौ, कलपलता सिंगार ।
सेज गईं लै धाम मै, जहँ पिय प्रान अधार ॥३१७॥
बिछुरन विरह विदा कियौ, यह भयौ प्रीत संजोग ।
कोककला मै कुसल दोउ, कियौ काम संभोग ॥३१८॥
प्रेम पान उन्मत्त ह्वै, करत काम कल केलि ।
रूप रंग रसना धुरी, रह्यौ रंग रस सेलि ॥३१९॥
इत रंभा संग सहचरी, आँनद मुदित अपार ।
गीत नाद वादित्र वहु, रचत सु मंगलचार ॥३२०॥
रैन विहानी जगत मैं, मैन कहानी मान ।
दुहुँ त्रिय को पिय प्रेम रस, पौहुकर कहत बषान ॥३२१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचिते युद्ध षंडे कलपलता
मिलन जागरनो नाम एकादसमोऽध्यायः ॥११॥

(चौपही)

इहि विधि नाह नेह नव नारी । देव जु प्रेम पुजावन हारी ॥
दुहुँ मिलि मुदित एक रस ईठी । ज्यौ जुग नैन एक दिसि डीठी ॥३२२॥
सौत भाव उर आइ न काऊ । सज्जन मिलै परसपर चाऊ ॥
रंभा कलपलता सँग प्रीती । कलपलता रंभा रस रीती ॥३२३॥
इहि सिंगार उहि सेज पठावै । वहै यह पाइ सेज पर ल्यावै ॥
रूसन मान नैन नहिं देषा । कवि लोइन अद्भुत रस पेषा ॥३२४॥

इहि विधि अलक नंद तट वासा । काम कुमार वसे इक पासा ॥
सघन विपन वन आँनद नाऊँ । वृह्म कुंड तीरथ तिहिं ठाऊँ ॥३२५॥
तिहि ठां आइ निकट नहिँ ग्रामू । केवल कलपलता कर धामू ॥
सूर सैन तहँ नगर बसावा । परम रम्य सोभा अति पावा ॥३२६॥
ग्यान राइ कहँ सौप्यौ काजू । उत्तर दिस माया पुर राजू ॥
जो गुनियन गुन गीत वषानी । उपजहिँ जहाँ अठारह षानी ॥३२७॥
कनक आदि सब धातु प्रमाना । उपजहिं बहुत जु वाजसिचाना ॥
उपजहि सुरह धेनु थन पूरी । बिजन बाल मृग मद कस्तूरी ॥३२८॥
उपजहिं तुरग गूढ़ गज ठाठा । सुवर मधुर मधु सोभित हाटा ॥
कदलि सालु अरु विद्रुम वेली । सौठि पीपरै सहज सकेली ॥३२९॥
निकटहिं नगर नराइन सेवा । देव प्रयाग जहाँ हर देवा ॥
गिरि केदार जहाँ इमि होई । दिव्य देस जानहिं सब कोई ॥३३०॥
परस मुदित मन कीन पयाना । बाजे विधि विधि बजे निसाना ॥३३१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरचितेयं जुद्ध
षंडे द्वादशमो अध्यायः ॥ १२ ॥

(दोहा)

कियौ विजय मंगल सहित, सब उत्तर दिस जीत ।
बहुरि चले चंपावती, रंभावति रसु रीत ॥३३२॥

(चौपई)

उलटत उभै मास सम लागे । चंपानेर चले अनुरागे ॥
आये नगर निकट अस्थाना । इक जोजन पर भयो मिलाना ॥३३३॥
गुन गँभीर मुष जाइ सुनावा । जय सुन विजैपाल सुष पावा ॥
आनँद मोद बहुत सुष माना । सनमुष चल्यौ करन सनमाना ॥३३४॥

(दोहा)

मुदित सूर सनमुष चले, विजै पाल भुवपाल ।
गगन रयन मुद्दिय तरनि, कोक सोक तिहिं काल ॥३३५॥

(छंद पद्धरी)

सनमुष्य सूर चल विजैपाल । चतुरंग सेन सज सत्रु साल ॥
मइगलित चलित कुंजर अपार । पिष्य मनौ कज्जल पहार ॥३३६॥

रँग अरुन पीत ढलकंत ढाल । चंचला चौंधि जनु मेघ माल ॥
मन पवन वेग हय चित्र भाइ । धावंत धरनि न सूझंत पाइ ॥३३७॥

बहु सुभट संग सोभित कुमार । गुन रूप रूप अति मत उदार ॥
नवत अरुन लोचन बिसाल । श्रुत मुत्ति कंठ सोवर्न भाल ॥३३८॥

मिल नैन नैन दुहुँ दलन संग । उत्तरिय सूर छाड़िय तुरंग ॥
इत नृपत छांड़ हय पहुम आइ । अभिलाष लाष जुत लिय बुलाइ ॥३३९॥

गह चरन कुँवर नृप विजयपाल । नृप लीन लाइ उर कंठ माल ॥
चढ़ि उभय भूप तछि छन तुषार । कीनौ पवेस नगरी मँझार ॥३४०॥

पूंछत मदन माया प्रकार । आनंद अधिक मानत उदार ॥
सुंदरीइ चढ़हिं दिव्यन अवास । सोहंत मनौ अप्छरि अकास ॥३४१॥

(दोहा)

सूर सिंध नृप संग मिल, राज मंदिर महँ आइ ।
परम मुदित पुसपावती, निरषत लेत बलाइ ॥३४२॥

(चौपही)

कलपलता निज धाम पठाई । रंभावति जननी पहँ आई ॥
कंठ लाइ भेंटी नृप रानी । सजल नैन मुष गदगद बानी ॥३४३॥

ब्रह्म कुंड माया पुर वाता । पूछत हँसत मनौ जल जाता ॥
रंभावति सब बात सुनाई । कलपलता की कीन्ह बड़ाई ॥३४४॥

सुरपत श्राप पहुम पर वासा । सेज हरन अरु व्याह विलासा ॥
सुक संदेस देस उहि जाना । प्रीत भाव सहचलन बषाना ॥३४५॥

जिहिं विधि दासु सेवनहिं करई । यौ मम चित अनुसर मन रहई ॥
कलपलता पुन बोल पठाई । रानी देख लई उर लाई ॥३४६॥

आदर कुसल प्रश्न व्यौहारा । असन पान परधान अचारा ॥
ज्यौं तनया रंभावति जानी । कलपलता पुन तिहि विध मानी ॥३४७॥

(दोहा)

सूर सिंघ जुग नागरी, गुन आगरि सुकुमार ॥
करहि केलि चंपावती, दियौ वियोग बहार ॥३४८॥

जय मंगल मंगल मिलन, नव मंगल दिन होइ।
जो कछु कथा है बर्नवो, अब पुन बरनौं सोइ ॥२४९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं जुद्ध षंडे जय मंगल वर्ननोनाम त्रयोदसो अध्यायः ॥१३॥

(चौपही)

त्रिय पिय कलपलता रंभावत। दुहुँ मिलि प्रेम प्रीत उपजावत ॥
उपमा जुगुल नैन जिमि पावत। मनौ कमल पर भ्रमर भ्रमावत ॥३५०॥
बरष एक तिहि दिन तैं बीती। जिहि दिन तै दिस उत्तर जीती ॥
रंभा उरहिं धर्यो आधाना। तात मात उर आनँद माना ॥३५१॥
रतन जोत हिम कर मह आई। दुहुँ मिलि अधिक परम छवि छाई ॥
एक जीभ मुष बरननि जाई। जनु पट ओट दीप छवि छाई ॥३५२॥
क्रम दिन मास मास नियरानै। प्रसव दिवस तब आइ तुलानै ॥
सरद रैन जग जोत जुनाई। निस कातिक पून्यौ उजराई ॥३५३॥
साँझ तिमिर गज कुंभ विदारन। ससि हर सिंघ उयौ तिहि कारन ॥
केसर कनक किरन जिमि तारा। निकसै गगन कंदरा द्वारा ॥३५४॥
सोभत कमल जौन्ह जग जोती। मनौ सकल महि चंदन पोती ॥
सुत मुषि देष उडलि नद्यावा। छीर समुद जग ऊपर छावा ॥३५५॥
गगन हेत प्राची दिस दारा। कर सेत मेष चली अभिसारा ॥
नाइक चतुर पान गहि बूझै। अंगन अमल सेज नहिं सूझै ॥३५६॥
चंदन षचित सु कंचुकी सोहै। समझि न परहि पानि कुच जोहैं ॥
मुकतहार त्रिय धरै उतारी। टूटहिं बहुर न पावहि नारी ॥३५७॥
एकहि सँग मानसर माहीं। हंसनि हंसु विलोकतु नाहीं ॥
सरद रैन अउ चंद उज्यारी। चंद्र उभय सोभित उचकारी ॥३५८॥

(दोहा)

निरषि सूर चंद्रोद यह, मान मोद मन लीन ॥
पुत्र जन्म तहि छिन भयो, चंद्र उदै जनु कीन ॥३५९॥
बहु बिध हास विलास बढ़ि, पहुकर परम हुलास ॥
अब दंपत संपत भई, पूजी मनकी आस ॥३६०॥

(चौपही)

सुन सुष विजैपाल भुवपाला । आनँद मुदित भये तिहिं काला ॥
कर असनान बोल दिज देवा । कीनी जात कर्म विधि सेवा ॥३६१॥
कर नंदी सुष पितर सराधू । जिहि विध कटहिं कोट अपराधू ॥
मनि मानिक हय हाटक हीरा । दीनै दान पटंवर चीरा ॥३६२॥
बहु जाचक षट दरसन आये । पंच सबद दरबार बजाये ॥
नेग रीत कुल धर्म अचारा । कीनै नृपत सकल व्यौहारा ॥३६३॥
बिप्रन विहँस आसिका बोली । सुत मैलौ पहुपावत ओली ॥
नवल नारि बहु मंगल गावहिं । पुत्र जन्म सुष सबहिं सुनावहिं ॥३६४॥
उतहि सूर उर आँनद माना । हय गज कनक दीन बहु दाना ॥
परम मुदित रंभा सुकुमारी । नैन चारु मुष चंद निहारी ॥३६५॥

(दोहा)

उदै चंद पूरन भयौ, उदौ चंद इहिं ठाँउ ॥
गन गुनि पंडित मंडियौ, चंद सेन तिहि नाँउ ॥३६६॥
पहुकर कलि मै पुत्र फल, है जग जीवन सार ॥
धन्य जननि धन जय घरी, जहाँ पुत्र अवतार ॥३६७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं जुध्य षंडे चंद्रसेन उतपत्य वर्ननो नाम पंचदसमो अध्यायः ॥

(चौपही)

कलपलता बहु मंगल कीनौ । अगनित दान निछावर दीनौ ॥
सुषी सकल मिल मंगल साजा । आनद मुदित उदधि चित राजा ॥३६८॥
राषहिं धाइ पिवावहिं षीरू । मया करै पहिरावहिं चीरू ॥
दिन दिन चंद कला जिम बढ़ौ । रूप वेलि तरवर जिमि चढ़ौ ॥३६९॥
वरस एक दूजी पुन लागी । चरनन चलै षेल अनुरागी ॥
बोलन मधुर तोतरी वतियाँ । लागत धाइ नृपत की छतियाँ ॥३७०॥
लसत कंठ मुकताहल माला । नैन कमल अरु बैन रसाला ॥
आनन इंदु मधुर मृद हासू । तात मात सन होय हुलासू ॥३७१॥
सूर सिंघ सुत चंद कुमारा । विजै पाल कीरत रषवारा ॥
सौम वंस वरधन कुल नंदन । रंभा नैन चकोरन चंदन ॥३७२॥

पुषपावत के प्रान अधारा। नगर जीव सम जगत दुलारा ॥
दुहुँ पछ निरमल अति उजयारौ। अतहि कलपलता जिय प्यारौ ॥३७३॥
विहँसत हँसत लसत लघु दतियाँ। लागे कहन अमी रस बतियाँ ॥
इहि रस पंच वरष नियराने। सूर सिंध आँनद मह साने ॥३७४॥
विजैपाल राजा सुर ग्याँना। प्रभु गुरु मान पिता कर माना ॥
पुष्पावत माता करि जानी। विव गृहनी मन रंजन रानी ॥३७५॥
राग रंग गुन ग्यान अपारा। वहु विनोद वर सैल सिकारा ॥
कथा काव्य अरु चातुरताई। दीन मान रस रीति बढ़ाई ॥३७६॥
सुहृद संग क्रीड़ा परिहासा। सिसु लीला अरु तरुन विलासा ॥
सुख संयोग भोग सुख मानें। रवि ससि उदय अस्त नहि जानें ॥३७७॥

(दोहा)

पंच वरख चंपावती, उदित सूर कुमार ॥
सुष संपति संगति सहित, दंपति दरस उदार ॥३७८॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं युद्ध षंडे सिसु लीला वर्ननो नाम पंचदसमोध्यायः ॥ १५ ॥

इति युद्धखंड

वैरागर खंड

(दोहा)

सूर सिंह चंपावती, सुत सनेह नृप सोम ।।
मोह अग्नि संकल्प तन, करैं कुंड हिय होम ।। १ ।।

सुत सनेह कमलावती, निपट विकल विकरार ।
उरज ईस पूजा करैं, नैन जुगल जुग धार ।। २ ।।

(चौपही)

पंच बरष चंपावत छाये । माता पिता विरध विसराये ।।
निपट निठुर कलजुग की रीती । तज पितु मातु नारि सौं प्रीती ।। ३ ।।

जो दस मास मात उर धरही । पिता सदा प्रति पालन करही ।।
दूर देस तें आवत ब्याही । इनहिं छोड़ विरम्यो हैं ताही ।। ४ ।।

बाकी प्रेम प्रीति रस माते । सब कुटुंब सौं छाँड़े नाते ।।
यहि कामिनि रस कौन विगोबा[1] । तेहि नल वध ह्वै सर्बस खोवा ।। ५ ।।

यहि विधि मन मन झूरहिं राजा । पठवहिं कौन बुलावन काजा ।।
परसोतम चिंतामन पूतू । जो गुरु पुत्र सो कीनो दूतू ।। ६ ।।

लिषौ पत्र संदेस पठायौ । पुत्र मान मन पीहर आयौ ।।
दंपति कहति करुन अति बैना । जल प्रवाह मोचित अति नैना ।। ७ ।।

सत्य सूर वैरागर हीरा । हिए वज्र रति जोत सरीरा ।।
माता पिता विरद बिसराये । आपुन जाय स्वसुर गृह छाये ।। ८ ।।

तेरै नैन वधी त्रिय ईठी । रोवत गड़ी नैन महँ दीठी ।।
हमहिं नींद निसि आवत नाहीं । तुम निसि जाय भोग सुख माहीं ।। ९ ।।

तुम उर सालत हास विलासा । हम उर आस धुँवा की स्वासा ।।
पायौ पूत पूज हरि देवा । विरध वैस में करिहैं सेवा ।।१०।।

१—कीम वियोगा ।

तिहि सुत तिय सुर तरु कर जानी । कौन आन मुष मैलहिं पानी ॥
अबहूँ कछू धर्म उर लावहु । हमहिं जियत मुखआन दिखावहु ॥११॥
बहुर मरे हमहीं घर ऐहौ । सूने सदन देष पछतैहौ ॥
दसरथ छूट तुरत जिउ दीन्हा । हम जिय जरतजियत बिधि कीन्हा ॥१२॥
जो माया जिय तजी हमारी । लेव आय घर द्वार सम्हारी ॥
करै कौन वैरागर धंधा । भये मात पितु अंधी अंधा ॥१३॥

(दोहा)

गृह सेवा दुख मात पितु, लागी वेग गुहार ।
बूड़त गहिर समुद्र मैं, कर गहि लेव उबार ॥१४॥

(चौपही)

परसोत्तम गुरु पुत्र नरेसा । चंपावति ले चलै संदेसा ॥
विजैपाल को दीनी पाती । आनंद सजन प्रीति रस राती ॥१५॥
रंभावति को अभरन चीरा । पठये बहुत अमोलिक हीरा ॥
चंद सेन पहरावन न्यारी । कुंडल मुकत माल षग वारी ॥१६॥
रतन जरी पहुँची पहुँचाई । अतह मोल देषत मन भाई ॥
चार मास तिहि मारग लाये । चंपावति परसोतम आये ॥१७॥

(दोहा)

मिले कुँवर गुर पुत्र कौं, परसोतम तिहि नाम ॥
आदर अरघ अनंत विध, कीनौ चरन प्रनाम ॥१८॥

(चौपही)

परम जुड़त अत सूर कुमारा । पूछत कुसल जु वारंवारा ॥
माता पिता कुसल वहु बूझै । सजल नैन पाती नहि सूझै ॥१९॥
आई सुरत तात परिवारा । भई अषंड मेघ जल धारा ॥
परसोतम सब कह्यौ सँदेसा । सुनत ताह उर बढ्यो अँदेसा ॥२०॥
विजैपाल को दीनी पाती । जो नृप लिषी प्रेम रसराती ॥
रच भोजन ज्यौनारु अपारा । गुर सुत सहित भयौ तिहिं वारा ॥२१॥
करि भोजन बैठे इक साथा । कहत हेत वैरागर नाथा ॥
कमलावत पूजत हर देवा । तुव हितकरत रैन दिव सेवा ॥२२॥

(दोहा)

सूर सूर सुमरन सदा, पलकन पल वसु जाम ॥
दृग मारग मन ध्यान धर, रस रसना तुव नाम ॥२३॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे दूत
संदेस वर्ननो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(चौपही)

सूर सिंध गुरु सुत कर साथा । चले निकट चंपावत नाथा ॥
परसोतम भुवपतहिं मिलावा । सौमेसुर संदेस सुनावा ॥२४॥
राजा सूर सिंघ लै संगा । गये जहाँ पुहपावति गंगा ॥
बैठे राज कुँवर इक ठाँऊ । रानी सुन्यौ पुत्र गुरु नाऊ ॥२५॥
कहत सूर अत आतुर बाता । अब हम गवन करै पर भाता ॥
पहुँपावत सुन रोवन लागी । रंभा सूर प्रीत अनुरागी ॥२६॥
कौन गुरागुरु पुत्र कहायौ । इहाँ अक्रूर रूप ह्वै आयौ ॥
हम त्रिय साचु कहत गुरपूता । दूत न होहिं आई जम दूता ॥२७॥
विजैपाल इमि बोलत बैना । सोभित सजल कमल दल नैना ॥
पंच वरष राषे हम राजा । वरषक रहो चंद हित काजा ॥२८॥
चंद्र हंस कछू होइ सयाना । तब निहचंत करौ प्रस्थाना ॥
है सुत मात पिता की झूठी । सासु ससुर की माया झूठी ॥२९॥
पितु गृह धाम धनी अधकारी । हौ हम घर पाहुन दिन चारी ॥
कछु दिन मिलै हमै सुष दैहो । बहुर अंत अपने घर जैहौ ॥३०॥
कहत सूर सुन कै यह बाता । अतहित प्रेम रीत रस राता ॥
तुव हित सफल सदा हम मानी । पाँचौ वरष सफल कर जानी ॥३१॥
अब कछु बात नहीँ बस मेरे । रहबौ चलन हाँत प्रभु केरे ॥
बोले पलकु रह्यौ नहि जाई । मुक रिसाइ तौ जात बड़ाई ॥३२॥
अब आये प्रभु केर हँकारा । सेवक निमष रहन नहिं पारा ॥
आइसु अवधि जबहिं भई पूरी । तिहि छिन सरगु नियर घर दूरी ॥३३॥
करौं विदा पगु लागहि जाई । बहुर चरन फिर देषहिं आई ॥
जो जीवन है इहि संसारा । बिछुरौ बहुर मिलै इहि वारा ॥३४॥

राजा मान सत्य सब भाषा। पंडित बोल महूरत राषा॥
दिन दस मैं सुभ दिन ठहरावा। सुमत बोल सब सौज करावा॥३५॥
हय गय हीर चीर अधकारा। देन अर्थ भंडार विचारा॥
वहु पुन अर्घ चंद्र के काजा। सर्वसु कीन संकलपु राजा॥३६॥
सूर सैन पुन मंदिर आये। गुन गँभीर रघुबीर बुलाये॥
कहत करौ मारग सब साजा। हम उताल चलिहैं गृह काजा॥३७॥
सबु विधि तुम देषहु सु विचारी। करौ निनार भार अति भारी॥
सो रनधीर साथ कर दीजै। निबहै संग संग सो लीजै॥३८॥
पट बितान हैवर अरु हाथी। ये तो नहीं संग के साथी॥३९॥

(दोहा)

चलो पंथ अत हरुव ह्वै, सँग न लेव कछु भार।
कठिन भूम परदेस ते, नाथ निवाहन हार॥४०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे डेरा प्रस्थानो नाम द्वतीयोऽध्यायः॥२॥

(चौपही)

अगुरिन गिनत सु दिन दिन आवा। गुन गँभीर दल सज्ज करावा।
आगन लीप चौकु द्विज दीना। गवन अचार सकल विधि कीना॥४१॥
भेरी ढोल मृदंग अपारा। बाजन बजे राज दरबारा॥
रंभावत सब सषी बुलाई। बाल सषी सगरी मिल आई॥४२॥
मया करौ मिलि लेव सहेली। वे दिन गये जु हम सँग षेली॥
अब हम चलीं दूर परदेसा। कत यह नैहर कत यह भेसा॥४३॥
कहँ बेली सरबर द्रुम बागा। करत आजु सब सुष कर त्यागा॥
नैहर मिलन कहँ सब लोगू। जैसे नदी नाव सनजोगू॥४४॥
यह कह कहै सषी जग गौना। जिहि घर जाइ बहुर नहीं औना॥
अब मुहि फेर कौन लै आवे। तात मात मुष आन दिषावै॥४५॥
अब हम जाइ ससुर गृह ठाँऊ। जहाँ सुनौ नहीं नैहर नाँऊ॥
मन की बात कहन नहिं परई। सासु ननद के भौहन रहई॥४६॥
चितन धरौं कछु नहिं कह आवा। दई हौंत अब आन मिलावा॥
यह कह सषी कंठ लग रोई। बाल बृंद रोवैं सब कोई॥४७॥

ठाँव ठाँव रोवैं नर नारी। चली छाँड़ सब नगर उजारी ॥
रोवत पिता मात ढिग आई। कहत कहाँ मुहि पठवत माई ॥४८॥
किहि कारन अत पालन कीना। जनमत क्यों न हलाहल दीना ॥
माता पिता तजी जिय माया। निरदइ दई करे नहीं दाया ॥४९॥
अब हौं आस करौं किहि केरी। पर हथ बाँध दई जनु चेरी ॥
जानत नहीं कहाँ लै जैहै। लेकर कौन कौन बैठेहै ॥५०॥
मैं तो मरम न येतौ जाना। तात मात नैहर अभिमाना ॥
अब यह सासु सासुरौ होई। मो सँग नहिंन सँघाती कोई ॥५१॥
दारुन ससुर कहत बड़ भूपा। नैन न देषौं ताकर रूपा ॥
मो मन मात बहुत डर आवे। सेव सेव का कह समुझावे ॥५२॥
कैसे बोलौं सासु गुसाइन। प्रथम जाइ परिहौं जब पाइन ॥
निठुर ननद के सहिहौ बोला। सहौ बिबस मुष रहौं अबोला ॥५३॥
चलहु चलहु चहुँ दिस तै होई। छिन भर राषि सकै नहिं कोई॥
मो जिय ऊपर बाजत बाजा। यह चौंडोल सजत हम काजा ॥५४॥
रोवति बहु बिधि करत पुकारा। राषि लेब जननी इहि वारा ॥
कौ विषि देव षाइ मर जाऊँ। श्रवन सुनौ नहि बिछुरन नाऊँ ॥५५॥
जनम जगत बिछुरे नहि कोई। जिहि बिछुरन फिर मिलन न होई॥
सुत बिछोह क्यौ जीहौ माई। तुव बिछुरन मुहि सहौ न जाई॥५६॥
धुक धुक धरन परत मुरझानी। सषी सकल मुष मेलहिं पानी ॥
चंद्र सैन कहँ लै अँकवारा। बरषत नैन मेघ जल धारा ॥५७॥
पिता पाइ पर सौंपत पूतू। रोवत होइ मंद आकूतू ॥
सो धन धाम सुनाम सो ठाऊँ। अब छिन येक रहन नहिं पाऊँ॥५८॥

(दोहा)

चंद्र सेन के बीछुरे, क्यौं जीहौं री भाइ ।
पिता चरन जुग गहि रही, धरन परी मुरझाइ ॥५९॥

(चौपही)

विजैपाल रोवहि भर नैना। गद गद कंठ न आवहिं वैना ॥
चंद्र सैन है प्रान हमारे। धन जीवन नैनन के तारे ॥६०॥
देस राज गृह कर अधकारू। चंद्र सैन कर सकल अभारू ॥
लाग भूप चरनन रंभावत। बहुर आइ भैंटी पहुपावत ॥६१॥

कंठ लाग गहिवर हिय रानी । रावै कमल बदन कुम्हल्यानी ॥
किहि कारन मै लाड लडाई । चली छाड अब भई पराई ॥६२॥
वार वार दुहिता उर लावै । हिये हेत सुष वैन सुनावै ॥
वरस द्वैस भरि रहन न दैहौं । सूर सहित तुहि वेग बुलैहौं ॥६३॥
एक वेर ससुरै ह्वै आवहु । वहुर वेग मुहि दरस दिषावहु ॥
यह कह वहुर लई उर लाई । मुषु चूमत उर लेत वलाई[1] ॥६४॥
मेरे नैन प्रान रंभावत । तिहिं विधि कलपलता मन भावत ॥
तीसर और आहि नहिं कोई । रहियहु येक वहिन मिल दोई ॥६५॥
पति जानौ परमेसुर देवा । करियहु सूर सिंघ की सेवा ॥
इक चित सेव होहि प्रभु राजू । औरन लगत आइ कछु काजू ॥६६॥
है पति प्रान प्रान कर नाथा । जीवन जन्म आहि उहि साथा ॥
कलपलता पुन रोवन लागी । पुष्पावति के हित अनुरागी ॥६७॥
कहै सुनौ पुषपावत रानी । मैं सब सीष सीष परवांनी ॥
हौं दासी ये स्वामिन मेरी । निसु दिन आस करौ जिहि केरी॥६८॥
करिहौं सेव देव कर मानौ । ज्यौं लछमी नाराइन जानौ ॥
अस रानी तुम चित जनु लावहु । रंभा कौं मम बाँहि गहावहु ॥६९॥

(दोहा)

मात पिता सषि भेंट कै, बोलन आवै बोल ।
नृप तनया मंगल सहित, आइ चढ़ी चौडोल ॥७०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे कुँवर
सम दरसनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

(चौपही)

सूर सैन मंदिर महँ आये । नृप रानी मन नैननि भाये ॥
विजैपाल चरनन चितु लायौ । नृप गहवर हिय कंठ लगायौ ॥७१॥
मो चित नैन बूंद ढर पानी । मोती करहिं निछावर रानी ॥
कातर वचन चवै पुषपावत । तुव चरनन बाँधी रंभावत ॥७२॥

---

१. रंभावत की बाँह गहाई, यह पद अधिक है ।

विजैपाल नृप दै कर सीसा। मन वच क्रम कर दीन असीसा ॥
पुषपावत जु आसका दीनी। मंगल सहित विदा सिल कीनी ॥७३॥
करौ तिलक दधि रोचन रूपा। अछित मुकत भाल रचि भूपा ॥
कुवँर चरन गहि भये असवारा। दिज वर पढ़त वेद अनकारा ॥७४॥
चढत सूर हय वाजन बाजे। पावस उमड़ मेघ जनु गाजे ॥
सुमत बोल संग दाइज दीन्हा। गुन गभीर कौ सौंपन कीन्हा ॥७५॥
सहस नाग दस सहस तुरंगा। विविधि वसन सोभित बहुरंगा ॥
कनक रतन मुकता मन हीरा। अगिनित दर्वि दीन वर वीरा ॥७६॥
दासी दास बहुत सँग दीनै। रूप सरूप जान नहिं चीनै ॥
नगर लोग पहुचावन आये। बहु प्रसाद नर नारिन पाये ॥७७॥

(दोहा)

वरनत चारन विप्र गन, कीरत करत अपार।
सौम वंस धन मात पितु, जहाँ सूर अवतार ॥७८॥

हय गज रथ चतुरंग दल, रवि छपि रैन अकास।
चक्कीय चक्क विछोह हुव, सकुचत कमल विकास ॥७९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे पयान
वर्ननो नाम चतुर्थोऽध्यायः ||४||

(चौपही)

अथम मिलान सरोवर आये। सुमति सौज सब सौंपन ल्याये ॥
बैठे निकट सूर सुकुमारा। बूझत विहस बात तिहि वारा ॥८०॥
इमहिं राज दरसन अभिलाषा। इक गुन कहहिं अवहि गुन जासा॥
अगुवा एक संग कर दीजै। जिहि भरोस कर प्रान पतीजै ॥८१॥
जिहि मारग लै करे पयाना। तिहि मारग हम चलहि विहाना॥
जो मग सुगम होय अरु नीरा। औौर सुषित सुष रहै सरीरा ॥८२॥
ऐसौ पंथ बतावै सोई। सो अगुवा जो सत गुर होई ॥
सुमति सुनत अगुवहिं हँकरावा। आइसु मान ततछन आवा ॥८३॥
कहत सूर अगुवा सौं बाता। वैरागर मग चलौ प्रभाता ॥
जो मगु सुगम जु नियरौ होई। उठि ऊषा मग चलिये सोई ॥८४॥

उत्तर अगुवा दीन सुजाना । मारग भेद कछू हम जाना ॥
सो विचार विनऊँ तुम आगे । सुनियौ एक चित्त हित लागे ॥८५॥
दूर देस वहु आइ न नीरा । कहत जाहि वैरागर हीरा ॥
ताहँ गवन विवि मारग आहीं । हीर हेत नर चाहत ताहीं ॥८६॥
एक पंथ नियरे नहि तासू । विरले निवहिं सकत नहि तासू ॥
उच्च उतंग सिषिर अति घाटा । षड्ग धार सूछम अत वाटा ॥८७॥
ताहर समुद गहिर गंभीरा । दुहुँ दिस वाट दद्दच्छन तीरा ॥
वीच न कछू वसन कर ठाँऊ । वसगत ग्रेह नगर नहि गाँऊ ॥८८॥
इक चित चलै नगर ठहराये । करहिं न डीठ दाँहने बाँये ॥
चलै चरन गिरहि ते गिराई । बूड़ै उदधि रसातल जाई ॥८९॥
निवहै आइ निपट अत नीरा । लहै वेगि वैरागर हीरा ॥
उहि मग सुगम न निवहै भारा । निवहै नहीं कुटुम परवारा ॥९०॥
जोगी जती जाइँ उहि पंथा । तजहिं वसन मुकुतुनु कर कंथा॥
अंबर छाँड़ डिगंवर होई । उहि अगमन मग निवहै सोई ॥९१॥
साधै भूष नीद अरु प्यासा । राषै येक हीर की आसा ॥
निवहै पाइ परम पद छाजा । गिर तै गिरै त विनसे काजा ॥९२॥
दूजे पंथ चलै बनजारा । लादौ वनज संग परवारा ॥
मारग सरल तीर वहु ठाऊँ । ठाँव ठाँव वसै सब गाऊँ ॥९३॥
पंच चोर वर ये अति आहीं । सोवत साँज मूस लै जाहीं ॥
तिनि संग चोर आइ बहु ठाटा । पाथक सब मिल बाँधत घाटा ॥९४॥
जागैं पंथ सकल निस माहीं । तिहि कहँ कछू चोर भय नाहीं ॥
जो सोवै तौ आपन दूसा । तिहि कौं सर्वसु चोरन मूसा ॥९५॥

(दोहा)

पहुकर पथिक पयान करि, सावधान चित होइ ।
जो सोवै तौ मूसिये, जागत छलहिं न कोइ ॥९६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे पंथ वर्ननो नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

(चौपही)

उठे प्रात दल कीन पयाना । बाजे गहिर गरूव निसाना ॥
षट दरसनहिं दीन वहु दाना । सब को विदा कीन सनमाना ॥९७॥

सुमत कीन वहु भाँत सनाथा। अगुवा दीन सूर के साथा॥
गुन गँभीर दाइज गनि लीना। सो रनधीर संग कर दीना॥९८॥
आप सुगम मग कीन पयाना। पंच कोस पै भयौ मिलाना॥
अदभुद ठावँ सरस्वती तीरा। लग्यौ चित्त वैरागर हीरा॥९९॥
मन रंजन दोऊ सँग दारा। दिन प्रति काटन पंथ पहारा॥
सावधान जागहिं सँग माहीँ। जागत पंथ चोर भय नाहीँ॥१००॥
परसोतम गुर पुत्र सुहावा। कहत कथा प्रस्थान सुभावा॥
सुभट संग आँनद अनुरागै। सँग रघुवीर चलत दल आगै॥१०१॥
गुन गंभीर सबन निर्बाहै। निसु दिन स्वामि धनी चितचाहै॥
वैरागर दिन प्रत नियराई। मन अभिलाष होत अधिकाई॥१०२॥
पंच मास मारग प्रस्थाना। मन अभिलाष प्रीत व्रत जाना॥
तीस कोस वैरागर देसा। जहाँ आय सौमेस नरेसा॥१०३॥
तब परसोतम चले अगाऊ। मंगल मान बढ़ौ चित चाऊ॥
गयौ नगर वैरागर माहीँ। जहाँ नृप सौम नाथ नरनाहा॥१०४॥
अरु कमला कमलावति रानी। मानौ रुद्र गंग रुदानी॥
परम मुदित परसोतम आवा। सूर सैन आगमन सुनावा॥१०५॥
त्रिय गावहिं मंगल वहु भाँती। दोऊ पुत्र वधू मन साँती॥
चंद्र सैन चंद्रोदय भाषा। भुव पत हृदय तापु नहिं राषा॥१०६॥
विजैपाल वरनी सुष रीती। गाई एक परसपर प्रीती॥
उत्तर षंड विजय जय बाता। मदन युद्ध विनयौ विष्षाता॥१०७॥
सूर त्रस जग ऊपर छाई। सौमेसुर कहँ सबै सुनाई॥
भये चंद्र चँपावति राजा। विजैपाल अवनी पति छाजा॥१०८॥
कलपलता रंभावति प्रीती। दुहु कुल वधू पतिव्रत रीती॥
सब सुष कह्यौ नृपत के आगे। कमला सुन्यौ प्रेम अनुरागे॥१०९॥

(दोहा)

परसोतम वरनन कियौ, सकल कथा वहु भाइ।
दंपत सुष संपत भई, कवि सुष वरनन जाइ॥११०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे अगम आँनद वर्ननो नाम षष्टमोऽध्यायः ॥६॥

(चौपही)

सभा मध्य सौमेसुर आये । पंडित गनक गुनी हँकराये ॥
सुभ दिन समय घरी ठहरावहु । सूर सैन कहँ मंदिर ल्यावहु ॥११११॥
साधौ लग्न ग्रहन वर जोई । पुत्र वधू जुग परिछन होई ॥
विप्रन समय सुदिन ठहरावा । परसोतम फिर लेन पठावा ॥११२॥
कमल वदन कमलावति रानी । प्रफुलित वदन सूर जिय जानी ॥
अंगन चंदन अगर लिपावा । गजमोतिन मिल चौक पुरावा ॥११३॥
मुदित मोद मिल मंडफ छावा । कनक कुंभ भरपूर धरावा ॥
वहु मृदंग बाजे दरबारा । वंदि मुक्ति मनि वंदन वारा ॥११४॥
घर घर तोरन रचित पगारा । घर घर मंडि कलस सब द्वारा ॥
हाट बाट पाटंवर छाये । सुर विमान तहँ कौतिक आये ॥११५॥
गावहिं गीत नाद नव नारी । चंद्र वदन चित चोरन हारी ॥
चले सुभट सनमुष सुषमानी । दल चतुरंग संग अगवानी ॥११६॥

(दोहा)

मुदित मनोरथ मिलन हित, मंगल सहित नरेस ।
दिन दूलह दुलहिन उभै, कीनौ नगर प्रवेस ॥११७॥

(छंद पद्धरी)

कीनौ जु गवन नगरी प्रवेस । हुव थकित पिष्ष वैभव दिनेस ॥
चतुरंग संग सैना अपार । धसिमसिय धरन सिर सेस भार ॥११८॥
बज्जहिंत बंब नौबत निसान । घनघोर मेघ भादौ समान ॥
उड़ अवन रैन लग्गी अकास । सकुचंत कोकनद कोक त्रास ॥११६॥
आरूढ मत्त मातंग सूर । छवि मन कोट्ट विधि वदन पूर ॥
सोहत मुकट सिर जटित हीर । निरषंत नैन नागरि अधीर ॥१२०॥
झलकंत करन कुंडल विलोल । मनु हरत अमल मुत्तिय विलोल ॥
रच भाल षौर केसरि बनाइ । नव इंदु सोभ वरनी न जाइ ॥१२१॥
दुति दसन हीर तंम्मोल रंग । दाडिमी वीज मानौ तुरंग ॥
मुसक्यात वात मृदु हास हास । चंचला चमंकि जनु इंद्र पास ॥१२२॥
सित अरुन असित लोचन विसाल । उर लसत लाल मुत्तियनि माल॥
नागरिय नैरि निरषैं अवास । अप्छरीय वृंद मानौ अकास ॥१२३॥

मनमथ्थ चापु भृकुटी कमान । वरुनीन लसै जनु पंचवान ॥
थकि रहहिं नारि नागरि अधीर । अंचल न सुद्धि अभरन न चीर ॥१२४॥
अनुगमित उभय भामिनिय संग । चौडोल चारु मानौ सुरंग ॥
पालकीय संग सहचरी नार । जनु अवनि इंदु उडगन विचार ॥१२५॥

(दोहा)

वाजत भेरि मृदंग धुनि, नौबत नाद अपार ।
दिन दूलह बहु दल सहित, आये राज दुवार ॥१२६॥

(चौपही)

त्रियनि सहित कमलावति रानी । आई लिंच पौर सुषमानी ॥
मंगल गानु करै नव नारी । बाजहिं नाद सोर अधिकारी ॥१२७॥
परछन साँज जुवति करि लीनी । चंदन वंदन ऐपन चीनी ॥
दीप सूप अरु पूप रसाला । गुननि लिये गुनवंती वाला ॥१२८॥
उरकै सूर अवनि भये ठाढ़े । मानौ मदन रूप छबि बाढ़े ॥
दच्छिन वाम उभै कुल नारी । गुनन गरुव अरु जोवन वारी ॥१२९॥
अरछि परछि कमलावति लीनी । वहु विधि विविधि निछावर कीनी॥
मातु चरन गह सूर सुजाना । लोचन वारि कीन अस्नाना ॥१३०॥

(दोहा)

परम मुदित कमलावती, कंठ लाइ तिहिं वार ।
कुच लोचन हिय उमग करि, उडिल चली पयधार ॥१३१॥
बहुन सहित कमलावती, गई नृपत के तीर ।
चतुर उभै चरनन परीं, संग जुवति वहु भीर ॥१३२॥
गावहि रहस बधावनै, पावहि अभरन चीर ।
आवहिं देषन नागरी, धावहिं परम अधीर ॥१३३॥
सौमेसुर आनंद मय, पुत्र बधुन सुष देष ।
जान्यौ जीवन धन्य जग, मान्यौ जन्म विसेष ॥१३४॥
दीनी सुष दिष रावनी, नष सिष अभरन चीर ।
दोई विमल बिराजहीं, कमलावत के तीर ॥१३५॥
चन्द्र वदन पंकज वरन, गज गामिन मग नैन ।
लाज सील गुन लछिछमी, बोलहिं कोमल वैन ॥१३६॥

दुहूँ पच्छ की लाडली, दुहूँ कुलन उजयार।
सासु ससुर मन भावती, पत पिय प्रान अधार ॥१३७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे राजा दरस वरननो नाम सतमो अध्यायः ॥७॥

(चौपही)

सूर महलु जो कियौ निनारा। बरनन जाइ तासु विस्तारा॥
रुक्म कोट मंडित चहुँपासा। जातरूप दिज राज अवासा॥१३८॥

कंचन षचित रचित मनि हीरा। मानिक मुक्त लगे चहुँ तीरा॥
पाँति लाल मन गौष बनाये। बहु रंजन मनि कलस धराये॥१३९॥

अंगन चौक फटिक मनि साजा। ता मधि अमल सरोवर राजा॥
विद्रुम पारि रची दिसि चारी। मरकत मन की सिढी सँवारी॥१४०॥

नाना वरन सरोवर सोहै। द्विज कुल केलि करत मन मोहै॥
सुभ दिन समय महूरत चीनी। नृप रानी मिलि आइसु दीनी॥१४१॥

जुवत सहित चलि सूर अवासा। मानौ सूर कियौ परगासा॥
बाजत वादन मंगल चारा। गावहिं गीत तरुनि अनकारा॥१४२॥

भनत विप्र वेदन धुन वानी। अरु बंदी जनु कहैं कहानी॥
जुवती सहित चलत इमि सोहै। इंद्र सची संजुत मन मोहै॥१४३॥

परम मुदित मंदिर महँ आयौ। रंभावती भलौ वरु पायौ॥
दुलहिन अवनि नवल वर पायौ। मानौ प्रान भवन तन आयौ॥१४४॥

प्रथम आइ अंगन भये ढाढ़े। सरवर देख हरख मन बाढ़े॥
दोउ भामिनि सँग देखन लागीं। कंत प्रीति सरवर अनुरागीं॥१४५॥

भये विवाह कोक नद कोका। पल मह आँनद पल मह सोका॥
विहँसत सकुचि कमल विहँसाई। कुमुद सकुच पुनि सकुचत नाईं॥१४६॥

कोक वधू मानत रति केली। बहुरअमित फिर चलहिं अकेली॥
पुनि फिर आय मिलन पिय संगा। विछुर मिलन बाढौ आनंगा॥१४७॥

अलि कुल निरख अचम्भौ होई। दिन अरु रैन न जानत कोई॥
वहु छवि भेद सबन्ह मिल चीन्हा। विय शशि बीच उदय रवि कीन्हा॥१४८॥

(दोहा)

कमल कुमुद विहसैं मनों, भै कोकनद उदास।
पहुकर अचिरज एह मन, रवि शशि किये प्रकास ॥१४९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे गृह
प्रवेस वर्ननो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

(चौपाई)

कमल वदन कमलावति रानी। डोलै परम मुदित सुख सानी ॥
चतुर नारि सहचरी बुलाई। सेज सौंज सब साज कराई ॥१५०॥
फूल सुगंध पान परधाना। मेवा मधुर विविध पकवाना ॥
बहुत निछावरि सौंज पठाई। सो आँनद कवि वरन न जाई ॥१५१॥
लै कर चली सबै मिलि दारा। करत मधुर धुनि मंगलचारा ॥
बाजहिं पंच शब्द नव रंगा। झाँझ तूर अरु ढोल मृदंगा ॥१५२॥
चतुर नारि उद्धत नव नागरि। रूप सरूप गुनन अति आगरि ॥
कमलावति सो हास विलासा। अति हित हरषि करहि परिहासा॥१५३॥
परम धन्य कमलावति रानी। पाई पुत्र वधू रति रानी ॥
अब जु समागम सेज पठाई। सो आनद सुख वरनि न जाई ॥१५४॥
नृप तनया रंभा सुकमारी। दुहुँ कुल विमल इंदु उजयारी ॥
आवागमन आइ यहि ठाई। सेज सौज लै युवति पठाई ॥१५५॥
सो प्रभु कृपा कौन अधिकाई। नैहर पूत जाय घर आई ॥
कलपलता नव दुलहिन सोहै। तजि सुर राज सूर मन सोहै ॥१५६॥
कमलावति हँसि उत्तर दीना। नवस काल सब चाहिय कीन्हा॥
सखि अनजन तुम मरम न जानो। ज्ञान विदा कहँ भेद बखानो ॥१५७॥
जहाँ फिरी नृप मदन दुहाई। गई लाज कुल कान बढ़ाई ॥
ते सिसु लाज कान डर करहीं। जिनके व्याह मात पितु करहीं ॥१५८॥
जेहि घर व्याह काम करवावा। सो तौ करै आपु मन भावा ॥
छाँड़ौ लोग कुटम परिवारा। पाई जोग जुगति की दारा ॥१५९॥
सो क्यों कर चित धीरज धरहीं। फिर घर आय समाग सौं करहीं ॥
मदन देव तव विरह विदारें। लाज काज डर रहन न पारे ॥१६०॥

(दोहा)

पहुकर जहाँ मनोज नृप, करें अखिल तन राज ।
ता तन को डर भजि चलौ, ज्ञान कानि अरु लाज ॥१६१॥

(चौपही)

यह कहि सहिचर सबै पठाई । सूर की सेज सवारन आई ॥
मध्य धाम सुभ्र सेज सवाँरी । दुहुँ दिस धाम दूजु वर नारी ॥१६२॥
पारस उभय ओर सहचारी । मुदिता आदि सबै सखि प्यारी ॥
कलपलता को सखी सयानी । रूप मंजरी अरु कल्यानी ॥१६३॥

(दोहा)

सखी सकल निस जागहीं, गीत नाद धुनि होय ।
विलसत पान सुगंध रस, परम मुदित सब कोय ॥१६४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे रैन
जागरनो नाम नवमोध्यायः ॥९॥

(चौपही)

होत प्रात कमलावति रानी । सुत गृह चली परम सुख सानी ॥
देखत पुत्र वधू घर वासा । रूप रेख अरु हास विलासा ॥१६५॥
आई नगर नारि नव नागरि । रूप सरूप गरुव गुन आगर ॥
चित्रिन हस्थिन संखिन धाई । पदमिनि अंग विलोकन आई ॥१६६॥
मुग्ध मध्य प्रौढ़ा वरनारी । रूप रासि जोवन उजियारी ॥
अष्ट नारि रस भेद बखानी । ते आई देखन रति रानी ॥१६७॥
पति स्वाधीन कहीं त्रिय सोई । पति जिहि प्रेम सदा बस होई ॥
सुख संयोग परस्पर प्रीती । मदन मनोरथ आँनद रीती ॥१६८॥
सो त्रिय सुकवि कहहि अभिसारा । समय हेतु साहस युत हारा ॥
समदूती अरु सहिचर आई । मदन सहाय जाय पिय पाई ॥१६९॥
वासक शैय्या नारि बखानी । बार जनी पति आगम जानी ॥
रचे सेज श्रृंगार बनावे । मिलन मनोरथ मन उपजावे ॥१७०॥
नारि खंडिता वही कहावै । जेहि पति यामिनि अनत गँवावै ॥
होत पलट आवै परभाता । सो तिय कहै व्यंग वर वाता ॥१७१॥

बिप्रलब्ध सो नारि जु गाई । कंत परठ संकेतु बुलाई ॥
देखें जाय सदन सो सूना । वंचित सुष्ष होहिं दुख दूना ॥१७२॥
वरनि विरह उत्कंठा वाढी । मदन बिरह वेदन अति काढी ॥
प्रोषित पतिका नारि बखानी । पिय बिदेस बिरहनि बिलखानी ॥१७३॥
सदन सेज श्रृंगार न भावै । विरह वियोग बहुत दुख पावै ॥
सुकवि कहत कलहंतर ताही । परै कलह करि अंतर जाही ॥१७४॥
मानि कंत अभिमानहि करही । वहुर बियोग बिरह दिन भरही ॥
कठिन मान मानिनि अभिमानी । लघु मध्यम गुरु त्रिबिधि बखानी ॥१७५॥
माननि त्रिबिधि कहत कबि धीरा । धीर अधीर तीसरी धीरा ॥
वचन बिलास सौंह परि पाऊँ । त्रिविधि मान कर त्रिविधि उपाऊ ॥१७६॥
पति अपराध रोष नहि करहीं । धीरा नारि धीर चित धरहीं ॥
प्रगट सुरोष नैन युग नीरा । सो माननि कवि कहत अधीरा ॥१७७॥
त्रिबिधि त्रिबिधि पुनि त्रिबिधि बखानी । उत्तम मध्यम अधमा जानी ॥
मध्यम नित्य प्रीति व्रत चारी । पति व्रत शील सो उत्तम नारी ॥१७८॥
कर्कश वैन कर्कशा होई । अधमा नारि कहै सब कोई ॥
दिव्य अदिव्य जुगीत बखानी । तिनकी युग युग चलै कहानी ॥१७९॥
सीता सती और दमयंती । त्रिविधि नार वरनों गुनवंती ॥
सुकिय परकिया अरु गुन गाई । वार नारि रसिकन मन भाई ॥१८०॥
त्रिविधि नार बस नारि स्वभाऊ । संयोगिनि बिरहिनि बो गाऊ ॥१८१॥

(दोहा)

मुग्ध मध्य लज्जा सु सम, पौढ़ा मान प्रकाश ।
परकीया संयुक्त है, बारि युवति धन आस ॥१८२॥

बहु बिधि अंतर भाय वहि, सो सुख बरनि न जाय ।
अष्ट नारि वरनन कियौ, सूक्ष्म सुगम सुभाय ॥१८३॥

पिय पयान जेहि अंग छिन, विरहिन अरपिय पास ॥
नवम भेद सोई नायका, वरनत परम उदास ॥१८४॥

(चौपाई)

देखन नवल नारि नव सांई । नवल नारि मिल कौतुक आंई ॥
देखि रूप सब बलि बलि जाई । रहीं मोह तन की सुधि नाहीं ॥१८५॥

एकनि नैन एकटक लाये। एकन प्रान वसीठ पठाये ॥
अंचल सिथिल हार हिय टूटे। उमगि उरज कंचुकि बँध छूटे ॥१८६॥
डगमग डगर डगहि डरवाला। बोलन आवहिं बोल रसाला ॥
चाहत कछू कछू कहि आवै। प्रेम पानि मद सुधि बिसरावै ॥१८७॥
जे नहि छैल छली सुकुमारी। ते पुनि विवस टरै नहिं टारी ॥
जे प्रगल्भ ते निपट भुलानी। नैन प्रान पठये अगवानी ॥१८८॥
चित न चेत उर आतुरताई। विसर गई सब चातुरताई ॥
तन मन जोवन सबै विसारा। प्रेम खेल जनु सर्वस हारा ॥१८९॥
चली पलट कमलापति रानी। आनँद मुदित सबै सुखसानी ॥
आई धाम कांम सब कामिनि। चकित मनो भोली मृग भामिनि ॥१९०॥
लोचन आन रहे पिय पाहीं। पिय मूरति बसि नैनन माहीं ॥१९१॥

(दोहा)

पहुकर मत्त गयंद जिमि, कुल अंकुस कर फेरि।
गुरुजन वहुगड़ दार मिल, आनी घर घर घेरि ॥१९२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं बैरागर खंडे
नवनायक वर्ननो नाम दसमोध्याय: ॥१०॥

(चौपाई)

यहि विधि परम मुदित भुवपाला। सब सुत संग बधू युग बाला ॥
एकहि अंग ऊन नहिं सोई। सब बिधि सुखित बहुत दिन होई॥१९३॥
सूर सिंह सत पुत्र सुजाना। जेहि कर खड्ग चहूँ दिस जाना ॥
प्रथमहिं नृपति दीन युवराजू। अब विशेष सौंपौ सब काजू ॥१९४॥
इक दिन कहत नृपति सों बाता। सूर स्वभाव मंत्र कर ग्यौंता ॥
प्राची दिस पित पूरब राजू। उत्तर जीत लीन्ह इन आजू ॥१९५॥
दच्छिण बिजैपाल नृप आँहीं। चंद्रसेन अधिपति किय ताहीं ॥
त्रिदिश राज्य तुमरे घर आवा। पश्चिम राज्य यतन ठहरावा ॥१९६॥
जो राजा संतोषी होई। तेहि कर नाम न जानै कोई ॥
चारहु चक्र राज्य अब कीजै। नाम प्रबल चक्रवै धरीजै ॥१९७॥
जो मैं राज्य रजायस पाऊँ। पश्चिम दिशहिं बिजै कर आऊँ ॥
पश्चिम फेर रजायस कीजै। दल रघुवीर संग कर दीजै ॥१९८॥

दिस परिचम जीतहिं नर सोई। युग युग नाम अमर कलि होई॥
तातें और वियौ नहिं काजू। चक्रवर्ती सौमेसुर राजू॥१६६॥

(दोहा)

सूर मंत्र सौमेस सुनि, बाढ़ौ अति आनंद॥
सत सुपुत्र जिय जान कर, मानौ पूरन चंद॥२००॥
बोल राय रघुवीर कहँ, नागर चतुर सुजान॥
अति आदर हित सों, दये सेना पति के पान॥२०१॥
दिस पश्चिम दिग्विजय कहँ, राज रजायसु कीन।
सूर सुभट चतुरंग ले, अखिल संग कर लीन॥२०२॥
सहस नाग रथ द्वै सहस, हैवर बीस हजार।
एक लच्च पयदल वली, सकुचि सेस तेहिं वार॥२०३॥

(चौपही)

चलि रघुवीर पाय पति पाना। भई बंब अरु कीन पयाना॥
प्रथमहिं जीत इन्द्रपथ देशा। बद्रि नाम तहँ कहत नरेशा॥२०४॥
लवपुर कोट शल्य जहँ वंदन। लिय कुसाव मेहर गढ़ नंदन॥
ठट्टा भक्खर अरु मुलताना। सिंधवार फेरी नृप आना॥२०५॥
किय दिग्विजय सौमखट माहीं। पश्चिम शत्रु रह्यौ कोउ नाहीं॥२०६॥

(दोहा)

सिंधु सरित पर्य्यन्त सब, धरिय धर्म धर पाय।
सूर भूमि जिय जानिकै, पार न उतरौ जाय॥२०७॥

(चौपही)

सब दिश फेरि सौम नृप आना। सेस सीस आयसु परमाना॥
भरहि दंड अरु मानहिं सेवा। पूजहि मनो अमरपति देवा॥२०८॥
सकल संग अनुचर ह्वै आये। विविध रसाल पेस कलि ल्याये॥
हय कच्छी अरबी अरु ताजी। साँवकरन अरु लीन सिराजी॥२०९॥
विविधि बसन पाटंबर लीने। तेजरताय जाय नहि चीन्हे॥
राय आय रघुवीर सुजाना। नृप बहु भाँति कीन सन्माना॥२१०॥

तेहि छिन भूप मिले जे कोई । सिरधर चरन रहे गहि ढोई ॥
सब कह नृपति मिले उर लाई । राज्य रीति रस दई बढ़ाई ॥२११॥
द्विजन आपु आरंभ करावा । नाम सौम चक्रवै धरावा ॥
सेवहिं जाय भूप दिस चारी । रहहिं सदा अब आयसु कारी ॥२१२॥
दान पुन्य सब जग्य अचारा । पुत्र पौत्र अरु लाड़ दुलारा ॥
बहु विधि सुख संयोग नरेशा । इन्द्र लोक वैरागर देशा ॥२१३॥
गृह कमला कमलावति रानी । पुत्र बधू निधि सिद्धि बखानी ॥
सूर सिंह पितु प्रान अधारा । सूर तेज अरु रूप अपारा ॥२१४॥
दान खर्ग विधि आदर पूरा । धरनी सूर सत्य विय सूरा ॥२१५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं वैरागर खंडे
दिग्विजय वर्ननो नाम एकादशमोध्यायः ॥११॥

(दोहा)

सूर सिंह पितु छत्र सिर, राज छत्र विय सीस ।
धन यौवन लछण सुयश, पूरन फलत असीस ॥२१६॥

(चौपई)

सूर सिंह बैरागर माही । राजत तात छत्र सिर छाँही ॥
दया सिंधु कमलावति माता । मातु हेतु जग महँ विख्याता॥२१७॥
सुत सुख भोग सरस रस भोगू । मन रंजन युवती संजोगू ॥
द्वादस वरष बसत वैरागर ।दिन दिन सुषमन वंछित आगर॥२१८॥
सुख संतान बहै विधि कीन्हा । मनबांछित फल सौमहिं दीन्हा॥
द्वैर पूत रंभावति जाये । अश्विनि कुँवर मनो कलि आये॥२१९॥
इक सुत राज सिंघ छित छाँजा । तेहि प्रताप पुरहूत विराजा ॥
कलपलता पुनि जायौ पूतू । जेहि प्रसाद कीन्हों पुरहूतू ॥२२०॥
तासु नाम सुन नरसिंघ भाना । मानों भान उदै जग जाना ॥
कियौ सौम नृप मंगलचारा । बहुविधि दान दियौ तेहि वारा॥२२१॥
गीत नाद वादित्र बधाई । उत्सव अधिक वरन नहिं जाई॥
सूर सिंह हय हाटक दीने । याचक जगत अयाचक कीने ॥२२२॥
अलख नगर पहिरावन दीने । कमलावती बधाई कीने ॥
रंभावति दिय अभरन हीरा । कलपलता पाटंबर चीरा ॥२२३॥

एक एक कर जन्म निनारा। बरनि न जाय बढ़ै बिस्तारा॥
श्रोता सुनत विलग जिन मानो। निज दूषन मो सिरपर आनो॥२२४॥

(दोहा)

रंभावति सुत द्वै वली, राजसिंह प्रथिराज।
कलपलता सुत कलपद्रुम, नरसिंह भानु विराज॥२२५॥
चंद्र सेन सब तें बड़े, जे चंपावति देश।
गुरु स्वरूप पेखे नही, नैनहि सोम नरेश॥२२६॥
चार पुत्र चतुरंग अति, जगत विदित दिशि चार।
होय सफल संतान जेहि, तेहि प्रसन्न त्रिपुरारि॥२२७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे
संतान वर्ननो नाम द्वादसमोध्यायः ॥१२॥

(चौपही)

यहि विधि सूरसेन नृपराजू। बरसें तीसी कीन युवराजू॥
पिता राज सिर छत्र सुहावा। दुख चिंता कछु अंत न आवा॥२२८॥
जगत अनित्य जानि सब कोई। स्वर नर नाग नहीं थिर कोई॥
सौमेश्वर स्वर लोक सिधारे। इंद्र लोक देखन पगु धारे॥२२९॥
सूरसेन मन धीरजु कीन्हा। साहस युक्त सोच नहि चीन्हा॥
मंत्री नेगी द्विज वर आये। सूर सिंहासन लै बैठाये॥२३०॥
राजतिलक सिर छत्र धराई। चार दिसा महँ आन फिराई॥
केवल राज्य धर्म सन काजू। मानौ वियौ धर्म कौ राजू॥२३१॥
प्रजा चेम रक्षा अति होई। एकहि अंग दुखी नहि कोई॥
आश्रम धर्म वर्ण प्रति पाला। दान पुण्य अरु यज्ञ अचारा॥२३२॥

(छंद पद्धरी)

बैठियो राज जब सूर सेन। रसरास सरस मुख सुखहि देन॥
युग सत्य रीति कर करहिं राज। बहु भाँति यज्ञ आचार साज॥२३३॥
द्विज रहत नेम खट कर्म कर्म। नृप अन्न पाय पालंत धर्म॥
वरषंत मेह अनहद सुकाल। बहु फसिल भूमि फल तरु रसाल॥२३४॥

गृह गृहनि होम मंगल अचार । कारज विवाह पुत्रावतार ॥
बहु भाँति वृद्ध छबि नहिंन दीस ॥ बय वृद्ध सुखित जंपहिं असीस ॥२३५॥
मद लोभ मोह अरु क्रोध काम । राखिय न देव नृप आन जाम ॥
अरछिन्न पहुमि थिर रह न कोय । इन्द्रीय दवनकर भक्ति होय ॥२३६॥
बहु भोग धर्म पतनीन संग । सब सुखित अंग नहिं सोग संग ॥
ना करत भोग मति योग आनि । वृत्तन गृहस्त वैराग मानि ॥२३७॥
राजाधिराज संसार सूर । जस जासु सकल महि रहिय पूर ॥
इक छत्र राज्य बहु काल कीन । नित नितहिं कीर्ति सोभत नवीन ॥२३८॥

(दोहा)

सूरसिंह बहि विधि कियौ, वरष तीस लग राजु ।
प्रजा सकल सुख मानहीं, मनहु प्रथम दिन आजु ॥२३९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर बिरंचितेयं वैरागर खंडे
राज्य वर्ननोनाम त्रयोदसमोध्यायः ॥१३॥

(चौपही)

कथा सँछपे कहत तेहि पाछें । बिजैपाल राजाहि बिगाछें ॥
चंद्रसेन सिर तिलक करावा । सकल लोग मिल माथानावा ॥२४०॥
चंद्रसेन कह सौंपौ राजू । नेगी सुमति चलावे काजू ॥
भई चाह वैरागर माहीं । पहुमी नृपति रहौ कोउ नाहीं ॥२४१॥
पिता शोक रंभावति रानी । रोवहिं कमलबदन कुम्हलानी ॥
बहुरि समझ मन धीरज कीन्हा । जगत अनित्य जानकर चीन्हा ॥२४२॥
कलप कंत सन भाषत वैना । तपत चंद दरसन बिन नैना ॥
ताते विनती सुनिये मोरी । मानों नाथ आव मैं चेरी ॥२४३॥
चंद सेन कहँ बोल पठावौ । राज्य तिलक सिर आपु करावौ ॥
तब लगि सुमति चलावै काजू । जबलगि चंद्र चलहि लै राजू॥२४४॥
जेहि दिन ते बिछुरौ उहि बारा । बहुरि मिल्यौ नहि प्रान अधारा ॥
अबकी बार मिलै जौ आई । तनमन करौ निछावर माई ॥२४५॥
आता सकल होंहि इक ठाऊँ । प्यासे नैन दरस अघवाऊँ ॥
सुनत सूर रंभावति बोली । चंद्र सेन कह पठिए बोली ॥२४६॥

आवें बेगु गहरु जनि लावें । तात मात कों दरस दिखावें ॥
दरस हेतु तरसत हैं नैना । श्रवनन आनि सुनावें बैना ॥२४७॥
देखौ आय नवल नव आता । मानहु मोद नैन जल जाता ॥
सुनत चंद पितु मातु हँकरा । अति उताल आये तेहिवारा ॥२४८॥
मिले आय अति आँनद पागे । चार मास तेहि मारग लागे ॥
तबहिं तजी सिसु बालक मोरे । अब बिलोक नवयौवन जोरे ॥२४९॥
रंभा रीति जन्म पुनि कीन्हा । नर नारिन पहिरावन दीन्हा ॥
चरननि परे सकल लघु भाई । अतिआनँद मुखबरनि न जाई॥२५०॥
चार पुत्र संग दंपति सोहै । सरस रूप गुण त्रिभुवन मोहै ॥
चक्रवती चारिहु चकराजा । मानो सूर्य पहुमि परछाजा ॥२५१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरचितेयं वैरागर खंडे
चंद्र दर्शनोनाम चतुर्दसमोध्यायः ॥ १४ ॥

(चौपही)

बसत सूर बैरागर माहीं । परम निचिंत चिंत कछु नाहीं ॥
चारौ पुत्र संग चतुरंगा । मनो ज्ञान सनकादिक संगा ॥२५२॥
सब सुख भोग पुत्र संयोगू । धन्य जन्म मानें सब लोगू ॥
विब गृहनी जप तप हित पाई । पदमा पारवती जिमि गाई ॥२५३॥
यहि विधि सो सुख काल गँवावा । सो विस्तार बरन नहिं आवा ॥
बहुत गीत अरु नाद प्रकारा । होंहिं अमृत धुनि मंगल चारा ॥२५४॥
बहु गुन सब गुन आगर आवहिं । दूर देस तें सुनि यस धावहिं ॥
नट नटवा गायन बहु गुनी । रहे विमोह तान जिन सुनी ॥२५५॥
करनाटक सिंघल दिस बासा । अति अपार विद्या तिन पासा ॥
दिस दक्षिण तें गुनि जन आये । नट विद्या बहु खेलन धाये ॥२५६॥

(दोहा)

आये नट करनाट के, कर विद्या बहु ठाट ।
देखन बैठे सूर नृप, भा सिंगारे भाट ॥२५७॥
चार पुत्र चतुरंग दल, रति पति पूत कुमार ।
राज पुत्र सावंत सब, बैठे सभा सिंगार ॥२५८॥

चिंतामणि गुरु राज गुरु, ज्ञान उदधि गंभीर।
ते परसोतम सत्त सहि, बैठे भुव पति तीर ॥२५६॥

(चौपाई)

नट नाटक जब औसर आवा। देस लोग सब देखन धावा ॥
आये सकल देस के लोगा। अवलोकन कौतुक संयोगा ॥२६०॥
बहु अभिलाषत प्रजा बहु कीनी। सूर सेन नृप आयसु दीनी ॥
बाइस खंड महल जे आंही। कनक कलस है ऊपर ताहीं ॥२६१॥
जबहिं नृपति नट कौतुक होई। भर सब खंड चढ़े सब कोई ॥
सुख पूर्वक सब कौतुक देखहिं। जीवन जन्म सफल कर लेखहिं ॥२६२॥
जब नट रंगभूमि पर आये। आय ढोल मिरदंग बजाये ॥
बाजत तूर भेरि सहनाई। घन निसांन नौबत घहराई ॥२६३॥
घटि बढि खंड खंड पर चढ़े। मन अभिलाख सबन के बढ़े ॥
ऊपर खंड भीर बहु भई। तेहि पर लोल चित्त कछु ठई ॥२६४॥
कहिब कछुक उत्तर तुम आवहु। हम सम आय गहरु जिन लावहु ॥
ऊपर खंड बहुत है भीरा। हम चिंता चित होत अधीरा ॥२६५॥
उहि विधि बार बार हँकराये। जितने हते और पुनि आये ॥
तब मिल द्वै मिल भये मिल दोऊ। तेहि तर खंड दुचित भे ओऊ ॥२६६॥
पुनि पुनि आपु बराबर बोले। तिन ते उत्तर वहाँ ते डोले ॥२६७॥

(दोहा)

इहि विधि खंड इकीस लग, उतर उतर सब आव।
सकल खंड सम सम भये, सो कछु जानि न जाय ॥२६८॥
मिले हते केहि विधि चढ़े, खंड खंड वहि भांति।
पुनि केहि विधि सम सम भये, वाइस वाइस पांति ॥२६९॥
जो जाने लीलावती, कै सरस्वती प्रसाद।
सो पावै या भेद को, नातर कठिन विवाद ॥२७०॥

(अथ अंक दोहा)

वेद वेद अरु अग्नि सुर, अनिल इन्दु रस बेद।
यह संज्ञा सब जनन की, तब औरई न भेद ॥२७१॥

४६१३७३४४

(छप्पय)

प्रथम खंड रस उदधि वान वसुवेद गगन ससि ।
१०४८५७६९
वहुर वेद रस सिद्धि अग्नि स्वर वेद तिथि वारवसि ॥
७१५४७३७६४
त्रितिथि सिद्धि विव गगन वांन गुन-गनत पुरानहिं ।
३५००७१९
अंवर वसु पुनि सूर भाव रस निधि ससि जानहिं ॥
१९६७२८०
रस इन्दु कला गुन गनय दृग यहि विचार ए जन वढिय ।
२३१६१६
पुनि वेद सिद्धि गुन जुग्गनिय सुगनन श्रेनि तापर चढिय ॥२७२॥
६४६८४
दिग्गज रस सुर गगन सिद्धि अरु सुन्नैन गनि ।
२०८०७६१०
वहुर सुन्नरस नाद सिद्धि वसु गगन अप्छ भनि ॥
२०८८९६०
दरसन पांडव गगन अग्नि निधि और अनुक्रम ।
९३०५६
वेद सुन्न ससिवान अंक पुनि तीन पृथ क्रम ॥
९१०४
बेद सुंन इन्दरस अनि कर शेष अंक उह बिधि करहु ।
२३६१०४
पुनि गगन वेदरस भाव गनि पहुकर क्रमतैं जिन टरहु ॥२७३॥
६४०
रस निधि वसु रस वरनि और पूरब क्रम दीजे ।
६८९६
बहुरि वेद दृग वांन जलधि क्रम फेर गनिज्जे ॥
७५२४
वरठि उभै रस वेद चार अंकन क्रम ठानहु ।
४६२

गगन नैन ससि समुकि बहुर क्रम ही परवानहु ॥
१२०
सर अनल इन्दु पुनि कम धरहु वेद ससि वहुरि क्रम ।
१४४१३६
वसु इन्दु वेद क्रम तासु पर गगन वान वसु वहुरि सम ॥२७४॥
१५०४१८
ससि पंडव अरु इन्दु वहुर ताही क्रम जांनहु ।
१५१
सप्त अंक मधि सेस ताहि पूरन क्रम मानहु ॥
उच्च खंड गुन गन अनिल अरु वेद वखानिय ।
४३०३
वहुर नाथ ससि वेद भेद आरोहन मानिय ।
४१६
वहुरि उतर जब सम भये, तासु अंक यहि बिधिकरिय ।
द्रगवांन इन्दु सुर निधि गगन वहुर पच्छ कर विस्थरिय ॥२७५॥
२०९७१५२

(चौपाई)

नट विद्या वे खेलन लागे । सकल लोग कौतुक अनुरागे ॥
नागरि नारि नटीं वन आई । मनों इन्द्र अप्छरि छबि छाई ॥२७६॥
गुन सरूप अरु जोवन वारी । रूप स्वरूप पिया पिय प्यारी ॥
नृत्यहि तान गांन गुन गावैं । रसिकन मन रस रीति बढावैं ॥२७७॥
अति अपार विद्या दिखराई । सो कबि मुख कर वरनि न जाई ॥
बहुरि रूप माया विस्तारी । नट विद्या कर बहुत अपारी ॥२७८॥
प्रथमहि अग्नि कुंड उपजावा । अग्नि ज्वाल सब जग पर छावा ॥
देखत थकित भये सब कोई । अग्नि दाह क्यों उबरन होई ॥२७९॥
वहुर मेघ उन्नति ह्वै आये । अग्नि ज्वाल जल मेघ बुझाये ॥
बोले दादुर कुहकैं मोरा । चहुँ दिस ते गरजें घन घोरा ॥२८०॥
खोरिन सर सर पूरत पानी । विन वरषा बरखा ऋतु आनी ॥
नट मल्लार मधुर ध्वनि गाई । मेघ मलार तान उपजाई ॥२८१॥

बहुरि पवन अति चलेउ प्रचंडा । भैं वादर सब खंड विहंडा ॥
अंबर अवनि अमल भे दोऊ । बहुरि सुभेद न जानिय कोऊ ॥२८२॥
मति सबकी तिहि ठाँव भुलानी । बहुरि अग्नि नहिं देखेउ पानी ॥
नट बिद्या अति आय अपारा । बीज मंत्र बहु बिधि बिस्तारा ॥२८३॥
बहुरि उच्च इक महल उचावा । ताहि चहूँ दिस बाग लगावा ॥
नाना सरवर अरु अमराई । अनिवन फूल वरनि नहिं जाई ॥२८४॥
सरवर एक रचित्र गंभीरा । पारि पखान रचे चहुँ तीरा ॥
कमल कुमुद फूले तेहि माहीं । चकवा चकई खेल कराहीं ॥२८५॥
मंदिर मांझें सभा सँवारी । विविधि बिछावन तहाँ निवारी ॥
आनि फूल फल आगे धरे । कछुवक राते कछुवक हरे ॥२८६॥
राजा देख परम सुख पायौ । विधिविधान नट और न आयौ ॥
चिंता मणि सों करौ बढ़ाई । वहि नट विद्या बहुत दिखाई ॥२८७॥

(दोहा)

नट नाटक नैननि निरख, निरखन हिये हुलास ।
बहुत दान नट कौ दयौ, उद्यम कृत्य प्रकास ॥२८८॥

(चौपाई)

रीझ दान दीनौ नृप ताही । जिहि बिधि राज रीझ फल आही ॥२८९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचिते वैरागर खंडे
नटनाटक वर्ननोनाम पंचदसोध्यायः ॥ १५ ॥

(दोहा)

चिंतामणि इम उच्चरै, मैं देखौ नट नाच ।
बहि विद्या सब झूठ कर, कर दिखरायौ साँच ॥२९०॥
पुरुष प्रकृति शिव शक्ति मन, मात पिता जिय जान ।
गुन माया नटवत रच्यौ, सो नट नटी बखान ॥२९१॥

(चौपाई)

गुनी एक नट नायक आवा । अद्भुत चरित आनि प्रगटावा ॥
नैननि कोई न देखहिं ताही । जानै नहीं कौन यह आही ॥२९२॥
जब आरंभ कला कर कीन्हा । तब लोगन नटनायक चीन्हा ॥
तिहि कारन गुन यह प्रगटावा । सतरज तम कर ताहि सुभावा॥२९३॥

निगुन लाय कर डोर सवाँरी । बरत बाँध सब जगत पसारी ॥
एकहि डोर सकल जग बाँधा । सत्यसुभाय सकल गुन साँधा॥२६४॥
रज राजस तामस सम देखा । सगुन रूप गुन कियो विसेषा ॥
प्रगटी तहाँ नटी नव नारी । अपने कर करतार सवाँरी ॥२६५॥
रूप रेख अँग अँग अति सोही । सुर नर यक्ष रहे मन मोही ॥
अति सुंदर गुरु रूप अनूपा । जेहि देखत मोहै सूर भूपा ॥२६६॥

(दोहा)

पहुकर ईस विरंचि रचि, मैं देखै सब सोंहि ।
तिय माया मन मोहनी, नाहि रहे मन मोहि ॥२६७॥

(चौपाई)

तव खुल सगुन केर किवारा[1] । विद्या काजे प्रगट उबारा ॥
तर हरि केलि पला धरि राखा । धरती रसा नाम जु भाषा ॥२६८॥
ऊपर पला उतंग उठावा । तेहि कर नाम सार ठहरावा ॥
जसतर हर तस ऊपर देखा । बहुर न नैन टिपारा लेखा ॥२६९॥
बिना खंम्ह बिन ईंट पखाना । महल कीन जनु तान बिताना॥
आपु राव अरु आपुहिं राजा । चौदह खंड महल उनि साजा॥३००॥
सप्त खंड धवलग्न न होंई । संध्या दून कियौ उन सोई ॥
धरे बार विव दीप अटारी । तर हर भुवन होहिं उजयारी ॥३०१॥

(दोहा)

इती शक्ति रसना नहीं, वरनि बखानों ताहि ।
जल ऊपर मंदिर रच्यौ, यह अद्‌भुत गति आहि ॥३०२॥

(चौपाई)

तब नट नटी बैठ इक ठाँई । ले भाटी सूरति उपजाई ॥
जलसन खौंच बयार बढ़ावै । अग्नि तापकर ताहि चढ़ावै ॥३०३॥
गगन शब्द कर बोलत झांई । यहिविधिमूरति बहुत बनाई ॥
बहु विधि रूप बरनि नहिं आवै । कौतुक होय विलोकत भावै ॥३०४॥
आपुन कीन खेल विस्तारा । आपुहि आपु सकौ हंकारा ॥
देखहि सुनहिं चलहि अरु हेरहि । खाय पियहि अरु बिधिबिधि टेरहि॥३०५॥

१–गुरु । २. टिवारा

मूरति रूप लच्छ चौरासी । तेहि कर नाम आपु अविनासी॥
देखत हेतु सकल उपजाहीं । उभय बहुर विनासै छिनमाहीं॥२०६॥
सो विचार सब कहै निनारा । कौन विनासन भंजन हारा ॥
कौन जियै अरु को पुनि मरही । जीवन कौन परब्रह्म करही ॥२०७॥
सो मुहि गुरु यहि भाँति बताई । अरु गुनियन यह बहु विधि गाई॥
एकै काल अलख करतारा । जेहिकी जीत होय उजियारा ॥२०८॥
पारब्रह्म परमेश्वर स्वामी । सब व्यापक हरि अंतरयामी ॥
सकल विस्व तेहिकर विस्तारा । एक जोति सब घट उजियारा ॥२०९॥
जेहि सु इन्द उद्दित आकासा । तेही शक्ति पुरष कर बासा ॥
फिर घर मध्य चंद नहि देखा । सो गुनियन जो बूझहि लेखा॥२१०॥
हौ बूझौ पंडित तुव पासा । चंद नाम किधौ घट करवासा ॥
सबही में सबते जु नियारा । खोजे पावहिं खोजन हारा ॥२११॥

(दोहा)

इक घट गंगा जल भरौ, एक भरौ जल और ।
प्रतिभासै सम दुहन में, चंद तजै नहि ठौर ॥२१२॥
सब ऊपर इक धाम है, जानत सकल जहान ।
पूरब पच्छिम चार दिस, सीच मंत्र सध्यान ॥२१३॥
पर ब्रह्म परमात्मा, जो गुरु दियौ बताय ।
अलख अगोचर प्रगट है, सब घट रहौ समाय ॥२१४॥

(चौपही)

बहुरि कहौ मन माहिं विचारी । केहि ठाँ रहे कौन उनहारी ॥
निर्गुन सर्गुन सिरजन हारा । एक देह बहु भाँति सवाँरा ॥२१५॥
पुरुष प्रकृति सिव सक्ति कहावे । दंपति रूप जगत उपजावे ॥
पंच तत्व कर जगत उपावा । पंच नाम परमेश्वर गावा ॥२१६॥
रुधिर रेत पाँचो मिल होई । यहि कर भेद न जानै कोई ॥
माता अंस रुधिर तन जाही । अरु पितु अंस वीर्य्य कह ताही ॥२१७॥
रुधिर रेत कर पिंड सँवारा । सो तो जगत विदित संसारा ॥
मरन भयौ इक द्वैकर नासा । अरु सब वस्तु रहै तन पासा ॥२१८॥
रुधिर रेत कर जगत उपावे । वहै प्रान सँजीवन कहावै ॥
जो भर जन्म ज्ञान गुन लेखौ । बिना पंच कछु और न देखौ ॥२१९॥

जहाँ पंच एकते ह्वै जाही। ज्योति रूप ठहरावै ताही॥
तपन तेज रसना जल काना। गगन वाय नासिका बखाना॥३२०॥
गगन पवन मिल बोलहि बोला। बोलहि घन अरु दुन्दुभि डोला॥
जेहि रस वस्स सु पृथ्वी काया। इन्द्री प्रकृति बखानत माया॥३२१॥
तेहि गुन पुरष मिले संघाती। जग उपजाव पँचकर भाँती॥
पंच विवाहित पंचहु दासी। पंचहु नास पंच अविनासी॥३२२॥
विनसें अंस लेहि तब बाँटी। मिल अजंत माटी में माटी॥३२३॥

(दोहा)

परमेश्वर तह पंच है, जगत विदित यह काज।
निगम दिया नर कर लियें, आपुन खोजत जात॥३२४॥

(चौपही)

सुख दुख भोग बुद्धि अरु भोगू। केहि गुन पाप पुन्य अरु रोगू॥
सो विचार सब कहैं अगाऊ। कर्म काल अरु कहत स्वभाऊ॥३२५॥
तिनहू केर भेद है न्यारा। सामादिक उपजै संसारा॥
खेत जोत रितु ऊपर बीजै। उपजै अवस बीज बिनु छीजै॥३२६॥
कालहि पाय बास सब केरा। जोउ पावे विनसे यहि बेरा॥
सकल काल सब परत न साही। गिरवर तरवर समुद सुखाही॥३२७॥
सुख दुख बुद्धि कर्म दुख होई। कर्म प्रधान कहै सब कोई॥
जामतु बीज आय वहि जैसा। निसंदेह उपजै वह तैसा॥३२८॥
जगत अनित्य कर्म ही नीरा। केवल विमल नामु हर हीरा॥
कामिनि कनक और हय हाथी। ये तौ नही संग के साथी॥३२९॥
सुकृत संग और नहिं कोई। क्यों नहि भजत हरी तिहिंसोई॥
ममता चित्त करौ जनि कोई। है प्रभु और न दूजौ होई॥३३०॥
काम क्रोध मद लोभ अपारा। उहि तौ अग्नि रूप संसारा॥
तृष्णा तन. ते न्यारी नाही। ज्यों बडवानल सागर माही॥३३१॥
धबही धनते ज्वाला होई। बुझत जबहि जब सोवनु होई॥३३२॥

(दोहा)

चिंतामणि इम उच्चरै, एसौ यह संसार।
विष्णु भक्ति वैराग युत, ताहि न लावहु वार॥३३३॥

(चौपही)

मुक्ति संग है और न कोई। क्यों न भजे हरि से हितु होई ॥
कलि प्रतिपाल बाल सुत दारा। मनो ग्वाल गोचारन हारा ॥३३४॥
सुनत सूर उपज्यौ वैरागा। विष्णु भक्ति बाढ़ौ अनुरागा ॥
सब संपति तह त्रिन कर जानी। विष्णु भक्ति निश्चै उर आनी ॥३३५॥
चारिहु सुतन चार दिस राजू। दीनो बाँटि सवन सब साजू ॥
चंद्र सेन कह दच्छिण दीन्हा। जे नृप विजैपाल की चीन्हा ॥३३६॥
गुह्यग सहित उदधि के पारा। दीनो सहित अर्थ भंडारा ॥
पूरब दिस पितु पूरब राजू। राज्य सिंह कह दीनो काजू ॥३३७॥
उपजहि जहाँ अमोलिक हीरा। सुंडाहल उपजहिं बलवीरा ॥
पृथ्वीराज दिस पश्चिम पाई। तुरंग बहुत उपजै अधिकाई ॥३३८॥
पाटंवर उपजहिं जर तारा। दिल्लिय नैरि तहाँ अधिकारा ॥
कलपलता सुत नरसिंह भाना। उत्तर देस भई तेहि आना ॥३३६॥
मया देस पुर नगर कुमायूँ। पर्वत राज्य दीन चित चाऊ ॥
धुर भटंत नैपाल के दारा। खाँनि अठारह जहाँ प्रकारा ॥३४०॥
आपुन कीन बहुत सिव ध्याना। उभय घरनि मिलि कियौ पयाना॥
लियौ भाट चिंतामणि संगा। विष्णु भक्ति दीनी जिन अंगा ॥३४१॥
कछू दास अरु दासी लीने। दुजन ग्राम सासनि कर दीने ॥
कासी वास कहिय मति सोई। धन्य धन्य भाषै सबु कोई ॥३४२॥
सुंदर सूर सुबुद्धि उदारा। गोरख ज्ञान सनिक अवतारा ॥
कासीवास कियौ तिन जाई। इतनी कथा सुकवि गुन गाई ॥३४३॥

(दोहा)

कवि पहुकर वरननि कियौ, भवरस कथा प्रकार।
सुनत श्रवन सुख पायहैं, सुकवि सवारन हार ॥३४४॥

(चौपही)

चला जात पृथ्वी संसारा। विनसत देह न लागे वारा ॥
सुरनर नाग राय अरु राने। जे उपजे ते सबै समाने ॥३४५॥
आगे पाछे सबै समाहीं। हमही बैठे मारग माहीं ॥
अच्छिर चार कहे इहिं ठाऊँ। रहै हमार प्रथी में नाऊँ ॥३४६॥

जो नर सुजन आनि कलि होई। सुने सम्हार करैं सब कोई॥
श्रौ संसार जो आय अपारा। विवरे बूझत बूझन हारा॥३४७॥
रामनाम कौ कीजे भेरा। केवट सुकृत संग सब केरा॥
जो राँचे पर धन पर दारा। लेवत बूढ़े कारी धारा॥३४८॥
सतगुरु गुन यह मोह बताई। केवल कृस्न नाम भजि भाई॥
गनिका गीध अजामिल तारै। रामनाम जे सबै उधारै॥३४९॥

(दोहा)

पहुकर वेद पुरान मिल, कीनो यही विचार।
यहि संसार असार में, राम नाम है सार॥३५०॥
वैरागर वैराग वपु, हीरा हित हरिनाम।
प्रीत जोत जिय जगमगै, हरै त्रिबिधि तन तामु॥३५१॥
सत संगति सत बुद्धि उर, विव घरनी संग लाय।
ज्ञान वान प्रस्थान करि, तजै विषै सुखपाय॥३५२॥
तातैं तत्व लहै मुकर, सूझ देख मन माँहि।
कोई तेरे काम नहिं, तू काहू कौ नाहिं॥३५३॥
परधन पर दारा रहित, पर पीरहिं मन लाय।
काम क्रोध मद लोभ तज, विजय निसान बजाय॥३५४॥
पहुकर भव सागर गरुव, निपट गहिर गंभीर।
राम नाम नौका चढ़े, हरिजन लागैं तीर॥३५५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरचितेयं वैरागर षंडे ज्ञान वैराग्य सत्ता राज्य तत्व वर्णनो नाम षोडसमोध्यायः॥१६॥

॥ इति शुभम् ॥

संवत् १९६१ अगहन मासे कृष्ण पक्षे तिथि चतुर्थी ॥४॥ रविवासरे—
श्रीमान् महाराज कोमार श्री दिवान सतरजीतजू देवकी श्रज्ञानुसार

हस्ताक्षर—
कुँवर कन्हैयाजू
उपनाम (वलभद्र) कवि

रसबेलि

विद्वत्कुलमनोभृङ्गरसव्यासङ्गहेतवे

—भानुदत्त

रसवेलि वरनि पुहकर सुकवि गिरा फूल आँनद लसत।
अलिगण सुमत्त वर जग सुहरसु ये प्रसिद्ध जुग जुग हँसत॥

—पुहकर

रसबेलि

(मुग्धा)

नवल नवोढ़ा भव लाजहिं लपेट लीनो,
काम करतूति नाहिं रमै जाके अंग मैं।
ताहि तजि अतुराई चातुरी सो वस करै,
धीरे धीरे धीर ह्वैहैं धरे चित्त संग मैं॥
वाही की प्रतीति वढ़ै वाकी रुचि बात कहै,
मनु कर लिये रहै आवै जो अनंग मैं।
पुहकर त्रिभुवन नाथ कवि चित्र पिय,
ऐसे मिलि जाहु जैसे मिलै जलु रंग मैं॥२॥

(पराधीन)

बातनि लगाई सौंह षाई सँग ल्याई करि,
स्वाइवै कौ सेज पर साथ लै उलारी है।
नैक निधरक भई त्यौंही नीद आइ गई,
उठी हरवराइ सखियन की विचारी है॥
पुहकर कहै पास पौढ़ी पिय अविजानि,
चक्रित भ्रमित भय चित्त भई भारी है।
साहसी सकसकाइ सकै न उसास लेइ,
चाहि रही भुराइ कै ससेकी अध्यारी है॥३॥

(विसुधरति नवोढ़ा)

नवला नव जोवन लाज प्रधान,
प्रकास प्रकास अवैजुवगी है।
कवि पुहकर श्री मुरली धर जू,
भरि नैन विलोकित भौ सी भगी है॥

धीर धरौ दिन द्वै वलि जाऊँ,
हिलाइ लिये हित ही सौं पगी है।
रतिया न रचै जैसे और तिया,
वतिया न लगै छतिया न लगी है ॥४॥

(अंकुरित यौवना)

मन ही मन मैं अभिलाष बढ़ै,
जौ अलीकुल लीजुक वास वसी सी।
कवि पुहकर श्री मुरलीधर के,
हित मैं दरसी सुख की सरसी सी ॥
निसि अंत भयौ विनु भानु उदै,
उनमान मनौ छिति छाँह लसी सी।
वाल दसा मधि जोवन को रँग,
यौं झलकै जनु जावक सीसी ॥५॥

(अज्ञात यौवना)

लाज बढ़ी मुसक्याति सकाति,
गही कछु नैननि चंचलताई।
वक्र भईं विवि भौंहें कछूक,
कछू कटियौ छुटि कै घटि आई ॥
जानै नहीं यतौ जोवनु आगम,
यौं उपमा कवि पुहकर पाई।
ज्यौं जल मैं ससि कौ प्रतिवींबु,
सु यौं तन मै झलकै तरुनाई ॥६॥

(मध्या)

चाहै चित्र चौपरि तौ खेलिवे कौ चारुमुखी,
लोचननि चपक पजीर अरुझाई कै।
श्रवननि सुनत सवनि पास पीय गुन,
कहिवे कौ मानौ गति रसना भुलाइ कै ॥
पुहकर कहै पिय प्यारीको परस भावै,
रति भव भरी है अलप रुचि आइ कै।
कामिनी लजीली सरसीली सब रूप गुन,
मध्य को सुमध्या वस सोहति सुभाइ कै ॥८॥

(पौढ़ा स्वकीया)

फूलनि की सेज स्याम रोहिनी रवन मुखी,
राजति रास कस गमना घन दामिनी।
काम केलि करत कुमार दोउ काम रूप,
जागत जगावत जुन्हाई जीति जामिनी॥
पुहकर पियहिं उरज वर उर लावै,
बार बार मानिनी रिझावै गज गामिनी।
कोकिल के कल कोक कला में प्रवीन प्यारी,
कुहुकि कुहकि उठै कोक कैसी कामिनी॥९॥

(पौढ़ा परकीया)

बोलु थपौ पिय प्रेम निरन्तर,
लच्छिन लच्छिन तै अधिकानै।
मृदु मंडित हास हँसे दुति यौं,
तहँ साध मयी तुम ही सिषि जानै॥
फेरि कही समुझौ मन मै,
मन तौ मन मोहन हाथ विकानै।
कवि पुहकर नैन दलाल भये,
तिहि काल दियौ सरवैन वयानै॥१०॥

(गुप्तहरन)

हौं तौ हँसि बोलति न वीर हूँ सौ मेरी वीर,
काहू के न तीर वैठौं सखिया न भावहीं।
नीरौ नभ रैनि जाति बीरौ न दुहावति हौं,
और जे अहीरी जाहि षरिक दुहावहीं॥
सौहै न पत्याति कोऊ साँच कौ न मानतु है,
पुहकर मारि मेरौ मन मुरि जावहीं।
कान न सुनै री कहूँ कानन रहत कान्ह,
ऐतौ दुखहाई मोहि दोषन लगावहीं॥११॥

(स्वयं दूतिका)

माखन दुराइ षाइ साषु न तनकु तिन्है,
वोरहू के चोर देषौ काम गिरधारी कै।

चोरि चोरि लीनै है सुदीनै वहु जतननि,
अब निसि फूल लेत फूल फुलवारी के ॥
आपु तो वे जागती हैं वाटिका अकेली दुरि,
देषौ तुम कैसे लैहौ मेरी रखवारी के ।
पुहकर प्राननाथ सुनत सुजान राइ,
चातुरी के बैन वृषभानु की कुमारी के ॥१२॥

(धीरा)

कहा भयौ प्रीतम की पतिया,
बतिया सुख ही सुख की बिसरायै ।
कहा भयौ रोषु रुखाई धरै,
सब अंगनु सील सँकोच जनायै ॥
कवि पुहकर प्रेम पगी अँखियाँ,
सखियाँ मिस के सब देति बतायै ।
पूरन ह्वै प्रगट्यौ गुन अंगनि,
नागरी नेह दुरै न दुरायै ॥१४॥

(चिंतासच)

बेलि मुरि पात[1] मुर जाति है कनक बेलि,
छाया के मिटत छाया मानौ सुख छाई है ।
पुहकर कहै बृत्त मान थान विघटन,
चींता करि चन्द्रमुखी चक्रत ह्वै आई है ॥
वार वार विरचि विचारति है और ठौर,
ठौर ठौर दौरै मनु लागी लोलताई है ।
आगम वसंत तरु पातनि को पातु होत,
त्यौं त्यौं तरुनी को तनु पीतता[2] जनाई है ॥१६॥

(अधीरा)

सौंहनि पत्यानि मै न जानी हो तिहारी बात,
कपट की प्रीति पिय परम प्रवीन हौ ।
वचननि और करतूति और ठौर ठौर,
और मन और और ठौर ठौर लीन हौ ॥

---

१. मुरिझात । २. प्रीतता ।

जोई गंगा न्हाई तेई पाये फल पाइ परै,
ताही के सिधारौ नाथ जाही के अधीन हौ ।
दुरद के रदन ज्यौं देषिबे के और न्यारे,
नये नये नेह करि नहे ही नवीन हौ ॥२१॥

(धीरा)

बालम विलोकि उठि आदर के ठाढ़ी भई,
दीरघ उसासैं लै लै धीरता जनाई है ।
भौहैं निसि सौंही मुसक्याहिं नैन सैननि मैं,
बैननि पा लागि चित्त चारु चतुराई है ॥
पुहकर कहें रोस रस मैं रसीली बाल,
लाल तन हेरि फेरि धरत रुखाई है ।
परम प्रवीन पिय प्राननाथ साथ सुनु,
कीजै नारि मनमानी रति जु सुहाई है ॥२२॥

(लक्षिता)

जानतु हौं गई तुम वाटिका विहार हेत,
जल करि कंचुकी की नाभि भीजियतु है ।
सरस मै न्हाइ फल भूषन समेत आपु,
अलि यौ ? संकु को बुलाइ लीजियतु है ॥
पुहकर कहे मैं पठाइ पिय पास प्यारी,
बात की तौ बात आनि ताहि दीजियतु है ।
नागरी निठुर अरु तैसेय कुटिल कान्ह,
सषिन की वीर ऐसौ पीर कीजियतु है ॥२३॥

(प्रोषिता)

आवति है आए घर जाति पुनि सँग लागि,
नैननि की नींद कैधौं नाह अनुगामिनी ।
वर की कमान काम कान लागी तान वान,
मारत निसान प्रान कैसे सहै कामिनी ॥
कहै कवि पुहकर मुरलीधरन कान्ह,
बिछुरे तै दुसह दुहेली भई दामिनी ।
उठी भारी पिया विनु सुनिहे विरह बैरी,
सूनी भई सेज तब दूनी भई जामिनी ॥२४॥

(विरहिनी)

आरसी अरति उर कोकिला पुकारै आइ,
वार वार बोलै तातै वधू विकरार है।
पुहकर सुकवि घनसार घसि तन लावै,
सीतल अनिल कैंधौ अनल की जार है॥
अँगार सिंगार हार पंच बान मारे मार,
कहाँ गृह कहाँ द्वार सुधि न सम्हार है।
निसि भये ससि की किरन लागै सर सम,
अगर सुगंध मद लागत असार है॥२५॥

(खंडिता)

नैन अरुनाई बरनी है ललनाई चलि,
आए पगु धरनी पै धीर कौ धरत हौ।
कौनै कियौ हितु कौनै लियौ चितु पुहकर,
प्रभु नित नए नेह त्रिया रसरत हौ॥
नींद के उनीदे नैन बैन करौ चतुराए,
आय भले मेरौ धाम काहे को डरत हौ।
हारु धरौ हिय हरि पिय हौ हमारे तुम,
काहे काजै भौंहे तानि सौंहनि करत हौ॥२६॥

(कलहंतारिता)

कैंधो कहूँ जाइ कछू आन कही करी है री,
कैधो अनजानत ही मोतै चूक परी है।
कैधौ और नाइका के नेह अनुरागे पिय,
छाँड्यो हिय हेतु निठुराई जिय धरी है॥
पुहुकर कहै प्रान पति जू पराये भए,
एती करतूति तौ करम गति करी है।
तुही लै सुवाइ सखी विविध विचारि करि,
मो गति तौ विरह वियोग वर हरी है॥२७॥

(विप्रलब्धा)

आली की प्रतीति मान प्रीतम की प्रीति जानि,
सोरहू सिंगार साजि आई कुंज धाम जू।
सूनी सेज देखि ससिमुखी मृग नैनी नारि,
तवही चढ़ाइ चापि लियौ कर काम जू॥
उलटि न सकति है रह्यौ न परै अध्यारी,
दूती तन हेरि करि जपै सिव नाम जू।
कहै कवि पुहकर आतुरी अतन तन,
चातुरी चकृत चहूँ ओर चाहै वाम जू॥२८॥

(उत्कंठिता)

काहै तै न आए कैधौ मन मै रिसाए पिय,
कैधौ विरमाये कहूँ चित्त मैं विचार ही।
तारा गन गनि गनि तरनी की छाँह देखे,
पल पल सारै पलु निसि न विसारही॥
कहू रहे अलसाइ कहूँ परजंक पौढ़े,
कहूँ वजै वीना ससि रथहि न रार ही।
मिलन के हेत उत्कंठा अति वाढ़ो चित्त,
पुहकर प्रान नाथ पंथहिँ निहारही॥२९॥

(अभिसारिका)

घूमै घन चहूँ ओर बरखत घंड जोर,
सूझतु न नैननि पिया सी स्याम जामिनी।
सहस कपाच तन सिंधिनी विलोकि वन,
चंपति फनिंद फन कंपति न भामिनी॥
मनि कौ उदोत होत चरन धरति धनि,
पुहकर अंग अंग दमकति दामिनी।
हेतु को हथ्यार सौं सुभट कै सौ अधिकार,
जोग कैसो सारु अभिसारु करै कामिनी॥३१॥

(स्वाधीनपतिका)

तैसे भूमि पल्लव लटिकि दुहूँ ओर रहे,
जाति कटी कामिनी सुपंथ वृन्दावन के।
पंकज की पाँखुरी विछाइ प्रभु आगै आगै,
कोयल परम पद जानि राधा धन के॥
पुहकर कहै प्रतिबिंवनि के पेखे भेद,
कहि न सकत सेस सहस वदन के।
कमल के दल कैसो प्यारी के चरन तल,
कैधो ए नवल कर कुंज स्याम घन के॥३२॥

मध्यमा

(कवित्तु छप्पै)

राजति अलक सुकंठ मनहु सारद वर वारद।
सुहृद भुंमि सुभ देस सलिल सज्जन श्रुति आरद॥
प्रगट पत्र वहु नेद मदन अंकुरि करि सोहै।
ललित लता लहलहै सुनत रसिकन मनु मोहै॥
रसवेलि वरनि पुहकर सुकवि गिरा फूल आनद लसत।
अलि गण सुमत्त वर जग सुहरसु ये प्रसिद्ध जुग जुग हसत॥३७॥

[इति रसवेलि पूर्णः। लिषितं चित्रु दसकत सुषदेव चित्री
गुरप्रताप श्रीराम कृष्ण (कृपा) सहाय रहै]

———

संक्षिप्त शब्दार्थसूची

[रसरतन के पाठकों के लिए दुरूह शब्दों तथा उनके अर्थ की एक संक्षिप्त सूची दी जा रही है। शब्दों के आगे लिखे अंक छंद की संख्या के सूचक हैं।]

आदि खंड

अघ १ पाप
अटक १ कष्ट, बाधा
निरलेष १ लेख के परे
त्रैपुर १ तीन लोक
घोष २ अहीरों की बस्ती
मघवा २ इंद्र
गौव २ गौ वृंद
कप्पाल ३ खोपड़ी
फनिंद्र ३ सर्प
मैन ३ कामदेव
चमी ३ कोमल
तमी ४ रात्रि
सुज्झिय ४ सूझता
बुज्झिय ४ बूझता
पौहप ४ पुष्प
सभ्रोविस्था ६ शुभ्रवस्त्रा
वीनादंडी ६ वीणापाणि
म्यां ६ माम् [मुझे]
पातोयं ७ पान, रक्षा करें
वागेसं ८ वागेश्वरी
आरूढ़ ९ चढ़ी हुई
अवतंस ९ उत्पन्न
सर्वानी ९ सर्वाणी, शिवपत्नी
सुमृत १० स्मृति
ब्रह्मसुता १० सरस्वती
सिध्यमुखी ११ गणेश
निर्वाहनं ११ पूरा कराने वाले
जेमि १२ तरह
कंठह १२ कंठ में
अपनाम १३ अपना नाम
चतुरानन १५ ब्रह्मा
दै १५ तै, से
सिरजै १६ सृजता है।
भोरो १७ भोला
सुमति १७ बुद्धि
कोविद १८ काव्यरसिक
गाहकन १९ ग्राहक
बात १९ बाती
मंथानिय २० मथानी
कड्डिय २० काढ़ा

वागेसुर २० वागेश्वरी
कहिहेत २० के लिए
मुहि २० मुझे
दिज्जइ २० दीजिए
गरुव २० भारी
चौदा २१ चौदह
तैन २१ इस कारण
प्रगटिहै २३ प्रकट होगी
जुक्ति २४ उक्ति
पौहमपति २६ पृथ्वीपति
आदिलवली २६ न्यायवीर
सकवंदी २७ शकारि विक्रमादित्य
छंदी २७ छंदोबद्ध किया
चक्कवै २९ चक्रवर्ती
खुरसाना २९ खुरासान
सहसफनी २९ शेषनाग
अदल ३० न्याय

जगतगुरू, जगपाल, जगतनायक, जगवंदन } ३१ मुगलबादशाहों की उपाधियाँ

आलमपनाह ३१ विश्वरक्षक
नरनाह ३१ नरनाथ
तेगवृत्ति ३१ खड्गवृत्ति
तरनि ३१ सूर्य
करन ३२ कर्ण
वलिदान ३२ दान में वलि के समान
गोरिक्ख ३२ गोरखनाथ
भनिजै ३२ कहा जाता है
सौदुंर्ज ३२ सौंदर्य
गनिज्जै ३२ गिना जाता है
पीरहरन ३२ पीड़ा हरने वाला
दीह ३३ दीर्घ
कच ३३ केश
वषानिय ३३ वखाना
वहुर ३३ पुनः
तुच ३३ त्वचा
जिभ्य ३३ जीभ
विश्नोति ३३ विस्तृत
भनि ३३ भने गए।
दलगर्जन ३४ सेनाका नाश करनेवाला
लोइनि ३५ लोचन
भुव ३५ भ्रुव, भौंह
सरूप ३५ सुरूप
तुषार ३७ घोड़े
सुंडाहल ३७ हाथी
सत्तरि ३७ सत्तर
विवि ३७ दो
कोटि ३७ करोड़
पयद्दल ३७ पयदल सेना
निस्सान ३७ युद्ध वाद्य
गज्जहि ३७ गरजते हैं।
उड्डुगन ३७ तारे
संकि ३७ डरकर
हलहि ३७ व्याकुल
कमठ ३७ कच्छप
मुंदी ३७ मुँद गये
तरनि ३७ सूर्य
वनराइ ३८ वनराजि

रेनुका ३८ वालुका
चाइ ३८ चाव
मौजें ३८ लहरें
किंकिर ३६ दास
थानै ३६ स्थान
पव्वय ४० पर्वत
रिसाना ४० क्रुद्ध
सैल ४१ सैर
मेर ४१ मेरु
उच्छलिय ४२ उछला
छच्चिय ४२ छा गई
थरहरिय ४२ काँप गए
साइर ४२ सागर
पिसान ४२ पीसा हुआ,
षलभल ४२ कोलाहल
कविलास ४३ कैलाश
मसाम ४३ देश विशेष
लाट ४३ गुजरात
परसि ४३ फारस
रसाल ४३ रसमय
सविता ४४ सूर्य
नौवत ४४ नौबत (राजकीय वाद्य)
मूकि ४४ छोड़ना
डोगँरनि ४४ पहाड़ियाँ, डूँगरी
डौडाँ ४४ नौकाएँ
ठाँ ४६ स्थान
विक ४६ वृक
कवि-विधि ४६ कवि समय या रूढ़ि
निर्विस ४८ विना विष के
जगाति ४६ मुगलकालीन टैक्स, ज़कात
चित्रक ५० चीते
सुक ५० शुक, तोते
सिंचान ५० वाजपक्षी
तूल ५१ रुई
कोवँल ५१ कोमल
विवि ५१ दूसरा
चवै ५२ कहता है
सुधीर ५४ मर्यादापूर्ण
प्रवान ५४ प्रमाण
पारथ ५४ अर्जुन
दरसन ५५ याचक
पयोत्र ५५ पौत्र
तामधि ५६ उसमें
जतनु ५८ यत्न
अभार ५८ भार
मिलाना ५६ सम्मिलन
सपनन्तर ६२ स्वप्न में
ततच्छन ६४ तत्क्षण
षदकर्मी ६५ छः प्रकार के कार्य करनेवाले।
पारि ६६ घाट
थापि ६६ स्थापित करके
असिवल ६७ खड्गवल
संभरी ६७ शाकंभरि देश
नच्छत्र ६६ मुहूर्त
सम्हरधनी ६६ शाकंभरि नरेश
नेगी ६६ नेग पानेवाले, भृत्य
दधिजात ७४ चंद्रमा

तन ७६ शरीर से
समहूर ७७ मसहूर
वार पारह ७७ सीमा
तनै ७८ तनय
आउ ८० आयु
राँक ८० रंक
विनानिय ८१ विज्ञानी
पारसपरस ८१ पारस स्पर्श, दानी
वितीती ८२ व्यतीत हुई
आषून ८२ मौलवी
नजम ८३ पद्य
नसर ८३ गद्य
अवियात ८३ वैतबाजी
उभै ८४ उभय
भाजन ८७ पात्र
कछुवक ८८ कुछ
मेच्छि ९३ मूँछ
बिसराओ ९५ भूलो
अगुरी ९५ अँगुली
दूषन ९६ दोष
समारी ९६ सँभाल लो
चाहि ९८ चाहकर
बरनिबै ९८ वरनन करने की
अच्छरि ९९ अप्सरा
जोगिनी ९९ योगिनी
सारु ९९ लोहा
वजिय ९९ बजा
अभूर १०३ बहुत
ताराइन १०६ तारों की तरह
जराव ११२ जड़ना
श्रियं ११३ श्री
डौरूं ११४ डमरू
पटराँग्यनि ११६ पटराज्ञी
आधान ११६ गर्भ
मावस ११८ अमावस्या
कुहू ११९ अमावस्या की रात्रि
अनगन ११९ अत्यंत
दर्व १२० द्रव्य
दुरायै १२६ छिपाये
मूरि १२७ औषध
मकरध्वज १३० कामदेव
छठी १३३ छठी उत्सव
लाष १३८ लाख, लहठी
खगनि १३८ पक्षी
षरिहाना १३८ काट कर ढेर करना
गिंदुक १३९ कंदुक
लच्छनि १३९ लक्षण
चटषारा १३९ पाठशाला
परमानी १४२ प्रमाणा, सीखा ।
वैस १४९ वयस
वहरावै १५० वहलाना
चाँचरि १५१ गीत विशेष
परमानहु १५३ मानो
सौज १५५ सामान
वैर वधू विकरार १५७ शत्रुनारियों को बेकरार करनेवाले
वलय १५९ घेरा
वह्मनीक १६० ब्रह्मोपासक

गुजरधर १६२ गुर्जर, गुजरात
जगंम १६६ साधु
तैन १६७ उस
विनव १६८ विनती की
वारन १६६ हाथी
तंत १७२ तंत्र
ब्रह्मन्न १७२ ब्राह्मण
गजंनि १७४ मारने वाली
पिष्षियै १७४ देखिए
जनु १७७ जैसे
जोषिता १७७ योषिता, पत्नी
मद्धि १८२ मध्यम
कुटम १८३ कुटुंब
अवर्ष १८४ असफल वर्ष
षीरू १८८ दूध
वितीतन १८८ व्यतीत होने
आरि १८६ कसर
वैस १६० वयस
जुगत १६१ मुक्त
ऊषह १६१ ऊषा
सरसी १६१ सरोवर
ष्याल १६२ सुधि
विगलत्त १६३ विगलित
अचान १६४ अचानक
मुषह १६४ मुख
पौढ़ाई १६५ सुलाई
बधावति १६६ बँधाती
पाँनूस १६८ पानूष या फानूस
मोपै १६६ मुझसे
दुरंग १६६ द्वाभा, धूपछाहीं
पच्छिम २०१ पद्म, बरौनी
अनियारे २०१ अनीवाले, नुकीले
सीवँ २०१ सीमा
कुंडिल २०२ कुंडल
पारस २०२ पार्श्व
मुत्तियगन २०२ मोतियों की लड़ी
दारौं २०३ दाड़िम
छामि २०५ पतली
श्रोणि २०५ नितंब
भंगुर २०५ लचक
पैज करि पान २०५ प्रतिज्ञा करके बीड़ा उठाया।

स्वप्न खंड

राजति १ सुशोभित
सहारौ ३ सँभाला
सर ५ समान
आगरि ८ आकर, भरी हुई।
सारंग ६ सूर्य
पुलक्कित ११ पुलकित
हुव ११ हुआ
ठाँम १३ ठाँव
उपाइ १३ उपाय
परतिच्छ १५ प्रत्यक्ष
परसपर १७ परस्पर
पैनाइ १६ तीखा करके

उनमदन २० उन्मादन वाण
हाटक २२ स्वर्ण
अवास २३ आवास
मनि २४ मणि
मुक्ति २४ मोती
बाउ २५ वायु
जाइ २५ जाति, जूही
चाउ २५ चाव
जामिनीय २५ यामिनी
भृंगार २६ भँवरे
सौहंत २७ अच्छा लगते हैं
द्वार पालकवार २७ द्वारपाल लोग
सूर २८ सूर्य, सूरसेन
कंद्रप ३० कामदेव, कंर्दप
विगासु ३० विकास
उहि ३० वही
मूरत्ति ३० मूर्ति
निछियावर ३१ न्योछावर
तृपित ३१ तृप्ति
सज्जित ३२ सजाकर
मृगमद ३२ कस्तूरी
तिलक ३२ तिलक
ओप ३२ आभा
विवि ३३ दोनो
दल्ल ३४ दल
अचिरज ४० आश्चर्य
वितई ४० व्यतीत की
चेटकु ४० जादू
संष ४१ शङ्ख
गुन ४२ कारण, गुण
बैसी ४२ बैठी,
थिर ४३ स्थिर
अपनपौ ४४ चेतना
बुंद ४५ बूँद
अग्रह ४५ आगे
हथ्थहिं ४५ हाँथोंसे
बुल्लहिं ४५ बोलती है
संक ४५ शंका
पषारहिं ४६ पखारती हैं
पै ४६ परंतु
बहुरि ४८ पुनः
जूड़ीयो ५० ज्वर
जनाई ५० ज्ञात
माँझ ५० बीच में
बलाइ ५० बलैया
अरस्याइ ५० अलसाकर
फेरि ५० फिर
त्रंनु ५२ तृण
पच्छ ५३ पंख
नौन ५५ नमक
त्रिय ५६ स्त्री
अंजुल ५७ अँजुरी
बेगही ५७ तीव्र
सुकुँवारी ६३ सुकुमारि
उसास ६४ उसाँस
उपजिय ६५ उपजा
उपाइ ६५ उपाय
कदाचि ६५ कदाचित्

अग्यान ६७ विच्छिप्त
गति ६७ दशा
हैम ६८ हिम जल
चक्कृत ६८ चकित
चितवै ६८ देखती है।
अनेग ७० अनेक
दुज ७२ ब्राह्मण
घनसार ७६ कपूर
छिरकि ७८ छिड़क कर
भीनहिं ८१ भिगा हुआ
झारै ८४ पटकती है
कफ्फ ८६ कफ
बात ८६ वायु
बेदनि ८६ वेदना
ओषद ८६ औषधि
साँति ८७ शांति
आहि ८८ है
षिन ६३ क्षण
सीयरौ ६३ शीतल
नेमु ६४ नियम
वत्तरी ६६ बातें
जुरत ६८ जुड़ते हैं (मिलते)
तत्तु १०१ तत्त्व
थोर १०२ थोड़े
गहिर १०३ गहरा
प्रतिच्छ १०४ प्रत्यत्न
वषानत वेदहूँ १०५ वेदों ने बखान किया है
द्रग १०७ नयन
हस्थ १०८ हाथ
विवरत १०८ विवर्ण होता है।
प्रमान ११० प्रमाण
वत्तियाँ ११० बातें
जिवाई ११२ जीवित
बाल ११२ बाला
बारता ११५ वार्त्ता
निमषत ११५ एक क्षण बाहर रहो
एकंत ११६ एकांत
निआदरु १२० निरादर
मंदनि १२३ धीरे से
मृद १२४ मृदुल
नवला १२४ नवोढ़ा
हिदौ १२४ हृदय
मनमथ्थ १२५ मनमथ, काम
सामादिक १२६ साम दाम दंड भेद
ढिग १३४ पास
सरबर १३४ सरोवर
सजहि १३७ बनाती है।
हौं १३६ मैं
तसकर १४० चोर, तस्कर
काढ़ि १४४ निकाल
बिसवासी १४४ विश्वासघाती
बिरदंतु १४७ वृत्तांत
लुब्भियह १४८ लुब्धक
पच्चि १४८ अच्छी तरह
समथ्थ १४६ समर्थ
उदवेग १५१ उद्वेग
बिस्थर १५२ विस्तार

फैननि १५३ फेन
थलं १५३ पृथ्वी
करमतु १५३ आरी, करपत्र
वित्त १५६ वृत्ति
चेत १६१ चेतना
अतन १६१ अत्यंत
छुधा १६२ क्षुधा
जनावै १६८ प्रकट होता है
षोडस द्वादस भूषन १७० षोडस शृंगार द्वादस आभरण
बल्लभ १७१ प्रिय
गुनानं १७१ गुणों को
पंग १७४ निश्चेष्ट
ररै १७६ रटती है।
बिथति १८१ व्यथित
आभरन १८१ आभरण
सारंग नैनि १८४ मृगनैनी
झारा १८६ ज्वाला
षेह १६१ राख
मंद १६२ मद्धिम
निरदय १६५ निर्दय
ठामु १६५ ठाँव
गाऊँ १६५ ग्राम
बिछुट्टिय २०० छूटी
टुट्टिय २०० टूटा
जदिन २०० जिस दिन से
तंतु २०५ तंत्र
मंतु २०५ मंत्र
पऊष २०५ पियूष
छीन २०६ क्षीण
असित २०८ कृष्ण
घटसुत २०८ अगस्त
ताली दल आमा २०६ पीला
तार २१३ नेत्रतारक
परजंक २१५ पर्यंक
मुँहि २१८ मुख
कंप्पौ २१६ काँपा
पटरागनिय २१६ पटराज्ञी
दुराये २२३ छिपाये
गंधर्प २२५ गंधर्व
नियरानी २२६ समीप
विकरार २२७ वेकरार
वरषि २२७ वर्ष
निस्चै २३२ निश्चय
अगम निगम २३३ वेद पुराण
मनकाम २३३ मनोकामना
सोभं २३४ शोभित
तमं २३४ अँधेरा
जागंत २३५ जागते
सुचै २३६ पवित्र, शुचि।
प्रफुल्लिन्त २३७ प्रफुल्लित
वारिज्ज २३७ कमल
जद्दिप २४० यद्यपि
सर्वरी २४३ रात्रि
निदाइ २४४ निद्रित
बरूनी २४६ बरौनी
सरवस्स २४८ सर्वस्व
फेरि २४८ पुनः

मुहि २४६ मुझे
वरक्ख २५० वर्ष
अवरेष २५४ देखकर
पषान २५६ पाषाण
परसन्न २५६ प्रसन्न
हेत २५६ हेतु
वीछुरौ २३४ बिछुड़ो
घटवाइ २६४ घटाव
नीदि २६५ निद्रा
पलंक्क २६६ पलंग
पलक्क २६६ पलक
नठी २६६ नष्ट हुई
पमुक्कि २६७ छोड़कर
परेषौ २६७ विचार
दुती २६६ द्वितीयाचंद्र
छुवै २७६ छूकर
सचुपाई २८५ शांत हुई
कामिन २८६ कामिनी
चष २८६ नेत्र
चषी २८६ देखा
कृत्रि २८७ कृति
मावसि २८७ अमा
आदरिय २८६ आदर दिया
आइसु २६१ आज्ञा

चित्र खंड

सहाइ २ सहायता
परवीन ५ प्रवीण
वहै १० वही
भरथ षंड १६ भरत खंड
पिष्यौ १६ देखा
अगाऊ १८ आगे
चाऊ १८ चाव से
अनुहारी १६ छवि
अवरेषहिं २१ रेखांकित
तलफहिं २३ तड़पते हैं
द्यौष २५ दिवस
फंदा २५ पाश
मित्ता २८ मितवा
आलवाल २६ थाला
तटक २६ ताजा, टाटक
तूर ३४ तुरही
जुरै ३४ एकत्र हुए
पषराये ३४ ज़ीन कसे
भावंता ४३ प्रिय
बच ४४ वचन
सुप्नतुल्य ४८ स्वप्न तुल्य
छीन ५२ क्षीण
कौतिक ५४ कौतुक
वेझौ ५६ वेध्य, निशाना
हौर ५७ हौरे
डाह ६१ दाह
पारौ ६१ पारा
नातर ६३ नहीं तो
टोवै ६४ जोहता है
जाके ६६ जिसके

र० र० भू० १६ (११००-६२)

झुरडवै ६७ विसूरना
घाइल ६६ आहत
भुग्गवै ७६ भोगे
कोक ७६ कोक शास्त्र
निरनै ७६ निर्णय
ठगौरी ८२ ठगने वाली वस्तु
दंदा ८३ दुःख
परगासा ८५ प्रकाश
निघटति ८६ घटती
कलियानी ६० काली
पंच आभरण १०१ पंच वस्त्र
दुल्लभु १०४ दुर्लभ
हाटकहाट १०६ स्वर्ण हाट
सुधा ११६ स्वधा
मकरध्धुज १२० मकरध्वज
वितीत १२२ व्यतीत
गुनियनि १२३ गुनीजन
आसिका १३३ आशीर्वाद
इकंत १४२ एकांत
कैसहु १५१ किसी प्रकार भी
परष्यौं १५४ परखूं
विछुरौ १५६ विरह
नागवल्ली १६२ नागलता
सिषी १६२ मयूर
विलोल १६३ चंचल
रद १६४ दाँत
चंचु १६४ चोंच
अत्तियाँ १६५ अत्यंत
कुनित १६६ क्वणित

हिराई १६६ खोई हुई
पयूष १७३ पीयूष
घाइ १७३ घाव
लायौ १७३ लगाया
पेस १७५ पेशा
भाँती १७८ तरह
साँती १७८ शांति
दिषरावहु १७८ दिखाओ
जंगम १८३ तांत्रिक
श्रीय १८७ लक्ष्मी
चाडिली १८६ प्यारी
प्रकिति १६५ प्रकृति
तृगुन २०४ त्रिगुण
परमानत २०६ प्रमाणित
पतियानौ २०७ विश्वास किया
रसभेद २१२ प्रेम रहस्य
वृषभानी २१४ सूर्य
नैकु २१४ जरा भी
नौतम २१७ नूतन
पंष २१६ पंख
अघवाऊँ २१६ तृप्ति
परिपाटी २२० रीति
गुन २२० डोर
जिय दाता २२१ जीवनदाता
बाँह २२२ भुजा, बाहु
सिष्ष २२२ शिष्य
ठाठिहैं २२४ आयोजित करेंगे
अवसिमेव २२५ अवश्यमेव
बंध २२७ कसम

ओप २२८ प्रकाश, छाया
थापे २३८ अल्पना
बँधावनै २३८ बधाई
काढ्यौ २४० निकाला
तरल २४१ चंचल
दुतिया २४१ द्वितीया
हिंडोला २४२ झूला
पलान २४३ काठी
चितैयनिं २४६ देखने वालियों का
घरग्घर २५० घर-घर
सोग २५१ शोक
वह्क्रिम २५२ वयक्रम, हमउम्र
सचुपावौ २५६ शांति पाता
निमष २५८ निमिष, पल भर

विजयपाल खंड

तुलान्यौ ६ तुलित हुआ, आया
परदार ७ पहरेदार
अँचवत १० आचमन करते
जट १३ जड़े
निर्वाहन १६ निवाहना
पतिया २३ पत्र
वाचीं २३ पढ़ीं
गहग्गह २४ आनंदोत्सव सूचक
मुंदरी २५ अँगूठी
पंत्री २६ पत्र
दंद २७ द्वंद्व
धूता ३० ठगने वाला
उताल ३३ शीघ्र
आइहै ३४ आयेंगे
गहिर ३४ विलंब
ढील ४२ ढिलाई (बिलंब)
चक्कवै ४८ चक्रवर्ती
हँकारियौ ५१ बुलाया
नेवति ५२ निर्मित्रित
आखंडल ५८ इंद्र
सिषरावहीं ६१ सिखातीं
पीहर ६२ पितृगृह
तरबरै ६३ तरुवर
अगेती ६४ आगे की ओर
परिष्यवो ६६ समझाना
षोई ७८ नष्ट
विरलि ८२ विरली
मानिवी ८३ मानना
वस ८३ बश
पुरिष ८५ पुरुष
गुन ८६ रस्सी, गुण
नाउ ८६ नाव
ग्राम ८६ स्वरग्राम
षस ९० खस
गूँदै ९१ गूँथना
सूप ९२ दाल
अनभावन ९७ अप्रिय
वसिकरन ९८ वशीकरण

पून्यौ ६६ पूर्णिमा
वारी १०० बाली
उश्न ११६ ऊष्ण
उतसंग ११७ गोद, साथ
गहौ ११८ धारण करो
उराहनौ १२२ उलाहना
चौप १२२ रुचि पूर्वक
वारि देहुँ १२३ निछावर कर दूँ
हिरनाछी १२६ मृगनैनी
तिमग १३१ सूर्य
पाकसासन १३१ अग्नि
उव्वरहिं १३१ उबरते, बचते
जुहार १३३ दर्शन
दुरद १३४ हाथी
विभौ १३६ वैभव
जुध्य १३७ युद्ध
निस्साना १४० निशान, विजयसूचक वाद्य ।
लजियावहु १४१ लज्जित करो
सीधरै १५२ पूरा हो
ग्रामेस १५२ ग्रामपति
पहिराइ १५४ खिलकत देकर
पाठयौ १५४ भेजा
सुरप्पत १५६ सुरपति
अभलाषु १५७ अभिलाषा
तत छन १५६ तत्क्षण
विष्याता १६० विख्यात
दिवावहु १६१ दिलाइए
विरतंतु १६३ वृत्तांत

पानिगहन १६६ पाणिग्रहण
अबिल १७० अबिल पूरा
वोट १७३ ओट
निमष १७३ निमिष
वोषद १७५ औषधि
अबसिमेव १७५ अवश्यमेव
पहुमी १७८ पृथ्वी
वच्छ १८४ बछड़ा
थंभै १८४ थमता
नालकेलि १८८ नारियल
नाईं १६२ भाँति
मंगलीक १६४ मांगलिक, याचक
इंदौर १६८ इंद्रलोक, कोलाहल
मैमत्त १६८ मदमत्त हाथी
वद्दला १६८ बादल
वग्गरी १६६ वक समुदाय
पावसी २०२ वर्षा की
खरक्कैं २०२ खनकते
झिल्ली २०२ झींगुर
पलानैं २०३ जीन, काठी ।
लग्गाम २०७ लगाम
रेसंम्म २०७ रेशमी
झल्लकंति २११ झलक
नगरवाल २१२ नागरिक
तम्मोल २१२ ताम्बूल
डिढय २१८ दृढ़
डाढार २१८ फण
वागलिय २१८ वल्गायुक्त

रिषीस गनं २२३ ऋषिगण
अषिया २२४ आँखें
सिढ़ियाँ २२४ सीढ़ियाँ
अचिर्ज २२५ आश्चर्य
रितुपति २२४ ऋतुपति (वसंत)

सोहनु २३४ सुहावना
पुरानहि २३५ पुराणों में
षग २३८ पक्षी
मनकुम ? २३८ कमल ?
पत्तनं २३८ पत्ते

अप्सरा खंड

विवाँननि १ विमानों से
निघटत ४ बीतते-बीतते
काच ११ काँच (शीशा)
मानसर १२ मानसरोवर
पसारी १२ फैलादी
तोर १३ तोड
डसी १५ डसाई हुई, बिछाई ।
सराप २३ श्राप
गहरू २८ विलंब
निहिच्चै ३१ निश्चय
अप्छर ३६ अप्सराएँ
सहस मसाल ३८ हजारों मसाल
किरन्नि ३८ किरणों
इलात ३६ अलात, उल्का
हीव ६६ हृदय
षौरि ७० लेप
वेसरि ७२ नथुनी
तमोल ७६ पान
कय्यूर ७७ केयूर
सुष दाइका ८० सुख देने वाली
उभी ८२ झुकीं, आईं ।
मृगमद ८३ कस्तूरी

कचोरा ८३ कटोरा
दीपदुत ६२ दीप-ज्योति
अच्छ १०२ आखें
सिथलित १०८ शिथिल हुए
अहिपतिनी ११० सर्पिणी, वेणी ।
सकुचे १११ संकोच
फूलझरी ११४ फुलझरी
ल्हास ११५ उल्हास
ताजनु ११७ तर्जन, ताड़न
लंकु १२१ कटि
जिरह जेवि १२३ कवच
परगल्भ १२६ प्रगल्भ
उजैरो १३१ उजाला
करकि १५० चटक गयी
करच्चूरी १५० हाथों की चूड़ी
पीक की लीक १५० पान की लालिम लकीर
रेष १५१ रेखा
चंद्रचूड़ १५१ शिव, उरोजों के लिए।
उरहनौ १५४ उलाहना
वहाई १५६ बहा दिया
वगसे १६५ वख्श दिया

सुषदाइक १७१ सुखदायक

सिध्यि १८० सिद्धि

लच्छिता १८३ लच्छिता, जिसकी रति प्रकट हो गई हो

मुरजा २१० मुरज, पखावज

छाड़ि २२४ छोड़कर

जँग्य २२७ यज्ञ

मुकत २२८ मुक्त

धरनि २३१ धरती

चक्रत २३२ विस्मित

करौती २३६ आरी, करपत्र

चंपावती खंड

खरक्के १ खड़कती है

जनावत ४ उद्घाटित

दिसि ५ दिशा

गाँऊ ५ गाँव

अचवहिं ८ आचमन करते

पुरषारथ १० पुरुषार्थ

अहँकार १२ अहंकार

छाड़ १२ छोड़

गह्वरि १३ गह्वर भाव से

कासमीर १४ काश्मीर

कंथा १५ कथरी

सेल्ही १५ पतली डोर जैसी वद्धी

तन बासुहिं २० तन-गंध

षार २२ खाल, गहरा

विग २४ वृक, वाघ

अचिकि २६ अचानक, घबराकर

सीरी २७ ठंढी

पीरी २७ पीत

वीरी २७ वीड़ा, कान का आभूषण

नीरी २७ अश्रु

ताईं ३६ तक

जीजे ३६ जिये

अश्वनि ३७ क्वार के

छाँहरी ३७ छाँव

मुरछित ४५ मूर्च्छित

घालि ५६ रखकर

पौरिक ६८ पौरिया

मढ़ी ७१ मठ, कुटी

सिज्या ७६ शैया

मूर् ८३ मूल

गैयर ८४ गजवर, हाथी

फरहिं ६५ फलते

हिराइ ६६ मिट गयी

अंब १०१ आम

पार १०८ घाट

पाइर ११७ पायल

कटाच्छनि ११८ कटाक्षों की

जंपै १२७ कहता नहीं

विस्वुरी १२७ विसरी हुई

कावि १२७ कोई

कदलि दल १३५ केले के खंभे

चवग्गुनु १४५ चौगुना

बरई १५० तंबोली
गवाष १५२ गवाक्ष
खिखिरि १५६ शिखर
बिस्वेसि १५८ विश्वेश्वर
दरी १६१ गुफा
झोई १६५ भिंगोकर, भुलाकर
गाह २०० गाथा
निरंतर २२१ हर बार
अघाऊँ २२७ तृप्त हूँ।
जेहरी २४३ पाजेब
गुंज २४६ गुंजा
नरवे २६३ नरपति
घाइ २६१ घात
बिभास २६४ मलिन
चैनु २६६ चैन
सेव २६७ सेवा
मकर धरकेत ३०४ कामदेव
अंमारी ३२२ हौदे पर का मंडप
चौडोल ३२२ शिविका
सहनाइय ३२५ शहनाई
लोइन ३३० लोचन
मैन चटसार ३३५ काम पाठशाला
लौह मुंद्र ३३६ लोहे की अँगूठी
बसीठि ३४६ दूत
नेर ३६३ नगर
चाह ३७० खबर
कौंचि ३७६ कोने में
पट्टकुट ३६२ शिविर

स्वयंवर खंड

समोये ११ इकत्र किया, समेटा
हैवर १२ घोड़े
मंडप छाहन २१ मंडपाच्छादन
पल्लव चूत २४ आम्र-पल्लव
जंबूनद ३६ यमुना
चुभि ३७ धँसी
पारावत ३७ कबूतर
सावक ३८ बच्चे
करभ ३६, हाथी का बचा
करेलै ३६ कड़ेर
छाम ३६ क्षाम, क्षीण
जोतिक ४० ज्योतिष
किरवान ४३ कृपाण
कोडवार ४४ कोटपाल
गुरज ४४ गदा
धुरज ४४ दृढ़
पोतिहू ४८ चमकीले काँच, या मणि
कुदेरे ४६ टंकित किया है
पचवांन ५० कामदेव
मयूख ५२ चंद्रमा, किरण
अंतरच्छ ५३ अंतरिक्ष
आलोम ५६ लोमहीन
वेनी ५६ वेणी
उवै ५६ उदित
आड़ ५६ सिर का आभूषण
वनक ५६ शोभा

तरौना ५६ कान का गहना
डाहन ६० ईर्ष्या से
कचपाटी ६२ केश पत्रावली
वदन ६१ होड़
पातिंगी ६५ पतले अंग वाली
असपत्ति ७१ अश्वपति
जोइ ८३ जोह कर
गड़ुवा ८६ टोंटीदार लोटा
छुही ८८ लेप लगाना
हिरन्य ८८ स्वर्ण
गुरन्नित ८६ गुरु, पुरोहित
अनूपक ६१ अनुपम
वानि ६१ शोभा
चिराक ६७ चिराग
कौलं ६८ कमल
वरिग १०४ वरी
चढिग १०४ चढ़ी
बढिग १०४ बढी
कोरी १०८ ताजी
सुत्रार २२५ खाद्य
चौर १३५ चँवर
नाग १२६ हाथी
पमरथ्थ १३८ चादर
रवेक १४० रकावी
अथर्वन १५२ अथर्ववेद
उपरैना १५३ अँगरखा
झारी १५४ गड़ुवा
नौवद १८६ नौवत
पूप १६३ पूआ
लोचई १६४ पूड़ी
दार १६६ दाल
वक्कल १६६ बोकला, छिलका
माष १६८ उरद
छाग २०० बकरा
तीतुरी २०१ तीतर
लवा वटेर २०१ छोटे पक्षी
सूला २०१ शोरवा
ताहरी २०२ तहरी
अषनी २०२ शोरवा
वृंताक २०४ भंटा
निमौन २०६ निमोना
चहलै २०८ द्रव, गोला
सीरक २२७ शीतलपाटी
यौरावत २३४ ईरावती
चात्रिक २३५ चातक
षवास २३७ रसोइये
निदाइ २५६ निद्रा
अलरायै २८२ दुलरा कर
बहुरि २८३ पुनः
जुरत २८३ मिलते ही
डंदित २८६ दंडित
नीरी २८७ नजदीक
तत्तु २६१ तत्त्व
दंद २६४ द्वंद्व
रेही ३०१ रेखा
सिथिल ३०२ शिथिल
उँनींनी ३०२ उनींदी
लोइन ३०३ लोचन

सिषापन ३०६ सीख
प्राचीन ३११ पीछे
परपंचु ३१३ प्रपंच
तमोर ३१६ पान
बिजन ३१७ व्यजन
परजाली ३१७ प्रज्ज्वलित
चंगपती ३१६ सेनापति
सुंडाहल ३२१ हाथी
सरवर ३२३ बरावर
बाटनहार ३३१ बाँटने वाला
त्रिवलीय ३३२ त्रिबली
पंच सब्द ३४३ पाँच प्रकार के बाजे
षट दरसनहिं ३४८ छः प्रकार के याचक

घुँघुवारे ३५६ घुँघराले
निचोल ३५६ चोली
पहिर ३५६ पहनकर
बिषु लायौ ३६१ विष लगाया
बिदारन ३६३ विदीर्ण करने वाली
चोज ३७२ उत्साह
कंचुकियं ३७३ कंचुकी
सरै ३७६ हिलती है
अपुनुपौ ३८१ चेतना
सलिता ३८२ सरिता
अरुझानी ३८२ उलझ गयी
हुतासन ३८७ अग्नि
अरूपित ३८८ अर्पित

युद्ध खंड

संघात ४ साथ
उसासन ६ उष्ण श्वासें
वंव ११ वारूद के पलीते
दर्प्पक १२ घंमडी
अग्नित १३ अगणित
समसेर १३ शमशेर [तलवार]
झमंकि १३ झूमकर
अमरापति १३ इंद्र
पसरीरु १८ फैली हुई हैं
पट्ली २० तख्ता, पीढ़ा
मरूवौं २० मरूंगी
सेती २१ से
दादुल २५ दादुर
तरप्यति २५ तड़पती है

ब्रह्म उरूष २६ ब्रह्मवर्ष
गहिल २७ गर्भिल
कुंभसुत ३५ अगस्त
घमारी ३७ एक नृत्योत्सव
जक ४० वकता है
हाला ४० शराबी
जौन्ह ४८ ज्योत्स्ना
तूल ५२ रूई
गारुरि ५४ गारुड़ि, सर्पविष उतारने वाला
गहन ५५ ग्रसन
राहु ५५ राहु
दुहेली ५५ दुःखेली
परचाई ६४ परजाई, प्रज्वलित

वरोसी ६५ वोरसी, अँगीठी
सरवन ६६ अप्सरा [सुर वनिता]
अंत्रपट ७५ अंतरपट
हुतासन ७३ अग्नि
पील ८० हाथी
केवरौ ८१ केतकी
चिनगी ६२ चिनगारी
दसचारि ६७ चौदह
बिजन १०८ व्यजन
ढोरौ १०८ डुलाऊँ
अघवावहु १०६ तृत कराओ
संघाता ११४ समूह
जिहिर १२० जिस
उनमाना १२८ अनुमान
चाहि १३२ इच्छा
बिगावर १३६ विहंगवर
मनधूता १३८ मन को भुलाने वाला
पारासर १३८ व्यास
दुजराज १४० पक्षिराज
एती १५० इतनी
सुरवन १५८ सुरवनिता
औरन १६८ दूसरे
दंपत १८६ दंपति
राता १६० रक्त, लाल
रब १६७ ईश्वर
सिंदूर २०५ नील गाय
अनुसावज २०५ वन्य पशु
कूरे २११ क्रूर, कुरूप
छीपन २१२ सीपी.

बहारू २२७ अभिवादन
नातरु २१८ नहीं तो
निर्विति २२० निमित्त
पुरहूता २२८ इंद्र
पैक २२६ पाइक, पैदल
सनाहा २३० कवच
सहनाइ २३४ शहनाई
मारुव २३४ युद्ध राग
अनी २३८ सेना
उच्छाह २४३ उत्साह
सावंथ २४४ सामंत
भैरो २४८ भैरव
हींस २४८ दाँत निकाल कर हँसना
सांग २४६ साँगी, नोक
वाजुताई २५३ वाज पक्षी
दंती २५४ हाथी
करबाकिरन २५६ कड़वाँक तलवार
टुंडन २५७ बाणा, कटा हुआ
वपारन २५८ चर्बी, मेद
जलजातन २५६ कमल
भवैं २६३ घूमते हैं
सिवा २६६ शृंगालिनें
पनरथ्थ २६६ विवाहक वस्त्र
श्रोन २६८ शोणित, खून
लिन्नंव २७२ लिया
अग्गौछा २७८ अंग क्षालन
पौर २६० खंड, पौरि
पलौटे ३१४ पैर, दबाना
ईठी ३२२ इष्टित, लीन

चंपानेर ३३३ चंपा नगर, चंपावती
आधाना ३५१ गर्भ
उडलि ३५५ उद्वेलित
नद्यावा ३५५ समुद्र
ओली ३६४ क्रोड़, गोद
तोतरी ३७० तुतली

वैरागर खंड

विरध ३ वृद्ध
विगोबा ५ नष्ट किया
झूरहि ६ चिंता करते
मुष ११ मुख
गुहार १४ पुकार
निहचंत २६ निश्चिंत
हाँत ३२ हाँथ
हँकारा ३३ बुलाने वाला
सौज ३५ सामान
निनार ३८ अलग
हरुव ४० हल्का
कौन ५० कोने
संघाती ५१ साथी
चौंडोल ५४ पालकी
आकूतू ५८ अकूत, अतिशय
अभारू ६१ कार्य-भार
परवांनी ६८ स्वीकार किया
अनकारा ७४ अतिशय
चक्कीय ७६ चकवी
चक्क ७६ चकवा
निवहिं ७८ पार लगते
वाटा ८७ रास्ता
ताहर ८८ वहाँ का
वसगत ८८ वस्ती
डिगंवर ६१ दिगंवर
मूसिये ६६ छिन जाता है
साँती १०६ शांति
मंडफ ११४ मंडप
पाटंवर ११५ रेशमी वस्त्र
सुषमानी ११६ सुखमाना
पिष्ष ११८ देखकर
धसिमसिय ११८ धसक गए
वज्जहित ११६ वजते
मुत्तिय १२१ मोती
विलोल १२१ चंचल
तंमोल १२२ तांबूल
निनारा १३८ अकेले
मधि १४० बीच
विद्रुम १४० मूगा
चीनी १४१ चीन्ही
अनकारा १४२ अनेक प्रकार का
विय १४८ दूसरा
दारा १५६ स्त्री
परठ १७२ संकेत
काठी १७३ निकाला
वसीठ १८६ दूत
विसारा १८६ भूला
चक्रित १६० चौंकता हुआ

भरहि २०८ देते थे
पैस २०६ पेश
कलि २०६ करके
साँवकरन २०६ श्यामकर्ण
सिराजी २०६ सिराज़ के
जंपहिं २३५ बोलते
बिगाछें २४० मरे
खोरिन २८१ गली
पारि पखान २८५ पत्थर के घाट
भटंत ३४० भूटान
भेरा ३४८ पार उतरने का सहारा
